उर्दू-कविता पर एक दृष्टि

('उर्दू-शायरी पर एक नजर' का हिन्दी-अनुवाद)

पहला भाग

मूल लेखक

श्री कलीमुद्दीन अहमद

अनुवादक

प्रो० रामप्रसाद लाल

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

3.9

आशुतोष अवस्थी
अध्यक्ष
श्री नारायणेश्वर वेद वेदाङ्ग समिति (उ.प्र.)

उर्दू-कविता पर एक दृष्टि

('उर्दू-शायरी पर एक नजर' का हिन्दी-अनुवाद)

पहला भाग

मूल लेखक
श्रीकलीमुद्दीन अहमद

अनुवादक
प्रो० रामप्रसाद लाल

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक :

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-८००००४

© बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

प्रथम संस्करण, २०००

शकाब्द १९०३; विक्रमाब्द २०३८; खीष्टाब्द १९८१

मूल्य : ~~२०~~ रुपये 50/-

मुद्रक :

मुरलीधर प्रेस

पटना-८००००६

वक्तव्य

यह सुयोग ही है कि राजर्षि टण्डन-जन्मशती-वर्ष में 'उर्दू-कविता पर एक दृष्टि' (भाग १) नामक ग्रन्थ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् द्वारा प्रकाशित हो रहा है, यद्यपि यह लम्बे अरसे से मुद्रणाधीन रहा है। उर्दू-भाषा विदेशी शब्दों (अरबी-फारसी) की प्रचुरता के बावजूद भारत की ही मिट्टी की खुशबू से पैदा हुई और परवान चढ़ी है। इसके साहित्य ने भारत के अन्तःकरण को उसी प्रकार व्यक्त एवं मुखरित किया है, जिस प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं ने। विदेशी फारसी-लिपि के बावजूद यह भारत की मुख्य धारा से मिली-जुली रही है और इसने भारत के अपभ्रंश एवं देशज शब्दों को ही नहीं, बल्कि तत्सम-तद्भव शब्दों को भी प्रचुर संख्या में अपनाया है। और, भारतीय अन्तरात्मा से भी यह एकात्म रही है। भारत के स्वाधीनता-संग्राम में भी उर्दू-कविता (शायरी) और गद्य (नसर) ने स्तुत्य एवं अनुकरणीय योगदान किया है।

प्रत्येक भाषा में उदारता, सदाशयता, शालीनता, सहृदयता आदि सद्गुण सन्निहित रहते हैं। और, हिन्दी-भाषा के सद्गुण इसकी व्यापकता से ही प्रत्यक्ष हैं। लिपि-भेद रहते हुए भी; हिन्दी-जगत् उर्दू भाषा को सदा अभिन्न मानता रहा है। हिन्दी के महामनीषी उन्नायक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी ने बहुत पूर्व ही घोषित किया था : 'मेरे आगे संकुचित दृष्टि नहीं। उर्दू के कवियों ने हमारी सम्पत्ति बढ़ाई है। उससे हम अपने को अमीर ही बना सकते हैं।'

अन्यत्र उन्होंने कहा है : 'इतनी दूर एक-दूसरे से नहीं हुए हैं कि फिर मिलकर एक प्रबल धारा में परिणत हो, भारतवर्ष-भर को अपनी शक्ति से उर्वरा कर, सुसज्जित न कर दें। प्रतिभाशाली कवि और प्रौढ़ लेखक हिन्दी और उर्दू की मिली हुई उस भाषा में भी वही शक्ति उत्पन्न कर देंगे, जो सदा अपभ्रष्ट, किन्तु जीवित भाषाओं में मिलती आई है।'

परिषद् के प्राण-प्रतिष्ठापक निदेशक आचार्य शिवपूजन सहाय जी ने अप्रैल, १९५४ ई० में ही 'साहित्य' त्रैमासिक की सम्पादकीय टिप्पणियों में लिखा था : 'इस देश में हिन्दू और मुसलमान सदियों से साथ रहते आये हैं। सैकड़ों वर्षों से दोनों के बोलचाल की भाषा एक रही है। दोनों की भाषा में पहले केवल लिपि का ही भेद था। कई लेखकों और कवियों की उर्दू-रचनाएँ ऐसी हैं, जो अगर नागरी लिपि में लिख दी जायँ, तो मुहावरेदार सरल हिन्दी की ही एक शैली प्रतीत होंगी। लिपि की दीवार हटा देने पर बहुत-सी उर्दू की रचनाएँ हिन्दी की हो जाएँगी।'

हिन्दी की सदाशयता के सम्बन्ध में आचार्य शिवजी ने घोषित किया था : 'वह (हिन्दी) सभी भाषाओं का फलना-फूलना देखकर सन्तुष्ट ही होगी। अन्त में हिन्दी की नेकनीयत ही फलेगी। किसी भाषा का अपकार उसके ध्यान में नहीं है। किसी भाषा से उसकी प्रतिद्वन्द्विता भी नहीं है।'

अतएव हिन्दी का उर्दू-भाषा या साहित्य से अथवा किसी भी भाषा या साहित्य से कोई विरोध नहीं रहा है और न है। अँगरेजी-भाषा या साहित्य से भी भाषा या साहित्य के रूप में इसका कोई विरोध नहीं है। समन्वय एवं प्रेम के मार्ग से ही हिन्दी या कोई भी भाषा आगे बढ़ती और व्यापक होती है। राजभाषा हिन्दी में भी उर्दू के 'वसूल' शब्द से 'वसूलीय' और 'भुगतान' शब्द से 'भुगतेय' जैसे पारिभाषिक शब्द बनाये गये हैं। 'भुगतान' और 'वसूल' शब्द तो लिये ही गये हैं, अन्य बहुत-सारे उर्दू-शब्दों को भी हिन्दी-पारिभाषिक शब्दकोश में लेने में कोई कोताही नहीं की गयी है।

अँगरेजी एवं उर्दू के यशस्वी विद्वान् तथा आलोचक श्रीकलीमुद्दीन अहमद साहब की 'उर्दू-शायरी पर एक नजर' नामक उर्दू-पुस्तक उर्दू-जगत् में सुपरिचित है। उसीका अविकल हिन्दी-अनुवाद उर्दू के सेवा-निवृत्त प्राध्यापक श्रीरामप्रसाद लाल ने किया है, जो परिषद् द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। परिषद् मूल लेखक एवं अनुवादक—दोनों का ही आभार सादर स्वीकार करती है। इसके पूर्व भी परिषद् प्रो० लाल द्वारा अनूदित और श्रीकलीमुद्दीन अहमद द्वारा लिखित एक पुस्तक 'उर्दू-समालोचना पर एक दृष्टि' के नाम से प्रकाशित कर चुकी है, जो अतिशय लोकप्रिय एवं उपादेय मानी गई है। आशा है, उर्दू-कविता के सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक भी पूर्व पुस्तक की भाँति ही, बल्कि उससे भी अधिक, लोकप्रिय तथा उपादेय सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के प्रकाशन के साथ हम प्रकाशन में विलम्ब के लिए क्षमाप्रार्थी हैं। साथ ही, हम कृपालु पाठकों का अभिनन्दन भी करते हैं। हम आशा करते हैं कि उर्दू-गद्य-साहित्य के सम्बन्ध में भी हिन्दी में ग्रन्थ लिखा जायगा और ऐसा ग्रन्थ सुलभ होने पर परिषद् उसे भी प्रकाशित करने का प्रयास करेगी। यों गद्य-साहित्य की अनक विधाएँ हैं, जिन पर पृथक्-पृथक् ग्रन्थ अपेक्षित हैं।

हमें यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि विद्वान् लेखक तथा अनुवादक की 'उर्दू-कविता पर एक दृष्टि' (भाग २) भी मुद्रणाधीन है, जिसे शीघ्र ही प्रकाशित करने का प्रयास परिषद् द्वारा किया जा रहा है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
श्रावण-शुक्ला सप्तमी, २०३८ वि०
७ अगस्त, १९८१ ई०

रामदयाल पाण्डेय
उपाध्यक्ष सह-निदेशक

प्रो० कलीमुद्दीन अहमद

जन्म-स्थान : खाजेकलाँ, पटना; **जन्म-तिथि** : १५ सितम्बर, १९०९; **प्रारम्भिक शिक्षा** : परम्परागत रूप में, माध्यमिक शिक्षा ऐंग्लो अरविन्द स्कूल, पटना सिटी, तत्पश्चात् पटना कॉलेज। सन् १९२८ ई० में पटना विश्वविद्यालय से अँगरेजी में बी० ए० (ऑनर्स) तथा सन् १९३० ई० में उसी विश्वविद्यालय से अँगरेजी में एम० ए०; बिहार-सरकार की राज्य-छात्रवृत्ति प्राप्त; सन् १९३२ ई० में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अँगरेजी में ट्राइपॉस; सन् १९३३ ई० में मॉडर्न लैंग्वेजेज ट्राइपॉस।

अगस्त, १९३३ ई० में पटना कॉलेज में अँगरेजी के सहायक प्राध्यापक; जून, १९६६ ई० में प्राध्यापक; सन् १९४७ ई० और पुनः सन् १९५० ई० में दो बार उप-शिक्षा-निदेशक के पद पर नियुक्ति; सन् १९५२ ई० में पटना कॉलेज के प्राचार्य; सन् १९५८ ई० में बिहार के लोकशिक्षा-निदेशक। इस पद पर रहते हुए दो बार भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर स्थानापन्न रूप से कार्य।

सन् १९६४ ई० के अक्टूबर से सन् १९६७ ई० के सितम्बर तक बिहार माध्यमिक परीक्षा-बोर्ड के अवैतनिक अध्यक्ष; सन् १९६७ ई० के १४ सितम्बर को राजकीय सेवा से निवृत्ति, तत्पश्चात् कई राजकीय एवं अराजकीय संस्थाओं में रहकर योगदान; सन् १९७३ ई० में गालिब-पुरस्कार से पुरस्कृत; सन् १९७४ से १९७९ ई० तक 'अँगरेजी-उर्दू-शब्दकोश' के प्रधान सम्पादक; सन् १९७६ ई० में हिन्दी-उर्दू-समिति, लखनऊ (उ० प्र०) द्वारा उर्दू-पुरस्कार प्राप्त; १७ जून, १९८० से बिहार उर्दू-अकादमी के उपाध्यक्ष; १५ नवम्बर, १९८० से 'उर्दू-अँगरेजी-शब्दकोश' के प्रधान सम्पादक के रूप में कार्यरत।

रचनाएँ —डॉ० अजीमुद्दीन अहमद की सभी रचनाओं के संग्रह 'गुले-नगमा' का प्राक्कथन-लेखन, सन् १९३९ ई०; 'उर्दू-शायरी पर एक नजर' (दो जिल्दों में) क्रमशः सन् १९५२ तथा सन् १९५६ ई०; 'उर्दू-तनकीद पर एक नजर', सन् १९४२ ई० ('उर्दू-समालोचना पर एक दृष्टि' के नाम से हिन्दी-अनुवाद बि० रा० परिषद् द्वारा प्रकाशित); 'उर्दू-जबान और फने दास्तांगोई', सन् १९४४ ई०; 'लुक्रेटियस' (Lucretius) (सन् १९४६ ई०); 'साइको-एनेलिसिस ऐण्ड लिट्ररी क्रिटिसिज्म' (सन् १९४७ ई०); 'सोखन हाय गुफ्तनी' (सन् १९५५ ई०); 'दीवाने-जहाँ' (ले० बेनी नारायण) का सम्पादन (सन् १९५९ ई०); 'तजकिरे शोरिश' और 'तजकिरे इश्की' (सन् १९६२ ई०); स्व० प्रो० फजलुर रहमान के निबन्धों का संग्रह 'चार मोकाले' (सन् '६१ का सम्पादन); 'बलवले' (हकीम फहीमुद्दीन अहमद की गजलों और नज्मों के संग्रह 'मजमुआ' का सम्पादन); 'अमली तनकीद' (सन् १९६३ ई०), 'गुलजारे इब्राहीम' (दो खण्ड, कविता-संग्रह) का सम्पादन, सन् १९६८ और १९७२ ई०; 'बयालीस नज्में' (स्वरचित, १९६५ ई०); 'पच्चीस नज्में' (स्वरचित, १९६६ ई०); 'अपनी तलाश में' (सन् १९७८ ई०); 'दीवाने-जोशिश' (सन् १९७७ ई०); 'कुल्लियात शाद अजीमाबादी' (सन् १९७५ ई०, तीन जिल्दों में सम्पादन); 'काजी अब्दुल वदूद के मोकालात' (निबन्धों) का सम्पादन (पाँच जिल्दों में, सन् १९७७ ई०); 'अदबी (साहित्यिक) तनकीद के उसूल' (सैयदैन मेमोरियल लेक्चर्स, सन् १९७७ ई०); 'मेरी तनकीद : एक बाजगीद' (खुदाबख्श तौसीयी खुतबात, सन् १९७८ ई०); 'कदीम मगरबी तनकीद' (सन् १९७९ ई०)—उत्तरप्रदेश उर्दू अकादमी द्वारा आयोजित; 'इकबाल : एक मुताला' (अध्ययन) (सन् १९७९ ई०); 'ग्लॉसरी ऑव लिटररी टर्म्स'।

विषय-सूची

आमुख	....	१—४
१. प्राक्कथन	....	५—१५
२. प्रस्तावना	....	१—६१
३. गज़ल-कि़ता	....	६२—९९
४. मीर, दर्द, सौदा,	...	१०० —१३७
५. ज़ौक़, गालिब, मोमिन	....	१३८—१७३
६. क़सीदा, हजो	....	१७४—१९१
७. मसनवी	...	१९२—२०७
८. मीरहसन, हाली	....	२०८—२३९
९. मर्सिया, अनीस	....	२४०—२५४
१०. अनीस व दबीर	....	२५५—२७५
११. विविध विधाएँ	....	२७६—२८०
१२ पूर्णाहुति	....	२८१—२८३
परिशिष्ट (नज़ीर अकबराबादी)	...	२८४—३१७
सन्दर्भ-संकेत	....	३१८—३२४
नामानुक्रमणी तथा ग्रन्थ-नामानुक्रमणी	....	३२५

आमुख

आर्नल्ड ने कहा है :

"सर्वोत्तम काव्य-रचना—हमें चाह है तो इसी की - सर्वोत्तम काव्य में एक दैवी चमत्कार है, जिससे हमारी दुनिया बनती है, जो हमारा सहारा भी है और हमारे आनन्द का कारण भी—और यह सहारा, यह आनन्द और कहीं मुयस्सर नहीं—

इसलिए जरूरी है कि जब हम शेर (कविता) पढ़ें तो हमें अच्छाई का एहसास हो, जो वास्तव में महान् तथा उदात्त है और जो शक्ति तथा प्रसन्नता का उद्गम-स्थान है, उसका जीवन्त एहसास हो और यह एहसास हमेशा स्थायी रहे, और हम जो कुछ भी पढ़ें उसके सही मूल्य-महत्त्व की जाँच-परख इस जीवन्त एहसास की कसौटी पर करें।"

अगर आप आर्नल्ड की बातों को ध्यान में रखें—और इन बातों को कविता और साहित्य का अध्ययन करते समय बराबर ध्यान में रखना चाहिए—तो जो बातें मैंने कही हैं, उन्हें आप अनोखी न समझेंगे।

इस किताब में—और दूसरी किताबों में भी मेरा 'अन्दाज़े नज़र' सारे 'जमाने से जुदा' नहीं है, लेकिन इसे मानने-न-मानने का आपको पूर्ण अधिकार है।

सन्दर्भ-संकेत

१. आर्नल्ड की पूरी इबारत यह है :

"We should conceive of poetry worthily, and more highly than it has been the custom to conceive of it. We should conceive of it as capable of higher uses, and called to higher destinies, than those which in general men have assigned to it hitherto. More and more mankind will discover that we have to turn to poetry to interpret life for us, to console us, to sustain us Without poetry, our science will appear incomplete, and most of what now passes with us for religion and philosophy will be replaced by poetry. Science, I say, will appear incomplete without it. For, finely and truly does Wordsworth call poetry "impassioned expression which is in the countenance of all science"; and what is a countenance without its expression. Again, Wordsworth finely and truly calls poetry "the breath and finer spirit of all knowledge" : our religion, parading evidences such as those on which the popular mind relies now; our philosophy, pluming itself on its reasonings about causation and finite and infinite being : What are they but the shadows and dreams and false shows of knowledge ? The day will come when we shall wonder at ourselves for having trusted to them, for having taken them seriously; and the more we perceive their hollowness, the more we shall prize "the breath and finer spirit of knowledge" offered to us by poetry.

But if we conceive thus highly of the destinies of poetry, we must also set our standard for poetry high, since, poetry, to be capable of fulfilling such high destinies, must be poetry of a high order of excellence. We must accustom ourselves to a high standard and to a strict judgment. Sainte-Beuve relates that Napoleon one day said, when something was spoken of

in his presence as a Charlatan: "Charlatan as much as you please; but when is there not Charlatanism?"—"Yes", answers Sainte-Beuve, "In politics, in the art of governing mankind, that is perhaps true. But in the order of thought, in art, the glory, the eternal honour is that Charlatanism shall find no entrance; herein lies the inviolableness of the noble portion of human being." It is admirably said, and let us hold fast to it. In poetry, which is thought and art in one, it is the glory, the eternal honour that Charlatanism shall find no entrance, that this noble sphere is kept inviolate and inviolable. Charlatanism is for causing or obliterating the distinctions between excellent and inferior, sound and unsound or only half-sound, true and untrue or only half-true. It is Charlatanism, conscious or unconscious, whenever we confuse or obliterate these. And in poetry, more than anywhere else, it is unpermissible to confuse or obliterate them. For in poetry the distinction between excellent and inferior sound and unsound or only half-sound, true or untrue or only half-true, is of paramount importance. It is of paramount importance because of the high destinies of poetry. In poetry, as a criticism of life under the conditions fixed for such a criticism by the laws of poetic truth and poetic beauty, the spirit of our race will find, we have said, as time goes on and as other helps fail, its consolation and stay. But the consolation and stay will be of power in proportion to the power of the criticism of life. And the criticism of life will be of power in proportion as the poetry conveying it is excellent rather than inferior, sound rather than unsound or half-sound, true rather than untrue or half-true.

The best poetry is what we want, the best poetry will be found to have a power of forming, sustaining, and delighting us as nothing else can........

Yes; constantly, in reading poetry, a sense for the best, the

really excellent, and of the strength and joy to be drawn from it, should be present in our minds and should govern our estimate of what we read."

[*Matthew Arnold : The Study of Poetry*]

२. इक़बाल :

उसका अन्दाज़े[1] नज़र अपने ज़माने से जुदा
उसके अहवाल[2] से महरम[3] नहीं पीराने[4]-तरीक़[5] ।

---

१. देखने-समझने का ढंग । २. हालतें, दशाएँ । ३. अवगत, अभिज्ञ, जानकार । ४. बूढ़े लोग । ५. पथ, रास्ता, सूफ़ी-परम्परा या पद्धति ।

प्राक्कथन

*बेयावरेद गर ईंजा बवद ज़बांदाने,
ग़रीबे शह्र सुख़न हाय गुफ़्तनी दारद ।।

उर्दू में आलोचना की कला सही अर्थ में अभीतक उनक़ा[1] (की तरह) अप्राप्य है । इस अभाव का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि हमारी भाषा में ललित कलाओं के महत्त्व और उनकी तात्त्विकता की बहुत उपेक्षा की गई है । फ़ारसी-कविता के अन्धानुकरण तथा बहज़ाद[2]-वोमानी[3] के शिष्यत्व में इस बात की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया कि फ़ारसी कलाओं की जड़ें जिस ज़मीन में धँसी हुई हैं, उनकी डालियाँ जिस वायुमंडल में झूमी हैं, वह हिन्दुस्तान के वायुमण्डल और यहाँ की मिट्टी से बिल्कुल भिन्न हैं । फ़ारसी-कविता ने भी अपना पिंगल, छन्द और काव्य-रूप इत्यादि अरबी भाषा से ग्रहण किये हैं । लेकिन ईरानी प्रतिभा ने उनमें इतना परिवर्त्तन-परिवर्द्धन किया, उन्हें ईरानी दर्शन, ईरानी विचारधारा, ईरानी सभ्यता के रंग में इतना डुबो दिया कि उनका माहौल बदल गया । मौलिक उद्भावनाओं ने उनके संगीत में भी विशिष्ट फ़ारसी रंग उत्पन्न कर दिया । अरबी सभ्यता और भाषा के जो प्रभाव ईरानी जीवन पर पड़े, वे फ़ारसी-साहित्य में स्पष्ट रूप से वर्त्तमान हैं, किन्तु उनकी प्रकृति ही मानों बदल गई है । इसी प्रकार 'हान', 'सुंग' और 'मिंग'-युग के चीनी चित्रकारों से ईरानी चित्रकारी ने बहुत-कुछ सीखा, लेकिन वहाँ भी ईरानी रंग अन्य तत्त्वों से बढ़-चढ़कर रहा । इसके विपरीत उर्दू-कवियों ने फ़ारसी-कविता को हू-ब-हू अपनी भाषा में उतार लिया । इनकी कला अनुवादक की कला है, कवि की नहीं । परिणाम यह हुआ कि भारत की इस विदेशी मिट्टी में उस प्रकार की फ़ारसी-कविता की जड़ें सूख गईं, यहाँ के वायुमण्डल में उसकी पत्तियाँ मुरझा गईं; कविता का ढाँचा तो वही रहा, लेकिन उसकी आत्मा के प्राण-पखेरू उड़ गये । आश्चर्य है कि उर्दू के कवियों ने अरबी-कविता का अनुकरण नहीं किया; क्योंकि अरबी-कविता में अनुभूतियों की नवीनता, कल्पनाओं की प्रफुल्लता, भावनाओं की तात्त्विकता और वैयक्तिक विशेषताएँ अपेक्षाकृत फ़ारसी से अधिक हैं । किन्तु, अधिक सम्भव था कि हमारी अनोखी प्रतिभा उसे भी वैसे ही मुर्दा माहौल में परिणत कर देती ।

किसी सभ्यता में आलोचना के सही मापदण्ड को बनाये रखने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि कविता और अन्य ललित कलाओं की ऐसी प्रचुर निधि मौजूद हो, जो आलोचक के लिए पथ-प्रदर्शक बन सके, किन्तु कविता कविता हो, न कि शाब्दिक कृत्रिमता की भरमार, चित्रकारी भावनाओं का चित्रण हो, न कि मात्र सुशोभन शृंगार; कविता आलोचना का अनुसरण

---

* यहाँ कोई (मेरी) भाषा समझनेवाला हो तो उसे बुला लाओ; इस नगर का यात्री कुछ कहने योग्य बातें कहना चाहता है ।

१. एक काल्पनिक पक्षी, जो सदा गुप्त रहता है, २.-३. ईरान के नामी चित्रकार ।

नहीं करती प्रत्युत आलोचना कविता की आभारी होती है। आलोचक ललित-कलाओं की खूबियों से प्रभावित होकर अपनी आवेगपूर्ण अनुभूतियों से कला के सिद्धान्त ग्रहण करता है। 'अरस्तू' की मान्यताएँ इतनी गूढ़ और व्यापक इसलिए हैं कि उसके सामने यूनानी कविता तथा ड्रामा के ऐसे उच्च कोटि के तथा दुर्लभ नमूने वर्तमान थे, जो यूनानी कवियों की सर्वोत्तम भावनाओं एवं कल्पनाओं को पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित करते हैं। यदि आलोचक प्रखर बुद्धि-वाला तथा मेधावी व्यक्ति न हो तो उसे 'साफोक्लीज' के नाटकों और 'अमानत' की 'इन्द्र-सभा' में एक ही प्रकार का सौन्दर्य दिखाई पड़ेगा। अच्छे आलोचक का भावुक होना अनिवार्य है। उसे मेधा और बौद्धिकता की देन मिलती है; वह खण्ड सत्य तथा पूर्ण सत्य, अध्ययन-प्राप्त ज्ञान तथा सहज ज्ञान में भेद कर सकता है। वह विभिन्न अनुभवों और प्रभावों के उन तत्त्वों में, जो एक-दूसरे के सदृश हों, संतुलन कर सकता है। तात्त्विक आवेगों की सही अभिव्यंजना उसके स्नायुमण्डल में उथल-पुथल मचा देती है, किन्तु कृत्रिम भावनाओं की खाका-कशी उसकी रगों को सर्द वो शिथिल छोड़ देती है। उसे महत्त्वपूर्ण और आधारभूत विचारों तथा भावनाओं से दिलचस्पी होती है। 'अरस्तू' में ये सारी खूबियाँ प्रचुर मात्रा में मौजूद थीं।

अगर किसी भाषा में कविता का मानक ऊँचा न हो तो उसके आलोचक का कार्य-क्षेत्र भी अनिवार्य रूप से सीमित हो जायगा। उसकी दृष्टि खण्ड सत्य पर पड़ेगी और वह उन्हीं को काव्य-सौष्ठव समझेगा और सतही गुण-दोष की खोज में रहेगा। वह कवि-विशेष की रचना को जीवन्त तथा प्रचलित भाषा की कसौटी पर न परखकर प्राचीन कवियों के काव्य-संग्रहों में भी निरर्थक और निष्प्राण प्रमाणों की खोज करेगा। घिसे-पिटे तथा रौंदी हुई बंदिशों और रचनाओं में शब्दों की विलक्षणता अथवा रूपकों का अनोखापन उसके लिए तूर पहाड़ पर परमात्मा के आलोक-दर्शन के समतुल्य होंगे। वह कृत्रिमता और शाब्दिक नटबाज़ी का पुजारी हो जायगा। उसे सहज-स्वाभाविक प्रचलित भाषा से घृणा होगी, लेकिन अत्युक्ति उसे कविता की पराकाष्ठा जान पड़ेगी।

यदि यह रोग आलोचक ही तक सीमित रहता तो बहुत हानि न थी, किन्तु सभी देशों में जनसाधारण और मामूली पढ़े-लिखे आदमियों की संख्या बहुत अधिक होती है। साहित्यकार इनकी निगाहों में एक 'मूसा' है, जो तूर पहाड़ से जीवन-संदेश लाया है और जिस पर सभी कलाएँ और प्रकृति के समस्त गुप्त रहस्य प्रकट हो गये हैं। उसकी बातें साधारण बुद्धि से जितनी परे होंगी उतनी ही सही और अनिवार्य मालूम होंगी। जनसाधारण में बड़ी खूबियाँ होती हैं, लेकिन समस्या पर मनन-चिन्तन करके उसके तत्त्व तक पहुँचना और उसके सभी पहलुओं को समझना उनमें नहीं होता।

कवि भी बहुमत और प्रचलित आलोचना के झूठे देवताओं से प्रभावित होकर रस्मी माँगों को पूरा करने की चेष्टा में अपनी वास्तविक भावनाओं की उपेक्षा करेगा और महज़ क्षणिक ख्याति के लिए अपनी ईश्वर-प्रदत्त चिरन्तन शक्ति को खो बैठेगा; उसकी स्नायुएँ ढीली हो जायेंगी और उसकी दशा एक खोखले ढोल की-सी होगी, जिससे डरावनी और कोलाहल उत्पन्न करने-वाली

आवाजें निकलती हैं, किन्तु निस्सार और निरर्थक, जिनमें न तो संगीत की लोच है, न सूक्ष्म विवरणों की कोमलता :

पट मन्दिर के खोल पुजारी
पट मन्दिर के खोल

इस प्रकार की कविता से आलोचना विषयक अन्य बातें ग्रहण की जाती हैं और इस प्रकार कविता और आलोचना एक-दूसरे के विनाश तथा ह्रास का कारण होती हैं।

वर्त्तमान समय तक उर्दू-कविता और आलोचना का ठीक यही रवैया रहा है। कहने का अभिप्राय यह नहीं कि उर्दू में कवि नहीं हुए; हुए जरूर, मगर केवल इस कारण कि उनकी भावनाएँ इतनी कोमल थीं कि समकालीन विनाशकारी विचारों का प्रभाव उनपर अपेक्षाकृत कम पड़ा,—विष मानों एक हद तक नष्ट हो गया। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उनकी रचना उनकी सम्भावनाओं का अधूरा खाका है। अधिक अच्छे वातावरण में उनकी रचना उन दोषों से मुक्त होती, जिनकी ओर पाठकों का ध्यान इस निबन्ध में आकृष्ट किया गया है।

प्राचीन लेखकों की आलोचना पिंगल और तुक-यमक की शुद्धता तक ही सीमित थी। वे अक्षर-लोप और पद-लोप की लड़ाइयों में इस तरह उलझे हुए थे कि वास्तविक कविता उनके दृष्टिकोण से बिल्कुल परे थी। पक्षपाती दलों के बीच प्रमाणों के तीरों की बौछार होती थी। इन उपद्रवों में उर्दू-कविता की शिराओं से इतना खून बहा कि वह दुर्बल एवं क्षीण होकर मृतप्राय हो गई।

काव्य-रचना केवल आवेगों की अभिव्यंजना ही नहीं, एक कला, एक रचना-कौशल भी है। कवि शब्दों की सहायता से अपनी भावनाओं, विचारों, हृदयावेगों और उमंगों, अपने जीवन के अनुभवों को एक रचनात्मक क्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। उसे भाषा में अनुपात, औचित्य और सन्तुलन का उतना ही ध्यान रखना होता है, जितना मूर्त्ति बनानेवाले को मूर्त्ति बनाने में। इसलिए वास्तव में पिंगल और छंद, रूपक तथा तुक और कविता की अन्य आवश्यक बातें महत्त्वपूर्ण अवश्य हैं, लेकिन ये सब साधन-मात्र हैं अभीष्ट पद पर पहुँचने के लिए; रास्ते के मनोरम दृश्यों में उलझकर उद्देश्य को भूल जाना मूर्खता है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए 'मजनूँ' को मरुस्थलों में भ्रमण करना और फ़रहाद को पहाड़ काटना पड़ा। न मजनूँ पहाड़ काटकर लैला की साँड़िनी की गर्द को पा सकता था; न फ़रहाद मरुस्थलों में भ्रमण करके शीरीं के दर्शन के लिए लालायित हो सकता था। इसी तरह हर कवि को अपनी मुक्ति की राह अलग निकालनी होती है। दूसरों का अनुकरण करके वह केवल भटकता ही रहेगा। अगले राहियों के पदचिह्न-मात्र एक हद तक ही उसका पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं, आगे नहीं। ईश्वर ने उसे ऐसे गुण प्रदान किये हैं, जिनमें व्यक्तित्व की झलक छिपी हुई है। उसकी कहने योग्य बातें उसकी अपनी हैं और उसकी रचनात्मक क्रिया में भी वैयक्तिक पहलू प्रमुख होना चाहिए। ... ...

वर्त्तमान युग में आशा थी कि उर्दू दृष्टिकोण की संकीर्णता से विमुक्त होगी और अगले दोषों से रहित, कारण कि इस युग में लोगों को उन साहित्यों का पर्याप्त ज्ञान हो गया है, जिनमें इस कला के विस्तीर्ण और उच्च कोटि के ग्रन्थ मौजूद हैं, जिनमें दीर्घकाल के परिश्रम और शोध, तर्क-वितर्क और नुक्ताचीनी के बाद धीरे-धीरे आलोचना-कला की तर्कपूर्ण इमारत खड़ी की गई है। किन्तु अनुसन्धान की दृष्टि आधुनिक उर्दू-गद्य के मरुस्थल में दूर-दूर की यात्रा तय करके असफल और निराश लौट आती है, कारण कि आज की आलोचना में वही पुराने 'प्रमाण महोदय' नया वेश बदलकर विराजमान हैं, लेकिन उद्देश्य के उद्घाटन में अपेक्षाकृत बहुत दूर हैं। पुरानी आलोचना में परम्परागत तर्क प्रस्तुत किये जाते थे, जिन्हें मेधावी व्यक्ति समझ सकता था। उनका क्षेत्र संकीर्ण था, किन्तु वह बौद्धिकता तथा वास्तविकता पर आधारित था। वर्त्तमान ढंग यह है कि किसी अर्थहीन कहानी या कविता के प्रमाण में यूरोप के साहित्यकारों के नाम लिये जाते हैं, जिनकी आलोचक को भी महज़ ऊपरी या ग़लत जानकारी होती है। और, इस तरह जनसाधारण को प्रभावित करने के लिए उनकी अल्पज्ञता से अच्छा लाभ उठाया जाता है। वक्ता और बोधव्य में प्रायः केवल यही अन्तर रहता है कि वक्ता 'चेखव' या 'मोपासाँ' या 'ब्राउनिंग' या 'ईलियट' के नाम से परिचित है और शायद उनकी एकाध कहानियों और कविताओं को सतही ढंग से जानता है और बोधव्य उन्हें बिलकुल नहीं था और भी सतही ढंग से जानता है। 'शेक्सपियर', 'मिल्टन', 'टाल्स्टाय', 'चेखव', 'गोर्की', 'मोपासाँ' और 'फ़्लाबेयर' के आदरणीय नाम इस प्रकार की आलोचना में सुलेमानी छाप के तावीज़ों और मन्त्रों की तरह सद्यःप्रभावी होते हैं। हमारे साहित्यकारों ने इन नामों का स्मरण करके बड़े-बड़े प्रेतों को अपने वश में कर लिया है, जो उदण्ड नुक्ताचीनी करनेवालों को तो अपनी असाधारण मेधा-शक्ति से शीघ्र ही वशीभूत कर लेते और आज्ञाकारी बना लेते हैं, विशेषतः चेखव का नाम महामन्त्र का असर रखता है, जो हर सीधे-साधे नुक्ताचीनी करनेवाले व्यक्ति को क्षण-मात्र में ही भयभीत कर देता है। इस प्रकार के तर्क एक और रूप में दिखाई पड़ते हैं। भिन्न-भिन्न ललित कलाओं या साहित्यिक रूपों के विशिष्ट गुणों को नज़र के सामने न रखकर चित्रकारों और कवियों या कवियों और कहानी-लेखकों में साम्य दिखला दिया जाता है। उदाहरण-स्वरूप एक महानुभाव ने ग़ज़ल की 'ज्वायस' के उपन्यास 'युलिसिस' से उपमा दी है, या एक साहित्यकार ने अपने एक निबन्ध में ग़ालिब को माइकेल ऐन्जेलो, 'गेटे, नीत्से, ल्यूनार्द-द-विन्सी, बिथोवेन, मूनस्टार्ट, इत्यादि-इत्यादि के बराबर और उनके समकक्ष होने का महान् गौरव प्रदान किया है। बेचारी अक्ल घबराकर पूछती है कि आखिर माइकेल ऐन्जेलो और ग़ालिब या बिथोवेन और ग़ालिब में कैसी रिश्तेदारी है या किस जासूसी कला के माध्यम से एक जटिल, क्रमबद्ध और दीर्घकाय नावेल की वंशावली, जो आद्योपान्त मौलिकता और नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की सजीव प्रतिमा है और जिसमें वर्त्तमान यूरोप के संवेगात्मक अनुभवों के सबसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है, एक ऐसे काव्य-रूप से जा मिलती है, जो क्रमविहीनता, रूढ़िवादिता और दृष्टिकोण की संकीर्णता के लिए प्रख्यात है। मगर नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है? संसार

के महान् लेखकों के नाम के आतंक से प्रभावित होकर अक्ल थर्रा जाती है और इच्छा नहीं रहते हुए भी मानना पड़ता है कि :

"रुमूज़े मुम्लिकते ख़्वेश ख़ुसरुआं दानन्द*
गदाये गोशा नशीनी तु 'हाफ़िज़ा' मख़रोश"

वर्त्तमान उर्दू-आलोचना-साम्राज्य के रहस्य सूफ़ीमत के रहस्यों से अधिक गोल-मटोल और दुर्बोध हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि इस बात की बड़ी आवश्यकता थी कि न केवल उर्दू-कविता की ख़ामियों की ओर, बल्कि उर्दू-आलोचना की त्रुटियों की ओर भी समझदार व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट किया जाय। लगभग नौ वर्ष हुए कि इंगलिस्तान में 'कलीम' और मेरे विद्यार्थी-जीवन का समय था। वार्त्तालाप के क्रम में इस विषय पर बहस निकल आई। हमारे विचारों में मतैक्य था। आवश्यकताओं का एहसास था, लेकिन दिक्कतों और कठिनाइयों का भी ख़याल था। धीरे-धीरे आपस के विचार-विनिमय के बाद एक धुँधला-सा ख़ाका कार्यक्रम के रूप का तैयार हुआ। कलीम ने कविता की आलोचना का गुरुतर भार अपने ऊपर लिया, मैंने उर्दू-गद्य पर लिखने का वचन दिया। लेकिन, इस प्रतिज्ञा का कोई तात्कालिक परिणाम न निकला। कार्य-व्यस्तता और ज़िन्दगी के अन्यान्य कामों में लगे रहने के कारण मैंने तो इसे बिल्कुल भुला दिया था, मगर 'कलीम' मुझसे अधिक विचारवान् हैं और उनके स्वभाव में चुस्ती भी अधिक है। बहुत समय तक इस कर्त्तव्य को पीठ-पीछे डाल देने के बाद भी लिखने जो बैठे तो थोड़े ही अरसे में उन्होंने अपनी अनुभूतियों को व्यवस्थित करके इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर दिया।

नये सिद्धान्त और मौलिक कल्पनाएँ हृदय में प्रायः हजारों ग़लतफ़हमियाँ और भ्रमात्मक भावनाएँ उत्पन्न कर देती हैं। बौद्धिकतापूर्ण तर्क को न तो समझने की कोशिश की जाती है, न उनका स्वीकार करने योग्य जवाब दिया जाता है। यदि आक्षेप समकालीन कवियों पर है तो उसे व्यक्तित्व-आश्रित मान करके आलोचक पर कुभावना का दोषारोपण किया जाता है। कविता के कुछ रूप विशेष और कुछ विशिष्ट कवियों को पवित्रता तथा पुण्यात्मकता के परिधान से आवृत करके उन्हें सभी प्रकार की आलोचना से परे समझा जाता है। कुछ प्रकार की कविता को राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रीय प्रगति का केन्द्र बनाकर आलोचक की स्पष्टवादिता पर राष्ट्र की अवहेलना का दोषारोपण किया जाता है। सारांश यह कि गन्दी भावनाओं और अकथनीय विचारों को भड़काने के लिए पूरी कोशिश की जाती है। आक्षेपों के रूप भी दिलचस्प होते हैं। जैसे—"आलोचक ने कविता के इस रूप-विशेष की ख़ूबियों को बिलकुल नहीं समझा है, उसे कोई ज्ञान नहीं; कविता उसकी बुद्धि एवं समझ से परे है; उसके विचार इतने लचर हैं कि उनका जवाब देना निरर्थक है; इत्यादि-इत्यादि। ऐसे सारगर्भ उत्तरों से

---

*अपने राज्य के रहस्यों को महान् सम्राट् ही जानते हैं; ऐ 'हाफ़िज़', तू तो एक कोने में बैठा रहनेवाला भिखारी है, तू उस मामले में चीख़-पुकार मत कर।

आलोचना के अभिशाप को किसी तरह टाला नहीं जा सकता। ऐसे वाद-विवाद नैतिकता के स्तर से कितने गिरे हुए हो सकते हैं, इसकी मिसाल 'सज्जाद हुसेन' के लेखों से, जो 'मारकये-चकबस्त वो शरर' में 'शरर' के विरुद्ध लिखे गये थे, मिल सकते हैं।

इस वमनस्य की आधार-शिला एक प्रकार का भय है, जिससे बहुत कम लोग मुक्त हैं। हमारे दोष तथा त्रुटियाँ भी हमें प्रिय होती हैं, कारण कि वे हमारे व्यक्तित्व का अंग बन जाती हैं, जिनका पर्दा उघारने से हमारी नग्नता होती है और हमें शर्म मालूम होती है। इसी तरह सभी सभ्यताओं में उनकी कविता का बड़ा आदर-सम्मान होता है, यद्यपि उनमें हज़ारों दोष क्यों न हों और उनका माहौल कितना ही कृत्रिम तथा प्रचलित रीति-रिवाज के ढंग का क्यों न हो। वह राष्ट्रीय जीवन के गौरव की वस्तु होती है। धार्मिक सिद्धान्तों की तरह उसके सद्गुणों का आदर किया जाता है और उसकी हिमायत में भावनाओं से काम लिया जाता है, अक्ल से बहुत कम। इस हिमायत में एक और जटिल रहस्य छिपा हुआ है। शिक्षित वर्ग की एक सीमित मण्डली को अक्सर अपनी श्रेष्ठता, अपनी विशिष्टता का एहसास तथा ज्ञान होता है। इस भावना के कारण ये महानुभाव यह समझने लगते हैं कि काव्य-निधि की कुंजी उनके हाथ में है; वे ही उसकी काल्पनिक तथा वास्तविक ख़ूबियों को समझने की क्षमता रखते हैं, जो जनसाधारण की शक्ति से बाहर है। उसकी व्याख्या, उसका विवेचन, उसकी प्रशंसा तथा स्तवन उनका गौरव-पदक है, जिसके आधार पर उनकी हैसियत धार्मिक पेशवा और काफ़िले के सरदार की होती है, जो जनसाधारण का नेतृत्व करते हैं और उन्हें सीधा रास्ता दिखाने का दावा करते हैं। इसलिए इस प्रकार की कविता के बने रहने के साथ उनका अपना उत्थान सम्बद्ध है और उसका विध्वंस उनके श्रेष्ठतापूर्ण जीवन के लिए मृत्यु का संदेश है। उसकी अल्पज्ञता के उद्घाटन से उनके दिवालियेपन और उनके विचारों की न्यूनता का भंडा फूटता है। वे अपनी टूटी हुई इमारत को बुद्धियुक्त तर्क की रोशनी से बचाने की जान-तोड़ कोशिश करते हैं कि उसके दोष और त्रुटियाँ प्रकट न हो पायें। उन्हें इसका ज्ञान नहीं कि इस संसार में रचना-विध्वंस, उत्थान-पतन एक ही सत्य-सूत्र में पिरोये हैं; और जीवन्त काव्य को जनम देने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि उसके निष्प्राण पंजर को ढहा दिया जाय। दुर्भाग्य से ऐसे सूक्ष्मदर्शी महानुभावों की संख्या बहुत कम है, जो आलोचक के दृष्टिकोण का ठंडे दिल और समीक्षकोचित ढंग से निरीक्षण कर सकें और उसकी सद्भावना तथा उसकी सात्विक मनोवृत्ति को समझ सकें। और, यदि इस परिश्रम तथा जाँच-पड़ताल के बाद उसके विचारों से सहमत हैं, तो अपनी तथा अपनी कला की त्रुटियों को स्वीकार करके अपनी सम्भावनाओं की पूर्णता की कोशिश कर सकें, अपनी भावनाओं और कल्पना-शक्ति की वृद्धि एवं प्रशिक्षण में लग जायें। इनसे बड़ी समस्या, जो फ़रहाद के पहाड़ काटने से कम नहीं, यह है कि इस ज्ञान के प्रकाश में एक उदात्त और उत्तम काव्य-रचना की इमारत की नींव डाली जाय। यह पुस्तक वास्तव में उन महानुभावों के लिए लिखी गई है, जो इसे गम्भीरतापूर्वक तथा शान्त-चित्त होकर अध्ययन करें। यदि उन्हें किसी विचार से मतभेद हो, तो उसका गम्भीरतापूर्वक जवाब दें, और अगर मतैक्य है तो उसके नेतृत्व से लाभान्वित हों।

छिद्रान्वेषण और ध्वंसात्मक विचारों का प्रकाशन नवयुवकों के स्वभाव में है। उनके विचार में जाति-सुधार और साहित्य-सुधार का भार उन्हीं को सौंपा गया है। यह नवयौवन की अधीरता और उठती हुई उमंगों के प्रदर्शन का एक रूप है। इस निबन्ध का उद्देश्य न तो अनुचित छिद्रान्वेषण है, न बाल की खाल खींचकर ग्रन्थकार की कुशाग्र बुद्धि एवं प्रखर प्रतिभा का प्रमाण देना है। जिन सिद्धान्तों की तुला पर उर्दू-कविता को तौला गया है, वे भी स्वनिर्मित नहीं; ये प्रमापक सारे, सभ्य संसार में स्वीकृत हैं। इनका सम्बन्ध उन भावनाओं और विचारों से है, जो हजारों बहुरंगियों में एकरंगी की छटा दिखाते हैं। ध्यान आधारभूत काव्य-तत्त्वों की ओर दिया गया है, और यदि कहीं ब्योरों पर बहस की गई है तो उन्हें आंशिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

'कलीम' उन नवयुवकों में नहीं, जो हर दृष्टिकोण को सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् कहकर उसका अनुमोदन करते हैं। आलोचना के क्षेत्र में वह सिद्धहस्त हैं। अँगरेजी-साहित्य के प्रोफ़ेसर होने की हैसियत से आलोचना-कला उनका पेशा है। जो विशिष्ट गुण इस कला के विशेषज्ञ के लिए आवश्यक हैं, वे इनमें प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। साथ-साथ अँगरेजी, उर्दू और फ़्रांसीसी साहित्यों में पूरा प्रवेश है और अरबी-फ़ारसी का पर्याप्त अभ्यास है। आलोचना के विभिन्न-स्थलों और उसके हर पहलू की पूरी जानकारी रखते हैं। इन वाक्यों का उद्देश्य गुणगान तथा प्रशंसा करना नहीं है। मतलब केवल इस तथ्य पर ज़ोर देना है कि इस पुस्तक में जो विचार लिपिबद्ध किये गये हैं, वे सरसरी और ऊपरी नहीं। जिन महानुभावों को साहित्य से सच्चा प्रेम और उसमें दिलचस्पी है, जिनके हृदय में उर्दू-साहित्य की श्री-वृद्धि और उन्नति की ख़्वाहिश है, उन्हें इसका अध्ययन ध्यानपूर्वक करना होगा। यह कहकर कि लेखक का मन्तव्य केवल चौंकाने-वाला है, वे इसे टाल नहीं दे सकते। इसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर केवल मत-प्रदर्शन नहीं किया गया है, बल्कि उदाहरण देकर और उनकी व्याख्या करके उन्हें समग्रभावी बनाया गया है। प्रत्येक स्थान पर तर्क से काम लिया गया है और मात्र व्याख्या करने से परहेज़। विचार गम्भीर हैं और दृष्टिकोण शोधपूर्ण, किन्तु भाषा में प्रवाह और सफ़ाई है और वर्णन-शैली में प्रसाद गुण है। रूपकों की बहुलता इस बात के प्रमाण हैं कि लेखक की प्रकृति कवि-सुलभ है और भावना तथा समझ-बूझ बहुत सजीव।

यह निबन्ध काव्यरूपों की आलोचना है, उर्दू-कविता का इतिहास नहीं। इसलिए बहुत-से ऐसे कवियों का भी बिल्कुल ज़िक्र नहीं हुआ, जो उर्दू-साहित्य में पर्याप्त महत्त्व रखते हैं। अन्य काव्यरूपों की अपेक्षा ग़ज़ल को अधिक स्थान दिया गया है, कारण कि उर्दू-कवियों का ध्यान इसकी ओर अधिक रहा है। इस ग़ज़ल-प्रेम के कारणों तथा परिणामों पर 'उर्दू-शायरी पर एक नज़र' में विस्तृत विवेचन है। उर्दू-कवियों के स्वभाव में प्राकृतिक रूप से विशृंखलता है। उनकी अनुभूतियों की परिधि संकीर्ण है। वे एक अनुभूति का आनन्द पूर्णरूप से नहीं ले पाते और न इसके लिए कोशिश करते हैं। वे अनभिज्ञता के साथ एक विचार से दूसरे असंगत विचार की ओर मुड़ जाते हैं। एक अनुभूति का आनन्द सरसरी ढंग से लेकर दूसरी ओर झुक

जाते हैं। लेकिन, उनके स्वभाव में सबसे बड़ा दोष यह है कि वे यह नहीं समझते कि नैतिक समस्याओं तथा दार्शनिक या सूफ़ीमत-सम्बन्धी विचारों तथा भावनाओं में विभिन्नता होती है। साथ-ही-साथ ग़ज़ल में रूप की पुनरावृत्ति, मतला वो मक़ता के मौजूद रहने के कारण उसमें बाह्य अनुपात और सम्पूर्णता दिखाई पड़ती है, जिससे कवि की सृजन-पिपासा तृप्त होती है।

गज़ल की हिमायत में केवल एक मिसाल प्रस्तुत की गई है, जिसका विवेचन करना मुझे आवश्यक जान पड़ता है। जापानी कविता में 'हाकू' एक काव्यरूप है, जिसका उनके साहित्य में उतना ही महत्त्व है जितना गज़ल का उर्दू में है। 'हाकू' में चार या छह पंक्तियों से अधिक नहीं होतीं। इसी छोटे-से साँचे में प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण भी होता है और कवि की व्यक्तिगत भावनाओं का प्रदर्शन भी। सरसरी तौर पर देखने से दोनों एक-दूसरे से असंगत जान पड़ते हैं और बाह्य रूप में उनमें एक प्रकार का विलगाव पैदा हो जाता है, जिसमें गज़ल और 'हाकू' में बहुत सादृश्य जान पड़ता है। पहली बात तो यह है कि किसी दूसरी भाषा में एक अनुपयुक्त तथा निरर्थक काव्यरूप का वर्त्तमान होना गज़ल के सौन्दर्य एवं खूबी का कोई प्रमाण नहीं। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'हाकू' में केवल दो टुकड़े होते हैं, जो विभिन्न रूपों में प्रत्येक 'हाकू' में दीख पड़ते हैं, जिससे स्पष्टतया विदित होता है कि दोनों में कोई सम्बन्ध, चाहे वह रस्मी ही क्यों न हो, मौजूद है। वास्तव में जापानी कवि मर्मस्पर्शी दृश्यों की विभिन्न छवियों को अलग-अलग अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करता है। उसे अनुभूतियों के विभिन्न पहलुओं से बहस नहीं, वह किसी ख़ास आवेग या भावना का उसके अत्यन्त प्रभावशाली क्षण में चरबा उतारना चाहता है। प्राकृतिक दृश्य के प्रमुख रूप का दो-चार रंगीन शब्दों में खाका खींचता है और फिर अपने हर्ष-विषाद, आशा निराशा की अभिव्यंजना करता है। दोनों में जो सम्बन्ध है, वह अप्रत्यक्ष रहता है, लेकिन समझनेवाले के लिए वह सम्बन्ध स्पष्ट है, कारण कि वह भावना या तो हृदयग्राहिता के प्रभाव से पैदा होती है या कवि इस तथ्य को प्रकट करना चाहता है कि व्याकुलता की दशा में, प्रकृति की शान्ति या नैराश्य की अवस्था में फूलों का मुस्कराना उसके शोक-सन्ताप और व्याकुलता को द्विगुणित कर देता है। पाठक की कल्पनाशीलता केवल इस कमी को ही पूरा नहीं करती, बल्कि अनुभूतियों और भावनाओं के अन्य पहलू पैदा हो जाते हैं, जो विस्तृत विवरण में शायद सम्भव न होते। यह अन्दाज़ वास्तव में जापानी चित्रकारी से सीखा गया है, जिसमें कुछ रेखाओं के माध्यम से जटिल दृश्यों और भावनाओं का चित्रण होता है। इससे यह बात ज़ाहिर होती है कि यद्यपि 'हाकू' के प्रभाव सीमित हैं, तोभी वह असम्पृक्तता नहीं होती जो ग़ज़ल में सदैव वर्त्तमान रहती है।

मर्सिया गज़ल के दोषों से मुक्त है। विषय-वस्तु की एकता, घटनाओं की क्रमबद्धता के आधार पर उसकी सम्भावनाएँ बहुत ही विस्तृत थीं, लेकिन उर्दू-कवि यहाँ भी पूर्ण रूप से सफल नहीं दीख पड़ता। ऐसा जान पड़ता है कि गत शताब्दी से इस देश का वातावरण ही उदात्त-भावीय काव्यरूपों के अनुकूल नहीं रहा। इसका असली कारण यह है कि उस समय में भारतवर्ष की सभ्यता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचकर अवनति की ओर उन्मुख रही। सभ्यता की आत्मा धीरे-

धीरे नष्ट होती गई, केवल उसका बाहरी ढाँचा मौजूद रहा, इसलिए विचार भी सतही और रस्मी चीज़ें की ओर जाते हैं। कवि अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ही कल्पना की इमारत खड़ी कर सकता है। अगर नींव कमज़ोर है तो इमारत भी कमज़ोर होगी।

'अनीस' वो 'दबीर' के समय में लखनऊ की सभ्यता अवनति पर थी। इसके अतिरिक्त उसपर हमेशा शहरीपन का रंग प्रधान रहा। ये कविगण सुख-चैन की छत्रच्छाया में फले-फूले, इसलिए वे वीर-भावनाओं से अपरिचित रहे। उनकी कल्पना युद्ध-स्थल के वातावरण को आत्मसात् नहीं कर सकती। उनके वर्णनों मे ओज तथा गौरव है, भाषा में रवानी और तेज़ी है, लेकिन उनकी कल्पना लाख ऊपर उड़ने पर भी अपने वास्तविक अनुभवों से बाहर नहीं जा सकती। परिणाम यह है कि एक तो साधारण घटनाओं या वस्तुओं का ज़िक्र भी उसी ठाटबाट के साथ होता है, जो महत्वपूर्ण घटनाओं के वर्णन में मिलता है; भिन्न-भिन्न अंशों में तनिक भी सन्तुलन नहीं। दूसरे यह कि मर्सियों में युद्ध-वर्णन होता है, लेकिन युद्धोचित वातावरण बिल्कुल नहीं —

मैदां से फिरे शाह सदा[1] बानू की सुनकर + ड्योढ़ी से उधर जम्माये नामू से[2] पयम्बर
'फ़िज़्ज़ा' ने कहा बीबियो लो आते हैं सरवर[3] + दौड़ी 'अली असग़र' को लिये बानुए[4] मुज़्तर[5]

अश्कों[6] से रूख़े[7] पाक को धोने लगे 'शब्बीर'
पर्दे के करीब आन के रोने लगे 'शब्बीर'

आग़ोश[8] में लीजे इन्हें ऐ सैयदे वाला[9] + सदक़े[10] गई हाज़िर है मेरा हँसलियोंवाला
वह मर गये अट्ठारह बरस तक जिन्हें पाला + रोई न ज़बां से कहीं कुछ हर्फ़[11] निकाला

ताक़त है मेरी, आपको मैं टोक सकूँगी !
रोका था उन्हें कब, जो इन्हें रोक सकूँगी ?

वर्णन 'करबला' के मैदान का है, लेकिन वातावरण उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग में लखनऊ के किसी घर का है, जहाँ कोई भीषण दुर्घटना घटित हुई हो। कठिन प्रयास करने पर भी कल्पना हिन्दुस्तान और नागरिक वातावरण से बाहर नहीं जाती।

शब्दों के केवल अर्थ ही नहीं होते, उनकी वैयक्तिक ज़िन्दगी होती है। वे विशेष प्रकार के वातावरण का सर्जन करते हैं। उदाहरण-स्वरूप रेख़ती[12] की कविता केवल एक विशिष्ट सभ्यता के एक रुख़ को प्रतिबिम्बित कर सकती है। पर्यायवाची शब्द अपना ख़ास रंग रखते हैं और अलग-अलग विचार पैदा करते हैं। हमारी भावनाएँ बड़ी तरल हैं। कुछ अनुभवों से

---

१. आवाज़, २. गौरव, ३. सरदार, ४. महिला, ५. अधीर, ६. आँसू, ७. चेहरा, ८. गोद, ९. महान् सरदार, १०. वारी जाऊँ, ११. अक्षर, शब्द; १२. उर्दू को पहले रेख़ता कहते थे। उसके मुक़ाबले में रेख़ती भाषा चलाने का प्रयास किया गया। इसमें स्त्रियों के व्यवहार में आनेवाली भाषा का अधिक प्रयोग होता था। 'जान साहेब' उसके प्रमुख कवि हुए हैं। यह भाषा अधिक आगे न चल सकी।

उनमें ज्वार उठता है। इस उथल पुथल के कारण असाधारण भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। कविता में ये असाधारण भाव और दृश्य सुव्यवस्थित साँचों में ठोस बन जाते हैं। इन भावनाओं की तरलता में कवि अचेतन रूप से केवल उन शब्दों को चुनता है, जिनसे उन असाधारण स्वप्नों की पूरी अभिव्यंजना हो सके। इसलिए कविता के शब्द वास्तव में स्वभाव-जनित होते हैं। काव्य-कला में निपुण व्यक्ति विभिन्न प्रकार के विचारों के लिए उपयुक्त शब्द ढूँढ़ निकालता है। उदाहरण-स्वरूप वह वीररस की कविता में रेख़्ती के शब्दों से परहेज़ करेगा। किन्तु जिस भाषा में कविता की आत्मा नष्ट हो चुकी है उसमें रस्मी शब्दों का (जिन्हें कविता के शब्द समझा जाता है) प्रयोग किया जाता है। इनमें एक ऊपरी सुन्दरता होती है। यह सौन्दर्य कवि को प्रचलित शब्दों में दीख नहीं पड़ता। 'अक़्दे'[१], 'सुरैया'[२], 'सुम्बुल'[३], 'नर्गिसे[४]-शहला'[५] इत्यादि उसके शब्द-चयन की पराकाष्ठा होती है —

(क) तू वो तू बा[६] वो मावो[७] क़ामते[८] यार+फ़िक्रे हर कस[९] ब-क़द्रे हिम्मते ऊस्ता

उर्दू काव्य-ग्रन्थ का अन्तिम परिच्छेद नितान्त आशाजनक नहीं। इसके दोष प्राचीन कवियों की कविता के दोषों से भिन्न हैं। प्रगतिवादी कविता सब कुछ जानते हुए भी अनभिज्ञ बने रहने पर आधारित है। उसमें चापलूसी ढंग की एक झलक है। उसका सिद्धान्त है कि कविता के लिए सुकोमल उक्तियों, भावनाओं की मौलिकता, और शब्द-सौष्ठव की आवश्यकता नहीं। जनसाधारण, सिपाहियों, मज़दूरों के सीमित अनुभव और उनकी साधारण भावनाएं काव्य-सम्पत्ति बन सकते हैं। ये कविगण पक्षपातियों की हैसियत से उपस्थित होते हैं। वे अपनी वास्तविक अनुभूतियों तथा अपनी भाषा को छोड़कर मज़दूरों और किसानों की भावनाओं की अभिव्यक्ति करना चाहते हैं। उनकी सादगी या तो बनावटी है या मानसिक आलस्य का प्रदर्शन है। वह यह नहीं समझते कि चीज़ों पर जो आभा होती है वह केवल चमक-दमक बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि उन्हें सद्यःप्रभावी बनाने के लिए है। इसी तरह उनके संगीत का स्वभाव बनावटी है। कवि-सुलभ दृष्टिकोण से —

(ख) शुमारे[१०] सुब्हा[११] मरग़ूबे[१२] बुते[१३] मुश्किल[१४] पसन्द आया
तमाशाये ब यक कफ़[१५] बुर्दने[१६] सद[१७] दिल पसन्द आया

और

कोई मनावे दुरगे माता कोई मनावे श्रीभगवान
कोई मनावे रामचन्द्रजी को कोई कहे अर्जुन बलवान

---

१. जोड़ा, गाँठ; २. वृष राशि में रहनेवाला सात नक्षत्रों का एक समुदाय; ३. एक खुशबूदार घास; ४. एक फूल जिससे आँखों की उपमा दी जाती है; ५. गाढ़ा नीला नर्गिस का विशेषण है; ६. स्वर्ग का एक वृक्ष; ७. हमलोग; ८. क़द, ऊँचाई; ९. व्यक्ति; १०. गिनना; ११. तस्बीह या माला के दाने; १२. पसन्द, प्रिय; १३. मूर्त्ति, देवता, माशूक़; १४. कठिनाइयों को पसन्द करनेवाला; १५. हथेली, मुट्ठी; १६. ले जाना, लेना; १७. सौ।

इन दोनों शेरों में वस्तुतः कोई अधिक अन्तर नहीं। इसके अतिरिक्त यदि कविता की क्रमिक उन्नति की उच्चतम मंज़िल 'नर्सनूरा' है तो उर्दू-कविता का भविष्य अन्धकारमय ही नहीं, नितान्त शून्य है।

इस प्राक्कथन में 'उर्दू-शायरी पर एक नज़र' का ज़िक्र बहुत सरसरी तौर पर हुआ है; कारण कि विषय का परिचय देना आवश्यक नहीं; न कहीं विचार ही गोल-मटोल हैं कि उनके स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो। यदि उर्दू-कवियों ने काव्य-कला को एक दिलचस्प पहेली और खेल नहीं समझ रखा है, तो भविष्य में होनेवाली उर्दू-कविता इन आक्षेपों और आलोचनात्मक विचारों को बराबर नज़र के सामने रखेगी और हमारे कविगण 'कलीम' के इन वाक्यों पर गम्भीर रूप से ध्यान देंगे—"उर्दू-कवियों में अगर कुछ कमी है तो यही कि वे संसार को गहरी नज़र से नहीं देखते; संसार के अनेक रूप से वे नितान्त अनभिज्ञ तो नहीं, लेकिन इस अनेकरूपता की ओर वे उतना ध्यान नहीं देते, जिसके यह योग्य है। आँखें देखती सब कुछ हैं, मगर ध्यानपूर्वक नहीं और ब्योरों की ओर उनका तनिक भी झुकाव नहीं। यह पृथक्ता मानवीय क्रियाओं और घटनाओं की ओर से भी व्यवहार में आई है। इसीलिए चरित्र-चित्रण शून्य-प्राय है।"

(क) तुम भले ही स्वर्ग में उगे हुए तूबा-वृक्ष तक पहुँचने की कामना करो, मैं तो केवल माशूक़ (प्रेयसी) की ऊँचाई ही तक की बात सोच सकता हूँ; प्रत्येक व्यक्ति अपने साहस के अनुसार ही कोई कामना कर सकता है।

(ख) कठिनाइयों से प्रेम रखनेवाले माशूक़ को अब माला फेरना पसन्द आया है; अर्थात् अब वह सैकड़ों दिलों को एक मुट्ठी में लिये रहने का दृश्य देखना चाहता है।

उर्दू-कविता पर एक दृष्टि

पहला भाग

१

कविता का हिन्दुस्तान में कोई आदर-सम्मान नहीं।[1] मेरे इस वाक्य से शायद आप चौंक उठें; यह भी सम्भव है कि आप कुछ रुष्ट हो जायें। लेकिन अगर आप थोड़ी देर के लिए ठंढे दिल से सोचने का कष्ट करें तो आप देखेंगे कि मैंने कोई ग़लत बात नहीं कही है; कोई गलत आक्षेप नहीं लगाया है और मैं काफ़िर नहीं हो गया हूँ। यह तो जानी हुई बात है कि अधिक-से-अधिक लोगों के खयाल में काव्य-रचना एक दिलचस्प व्यापार से अधिक नहीं, और एक दल-विशेष के विचार में कविता प्रचार या प्रोपेगैण्डा का दूसरा नाम है। शायद किसी समय में काव्य-रचना को अशुभ कार्य भी समझा जाता था। एक महानुभाव[2] ने इस दृष्टिकोण का इस प्रकार खण्डन किया है—

लोग कहते हैं कि फ़न्ने शायरी मनहूस है,
शेर कहते-कहते मैं डिप्टी-कलक्टर हो गया।

शायरी मनहूस हो या न हो, एक समय में यह मनोविनोद का साधन अवश्य बनी हुई थी। शेर का मूल्य बस यही था कि "कहावत और मौके-मौके से वार्त्तालाप और दृष्टान्तों में इसका व्यवहार, अभिभाषण में स्वाद और लेखों में अपूर्वता उत्पन्न कर देता है"।[3] शायरी पर अधिक समय लगाना 'दुनिया का और स्वयं अपना समय नष्ट' करना था; और आज भी यही बात जनसाधारण में प्रचलित है।

अब रहे खास लोग और इनमें भी जो खास हैं अर्थात् आलोचक-वृन्द, तो वे पाश्चात्त्य विचारों से प्रभावित होकर कविता के महत्त्व पर कुछ जोर जरूर देते हैं। वे कहते हैं: "यह सच है कि कविता से आवश्यक रूप से कोई आर्थिक लाभ नहीं होता, लेकिन अगर बुद्धि की तीक्ष्णता, चित्त की प्रफुल्लता, आत्मा का जागरित होना और आचरण की दृढ़ता की गणना भी लाभों में है तो शेर वो शायरी के लाभदायक होने से कौन इनकार कर सकता है। कविता संवेदना-शून्य शक्तियों को भी चौंकाती है, सुषुप्त भावनाओं को जगाती है, मृत भावनाओं को चमकाती है, दिलों को गरमाती है, हौसलों को बढ़ाती है, दुःख में शान्ति देती है, कठिनाइयों के समय दृढ़ता सिखाती है, बिगड़े हुए आचरण को सँवारती है और पतित जातियों को उभारती है।"[4] इस वाक्याडम्बर के बावजूद शायरी का महत्त्व स्पष्ट नहीं होता। इन वाक्यों का मूल्य 'सुभानअल्लाह!' से अधिक नहीं।

यह परिस्थिति, यह दशा, केवल भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं, बल्कि कुछ इने-गिने आलोचकों को छोड़कर पाश्चात्त्य देशों में भी यही परिस्थिति है। वहाँ भी कविता को एक प्रकार की विलासिता, एक उत्तम ढंग का मनोरंजन या अधिक-से-अधिक एक सुन्दर अलंकार-मात्र समझा जाता है। कहनेवाले तो यह भी कहते हैं कि "वर्त्तमान युग में कवि का होना बस ऐसा ही है जैसे एक सभ्य जाति के बीच प्रायः एक जंगली व्यक्ति का अस्तित्व। वह अतीतकाल में

साँस लेता है........काव्य-रचना पर जो भी समय लगाया जाता है उसका निश्चित परिणाम किसी अधिक लाभदायक विद्या से वंचित होना है। अफसोस तो यह है कि ऐसे मेधावी लोग, जो बहुत अच्छा और लाभदायक काम कर सकते हैं, अपनी सारी शक्ति सही दिमागों के परिश्रमों की खाली-खुली, बेतुकी विडम्बना के सुदीर्घ आलस्य में नष्ट कर देते हैं। समाज के बचपन में शायरी एक झुनझुना थी, जो सोये हुए दिमाग को जगाती थी। लेकिन प्रौढ़ावस्था प्राप्त करने के बाद भी बचपन के खिलौनों से पूर्ववत् तल्लीनता के साथ खेलना अच्छी बात[५] नहीं।"

बहुत दिन हुए, आर्नल्ड ने कहा था : "कविता का भविष्य असीम है। आनेवाले समयों में हमारे वंशज कविता द्वारा अधिक-से-अधिक सहारा पायेंगे, शर्त्त यह है कि कविता अपने उच्चतम मूल्य के योग्य हो। कोई पद्धति ऐसी नहीं, जो डगमग न हुई हो; कोई स्वीकृत मत ऐसा नहीं, जो सन्दिग्ध साबित न हुआ हो; कोई प्रतिष्ठित परम्परा ऐसी नहीं, जो विशृंखलित न होने लगी हो। हमारे धर्म ने सत्य, कल्पित सत्य, का परिधान धारण किया, अपनी अनुभूतियों का आधार इस तथ्य पर रखा, लेकिन अब यह तथ्य एक धोखा प्रमाणित हो रहा है। परन्तु कविता के लिए खयाल ही सारी वास्तविकता[६] है" और 'आर्नल्ड' का कहना था कि आनेवाले समय में कविता धर्म का स्थान ले लेगी। ईसा की बीसवीं शताब्दी में भी 'रिचार्ड्ज़', 'इलियट', 'लेविस', और 'मिडिल्टन मरी' ने अपने-अपने ढंग पर कविता की महत्ता तथा गौरव पर प्रकाश डाला है। लेकिन अभी तक कविता का भविष्य बहुत दूर और अस्पष्ट दिखाई पड़ता है और इसका कारण केवल यह है कि अभी तक शायरी के सही महत्त्व, उसके अपरिमित मूल्यों का लोगों को पूरी तरह भान नहीं है।

'एरिक लिंक लिटर' की पुस्तक 'क्राइसिस अनहिउन' में एक प्रश्नोत्तर[७] है, जो दिलचस्पी से खाली नहीं—

पहला इवज़ून—यदि कविता न होती तो आज संसार की क्या दशा होती ?

दूसरा इवज़ून—बिलकुल वही जो आज है। कविता की वजह से साधारण मानव के जीवन में रंचमात्र भी अन्तर नहीं हुआ है।

पहला इवज़ून—यदि कविता न होती तो साधारण मानव साधारण बन्दर होता !

दूसरा इवज़ून—देखो ! रुष्ट क्यों होते हो ? ऐसी बातें कहने से क्या लाभ, जिनका कोई मतलब नहीं ?

पहला इवज़ून—यह क्रोधित होने की बात ही है। मेरा विश्वास है कि कवि सर्वशक्तिमान् ईश्वर का साथी, सहकर्मी है और तुम कहते हो कि वह किसी दुकान के मुन्शी के बराबर है; और तुम यह भी कहते हो कि उसे काव्य-रचना को छोड़कर एक स्वस्थ नागरिक हो जाना चाहिए।

दूसरा इवज़ून—तो फिर मैं गलत क्या कहता हूँ ? हमें स्वस्थ नागरिकों की बड़ी आवश्यकता है।

पहला इवज़ून—अगर शायर न होते तो हम यह भी न जानते कि स्वस्थता किस जानवर

का नाम है और नागरिकता कौन-सी वस्तु है। यदि शायर न होते तो हमें इन चीजों की आवश्यकता का ज्ञान न होता। सच तो यह है कि हमें किसी चीज की जानकारी न होती।

इस उद्धरण में भी कविता के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण मिलते हैं, जिनका जिक्र हो चुका है।

यदि किसी चीज का ज्ञान हमें न हो तो उसका अवश्यम्भावी परिणाम उसकी ओर से गफ़लत होगा। यही कारण है कि हिन्दुस्तान में कविता की ओर वह प्रेम की दृष्टि नहीं, जिसकी यह अधिकारिणी है। कविता के तत्त्व पर किसी ने धुँधली-सी रोशनी भी न डाली और यह जानने की कोशिश भी न की कि काव्य-रचना तथा अन्य मानसिक, हार्दिक, आध्यात्मिक और शारीरिक क्रियाओं में क्या सम्बन्ध है। और यह भी न सोचा कि किसी सचेतन तथा भावुक मनुष्य की जिन्दगी में कविता का क्या स्थान है या उसका क्या स्थान होना चाहिए। ऐसे कहने को तो इन समस्याओं के सम्बन्ध में वाद-विवाद मिलते हैं, लेकिन कहीं पर साफ और गहरी बातें नहीं मिलतीं। जो भी विचार हैं, वे अस्पष्ट तथा सन्ध्या के केश-पाश की तरह अन्धकारमय हैं और इन विचारों में से अधिकांश या तो सीधे या किसी माध्यम से किसी पूर्वी या पश्चिमी साहित्य से उधार लेकर विना किसी प्रकार का विभेद अथवा सन्तुलन किये एकत्र कर दिये गये हैं। इन माँगी हुई चीजों की जाँच-पड़ताल आलोचना की कसौटी पर नहीं की गई और न इस बात की आवश्यकता समझी गई; खरी-खोटी सब चीजें एक नजर से देखी गईं।

कविता धर्म का स्थान ले या न ले, यह बात तो निश्चित है कि कविता महज एक दिलचस्प खिलौना या एक हसीन ज़ेवर नहीं। यदि हम इतिहास की जाँच-पड़ताल करें तो हम देखेंगे कि प्राचीन समय की अन्धकारमय गहराइयों के साथ-साथ कविता भी उभरती नजर आती है। धर्म की तरह कविता का आदिस्रोत भी वे स्वच्छ प्राकृतिक आवश्यकताएँ हैं, जो हमारी मानवता के लिए उत्तरदायी हैं। कह सकते हैं कि कविता मानवीय सुख-समृद्धि की पराकाष्ठा और मानव-शिष्टता-सभ्यता का सिरमौर है। यह अनात्मवाद की उपासना का परिणाम है कि कविता को खूबसूरत, लेकिन बेकार खिलौना समझा जाता है। हमें आध्यात्मिक मूल्यों का सही मूल्य मालूम नहीं। यही कारण है कि हर चीज को उसकी उपयोगिता, भौतिक उपयोगिता, के काँटे पर तौला जाता है और कविता को नगण्य समझा जाता है। हम इस तथ्य को भूल जाते हैं कि जिन्दगी जिये जाने का नाम नहीं। जानवर जिये जाते हैं, लेकिन उन्हें जीवन की उदात्त भावनाओं से दूर का भी सम्बन्ध नहीं। आन्तरिक जीवन की स्वर्णिमता तथा पूर्णता ही मानव-जीवन का उद्देश्य है। यह सच है कि शायरी हमें दुकानदारी या मोटर चलाना नहीं सिखाती, लेकिन यह हमारी जिन्दगी पूर्णता और स्वर्णिमता का मूल स्रोत है। कविता के दर्पण में पूरी-पूरी एकलयता, पूर्ण सारूप्य और समझ में न आनेवाली शान्ति की झलक दिखाई देती है। और, यह एकलयता, सारूप्य और शान्ति जीवन के अनुसन्धान की उपलब्धि है। शायद कविता ही वह वस्तु है, जिसमें महानतम ढंग की एकता पाई जाती है, जिसमें सारे झगड़े नष्ट हो जाते हैं और जिसमें अप्रिय बेसुरापन रुचिकर एकलयता में परिणत हो जाता है। काव्य में छोटे पैमाने पर वह एकलयता मिलती है, जिसका वर्णन 'दान्ते' ने किया है : "मैंने इसकी गहराइयों में विश्व

के बिखरे हुए पन्नों को इकट्ठा देखा, जिनको प्रेम ने शृंखलाबद्ध कर दिया था। मूल तत्त्व तथा अस्थायी विशेषताएँ और उनके अनुपात—ये सब चीजें कुछ ऐसी मिल-जुल गई थीं कि देखने में बस एकमात्र ज्योति ही दिखाई पड़ती थी।"[८]

और यह ज्योति नृत्य कर रही है। हमारी साँस के आवागमन में, हमारी नाड़ी की चाल में, हमारे दिल की धड़कन में, पौधों के फलने-फूलने में, चिड़ियों की उड़ान में, हिरन की चौकड़ी में, हवा के चलने और पानी के वहाव में, ऋतु-परिवर्त्तन और चाँद-तारों की परिक्रमा में यही नृत्य गौण रूप से विद्यमान है और इस नृत्य में एक हसीन सन्तुलन और पूर्ण प्रभावान्विति है। कला (आर्ट) जो विश्व और जीवन का प्रतिविम्ब है, मानों इसी ज्योति का नृत्य-गान है। शिल्पकला हो या चित्रकारी, संगीत हो या कविता, हर जगह यही ज्योति नृत्य कर रही है, हर जगह यह चिरन्तन सौन्दर्य अभिव्यक्ति के अतिरेक के कारण छिपा हुआ है। माध्यम अलग-अलग हैं, लेकिन प्रत्येक कला में तत्त्व एक है। इस ज्योति, इस सौन्दर्य, इस सत्य के निरूपण में कविता शब्दों, चिह्नों और छन्दों का सहारा ढूँढ़ती है।

कहते हैं कि संगीत को अन्य ललित कलाओं पर श्रेष्ठता प्राप्त है, कारण कि संगीत मानों विना किसी माध्यम के सृष्टि के अन्तस्तल तक पहुँचता है, और उसकी गहराइयों में जो रहस्य छिपा हुआ है उसे जबरदस्ती दिन के प्रकाश में प्रकट करता है। यह वात अपनी जगह पर दुरुस्त है। लेकिन मैं समझता हूँ कि संगीत पर कविता की श्रेष्ठता है। संगीत, चित्रकारी तथा शिल्पकला सृष्टि और जिन्दगी के हर रुख और हर पहलू को प्रतिविम्वित करने में समर्थ नहीं। यह ठीक है कि कविता में संगीत, चित्रकारी और शिल्पकला के विशिष्ट प्रभाव सम्भव नहीं, जैसे कविता की मोहक लयात्मकता, 'बीटहोफ़ेन'[९] की सिम्फ़ोनी की बरावरी नहीं कर सकती। इसी तरह कविता 'वेनिस डि मेलो'[१०] जैसी मूर्त्ति या 'मूनालीज़ा'[११] जैसा चित्र नहीं वना सकती, लेकिन यह भी सत्य है कि इन कलाओं की जो सीमाएँ हैं, उनसे वहुत आगे कविता की उड़ान है। संगीत का असर गहरा होता है और विना किसी माध्यम के होता है, लेकिन कुछ अस्पष्ट-सा होता है, जैसे किसी मूक जन्तु के क्रन्दन से होता है। शिल्पकला सुन्दर मूर्त्तियाँ वनाती है, किन्तु ये मूर्त्तियाँ सर्द, वेरंग और वेजान होती हैं। चित्रकारी वोलती हुई तस्वीरें वना सकती है और कभी-कभी इन तस्वीरों में भावों की एक दुनिया होती है, फिर भी इसकी परिधि और इसका असर सीमित होता है, वहुत सीमित होता है। कविता विश्व के रहस्य का उद्घाटन करती है और वह सुन्दर मूर्त्तियाँ, वोलती हुई, भावोत्पादक तस्वीरें भी वना सकती है। और, इन चीजों के अतिरिक्त और भी वहुत-कुछ कर सकती है। विश्व की अनन्त गुंजाइशें और मनुष्य के सारे मानसिक, हार्दिक, आध्यात्मिक और शारीरिक आवेश कविता के पैमाने में समा सकते हैं। यही कारण है कि कविता ललित कलाओं में सर्वोच्च स्थान रखती है। सच तो यह है कि वह विज्ञान और दर्शन से भी उच्चतर स्थान रखती है। विज्ञान की कुंजी है—'कैसे ?' और दर्शन की कुंजी है—'क्यों ?' किन्तु कविता 'कैसे' और 'क्यों' के झमेलों से अलग रहकर विना किसी माध्यम के एक छलाँग में सत्य से साक्षात्कार कराती है और उन 'भागवत-रहस्यों' से अवगत कराती है, जो विज्ञान और दर्शन की कुंजियों से नहीं खुल सकते। इसके अतिरिक्त विज्ञान और दर्शन में यह भी कमी है

कि वे मानव की समस्त विशेषताओं से काम नहीं लेते, उनका संसार अपेक्षाकृत सीमित है। मनुष्य का दिमाग केवल कविता में ही अपने सारे गुणों से काम ले सकता है और लेता है। इसी में कविता की श्रेष्ठता का रहस्य है, और इसी वजह से जो पूर्ण शान्ति, जो चिरन्तन आनन्द कविता में मिलता है वह और कहीं नहीं मिलता।

कविता की परिभाषाएँ तो बहुत मिलती हैं, लेकिन अच्छी और सम्यक् परिभाषाएँ देखने में नहीं आतीं। कविता अच्छे और बहुमूल्य अनुभवों का सुन्दर, सम्पूर्ण और छन्दोबद्ध वर्णन है। विचार भी अनुभव हैं और आवेग भी अनुभव हैं। फूलों की सुगन्ध, टाइपराइटर की आवाज, रेखागणित का अध्ययन, किसी पर आसक्त होना, सभी अनुभव हैं और कविता का अनुभवों की दुनिया पर अधिकार है। किन्तु अनुभव अच्छे भी होते हैं और बुरे भी, वे नये और बहुमूल्य भी होते हैं और पुराने तथा निकम्मे भी, वे ताजा और अद्वितीय भी हो सकते हैं और बाजारी तथा सस्ते भी। मैं यहाँ अच्छे-बुरे, क़ीमती और सस्ते की बहस में नहीं पड़ना चाहता। यह तो मानी हुई बात है कि जिन अनुभवों को चिरकीं ने कविता (?) के साँचे में ढाला है वे अच्छे और कीमती नहीं, बल्कि सस्ते, बाजारी तथा बेहूदा हैं। अच्छे और कीमती अनुभव वे ही हैं, जो 'मीर' या किसी अच्छे कवि की अच्छी पंक्तियों में मिलते हैं। मिसाल के तौर पर यह शेर लीजिए—

देखी शबे वस्ल नाफ़ उसकी + रोशन हुई चश्म आरज़ू की

और फिर 'मोमिन' का यह शेर लीजिए—

तुम मेरे पास होते हो गोया + जब कोई दूसरा नहीं होता।

पहले शेर में अनुभव सस्ते और बाजारी ढंग का है; दूसरे शेर को सस्ता और बाजारी नहीं कहा जा सकता। अथवा 'नूरा' के छिछोरेपन की तुलना 'आलमे ख़ेयाल' की गम्भीरता से कीजिए।

हाँ, तो यह बात स्पष्ट हो गई कि कविता में सुन्दर तथा मूल्यवान् अनुभव होते हैं और होने चाहिए। किन्तु ऐसे अनुभव तो साहित्य के अन्य रूपों में भी पाये जाते हैं और फिर दूसरी कलाओं में भी मिलते हैं; ठीक ऐसे ही तो नहीं, लेकिन इसी प्रकार के अर्थात् सुन्दर और मूल्यवान्। कविता में इन अनुभवों के चित्रण का एक विशिष्ट साधन है; और इस साधन या टेकनीक और अनुभव में पूर्ण लयात्मकता होनी चाहिए। अगर किसी सीधे-साधे अनुभव के लिए हम भारी-भरकम शब्द चुनें या दर्द-भरे जज्बात के लिए हम ऐसे छन्द को लें, जो हँसी-खुशी के लिए अधिक उपयुक्त है, तो प्रत्यक्ष है कि परिणाम अच्छा न होगा।

बहरहाल, टेकनीक में तीन खण्ड होते हैं: चित्र, शब्द और वजन या लय। चित्र, जो रूपकों की शक्ल में होते हैं, कविता के आवश्यक अंग हैं। यदि कहना हो कि मैं सोया हुआ था या मेरी आत्मा सोई हुई थी तो इसे वर्ड्ज़वर्थ यों कहता है: "मेरी आत्मा पर नींद ने मुहर लगा दी थी"[१२]। यदि संसार की नश्वरता जैसे घिसे-पिटे विषय को कविता के साँचे में ढालना हो तो 'मीर' कहते हैं—

कहा मैंने कितना है गुल का सबात + कली ने य(ह) सुनकर तबस्सुम किया।

अब रहे शब्द तो किसी ने कहा है कि कविता में सर्वोत्तम शब्दों की सर्वोत्तम व्यवस्था होती है। और, सर्वोत्तम शब्दों की तरह सर्वोत्तम वजन या लय भी आवश्यक है; और ये तीनों खण्ड तीन नहीं रहते, ये एक-दूसरे से और अन्य अनुभवों से घुल-मिलकर एकरस हो जाते हैं।

जो हो, कहने का तात्पर्य यह है कि कविता में ऐसे मूल्यवान् अनुभव मिलते हैं, जिन्हें जीवन की उपलब्धि तथा विश्व की उपलब्धि कह सकते हैं। विश्व की बहुरंगी—"कितनी रंग-बिरंगी छवि है अपने प्रेमी[१३] की"! आवेगों की बहुरंगी, विचारों की व्यापकता, कल्पना की जादूगरी—ये सारी चीजें कविता में मिलती हैं और कविता उन्हें सुन्दरता तथा सत्य के साँचे में ढालकर चिरन्तन सुषमा और वास्तविकता प्रदान करती है।

कविता की तरह कवि की भी बहुत-सी परिभाषाएँ मिलती हैं और अधिक रूमानी ढंग की। 'शेली' ने कहा है कि "कवि एक बुलबुल है, जो अँधेरे में गाता है और गा-गाकर अपनी तनहाई को खुश करता है; सुननेवाले सुनते हैं और विह्वल होते हैं"[१४]। कवि कोई बुलबुल नहीं, वह न तो जानवर है, न कोई फ़रिश्ता। वह तो, जैसा 'वर्ड्ज़वर्थ'[१५] ने कहा है, हम-आप जैसा मानव होता है। फिर वह अँधेरे में नहीं गाता और अपनी तनहाई को खुश नहीं करता। वह तो दूसरे इन्सानों से बातें करता है। यह जरूर है कि उसमें कुछ खूबियाँ होती हैं, जो हम-आप में मौजूद नहीं और उसकी बातों में आनन्द होता है, एक ताजगी होती है, एक अद्वितीयता होती है और ये खूबियाँ रोज़मर्रा की बातों में नहीं होतीं।

हाँ, तो कवि कोई बुलबुल नहीं, वह प्रतिभाशाली मनुष्य है; और केवल यही नहीं, प्रतिभाशाली मनुष्य तो बहुत होते हैं; कवि अपने युग में बौद्धिकता के उच्चतम शिखर पर होता है। वह बुलबुल की तरह आत्मविस्मृति की दशा में गाता नहीं, वह जो कुछ कहता है, समझ-बूझकर कहता है। उच्चतम बौद्धिकता के साथ-साथ उसकी संवेदन-शक्ति भी असाधारण, तीव्र और गहरी होती है। इसी संवेदन-शक्ति की कृपा है कि वह अपने माहौल से सतत प्रभाव ग्रहण करता रहता है। वह जिस चीज को देखता-सुनता है, सूँघता-छूता है और जिस चीज का स्वाद लेता है, वे सारी चीजें उसपर अपने प्रभाव छोड़ जाती हैं और वे प्रभाव शीघ्र मिट नहीं जाते; संवेदन-शक्ति उन्हें सुरक्षित रखती है, और उन्हें शृंखलाबद्ध तथा क्रमबद्ध करके एक नये रूप में प्रस्तुत कर सकती है। 'इलियट' ने कहा है कि हम भोजन की बू सूँघते हैं, टाइपराइटर की आवाज सुनते हैं, 'स्पिनोज़ा' पढ़ते हैं और इनमें से हर चीज अपना अलग असर छोड़ जाती है, किन्तु कवि की भाव-प्रवण शक्ति विभिन्न तथा विरोधी चीजों में सम्बन्ध स्थापित करती है और अनुपात ढूँढ निकालती है।[१६]

कवि की कल्पना-शक्ति भी असाधारण ढंग की होती है। यह बहुत ऊँचाई पर भी उड़ती है और पारदर्शी दृष्टि भी रखती है। यह जमीन से आसमान की ओर नजर दौड़ाती है और फिर आसमान से जमीन की ओर देखती है, और जो कुछ इसे दिखाई देता है उसका जानदार चित्रण[१७] करती है, ऐसी दूर-दूर की चीजें, जिनकी गर्द को भी साधारण कल्पना नहीं पा सकती, नज़दीक की चीजें, रगेजां से भी अधिक निकट, जो अपनी नजदीकी की वजह से हमें नजर नहीं आतीं। दूर

बो नज़दीक की सारी वस्तुओं पर कवि की कल्पना का आधिपत्य है और वह इन सारी चीजों को एक जगह पर इकट्ठा कर सकता है। विभिन्न तथा विरोधाभास रखनेवाली विशेषताओं में सन्तुलन तथा समन्वय पैदा कर सकता है, पुरानी और जानी हुई चीजों में नयापन और ताजगी डाल देता है, आम और खास, विचार और प्रतीक, वैयक्तिक और सार्वभौमिक बातों में समन्वय कर नये नक्शे बनाता है, तेज और गहरे आवेगों को नये अनुपात और व्यवस्था के साथ प्रस्तुत[१८] करता है।

कहने का मतलब यह है कि कवि हम-आप जैसा मनुष्य तो अवश्य है, लेकिन कुछ असाधारण ढंग का। संवेदनशून्यता से उसको दूर का भी सरोकार नहीं; वह किसी सूक्ष्म-ग्राही यन्त्र की तरह 'थरथराता' रहता है और होनेवाली घटनाएँ उसपर बराबर अपना असर डालती रहती हैं। अर्थात् संवेदना-शक्ति सतत उसपर प्रभावों तथा अनुभूतियों की वर्षा करती रहती है। कल्पना-शक्ति दूरस्थ तथा निकटवर्त्ती चित्रों को एकत्र करती रहती है, दिमाग नये-नये विचारों तथा मानसिक चित्रों को इकट्ठा करता रहता है, उसके दिल में बहुरंगे जज़्बात तथा भावावेश उठते और रंगीन तथा हृदयग्राही अनुभव गुजरते रहते हैं और 'नेमतों'* की यह अविराम शृंखला उसके चेतन अथवा अवचेतन में सुरक्षित रहती है और आवश्यकता पड़ने पर वह इन सबोंसे काम ले सकता है। जब कोई तीव्र आवेग या विचार उसे उद्विग्न करता है और अपनी अभिव्यक्ति के लिए बाध्य करता है तो ये सारी भावनाएँ, प्रतीक, कल्पित चित्र, आवेग तथा अनुभव उसकी सहायता करते हैं; सब-के-सब नहीं, केवल वे ही, जो उचित तथा उपयुक्त होते हैं, जिन्हें यह विशिष्ट अनुभव किसी आन्तरिक तथा गुप्त 'रिश्ते' (सम्बन्ध) की वजह से खींच लेता है और जिस रूप में यह अनुभव दीख पड़ता है उसे कविता कहते हैं।

अब रही नज़्म, तो मामूली और सादा नज्म भी जटिल होती है। इसमें अकेले शेर की तरह बस एक ख़याल, एक दृश्य अथवा आवेग की अभिव्यक्ति नहीं होती, बल्कि इसमें बहुत-से प्रभावों, आवेगों, कल्पनाओं, चित्रों और शब्दों का सम्मिश्रण होता है। और यह बहुलता, बहुलता नहीं रह जाती, एकता में परिणत हो जाती है। 'मीर' का एक शेर है—

फ़ुर्सते[१] बूद-बो[२]-बाश यां कम है + काम जो कुछ करो शिताब[३] करो।

इसमें केवल एक सीधा-साधा ख़याल है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। एक दूसरा शेर है—

बार-बार उसके दर[४] प जाता हूँ + हालत अब इज़्तराब[५] की-सी है।

इसमें मन की एक विशिष्ट दशा या भावावेश का वर्णन है। लेकिन किसी छोटी-सी और साधारण नज़्म में भी इससे अधिक जटिलता होती है। उसमें एक से अधिक भावावेश होते हैं। 'सिली प्रोदूम' की नज़्म[१९] है—

इस आसमान के नीचे सब फूल नष्ट हो जाते हैं
और चिड़ियों के गाने जल्दी खत्म हो जाते हैं

---

*ईश्वर की देन।

मैं ऐसे वसन्त का स्वप्न देखता हूँ जो स्थायी रहे
सदा स्थायी रहे।
इस आसमान के नीचे होंठ मुरझा जाते हैं
और उनके मख़मल में से कुछ भी बच नहीं पाता
मैं ऐसे चुम्बन का स्वप्न देखता हूँ जो स्थायी रहे
सदा स्थायी रहे।
इस आसमान के नीचे हम सब अपनी मित्रता
या अपने प्रेम का रोना रोते हैं
मैं ऐसे प्रेम का स्वप्न देखता हूँ जो सदा स्थायी रहे
सदा स्थायी रहे।

यह बहुत ही सादा-सी नज़्म है। इसमें आवेगों और विचारों की कुछ अधिक जटिलता नहीं है। वाह्य रूप से विषय तो वही है, जो उर्दू-कविता की पुरानी जागीर है अर्थात् संसार की अनित्यता। यह भी स्पष्ट है कि इस नज़्म और 'मीर' के शेरों में जहाँ तक जटिलता का प्रश्न है, आकाश-पाताल का अन्तर है। अगर आप इस नज़्म का विश्लेषण कीजिए तो इसकी पेचीदगी नजर आयगी, लेकिन मैं इस विश्लेषण की आवश्यकता नहीं समझता। मैं केवल एक बात और कह देना चाहता हूँ कि इस नज़्म के विभिन्न अंशों में सम्बन्ध-निर्वाह और क्रम है और केवल यही नहीं, इस नज़्म में विचारों तथा आवेगों का आरम्भ, विकास और चरम सीमा—ये तीनों अंश वहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। पहले बन्द में आरम्भ होता है और यह प्रारम्भ एक निरीक्षण से होता है। कवि फूलों का मुरझाना और चिड़ियों के गीतों का जल्दी से रुक जाना देखता है; इस देखने से उसे अशान्ति-सी होती है और वह स्थायी रहनेवाले वसन्त का स्वप्न देखने लगता है; किन्तु वह स्वप्न में विलीन नहीं हो जाता। ये मुरझानेवाले फूल उस 'गुलाब की-सी' पंखुड़ी की याद दिलाते हैं, जिसकी कोमलता का जिक्र 'मीर' साहेब ने अपने एक शेर में किया है और साथ-ही-साथ यह खयाल भी होता है कि यह फूल भी मुरझानेवाला है। स्पष्टतया विदित है कि दूसरे वन्द में खयाल और उस अनुभूति की, जो इन विचारों से सम्बद्ध हैं, दोनों की प्रगति होती है, और तीसरे वन्द में इन दोनों की चरम सीमा होती है। होंठ मानों प्रेमोद्यान के पुष्प हैं। इसलिए मुहव्वत की ओर ध्यान जाता है और वह भाव, जिसका आरम्भ पहली पंक्ति में हुआ था, अपनी पूर्णता को पहुँच जाता है। फूल, होंठ, प्रेम—यही तीन ज़ीने (सीढ़ियाँ) हैं। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

इस नज़्म में तो व्यक्तिगत अनुभव का वर्णन है। लेकिन किसी कवि के लिए यह जरूरी नहीं कि वह हमेशा उन्हीं भावावेशों तथा विचारों को व्यक्त करे, जिन्हें उसने व्यक्तिगत रूप से महसूस किया हो। "जो दिल पै गुज़रे, खिंचे उसकी सफ़हे पर तस्वीर"[२०] अपनी जगह पर दुरुस्त है, लेकिन यह भी स्पष्ट है कि उस दशा में कवि की दुनिया बहुत संकीर्ण हो जायगी।

यह वात तो ठीक है कि कवि के पास हम-आपसे अधिक और अधिक अच्छे अनुभव होते हैं, फिर भी किसी भी व्यक्ति के असंख्य अनुभव नहीं हो सकते। किन्तु कवि सभी मानवीय

अनुभूतियों, विचारों तथा अनुभवों की अभिव्यक्ति कर सकता है। सारे भावावेश तथा विचार उसके लिए कच्ची सामग्री की हैसियत रखते हैं। उदाहरणार्थ 'शेक्सपियर' को लीजिए। उसके लिए और उसके लिए क्या, किसी भी व्यक्ति के लिए यह सम्भव न था कि वह सारे अनुभवों को व्यक्तिगत रूप से महसूस करता, जिनकी अभिव्यक्ति उसने अपने नाटकों में की है। इसके अतिरिक्त ये अनुभव इतने विभिन्न और विरोधाभास-युक्त हैं, इनमें इतनी बहुरंगी है कि यह एक व्यक्ति के वश की बात नहीं। अनुभूतियाँ व्यक्तिगत हों या काल्पनिक, कविता के साँचे में ढल सकती हैं, किन्तु यह सभी योग्य-अयोग्य व्यक्तियों का काम नहीं। यह वही कवि कर सकता है, जिसका अनुभव विस्तृत, जिसकी कल्पना बलवान् हो और जो बहुत ही बढ़िया संवेदना-शक्ति रखता हो।

जो कुछ भी हो, अनुभूतियाँ व्यक्तिगत हों या काल्पनिक, यदि उनमें जोश न हो तो सफल कविता सम्भव नहीं। लेकिन जोश ऐसा न हो कि कवि की शक्ति से बाहर हो जाय। यह बात बहुत आवश्यक है कि वह आवेगों तथा कल्पनाओं के तूफान को अपने वश में रखे, उन्हें जाँचे, परखे और कोलाहल को शान्ति के रूप में प्रस्तुत करे। भीतर ज्वालामुखी पहाड़ ज्वालाएँ फेंक रहा हो, लेकिन सतह पर इतनी शान्ति हो कि सुन्दर फूल खिलते दीख पड़ें। उदाहरणस्वरूप 'वर्ड्ज़वर्थ' की प्रसिद्ध कविता[२१] है, जिसकी पहली पंक्ति का अनुवाद निम्नांकित है—

'मेरी आत्मा पर निद्रा ने मुहर लगा दी थी।'

इसे पढ़िए। आलोचकों की सर्वसम्मति है कि जो जोश और आवेगों की तीव्रता इस नज़्म में है, उसकी मिसाल कम मिलती है। किन्तु ये तीव्र आवेग कहीं प्रकट नहीं होते, और प्रकट न होने की वजह यह है कि आवेगों की तीव्रता के बावजूद 'वर्ड्ज़वर्थ' को अपने भावावेशों पर प्रचण्ड रूप से अधिकार भी है। और, इस शान्त-से लगनेवाले जोश के साथ उसने अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए उत्तमोत्तम शब्दों, चित्रों और लय का प्रयोग किया है।

यह बात भी न रह जाय कि कवि के हृदय में पहले आवेगों की लहरें उठती हैं और फिर साथ-ही-साथ शब्द, चित्रांक और छन्द भी टपक पड़ते हैं।

हमें यह न भूलना चाहिए कि अनुभवों और उनकी अभिव्यक्ति के साधनों में प्राण और शरीर का-सा सम्बन्ध है, शरीर और लिबास का नहीं। बात यह है कि प्रत्येक अनुभव निराला होता है, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति में भी निरालापन का होना आवश्यक है। जहाँ पर परि-वर्त्तन-परिवर्द्धन सम्भव है, वहाँ अनिवार्य रूप से पूर्णता की कमी होगी। 'ज़ौक' का एक शेर है—

अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जायेंगे
मरके भी चैन न पाया तो कहाँ जायेंगे।

इस शेर में कोई परिवर्त्तन-परिवर्द्धन सम्भव नहीं। एक शब्द को भी इधर-उधर करने से इसकी सारी खूबी नष्ट हो जायगी। 'वर्ड्ज़वर्थ' की वह कविता, जिसका मैंने हवाला दिया है, उसमें क्या मजाल कि एक अक्षर भी इधर-से-उधर किया जा सके।

लेकिन उर्दू-संसार में इस तथ्य को समझने में जरा मुश्किल होती है। इसका कारण यह है कि उर्दू-कविता के एक बड़े हिस्से में खेयाल-बन्दी और तुक-यमक के प्रयोग के अतिरिक्त और

कुछ नहीं है। फिर इसमें यह भी नियम रहा है कि एक ही तुक और एक ही विषय को बार-बार बांधा गया है। इसलिए यह विचार पुष्ट हो गया है कि विषय अलग चीज है और शब्द तथा छन्द अलग वस्तुएं हैं। इनमें शरीर और लिबास का सम्बन्ध है। जिस तरह हम अपना लिबास बदल सकते और बदलते रहते हैं उसी तरह कोई विषय भी अलग-अलग आवरणों से अपने शरीर की शोभा बढ़ा सकता है। किन्तु ध्यानपूर्वक देखने से यह विचार भ्रमात्मक सिद्ध होगा। उदाहरण-स्वरूप कोई विषय ले लीजिए—वही संसार की अनित्यता; फिर 'मीर' का यह शेर पढ़िए—

हस्ती अपनी हुबाब[१] की-सी है + यह नुमाइश[२] सुराब[३] की-सी है।

फिर 'मीर' का यह शेर लीजिए—

कहा मैंने कितना है गुल का सबौत[४] + कली ने यह सुनकर तबस्सुम[५] किया।

और अब 'मीर' का यह क़िता देखिए—

कल पाँव मेरा कासए[६] सर पर जो आ गया
यक़सर[७] वह उस्तख़्वाने[८] शिकस्तों[९] से चूर था
कहने लगा कि देखके चल राह बेख़बर
मैं भी कभू[१०] किसू[११] का सरे पुरग़रूर था[१२]

मैं कहता हूँ कि यहाँ एक विषय नहीं। आपको शायद इससे आश्चर्य हो, लेकिन आश्चर्य की कोई बात नहीं। यदि आप अँगरेजी-कविता या किसी अन्य भाषा की कविताओं के किसी संग्रह के पन्नों को उलटें तो शायद आपको बहुत-सी कविताएँ मृत्यु या प्रेम के सम्बन्ध में मिलेंगी; लेकिन यह कहना कि ये सारी कविताएँ मौत या प्रेम पर हैं और विषय एक है, अत्यन्त ओछेपन का प्रमाण प्रस्तुत करना होगा। सम्भव है कि बहुत-सी कविताएँ मौत के सम्बन्ध में हों, लेकिन प्रत्येक कविता बेलाग होगी; हर कविता में नया अनुभव होगा। केवल अभिव्यक्ति का साधन ही विभिन्न न होगा, बल्कि अनुभव की आत्मा भी विभिन्न होगी। यही हाल उपर्युक्त तीनों मिसालों का भी है। सतही नज़र को तीनों मिसालों में एक ही विषय दिखाई देगा, किन्तु तथ्य यह है कि प्रत्येक उदाहरण में एक नया विषय, एक नवीन अनुभव है। 'यह नुमाइश सुराब की-सी है', 'कली ने यह सुनकर तबस्सुम किया', 'मैं भी कभू किसू का सरे पुरग़रूर था'। अगर आप केवल इन्हीं टुकड़ों पर ध्यान दें, जो अलग-अलग तस्वीरें इनमें दिखाई पड़ती हैं, उन्हें साफ-साफ देखने की कोशिश करें, जो अर्थगर्भिता इनमें है उसे पूरी तरह समझें, तो शायद आप मान लेंगे कि हर टुकड़े में एक नया, ताजा और अद्वितीय अनुभव है और हर अनुभव को नये ढंग से बयान किया गया है और किसी जगह भी हस्तक्षेप की गुंजाइश[२२] नहीं।

मैंने कहा है कि अपनी भौतिक दृष्टि के कारण हम कविता का पर्याप्त आदर-सम्मान नहीं करते, लेकिन यह हमारी भूल, बहुत बड़ी भूल है। यदि हम कविता से अलग हो जायँ तो हमारी जिन्दगी जानवरों की जिन्दगी से अधिक मूल्यवान न होगी। जानवरों को भूख लगती है,

१. बुलबुला, २. प्रदर्शन, ३. मृगतृष्णा, ४. अस्तित्व, ठहराव; ५. मुस्कुराया, ६. खोपड़ी, ७. पूर्णतया, ८. हड्डी, ९. टूटा हुआ, १०. कभी, ११. किसी, १२. घमंडी।

वे खाद्यपदार्थों की खोज में निकलते हैं, फिर जहाँ उन्हें तृप्ति हो गई तो वे सो रहते हैं। यह कहने की शायद जरूरत नहीं कि जानवरों को कोई मानसिक या आध्यात्मिक आवश्यकता नहीं सताती, और इसका कारण यह है कि वे इस प्रकार की आवश्यकताओं से परिचित नहीं होते। यदि मनुष्य के जीवन की भी यही दशा हो तो उसमें और जानवरों में कोई विशेष अन्तर न रह जायगा, और यदि इसकी ऐसी स्थिति हो जाय तो उसे केवल घृणा की दृष्टि से देखा जा सकता है। जिस तरह मनुष्य का शरीर भोजन का मुहताज और मुतलाशी है; उसी तरह उसकी आत्मा भी किसी बढ़िया भोजन के लिए बेचैन रहती है। मनुष्य का शरीर तृप्त हो जाता है तो भी उसे पूर्ण शान्ति नहीं होती जबतक कि उसकी आत्मा, उसका दिमाग भी सन्तुष्ट न हो जायँ। यह तृप्ति, यह तुष्टि, पूर्ण तुष्टि उसे कविता दे सकती है। मानव सांसारिक झगड़ों में फँसा रहे, शारीरिक आवश्यकताएँ और इच्छाएँ उसे अपनी ओर खींच लें, लेकिन कभी-न-कभी उसके दिल में किसी नई चीज की ख़्वाहिश उभरती है और उसे मालूम होता है कि यह नई चीज, जो उसे पूर्ण संतृप्ति प्रदान कर सकती है, कविता है। यदि उसने यह भेद पा लिया और काव्य से लुत्फ उठानेवाला हुआ, तो फिर वह यह भी महसूस करता है कि मानसिक तथा आध्यात्मिक शान्ति का परिणाम है शारीरिक आनन्द। सारांश यह कि सभी प्रकार से उसका जीवन सुखमय और सफल हो जाता है। लेकिन अपने दुर्भाग्य, अज्ञान तथा लापरवाही के कारण यदि वह काव्य से बेगाना रहा तो उसका जीवन दूषित हो जाता है—सच है कि कविता जीवन की उपलब्धि और उसकी पूर्णता है।

सन्दर्भ-संकेत

१. Poetry matters little to the modern world. That is, very little of contemporary intelligence concerns itself with poetry. It is true that a very great deal of verse has come from the press in the last twenty years, and the uninterested might take this as proving the existence both of a great deal of interest in poetry and of a great deal of talent. Indeed anthologists do. They make, modestly, the most extravagant claims on behalf of the age.........

Such claims are symptoms of the very weakness that they deny : they could have been made only in an age in which there were no serious standards current, no live tradition of poetry, and no public capable of informed and serious interest. No one could be seriously interested in the great bulk of the verse that is culled and offered to us as the fine flower of modern poetry. For the most part it is not so much bad as dead—it was never alive.

[*F. R. Leavis* : **New Bearings in English Poetry**]

२. आग़ा-कल्लव-हुसेन-खाँ, जिनका तख़ल्लुस़ 'नादिर' था, 'नासिख' के शिष्य थे। सारी उम्र उन्होंने डिप्टी-कलक्टरी की और राज-काज के कामों में फँसे रहे, मगर काव्य-रचना से कभी चिन्ता-मुक्त न हुए। स्थानान्तरित होकर जिस जिले में गये, मुशायरे को अपने साथ लेते गये। कवियों की सहायता सरकारी नौकरियों से या अपने पास से हमेशा करते रहे। और, इसी दशा में यह भी कहा—

लोग कहते हैं कि फ़न्ने शायरी मनहूस है
शेर कहते-कहते मैं डिप्टी-कलक्टर हो गया।

[आबे हयात]

३. वर्त्तमान युग उन्नति का युग है। मानवीय कार्य-कलाप इतनी बहुरंगी ग्रहण कर चुके हैं कि समयाभाव संक्षेपण चाहता है। अब न इतना समय है, न इसकी आवश्यकता कि मनुष्य किसी चीज का विस्तृत ढांचा तैयार करके दुनिया का और स्वयं अपना समय नष्ट करे। यदि उस उद्देश्य की पूर्ति सम्यक् रूप से हो जाय तो फिर और क्या चाहिए। गजल का हर शेर कोई हृदयग्राही प्रभाव अपने अन्दर छिपाये हुए रहता है और कुछ ही छोटे-छोटे शब्दों में एक विशिष्ट वस्तु

सूक्ष्म पहलू लिये हुए नज़र के सामने फिर जाती है। कहावतों और समयानुकूल गोष्ठियों तथा मिसालों में इसका प्रयोग सम्भाषणों में रस और लेखों में चमत्कार पैदा करता है। संकेत और इशारे विचारोत्पादक नवोन्मेषशालिनी प्रतिभाओं में विशेष प्रकार का आनन्द पैदा कर देते हैं।

[सैयद नसीर हैदर : 'मआसिर', अंक ५, संख्या ४, पृष्ठ २५]

४. मसऊद हसन रिज़्वी : 'हमारी शायरी'।

५. A poet in our time is a semi-barbarian in a civilised community. He lives in the days that are past......... In whatever degree poetry is cultivated, it must necessarily be to the neglect of some branch of useful study and it is a lamentable thing to see minds, capable of better things, running to seed in the specious indolence of these empty, aimless mockeries of intellectual emotion. Poetry was the mental rattle that awakened the attention of intellect in the infancy of civil society; but for the maturity of mind to make a serious business of the playthings of its childhood, is as absurd as for a grown man to rub his gums with coral, and cry to be charmed asleep by the jingle of silver bells.

[*Peacock* : **The Four Ages of Poetry**]

६. The future of poetry is immense, because in poetry, when it is worthy of its high destinies, our race, as time goes on, will find an ever surer and surer stay. There is not a creed which is not shaken, not an accredited dogma which is not shown to be questionable, not a received tradition which does not threaten to dissolve our religion has materialised itself in the fact, in the supposed fact, it has attached its emotion to the fact, and now the fact is failing it. But for poetry the idea is everything.

[*Matthew Arnold* : **The Study of Poetry**]

७. **First Evzone** : What would the world be like today if there wasn't any poetry in it ?

Sencod Evzone : Just exactly what it is ! Poetry's never made a penn'orth of difference to the ordinary man.

First Evzone : The ordinary man would still be an ordinary monkey if it wasn't for poetry.

Second Evzone : Now, there's no point in losing your temper and making wild statements that don't mean anything at all.

First Evzone : I've got a very good reason for losing my temper, because I believe a great poet is first cousin to Almighty God, and you say he's nothing better than a clerk in a warehouse, and ought to stop writing poetry and become a healthy citizen !

Second Evzone : And so he ought ! Healthy citizens are what we need !

First Evzone : If it wasn't for the poets we wouldn't be aware of health, we wouldn't be aware of citizenship, we wouldn't be aware of the need for them, we would not be aware of anything at all.

[*Eric Linklater* : **Crisis in Heaven**]

८. Nel suo profondo vidi che s'interna,
legato con amore in un volume,
cio che per l' universo si squaderna;
Sustanzia ed accidenti, e lor costume,
Quasi conflati insieme per tal mode,
che cio ch' io dico e un semplice lume.

९. *Ludwig Van Beethoven* (1770—1827), a great German musical composer, whose name is forever associated with the symphony and the perfecting of that form of music. His fifth and ninth symphonies are among the most beautiful compositions extant.

१०. *Mona Lisa* (or Joconde) by Leonardo da Vinci (1452—1519) : The most famous painting in the world, this portrait has for enturies been considered the supreme embodiment of the eternal enigma of womanhood. Mona Lisa was the third wife of Francesco del Giocondo, a Florentian official and Vasari relates that Leonardo hired musicians to sing and play while he painted her in order to preserve the intent expression of her face.

[*Sir William Orpen* : **The Outline of Art**]

११. *The Venus of Melos* : The best known statue in the world, the Venus of Melos probably dates from about the middle of the third century B. C. This sculpture has long been held as an ideal of womanly beauty, as the almost contemporary Apollo Belwedere is that of the male. Beauty, calmness, strength, purity and power radiate from this divinity in marble.

[*Ibid*]

१२. A slumber did my spirit seal.

१३. रासिख़ अजीमाबादी :

किस क़दर बू क़लमूं[१]-जलवा[२] है अपना महबूब[३]
एक भी उसकी तजल्ली[४] नहीं तकरार[५] के साथ।

१४. A poet is a nightingale, who sits in darkness and sings to cheer its own solitude with sweet sounds; his auditors are as men entranced by the melody of an unseen musician, who feel that they are moved and softened, yet know that whence or why.

[*Shelley* : **A Defence of Poetry**]

१५. He is a man speaking to men : a man, it is true, endowed with more lively sensibility, more enthusiasm and tenderness, who has a greater knowledge of human nature, and a more comprehensive soul, than are supposed to be common among mankind.

१६. When a poet's mind is perfectly equipped for its work, it is constantly amalgamating disparate experience; the ordinary man's experience is chaotic, irregular, fragmentary. The latter falls in love or reads Spinoza, and these two experiences have nothing to do with each other, or with the noise of the typewriter or the smell of cooking; in the mind of the poet these experiences are always forming new wholes.

[*T. S. Eliot* : **The Metaphysical Poets**]

१७. The poet's eye, in a fine frenzy rolling,
Doth glance from ehaven to earth, from earth to heaven;
And as the imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen
Turns them to shapes and gives to airy nothings
A local habitation and a name.

[**A Midsummer Night's Dream**—Act V, Sc. i, ii, 12—17]

१८. He (the poet) diffuses a tone and spirit of unity, that blends and (as it were) fuses, each into each, by that synthetic and magical power, to which I would exclusively appropriate the name of imagination. This power......reveals itself in the balance of reconcilement of opposites or discordant qualities : of sameness with

१. वैविध्यपूर्ण, २. छवि, ३. प्रेमपात्र, ४. छवि-प्रदर्शन, ५. पुनरावृत्ति।

difference; of the general with concrete; the idea with the image; the individual with the representative; the sense of novelty and freshness with the old and familiar objects; a more than usual state of emotion with more than usual order; judgment ever awake and steady self-possession with enthusiasm and feeling profound or vehement; and while it blends and harmonises the natural and the artificial, still subordinates art to nature; the manner to matter; and our admiration of the poet to our sympathy with the poetry.

१९. **ICI-BAS**

ICI-BAS tous les lilas meurent,
Tous les chants des oiseaux sont courts;
Je reve aux etes qui demeurent
Toujours.........

Ici-bas les levres effleurent,
Sans rien laisser l . . eur velours;
Je reve aux baisers qui demeurent
Toujours.........

Ici-bas tous less hommes pleurent
Leurs amities ou leurs amours;
Je reve aux couples qui demeurent
Toujours.

[*Sully Prudhomme*]

२०. **'मुबारक' अज़ीमाबादी :**

जो दिल प गुज़रे खिचें उसकी सफ़हे पर तस्वीर
क़लम उठे न मुबारक ख़याल-बन्दी पर

२१. A slumber did my spirit seal !
I had no human fears ;
She seemed a thing that could not feel
The touch of earthly years.
No motion has she now, no force ;
She neither hears, nor sees ;
Roll'd round in earth's diurnal course
With rocks and stones and trees.

२२. अधिक विस्तृत विवेचन के लिए देखिए : **प्रायोगिक आलोचना**, अंक १, प्राक्कथन, पृष्ठ ३९—५२ ।

२

उर्दू-कविता का पालन-पोषण फारसी की छत्रच्छाया में हुआ, और यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं और कोई बुरी बात भी नहीं। 'चिराग़ से चिराग़ जलते हैं'। महारानी 'एलिजावेथ के शासनकाल में अँगरेजी नाटक का आरम्भ यूनानी और लातीनी नाटकों की छत्रच्छाया में हुआ; और लिरिक कविता ने इटालवी और फ्रांसीसी कविता का अनुकरण किया। किन्तु अँगरेजी-नाटक बहुत शीघ्र बाहरी प्रभावों से मुक्त हो गया और उसने अपना बिलकुल नया रास्ता निकाला। इसी तरह लिरिक कविता ने भी कुछ बाद में, लेकिन सदा के लिए इटालवी और फ्रांसीसी कविता से मुँह मोड़ लिया।

यदि उर्दू-कविता अपने प्रारम्भिक सोपानों को तय कर लेने के बाद फारसी के प्रभाव से मुक्त हो जाती और स्वतन्त्र होकर अपनी दुनिया अलग बनाती तो कुछ शिकवा-शिकायत की गुंजाइश न होती। किन्तु, यह आजादी उसके भाग्य में न थी। उसे अन्धानुकरण ऐसा पसन्द आया कि मानों वह सदा के लिए लकीर की फकीर बन गई। फारसी छन्दों, व्याकरण और पिंगल का अनुसरण तो अनिवार्य था; आश्चर्य यह है कि इन छन्दों और व्याकरण के नियमों में कभी किसी को परिवर्त्तन या परिवर्द्धन का खयाल भी न हुआ। इसी मनोवृत्ति का परिणाम था कि विभिन्न शब्द-संगठन और सारे विषय भी फारसी से ग्रहण कर लिये गये और एकबारगी[१] वही घिसे-पिटे विचार और पुराने चित्र उर्दू-कविता की न्यास-शिला बन गये। लैला-मजनूँ का प्रेम, फरहाद का पहाड़ काटना, गुल[२]-वो-बुलबुल की रंगीन कहानी, पतंग और दीपक का रहस्यमय[३] प्रेम, प्रेमिका के सौन्दर्य की प्रभा[४], बेवफाई का शिकवा, आशिक की सचाई की प्रशंसा—ये विषय कुछ ऐसे अच्छे मालूम हुए कि अभी तक इनसे विलग होना सह्य नहीं। जुल्फे[५] मुश्कीं[६], ख़ाले[७] सियह, नर्गिसे जादू, नोके भिज़गां[८], लबे[९] लालीं[१०], दुरे[११] दंदां[१२], चाहे[१३] जनख़दां[१४], का जिक्र कहाँ नहीं ?

महारानी एलिजाबेथ के शासनकाल में अँगरेजी-कवि भी कुछ इसी प्रकार की कृत्रिम कविताएँ किया करते थे। सुनहरी जुल्फें, सितारे-जैसी चमकती हुई आँखें, गुलाबी गाल, लबे लालीं, दुरे दंदां, मरमरीं हाथ, और इसी प्रकार के खूबसूरत, लेकिन नकली सिक्कों के उलट-फेर का नाम कविता हो गया था, यहाँ तक कि इनसे ऊबकर शेक्सपियर ने अपनी एक सॉनेट में इस तरह की कविता की खिल्ली उड़ाई :

"मेरी प्रेयसी की आँखें सूरज-जैसी बिलकुल नहीं; मूँगा उसके लाल होठों से बहुत अधिक लाल है, उसके सीने बर्फ की सफेदी को नहीं पाते, यदि उसके बालों की उपमा तार से

---

१. अचानक, २. गुलाब का फूल, ३. रहस्य तथा समर्पण, ४. अत्याचार, जुल्म, ५. अलकें, ६. कस्तूरी की तरह काली और खुशबूदार, ७. तिल, ८. बरौनी, ९. होंठ, १०. सुर्ख़, ११. मोती, १२. दांत, १३. कुआँ, १४. ठोड़ी।

दी जाय तो उसकी अलकें काले तार हैं। मैंने सुर्ख़-सफ़ेद गुलाब को देखा है, लेकिन उसके गालों में मैं ऐसे गुलाब नहीं पाता, और कोई-कोई इत्र हमारी प्रेयसी की साँसों से अधिक सुखद होते हैं। मैं उसके बोलचाल पर लट्टू हूँ, लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि संगीत में उससे अधिक लयदारी है। मैंने किसी देवी को चलते-फिरते नही देखा है, लेकिन मेरा माशूक चलता है तो ज़मीन पर चलता है। फिर भी, मैं भगवान् की शपथ खाकर कहता हूँ, मेरा माशूक लाजवाब है और किसी भी ऐसे सुन्दर व्यक्ति से कम नहीं, जिसमें झूठी उपमाओं ने चार चाँद लगाये हैं।"

किन्तु उर्दू में किसी ने अनुकरण को बुरा न समझा। फारसी-कविता ने कुछ ऐसा सब्ज़-बाग[1] दिखाया कि कवि-समुदाय अपनी स्वाभाविक बुद्धि तथा मेधा, अपनी कल्पना-शक्ति और मौलिकता से हाथ खींचकर फारसी-कविता का अनुकरण करने में तल्लीन हो गये। यदि वे काव्य के सही अर्थ को जानते होते तो इस तरह की हरकत न करते। उनकी मुश्किल आसान हो जाती और वे उन्नति की सारी मंजिलें तय कर लेते।

मैंने ऊपर की पंक्तियों में जो बातें कही हैं, वे कुछ नई नहीं; 'अब्दुस्सलाम' साहेब कहते हैं:

"उर्दू-कविता अपनी सहज-स्वाभाविक उपज को छोड़कर ईरान की ओर कदम बढ़ाती है और अपने सारे आधारभूत विषयों की सामग्री ईरान से लेती है: उदाहरणस्वरूप जैहून[2], सैहून[3], जूएशीर[4], कोहे[5] अलवन्द, कोहे बेसतून[6], रुस्तम[7], असफ़न्देयार[8], साम[9], मानी,[10] बहजाद[11], मजनूं[12], फ़रहाद[13], शमशाद[14], नरगिस,[15] संबुल[16], बनफ़शा[17], सरो,[18] क़ुमरी[19], बुलबुल और परवाना[20] इत्यादि उर्दू-कविता के हजारों विषयों की आधारशिला हैं। और इन सारी चीजों का ईरान के साथ विशेष सम्बन्ध है। फारसी के शब्दों, फारसी-मुहावरों के अनुवाद और फारसी-रचना-पद्धतियाँ तो इतनी अधिक हैं कि उनका अनुमान नहीं किया जा सकता....कमन्द, खंजर[21], तीर इत्यादि यद्यपि ईरान की विशेषताएँ नहीं हैं, फिर भी उर्दू-शायरी ने ज़ुल्फ़[22], अबरू[23] वो मिज़ा[24] की ये सारी उपमाएँ ईरान से ली हैं। रिन्दीं व सरमस्ती[3] के विषय भी यद्यपि ईरान की विशेषताएँ नहीं, तो भी ये विषय उर्दू-कविता में जिस ठाट-बाट के साथ आये हैं, वह ईरान ही के साथ विशिष्ट रूप से सम्बद्ध है, नहीं तो हिन्दुस्तान में जामे-जम[25] कहाँ मिल सकता है? सारांश यह कि बह्र,[26] रदीफ़[27], काफ़िया[28], इस्तेआरा[29], तश्बीह[30] हर हैसियत से उर्दू-कविता फारसी-कविता का छायारूप है।"

और आजाद ने आश्चर्य प्रकट किया था:

---

१. धोखा देना, २-३. ईरानी नदियों के नाम, ४. ईरान के एक झरने का नाम, ५-६. ईरान के पहाड़ों के नाम, ७. ईरान का नामी पहलवान। ८-९. ईरान के नामी पहलवान, १०-११. ईरान के चित्रकार, १२. अरब देश का एक प्रेमी, १३. ईरान का एक प्रेमी, १४. एक वृक्ष-विशेष, १५. एक फूल, १६. एक खुशबूदार घास, १७. एक फूल, १८. एक वृक्ष, १९. मैना चिड़िया, २०. पतंग, २१. एक प्रकार की छोटी तलवार, २२. अलकें, २३. भवें, २४. बरौनी, २५. जम्शेद बादशाह का प्याला, जिसमें वह शराब पीता था, उसमें सारी दुनिया दिखाई पड़ती थी। २६. छन्द, २७. कविता का शब्द-विशेष, जो हर पंक्ति के अन्त में आता है, २८. तुक, चमक; २९. रूपक, ३०. उपमा।

"आश्चर्य है कि उसने (फारसी-कविता ने) इतनी भावभंगी और रूप-लावण्य दिखलाया कि हिन्दी-भाषा के ख़यालात जो खास इस देश की परिस्थितियों के अनुकूल थे, उन्हें भी मिटा दिया। अतः विशेषज्ञ तथा सर्वसाधारण सभी लोग पपीहे और कोयल की आवाज और चम्पा-चमेली की खुशबू को भूल गये और हज़ार[१] वो बुलबुल, जिन्हें कभी देखा भी न था, उनकी प्रशंसा करने लगे। रुस्तम और अस्फ़न्दयार की बहादुरी, कोहे अलवन्द और वेसतून की बुलन्दी, जैहून वो सैहून की रवानी ने यह तूफान उठाया कि अर्जुन का पराक्रम, हिमालय की हरी-हरी पहाड़ियाँ, हिमाच्छादित चोटियाँ और गंगा-यमुना के प्रवाह को बिल्कुल रोक दिया।"

प्रत्यक्ष है कि जो बातें मैंने कही हैं वही बातें 'अब्दुस्सलाम' साहेब और 'आज़ाद' भी कह चुके हैं; भेद केवल यह है कि न तो 'आज़ाद' को, न 'अब्दुस्सलाम' साहेब को ही इसका भान है कि इन बातों के तर्कसंगत परिणाम क्या हैं। और, उर्दू-कविता की वर्त्तमान परिस्थिति से उन्हें वह असन्तोष नहीं, जो एक आलोचक को होना चाहिए।

जो हो, उर्दू-कविता के भिन्न-भिन्न रूप हैं—गजल, कसीदा, मसनवी, मरसिया और मुसद्दस विशेषकर जिक्र करने योग्य हैं। गजल उर्दू-कविता की जान है। इस काव्य-रूप की विशेषताओं का अनुमान करने के लिए किसी एक गजल का विश्लेषण काफी होगा। जैसे गालिब की एक मशहूर गजल है, और यह गजल बिना किसी विशेषता के प्रस्तुत की गई है—

गै़र[२] लें महफ़िल[३] में बोसे[४] जाम के[५] + हम रहें यों तिश्नःलब[६] पैग़ाम[७] के
ख़स्तगी[८] का तुमसे क्या शिकवा कि यह + हथखंडे हैं[९] चर्ख़े नीलीफ़ाम[१०] के
ख़त लिखेंगे गर्चे[११] मतलब कुछ न हो + हम तो आशिक़ हैं तुम्हारे नाम के
रात पी ज़मज़म[१२] प मै[१३] और सुब्हदम[१४] + धोए धब्बे जामए[१५] एहराम[१६] के
दिल को आँखों ने फँसाया क्या मगर[१७] + यह भी हल्के[१८] हैं तुम्हारे दाम[१९] के
शाह के है ग़ुस्ले[२०] सेहत[२१] की ख़बर + देखिए कब दिन फिरें हम्माम[२२] के
इश्क़ ने 'ग़ालिब' निकम्मा कर दिया + वर्नः[२३] हम भी आदमी थे काम के

इस गजल पर सरसरी नजर डालने से जान पड़ता है कि शेरों में कुछ समानता और अनुपात है; सभी एक छन्द में हैं और सबका क़ाफ़िया और रदीफ़ एक है। एक शेर को छोड़कर शेष सभी शेर प्रेम और प्रेम-सम्बन्धी आवश्यक बातों से परिपूर्ण हैं। इस बाह्य समानता की वजह से खयाल होता है कि आन्तरिक अनुरूपता भी होगी और इन शेरों में अर्थ के विचार से सम्बन्ध, शृंखला तथा विचार-प्रगति भी होगी। लेकिन यह खयाल गलत है। इन भिन्न-भिन्न शेरों में 'चेतन या अचेतन' रूप से कोई सम्बन्ध नहीं। पढ़नेवाले के ज़ेहन में किसी सम्पूर्ण अनुभव की तस्वीर उजागर नहीं होती, बल्कि कुछ बिखरे हुए विचार और चित्र मन में बैठ जाते

---

१. बुलबुल, २. दूसरे लोग, प्रतिद्वन्द्वी; ३. सभा, ४. चुम्बन, ५. शराब का प्याला, ६. प्यासे, ७. संवाद, अनुमति, ८. फटेहाल होना, ९. आसमान, १०. नीले रंग का, ११. यद्यपि, १२. मक्का के एक पवित्र झरने का नाम, १३. शराब, १४. सवेरे, १५. कपड़े, १६. वह पवित्र वस्त्र, जो हज करने के समय पहना जाता है, १७. शायद, १८. घेरा, परिधि; १९. जाल, २०. स्नान, २१. स्वास्थ्य, २२. स्नानागार, २३. नहीं तो।

हैं। रकीबों की भाग्य-सफलता, कवि की दीनता, पत्र लिखने का विचार, ज़मज़म के किनारे बैठकर शराब पीना, दिल का आँखों में जा फँसना, बादशाह के स्वास्थ्य-लाभ के बाद स्नान करने की खबर, कवि का निकम्मा होना—इन बातों में कोई बुद्धिग्राह्य अनुरूपता नहीं। इनमें वह लगाव तथा क्रमबद्धता और विचार-प्रगति नहीं, जो 'सिली प्रोदूम' की कविता के विभिन्न टुकड़ों में हैं।

और, यह बात भी स्पष्टतया विदित है कि ये बिखरे हुए विचार वही हैं, जो आमतौर से गजलों में पाये जाते हैं। अर्थात् गजल का 'दामाने[1]-निगह' संकीर्ण है और इसके 'गुले-हुस्न[2]' सीमित हैं। माशूक[3] का हुस्न[4], जिससे सूर्य-चन्द्रमा लज्जित हों, उसकी निष्ठुरता और क्रूरता, प्रेम का प्रचण्ड झंझावात, प्रेमी के प्रेम-निर्वाह की भावना, उसका विरह-वेदना से घुल-घुलकर प्राण देना, प्रेयसी से मिलने की अभिलाषा, आसमान की शिकायत, लाल रंग की मदिरा की तृष्णा, पुलिस-विभाग के कर्मचारियों तथा धर्मोपदेशकों से छेड़-छाड़ इत्यादि; यही फूल हैं, जो बार-बार एक ही रंग वो बू के साथ कविता-कौमुदी में खिलते हैं। यदि कल्पना ने उड़ने के लिए पंख फैलाये तो इन फूलों को तसौउफ़[5] के रंग वो बू में लपेट दिया :

तुझी को जो यां जल्वा[6]-फ़रमा न देखा + बराबर है दुनिया को देखा न देखा
मेरा गुंचए[7]-दिल है वह दिलगिर[8]फ़्ता + कि जिसको किसूने कभू[9] वा न देखा
यगाना[10] है तू आह बेगानगी[11] में + कोई दूसरा और ऐसा न देखा
अज़ीअत[12], मुसीबत, मलामत[13], बलाएँ + तेरे इश्क़ में हमने क्या-क्या न देखा
किया मुझको दाग़ों ने सर्वे[14]-चिरागां + कभू तूने आकर तमाशा न देखा
तगाफ़ुल[15] ने तेरे यह कुछ दिन दिखाए + इधर तूने लेकिन न देखा न देखा
हिजाबे[16] रुख़ेयार थे आप ही हम + खुली आँख जब कोई पर्दा न देखा

शब[17] वो रोज़ ऐ 'दर्द' दर[18]पै हो उसके
किसू ने जिसे यां न समझा न देखा

सर्जनहार की छवि प्रत्येक प्राणी में वर्त्तमान है। उसकी ज्योति प्रत्येक वस्तु में सन्निहित है। "दिले हर क़तरा[19] है साज़[20] अनल[21] वह्र।" मंसूर[22] का यह दावा करना कि मैं सत्य (भगवान्) हूँ, वास्तविकता पर आधारित था। बालुका-राशि के प्रत्येक कण के हृदय को सूर्य से मिलने की अभिलाषा है। लेकिन पाबन्दियों[23] से बाध्य है। शरीर का पर्दा आवरण की तरह पड़ा हुआ है। यदि मनुष्य रहस्यमय संगीत से अवगत हो जाय तो प्रत्येक आवरण संगीत के बाजे का पर्दा बनकर 'सत्यमेव जयते' का राग सुनायगा। वह अद्वितीयता का सूर्य अपनी चमक हर रंग में दिखलाता है, लेकिन आँखें होनी चाहिए। अगर उसी को 'जल्वा[24] फ़रमा न देखा' तो वाह्य जगत् में उसके प्रदर्शनों को देखना न देखना बराबर है। वह अकेला अद्वितीय है, उसका कोई

१. दृष्टि-विस्तार, २. सुषुमा, पुष्प; ३. प्रेयसी, ४. सौन्दर्य, ५. सूफ़ीमत की बातें, ६. छवि, ७. कली, ८. संपुटित हृदय, ९. विकसित, खुला हुआ; १०. अद्वितीय, ११. अनजानपन, १२. दुःख, पीड़ा; १३. झिड़की, भर्त्सना; १४. ऐसा सरो का वृक्ष, जिस पर बहुत-सी मोमबत्तियाँ जलाकर तमाशा किया जाता है। १५. लापरवाही, १६. पर्दा, १७. रात-दिन, १८. पीछे पड़ा हुआ, १९. बूँद, २०. बाजा, २१. मैं समुद्र हूँ, २२. एक सूफ़ी फकीर का नाम, २३. रुकावटें, २४. छवि दिखानेवाला।

सानी नहीं। दिल को अभिलाषा है तो उसके दर्शन की, तमन्ना है तो उससे मिलने की; लेकिन शरीर के आवरण से मजबूर है। "वेदना, दुःख, भर्त्सना, बलाएँ—सारांश यह कि दिल पर क्या-क्या न बीती। विरह-वेदना के कारण दिल में इतने लाल-लाल दाग पड़ गये हैं कि दिल चिरागों से लदे हुए सरो के वृक्ष के सदृश हो गया है, लेकिन उसने अपनी छवि दिखलाकर आँखों को ज्योति और दिल को आनन्द प्रदान न किया। मेरे हृदय की कली सदा संपुटित ही रही; इसे कभी विकसित-प्रफुल्लित होते न देखा। जब आँख खुली तो यह समस्या हल हुई कि अपनी जिन्दगी मानों एक पर्दा थी; आँखें कहाँ जो उसे देख सकें, समझ-बूझ में इतनी शक्ति कहाँ कि उसे समझ सके, फिर भी खोज हो तो उसी की, दर्शन-लालसा हो तो उसी की—'दर्द' की गजलों में इन्हीं विचारों के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। लेकिन उनमें जो लगाव गद्य में है वह गजल में नहीं। गजल में कुछ विचार लुप्त हैं; शेरों का अनुक्रमण बेढंगा है; दिमाग को एक शेर से दूसरे शेर तक पहुँचने में रुकावट महसूस होती है। यहाँ कोई सम्पूर्ण अनुभव नहीं; विभिन्न अनुभवों के टुकड़े अवश्य हैं, जिनसे कल्पना को लड़खड़ाहट होती है।

जिस तरह सांसारिक प्रेम के प्रभाव से हृदय अन्यान्य प्रकार के जज़्बात से परिपूर्ण होता है उसी तरह आध्यात्मिक प्रेम भी दिल को उदात्त एवं सुन्दर भावनाएँ प्रदान करता है। कवि इन अनमोल भावनाओं का शृंखलाबद्ध तथा सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता है। गजल की खामियों के कारण यहाँ भावनाओं के टुकड़े नजर आते हैं। इस विशृंखलता के दोष का आरोप कवि पर भी होता है। उसकी संवेदना-शक्ति में इतना बल नहीं कि वह अपनी भावनाओं को एक साँचे में ढाल सके, उसकी कल्पना में यह जोर नहीं कि वह सारे मानसिक चित्रों तथा आवेगों को शृंखलाबद्ध तथा अनुक्रमित करके उन्हें एक सम्पूर्ण अनुभव के रूप में प्रस्तुत कर सके। ऐसी बात नहीं है कि जज़्बात मौजूद नहीं; जज़्बात हैं और व्यक्तिगत हैं, कृत्रिम नहीं; और कवि ने उन्हें जोश के साथ महसूस भी किया है, किन्तु अनुभूतियों की बहुलता में कल्पना की एकता नहीं पाई जाती। इसलिए वही विशृंखलता इस गजल में भी है, जो 'गालिब' की गजल में थी।

और सांसारिक प्रेम की तरह आध्यात्मिक प्रेम का क्षेत्र भी सीमित है, बहुत सीमित है। धार्मिकता, आत्म-साधना, अनेकत्व में एकता का दर्शन, संसार-त्याग, वैराग्य और सन्तोष—बस, इन्हीं विषयों की पुनरावृत्ति होती है। यहाँ भी फारसी का प्रभाव प्रकट होता है। सारे विचार वो दृश्य फारसी से लिये गये हैं। इसलिए असलियत प्रायः अदृश्य पक्षी उन्क़ा की तरह अप्राप्य है। और, असलियत यदि थी भी तो वह अनुसरण के भारी बोझ को वहन न कर सकी।

जो हो, यह बात तो साफ हो गई कि गजल के शेरों में, ये शेर किसी भी रंग के क्यों न हों, कोई लगाव नहीं होता। और यह बात भी कोई नई बात नहीं, बहुधा पुरानी, जानी हुई बातों को भी दुहराना पड़ता है। हाँ, तो यह कोई नई बात नहीं। 'हाली' ने कहा था :

"गजल में जैसा कि मालूम है, कोई खास विषय बयान नहीं किया जाता। माशा-अल्लाह! केवल भिन्न-भिन्न विचार अलग-अलग शेरों में व्यक्त किये जाते हैं।"

और 'नज़्म' तबातबाई की गजल के विषय में यह राय है :

"गजल अगर ऐसी हो कि उसमें मतला[१] से मक़ता[२] तक एक ही विषय हो तो भी बड़ी बात है। अन्धेर तो यह है कि गजल लिखनेवाला कवि किसी बात को कहने का उद्देश्य ही नहीं रखता। जिस काफ़िये[३] में जो विषय अच्छी तरह बँधते देखा उसी को बाँध लिया। एक शेर में बुतपरस्ती[४] है, दूसरे में एकेश्वरवाद तथा अध्यात्म-ज्ञान; अभी शंख बजा रहे थे, इसके बाद ही अल्ला-हो अकबर[५] का नारा लगाया; या तो मदिरालय में नशे में चूर पड़े थे या धर्मोपदेश करने लगे; अभी मिलन-रात्रि में सहवास-सम्भोग के मज़े लूट रहे थे, अभी विरह-रात्रि की वेदनाओं से मरने लगे। एक शेर में माशूक[६] की पर्दानशीनी वो शर्म वो लज्जाशीलता का दावा कि दूसरे में उसके हरजाईपन की शिकायत; अभी यौवन-तरंग और मदिरा-प्रेम की बातें थीं, अभी ही वृद्धावस्था आ गई और खिज़ाब[७] लगा रहे हैं, या तो प्रलय के वातावरण में खड़े अपने ऊपर किये गये अत्याचारों की दुहाई भी दे रहे हैं....हैं मुसलमान, मगर शेर में नास्तिकता भरी हुई है.... रूप-दर्शन से इनकार करना उनका धार्मिक सिद्धान्त है.... महशर[८] में अल्लाह के दर्शन-सम्बन्धी बातें अपने शेरों में व्यक्त करते हैं....मैं खुद[९] भी गजल कहता हूँ और समय के रीति-रिवाज के अनुसार ऐसे ही बे-सिर-पैर के विषय बाँध लिया करता हूँ; किन्तु न्याय यह है कि जिस रचना में इतनी असंगति और परस्पर-विरोध तथा बिखराव[१०] हो, उसमें क्या असर होगा। दूसरा झंझट यह है कि गजल कहनेवाले कवि को किसी विषय पर कुछ कहने का अभ्यास नहीं होता, बल्कि काफ़िया[११] रदीफ़[१२] के प्रयोग द्वारा भाव उत्पन्न करने का अभ्यास किया करता है.... गजल कहनेवाले की उलटी चाल है; वे ज़मीन[१३] तरह[१४] करते हैं और क़सीदा,[१५] वो मसनवी[१६] वो मरसिया[१७] कहनेवाले मज़मून[१८] तरह करते हैं।"

और अज़मतुल्लाह खाँ ने भी इसी प्रकार की बात कही है:

"गजल की दुनिया में क्रमबद्धता एक प्रकार का पाप है। रदीफ़ और काफ़िया के सपाटपन के अतिरिक्त अर्थ के विचार से एक शेर को दूसरे शेर से कोई लगाव नहीं होता; और इस पर गर्व किया जाता है कि हर शेर अपने रंग में निराला और दूसरे शेरों से विलग है....

एक समझदार पढ़े-लिखे आदमी की गजल को लीजिए। पेन्सिल हाथ में लेकर हर शेर के सामने यह नोट करते जाइए कि अमुक विषयवस्तु उन विषयों में से, जो गजल के लिए निर्धारित हैं, किस प्रकार का है। एक शेर में प्रेम-सम्बन्धी बात होगी तो एक तसव्वुफ़[१९] में रँगा हुआ, एक में आत्मप्रशंसा[२०] होगी तो एक में ग्रामीणता, एक भरती का शेर होगा तो एक में दार्शनिकता होगी, एक में माशूक़[२१] मुस्कुराता है तो एक में प्रतिद्वन्द्वी के साथ चोंचले करता है। सारांश यह कि उस गजल का हर शेर एक-दूसरे से बेलाग होगा। कल्पना कीजिए कि आपके एक समझदार, शिष्ट, शिक्षित मित्र आपसे ऐसी रंग-बिरंगी बातें करें कि एक वाक्य में

१. गज़ल की पहली पंक्ति, २. गजल की अन्तिम पंक्ति, ३. तुक, यमक; ४. मूर्त्ति-पूजा, ५. ईश्वर महान् है, ६. प्रेयसी, ७. नफ़ेद बालों को काला करने की दावा, ८. प्रलयकाल, क़यामत; ९ स्वयं, १०. बिखराव, असम्पृक्तता, ११. तुक, १२. अन्ताक्षरी, १३ पृष्ठभूमि, काव्यरूप; १४. उपमान; १५, १६, १७. उर्दू-कविता के रूप-विशेष, १८. विषय, १९. सूफ़ीमत की बातें, २०. डींग मारना, २१. प्रेयसी।

हूर[1] वो क़ुसूर[2] का बयान हो, एक में धर्मपरायण व्यक्ति पर भोंड़ा फिकरा कसें, दूसरे में तसव्वुफ की तरंग में तूर पहाड़ पर खुदा का जल्वा देखें, सारांश यह कि इसी तरह के असम्बद्ध विचारों का तूमार बाँध दें, प्रत्येक वाक्य एक-दूसरे से विलग हो, कभी जमीन की कहें, कभी आसमान की, कभी कब्र का अन्धकार, कभी मुसहरी का सुख-चैन, तो क्या आप उन महानुभाव को यह समझेंगे कि वे अपने आपे में हैं।"

गजल की विशृंखलता स्वीकृत है और इसी विशृंखलता की वजह से यह पाश्चात्य साहित्य में स्वीकृत न हो सकी। 'गोयटे' पर फ़ारसी-कविता का काफी असर पड़ा था, विशेषतः 'हाफ़िज़' से काफ़ी प्रभावित हुआ था। अपनी भाषा में उसने फारसी के रूपकों का बेधड़क प्रयोग किया है, और एक-आध गजल भी रदीफ़ क़ाफ़िया के प्रबन्ध के साथ लिखी है। उसके अनुसरण में अन्य जर्मन कवियों ने भी गजलें लिखीं, किन्तु जर्मन कविता में गजल स्वीकृत न हो सकी। इसी प्रकार कुछ अँगरेजी-कवि भी पूर्वीय साहित्य से प्रभावित हुए। एक 'फ्लेकर' को लीजिए, उसकी बहुत-सी कविताएँ पूर्व, पूर्वीय माहौल, पूर्वीय वातावरण, पूर्वीय विचारों से ओत-प्रोत हैं। उसने एक गजल भी लिखी है, और वह गजल यह है :

यास्मन

"प्रातःकालीन सीसन की कैसी शानदार चमक है। गुलाब से उसकी विनती कैसी भंगिमा-पूर्ण है। क्या गुलाब अपने सर को जख्शिश देते हैं—यास्मन ?

लेकिन जब रजत पंडुकी उतरती है तो मैं मित्रों के नन्हें-से फूल को पा लेता हूँ, जिसका मधुर नाम मेरे होठों पर होता है जब मैं कहता हूँ—यास्मन।

सुबह की रोशनी साफ और सर्द है। इस रोशनी में मैं एक ज्यादा तेज रोशनी, एक अधिक गहरी स्वर्णिमता, एक दूर तक फैली हुई दिव्य ज्योति को देखने की जुर्रत नहीं कर सकता—यास्मन।

लेकिन जब दिन की गहरी सुर्ख आँख सूनसान राजपथ के बराबर होती है और कुछ लोग क़िबला रुख होकर निमाज़ पढ़ते हैं और मैं तेरे कूचे की तरफ रुख करता हूँ—यास्मन।

या जब चाँदनी रात में हवा एक बेहोश रूह की तरह भटकती फिरती है और ऊद बजाने-वाले सितारे अपने दूध जैसे सफेद बाजू फैलाये हुए प्रेम का गीत गाते हैं—यास्मन।

ऐसे समय में ये भभकते हुए शोले अपनी मुहब्बत के फूल बरसा; क्योंकि वह आज की रात हो या कल, सफेदपोश माली आ पहुँचेगा; और टूटे फूल तो बेजान होते हैं—यास्मन।"

यह 'गजल' तो खैर जैसी भी हो, यह बात स्पष्टतया विदित है कि इसमें विशृंखलता नहीं, इसके शेरों में असम्बद्धता नहीं, इसके अन्तिम तीन शेर तो एक वाक्या, एक लम्बे वाक्य में गुँथे हुए हैं। फिर यह भी स्पष्ट है कि कवि कुछ कहना चाहता है, वह साधारण-सी घिसी-पिटी बात ही क्यों न हो, और सब शेर मिल-जुलकर विचारों का एक ढांचा तैयार करते हैं, जो अन्तिम शेर में पूर्णता प्राप्त करते हैं।

---

१. अप्सराएँ, २. शानदार महल।

गजल पाश्चात्य साहित्य में फल-फूल न सकी। इसकी खास वजह वही असम्पृक्तता और विशृंखलता है, जिसे गजल का विशिष्ट गुण समझा जाता है। 'निकोल्सन' का कहना है कि गजल की सूरत तो वही है, जो क़सीदे की है, लेकिन गजल में क़सीदे और क़िते की अपेक्षा आनुक्रमिकता की कमी है और विचारों में लगाव भी कम होता है। यही कारण है कि 'निकोल्सन' क़िते को अपेक्षाकृत अधिक कवि-सुलभ साहित्यिक रूप ख़याल करता है।[५] क़सीदे और क़िते का विवरण आगे आयगा। गजल में क्रम, लगाव और पूर्णता की कमी है। यही आनुक्रमिकता, सम्पृक्तता और पूर्णता सभ्यता की न्यास-शिला हैं और इन्हीं चीजों की कमी की वजह से मैंने कहा था कि गजल कविता का अर्ध-बर्बर रूप है। इस विषय का विवेचन मैंने अपने उस निबन्ध में कर दिया था, जिसका शीर्षक है 'बज़्मेनिगार' ('निगार' का जनवरी तथा फरवरी, सन् १९४२ ई० का अंक)। और वह विवरण यह है—

"इनसान हमेशा इनसान न था। इसने प्रगति की कितनी मंजिलें तय करके सभ्य मानव का पद प्राप्त किया है। इन मंजिलों में से एक मंजिल बर्बरता है। इस मंजिल से इनसान गुजरता है, लेकिन गुजर नहीं जाता अर्थात् सभ्यता के जीने पर पहुँचकर भी वह बर्बरता से मुक्ति नहीं पाता—कम-से-कम इस समय तक तो उसने बर्बरता से मुक्ति नहीं पाई है। वर्त्तमान यूरोपीय युद्ध इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

जो कुछ भी हो, सभ्यता और बर्बरता में ध्रुवों का अन्तर है और इस अन्तर को समझना सभ्यता का एक चिह्न है। वहशी अपने जज़्बात के अस्तित्व को उनके वर्त्तमान होने का उपयुक्त कारण समझता है; वह अपने जज़्बात के तत्त्व और उनके कारणों को नहीं समझता और न उनके उद्देश्य या मन्तव्य को पहचानता है। भावनाओं तथा क्रियाओं को वह चिन्तन-मनन पर तरजीह देता है। स्वाभाविक इच्छाओं को पूरा करना उसकी दृष्टि में असल जिन्दगी है। जिन्दगी के ओज और भराव का वह आदर करता है। जोश की प्रचण्डता और जज़्बात की उथल-पुथल में उसे आनन्द मिलता है, किन्तु वह जीवन के उद्देश्य की टोह नहीं लगाता और न जीवन की 'सूरत' पर चिन्तन-मनन करता है। कमजोरी और कमी को वह घृणा की दृष्टि से देखता है और जो चीजें अधिक ऊँचाई तक जा सकती हैं, उन्हें नहीं पहचानता। सभ्य मनुष्य महज अपने जज़्बात के अस्तित्व को काफी नहीं समझता; वह आवेगों तथा भावनाओं को परिष्कृत एवं प्रशिक्षित करता है। उनके कारणों और उनके उद्देश्य एवं मन्तव्य को समझता है। चिन्तन-मनन को अनुभूतियों तथा क्रियाओं पर तरजीह देता है। अपने वैयक्तिक जीवन और मानव-जीवन के उद्देश्य को समझने की कोशिश करता है। और दोनों की कल्पना में 'सूरत' (सम्पूर्ण रूप) की छवि उसे आंशिक सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक प्रमुदित करती है। और वह आवेगात्मक तथा मानसिक संतुलन को अपने जीवन का ध्येय ठहराता है। बर्बरता और सभ्यता का यह भेद कला में दृष्टिगोचर होता है। वहशी अपने आर्ट में सामग्री की अधिकता और उसके गौरव पर जोर देता है। अंशों के सौन्दर्य को तो वह समझ सकता है, लेकिन 'सूरत' (सम्पूर्ण रूप) के सौन्दर्य और उसकी पूर्णता की उपेक्षा करता है। सभ्य आर्ट का आधार बौद्धिकता और पारगामिता पर है, जो मूल्य-महत्त्व में आवेगात्मक अनुभवों से उच्चतर हैं। सभ्य कलाकार अपने अनुभवों को अलग-अलग रहकर देखता है और उनपर चिन्तन-मनन करता है और थोड़ी देर के लिए पाठकों

को भी अपनी बुलन्द सतह पर ले जाता है और उन्हें अनुभूतियों से विमुक्त करके चिन्तन-मनन से सम्पृक्त कराता है।"[६]

मानव-प्रकृति में बर्बरता इस समय तक क्रियाशील है और जरा से उकसाव पर सभ्यता की परिधि को तोड़कर बाहर निकल आती है। इसी तरह कुछ साहित्यिक रूपों में भी बर्बरता का तत्त्व मौजूद है। बर्बर तथा अर्ध-बर्बर साहित्यिक रूप पूर्वी एवं पश्चिमी साहित्यों में पाये जाते हैं। गजल भी एक अर्ध-बर्बर साहित्य-रूप है। यह तथ्य इतना स्पष्ट है कि विशेष व्याख्या की आवश्यकता न होती, यदि उर्दू के साहित्यकारों में चिन्तन-मनन की आदत आम तौर से होती। गजल की 'सूरत' दोषपूर्ण है। वहशी अपनी कला में 'सूरत' और उसकी पूर्णता की तनिक भी परवाह नहीं करता। वह न तो अपने आवेगों तथा विचारों को परिष्कृत करता है और न उन्हें मिलाकर एक आनुपातिक संतुलित रूप की रचना करता है। उसे 'सूरत' (सम्पूर्ण रूप) की कल्पना प्रमुदित नहीं करती और वह दूसरे तत्त्वों से अलग इसकी कल्पना नहीं कर सकता। अंशों अथवा विभिन्न तत्त्वों के सौन्दर्य को वह अलग-अलग देखता है; और आंशिक सौन्दर्य के निरीक्षण में वह इतना तल्लीन हो जाता है कि फिर और किसी चीज की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। अंशों के सौन्दर्य और उस सौन्दर्य की अनुभूति को वह काफी समझता है। उसे इस बात की आवश्यकता भी महसूस नहीं होती कि भिन्न-भिन्न टुकड़े आपस में मिलकर एक सुन्दर, पेचदार और सम्पूर्ण चित्र पैदा करें। गजल में विभिन्न तत्त्व समाविष्ट होकर सम्पूर्ण रूप का सर्जन नहीं करते। प्रत्येक शेर के प्रभाव से दृष्टि हटाकर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह तथ्य प्रत्यक्ष प्रमाणित होगा कि गजल का रूपात्मक सौन्दर्य हमारे दिमाग के नन्दतिक बोध को तृप्त नहीं करता। यदि हर शेर को सम्पूर्ण और एक छोटी-सी कविता मान लिया जाय तो भी गजल में रूपगत सौन्दर्य का अभाव होगा और गजल की सूरत एक ऐसे संग्रह की होगी, जिसमें भिन्न प्रकार की कविताएँ इकट्ठी की गई हों। 'निगार' (जनवरी तथा फरवरी, सन् १९४१ ई०) के पृष्ठ ३३ पर ये पाँच शेर मिलते हैं :

१. तकिया[1]-कलाम ही सही रश्क[2] से मर रहा हूँ मैं
क्यों कहो बात-बात पर 'देखो भला-सा नाम है'।

२. अदब[3] लाख था फिर भी उसकी तरफ + नजर मेरी अकसर बहकती रही।

३. क़ासिद[4] पयाम उनका न कुछ देर अभी सुना + रहने दे महवे[5] लज्ज़ते जौक़े[6] खबर मुझे।

४. जब कहा उसने मुद्द[7]आ कहिए + सोचते रह गये कि क्या कहिए।

५. जानता हूँ कि नशेमन[8] नहीं बाकी सैयाद[9]
फिर भी एक लुत्फ़[10] ख़लिश[11] हसरते[12]-पखाज़[13] में है।

—'असर' लखनवी

---

१. बातें करने में किसी वाक्यांश-विशेष को बार-बार कहना, टेक ; २. डाह, ३. शिष्टता, ४. दूत, संवाद पहुँचानेवाला; ५. तल्लीन, ६. समाचार की प्रतीक्षा का आनन्द, ७. मन्तव्य, ८. घोंसला, ९. बहेलिया, चिड़ीमार; १०. आनन्द, ११. चुभन, १२. अपूर्ण इच्छा, अभिलाषा; १३. उड़ना।

ये कविता-पंक्तियाँ भिन्न-भिन्न गजलों से संकलित की गई हैं और ये एक छन्द, एक क़ाफ़िया और एक रदीफ की नहीं हैं, लेकिन हर शेर का मतलब साफ है। और उसे समझने के लिए गजल के अन्य शेरों की जानकारी आवश्यक नहीं। हर शेर का मतलब और उसके सौन्दर्य की अनुभूति गजल की 'सूरत' पर निर्भर नहीं। गजल में रूपगत सौन्दर्य शून्यप्राय है। और 'सूरत' की भावना एक धोखा है। अगर गजल में यह सौन्दर्य होता तो फिर ये पंक्तियाँ गजल से इस प्रकार अलग नहीं की जा सकती थीं। और अलग होने पर उनके सौन्दर्य का अधिकांश नष्ट हो जाता। अधिक विस्तार की न तो आवश्यकता है, न गुंजाइश। यह बात पूर्णतया प्रमाणित हो गई कि वह रूपगत सौन्दर्य, जो नज़्म, अफसाना, नाटक इत्यादि की लाजिमी विशेषता है, गजल में मौजूद नहीं। गजल के हर शेर में किसी विशिष्ट आवेग या विचार की अभिव्यंजना उद्दिष्ट होती है। सारी अनुभूतियाँ तथा कल्पनाएँ सम्मिलित वा सुव्यवस्थित होकर एक सम्पूर्ण चित्र के रूप में विद्यमान नहीं होतीं। कलागत दोष के कारण प्रत्येक अनुभूति या विचार और उसका अस्तित्व, तथा उसकी अभिव्यक्ति काफी समझी जाती है। यही इस साहित्यिक रूप के अर्ध-बर्बर होने का प्रमाण है।

यहाँ एक गलतफहमी की सम्भावना है, जिसे दूर कर देना उचित है। यह बात तो सिद्ध हो चुकी कि गजल कविता का एक अर्ध-बर्बर रूप है। किन्तु इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि प्रत्येक गजल लिखनेवाला कवि भी अर्ध-बर्बर है। सम्भव है कि गजल कहनेवाले कवि ने अपने जज़्बात का परिष्कार तथा प्रशिक्षण किया हो और उसमें आवेगात्मक तथा मानसिक सन्तुलन भी हो। यह भी सम्भव है कि उसने अपनी वैयक्तिक जिन्दगी और मानव-जीवन का उद्देश्य तथा उसके पूर्ण उत्कर्ष को समझने की कोशिश की हो। अर्थात् बहुत सम्भव है कि वह सभ्य हो; लेकिन जब वह गजल में उसके विशिष्ट गुणों को स्थिर रखते हुए उसकी रचना करेगा तो उसका फल एक अर्ध-बर्बर कृति होगी। गजल इस दोष से उसी समय मुक्त होगी, जब वह गजल बाकी न रह जाय और नज़्म का रूप धारण कर ले।

गजल से दृष्टि हटाकर यदि हर शेर को एक सम्पूर्ण नज़्म समझा जाय तो शेर पर भी अर्ध-बर्बर होने का आरोप लगेगा। कवि की अनुभूति-शक्ति विभिन्न प्रकार के प्रभाव ग्रहण करती और उनका सर्जन तथा व्यवस्था करती रहती है। लेकिन अकेले एक शेर के छोटे-से पैमाने में किसी जटिल आवेगात्मक एवं मानसिक अनुभव के समाने की गुंजाइश नहीं। एक शेर में किसी एक जज़्बे की या खयाल या आंशिक दृश्य की अभिव्यक्ति अवश्य सम्भव है, लेकिन उनका आरम्भ, उनका उद्देश्य एवं मन्तव्य, दूसरे जज़्बों, खयालों तथा दृश्यों से उनका सम्बन्ध इत्यादि सारी चीजें एक शेर में नहीं समा सकतीं। एक वहशी अपने तात्कालिक आवेग के अस्तित्व, उसकी अनुभूति और उसकी तृप्ति को पर्याप्त समझता है। उसे उस समय भूत-भविष्य का तनिक भी ध्यान नहीं रहता। वह यह नहीं सोचता कि यह तात्कालिक आवेग उसकी वैयक्तिक जिन्दगी में सहायक अथवा बाधक होगा। वह इसके मूल्य-महत्त्व का अनुमान नहीं करता और यह भी नहीं देखता कि उसकी तुष्टि से दूसरों को लाभ या हानि होगी। जिस प्रकार कारबारी जीवन में वह अपनी हर ख्वाहिश को व्यावहारिक रूप देने की चेष्टा करता है, उसी तरह वह अपने हर शेर में किसी

तात्कालिक अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है और इस अभिव्यक्ति से उसके नन्दतिक बोध की तृप्ति हो जाती है—तात्कालिक तुष्टि हो जाती है। यही तात्कालिक तुष्टि उसकी नन्दतिक चेष्टाओं का उद्देश्य होती है। वह न चिन्तन-मनन करता है, न चिन्तन-मनन उसके वश की बात होती है। वह महज प्रचण्ड भावावेश से बाध्य होकर उससे शीघ्र मुक्ति चाहता है; और यह मुक्ति वह शेर के रूप में प्राप्त करता है। मनुष्य जब प्रगति की मंजिलें तय करता है और बर्बरता की परिधि से आगे बढ़कर सभ्यता की सीमा में कदम रखता है तो वह बर्बरता के तत्त्वों से विलग हो जाता है। अथवा उन्हीं तत्त्वों में उलट-फेर करके अपनी सभ्य जिन्दगी की नई आवश्यकताओं के लिए नये साज-सामान की सृष्टि करता है। ये बर्बरता के तत्त्व नितान्त लुप्त नहीं हो जाते और वह सभ्यता के ज़ीनों पर पहुँचकर भी इनसे काम ले सकता है और इनसे थोड़ा-बहुत आनन्द उठा सकता है—ऐसा आनन्द, जो उसकी मानसिक तथा आवेगात्मक हस्ती को पूर्ण तृप्ति प्रदान नहीं करता, यह तृप्ति उसे नज़्म से प्राप्त होती है। नज़्म में तात्कालिक प्रचण्ड भावावेश अथवा आंशिक निरीक्षण की अभिव्यंजना नहीं होती। जिस अनुभव का वर्णन होता है वह महत्त्वपूर्ण, कीमती और पेचदार होता है और उसको व्यक्त करने में सोच-विचार से काम लिया जाता है।

जो कुछ भी हो, यदि अकेले एक शेर को नज़्म की तरह पूर्ण समझा जाय और उसको अपने नन्दतिक बोध की तुष्टि का साधन बनाया जाय तो यह भी एक वहशी काव्य-रूप होगा और किसी सभ्य दिमाग को इससे पूर्ण शान्ति नहीं मिल सकेगी; जैसे—

अदब लाख था फिर भी उनकी तरफ+नजर मेरी अकसर बहकती रही

इस शेर में महज एक घटना का वर्णन है। अदब के बावजूद कवि 'उसको' देखता रहा। यदि यह शेर किसी ऐसे आदमी के सामने पढ़ा जाय, जिसके जेहन में गजल की दुनिया का पहले से कोई नक्शा मौजूद नहीं तो उसे इस शेर का मतलब समझ में न आयगा। अदब था तो क्यों था और किस व्यक्ति का था? अगर 'अदब लाख था' तो फिर नजर क्यों बहकती रही? अगर नजर बहकती रही तो फिर इसका परिणाम क्या हुआ? इस अपूर्ण और देखने में असंगत घटना का वर्णन करने में कवि का उद्देश्य क्या है? इस तरह के प्रश्न उसके मन में उठ सकते हैं। इस शेर का मतलब समझने के लिए गजल की दुनिया की जानकारी आवश्यक है। उर्दू की गजलें और जो विचार उनमें मिलते हैं, वे हमारी चेतना में इस शेर या किसी शेर की पृष्ठभूमि की हैसियत रखते हैं। यदि यह पृष्ठभूमि मौजूद है तो फिर शेर का मतलब बहुत आसानी से समझ में आ जायगा। कवि किसी पर आसक्त था; वह माशूक़ का सम्मान करता था। एक दिन किसी जगह, किसी सभा में वह माशूक़ के दर्शन से प्रसन्न-चित्त हुआ। उसके हृदय में उसके प्रति सम्मान तो बहुत था, लेकिन प्रेम के हाथों विवश था। वह बार-बार उसे देखा किया। उसका उद्देश्य प्रेमपात्र का अनादर करना न था। नजर का बहकना प्रेम की प्रचण्डता और प्रेयसी के सौन्दर्य के आकर्षण का परिणाम था। इस व्याख्या का मतलब यह नहीं कि किसी शेर का अर्थ समझने में देर होती है अथवा इसके लिए असाधारण बौद्धिकता या पारदर्शकता की जरूरत होती है। नहीं, पृष्ठभूमि हमारी चेतना में वर्त्तमान रहती है; इसलिए मतलब शीघ्र ही

हृदयंगम हो जाता है, लेकिन फिर भी पूर्ण तृप्ति नहीं होती। इस शेर में मानों किसी असंगत घटना की अभिव्यक्ति की गई है। शेर की 'सूरत' दोषयुक्त और अपूर्ण है। 'सूरत' के साथ-साथ घटना तथा अनुभव की आत्मा भी पूर्णता चाहती है। इसे दूसरे अनुभवों के साथ मिलाकर किसी सुन्दर, कीमती और पेचदार चित्र की रचना नहीं की गई है। इस शेर से यह भी नहीं मालूम होता कि कवि की संवेगों की दुनिया में इसका क्या महत्त्व है और इस नवीन अनुभव ने वर्त्तमान अनुभवों के सर्जन, निर्माण एवं व्यवस्था में क्या परिवर्त्तन-परिवर्धन किया। यहाँ केवल एक प्रचण्ड भावावेश का वर्णन है, जिसके उद्देश्य-तात्पर्य से कवि को कोई बहस नहीं। इसलिए अकेला शेर भी अर्ध-बर्बर काव्य-रूप है।

यह ऐसी खुली हुई बात है कि इससे इनकार की गुंजाइश नहीं, लेकिन इससे हमारी अनुभूति को कुछ ऐसा आघात पहुँचता है कि हृदय इसे ग्रहण करने को तैयार नहीं होता; अक्ल बहाने ढूँढती है; दिखावटी तर्क और व्याख्या द्वारा इस ज्वलन्त सत्य पर परदा डाला जाता है। 'फिराक' साहेब लिखते हैं :

आप गजल को अर्ध-बर्बर काव्य-रूप बनाते हैं। यदि ऐसा होता तो अरब-निवासी भी फारसी गजल की तरह गजलें कहते, बल्कि अरब में भी सबसे अच्छी गजल अरब के बद्दू और लुटेरे तथा अनपढ़ लोग कहते और हिन्दुस्तान या अन्य देशों के असभ्य गँवार भी गजल कह लेते, बल्कि असभ्य और अर्ध-बर्बर जातियाँ तो बहुत शृंखलाबद्ध आनुक्रमिक नज़्में कहती हैं। उनकी कल्पना एवं भावना तो बाह्य अनुक्रमण या घटनात्मक अनुक्रमण का सहारा लिये बिना एक पग भी नहीं चल सकतीं। गजल की सफल कविता, गजल-रुबाइयत तो सभ्यता और संस्कृति की चरम परिपक्वता एवं सूक्ष्मता की मंजिलों में ही सम्भव है : 'मिट गईं नज़्में तो अजज़ाए तगज़्ज़ुल हो गईं' (नज़्में नष्ट हो गईं तो उनमें गजल की आत्मा आ गई)।

भाषा का आनन्द और ओजपूर्ण वर्णन-शैली के सिवा इस बुद्धि की सादगी पर आश्चर्य होता है। शायद एक उदाहरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा। गजल की उपमा प्रायः 'ब्राउनिंग' के ड्रामेटिक मोनोलॉग से दी गई है। यह उपमा भी गलतफहमी पर आधारित है, कारण कि इस प्रकार की अँगरेजी-कविताओं में एक घटना का क्रमानुसार वर्णन होता है, जो गजल में नहीं होता। और मजा यह है कि ड्रामेटिक मोनोलॉग को 'जार्ज सेण्टियाना' ने अर्ध-बर्बर काव्य-रूप घोषित किया है[८] :

"इसकी संक्षिप्त कविताओं में पूर्णता नहीं, विस्तृत विवरण नहीं। यह छोटे-छोटे धड़ हैं, जो टूटे हुए बनाये गये हैं; इसलिए कि पढ़नेवाले बाजुओं और टाँगों की कमी को पूरा करें। इन कविताओं में प्रशंसा-योग्य जो चीजें हैं, वे ये हैं : फ़िकरों की अर्थगर्भिता, जोश वो एहसास की तेज चमक, वस्तु-निरीक्षण के टुकड़ों का ढेर, यदाकदा प्रकाश की झलक और काव्य-सौन्दर्य। यह सब सही, लेकिन ऐसी कोई चीज नहीं, जो विशुद्ध सौन्दर्य की आत्मा में डूबकर लिखी गई हो, जो ईमानदारी के साथ पूर्णता को पहुँचाई गई हो, जो सादा और निश्चित रूप से दुरुस्त हो।"

यही बातें गजल पर भी लागू होती हैं। बात यह है कि 'ब्राउनिंग' के ड्रामेटिक मोनोलॉग का 'इतिहास' भी कुछ गजल ही जैसा है। शेक्सपियर और उसके समय के ड्रामों में 'सोलीलोकी'

होती है, जिसमें नाटक का कोई पात्र अपनी कल्पना में बातें करता है। इसमें जो विचार तथा आवेग उसके दिल-दिमाग में गुजरते हैं उन्हें प्रतिबिम्बित किया जाता है। इसी चीज को 'ब्राउनिंग' ने अलग करके एक अलग काव्य-रूप बना लिया। और वह इसलिए कि 'ब्राउनिंग' में सर्जन-शक्ति की कमी थी। नाटक जैसी पेचदार वस्तु उसके वश की बात न थी। ड्रामेटिक मोनोलॉगों, घटनाओं तथा आवेगों के पेचदार प्रवन्ध के बदले बीच से एक घटना को लेकर बयान किया जाता है, जिसका कोई आदि-अन्त नहीं। इस साहित्य-रूप में पूर्णता की स्पष्ट कमी है। नाटक का पेचदार और पूर्ण प्रवन्ध तो खैर सम्भव ही नहीं, इसमें वह पूर्णता भी नहीं, जो 'लीरिक' में होती है।

क़सीदे के चार भाग होते हैं: तश्वीब, गुरेज़, मद्ह और दुआ—इन चारों को मिलाकर क़सीदे का प्रवन्ध किया जाता है। लेकिन यह प्रवन्ध भी कुछ यों ही-सा है। बहरहाल, इसके पहले हिस्से में आशिक़ाना अशआर भी जायज थे; शायद इसलिए कि "वे प्राय: हर्षवर्द्धक होते हैं और उन्हें सुनकर हर्षोल्लास पैदा होता है, उसके वाद प्रशंसात्मक शेरों का प्रभाव हृदय पर अधिक पड़ता है।" हाँ, तो 'हातिमी' का कहना है कि जिस गजल से कवि अपने क़सीदे का प्रतिष्ठापन करता है उसको अपनी वाद में आनेवाली प्रशंसा या निन्दा के साथ सम्पृक्त होना चाहिए। उससे अलग नहीं होना चाहिए; क्योंकि विभिन्न अंगों के समन्वय के विषय में क़सीदे की उपमा मानव-शरीर की-सी है। इसलिए जव एक अंग दूसरे से अलग या रचना की विशुद्धता में उससे विभिन्न होगा तो शरीर में एक ऐसा दोप पैदा कर देगा, जो उसकी सारी सौन्दर्य-सुपमा को नष्ट कर देगा।"[१]

जिस गजल से क़सीदे का प्रतिष्ठान होता है उसकी पंक्तियाँ क्रमानुसार शृंखलाबद्ध होती हैं और अरवी-फारसी की प्रारम्भिक गजलें शृंखलाबद्ध तथा सम्पृक्त होती थीं। लेकिन पीछे चलकर यह खयाल भूल गया कि गजल के शेरों की उपमा मानव-शरीर के अंगों के समन्वय की-सी है। इसलिए जब एक अंग दूसरे से विलग या निर्दोष रचना में उससे विभिन्न होगा तो शरीर में एक ऐसा दोष पैदा कर देगा, जो उसकी सारी सौन्दर्य-सुषमा को नष्ट कर देगा।

महारानी 'विक्टोरिया' का राजत्व-काल महारानी 'एलिजावेथ' के समय से अधिक सभ्य था। इसलिए 'फिराक़' साहेब के विचारों के अनुसार यदि ड्रामेटिक मोनोलॉग अर्ध-बर्बर काव्य-रूप है तो उसका रिवाज महारानी 'एलिजावेथ' के समय में या उस युग से पहले होना चाहिए था। शायद ड्रामेटिक मोनोलॉग की-सी सफल कविता और उसकी सम्यक्ता भी सभ्यता-संस्कृति की चरम परिपक्वता और शुचिता की मंजिलों में सम्भव है। शायद ड्रामे मिट गये तो ड्रामेटिक मोनोलॉग के अंश बन गये!

गजल की हिमायत में जहाँ 'ब्राउनिंग' के मोनोलॉग का हवाला दिया जाता है, वहाँ प्राय: अवचेतन की बात भी छेड़ी जाती है। मैं इस समय आर्ट और अवचेतन की बहस में नहीं पड़ना चाहता, केवल यह बता देना चाहता हूँ कि कलाकार जो कुछ करता है, सचेतन रूप से करता है और प्रत्येक कलात्मक कृति एक सचेतन क्रिया है। सम्भव है कि विचार तथा चित्र कलाकार के अवचेतन से उभरें, लेकिन कलाकार इनसे जान-बूझकर काम लेता है:

आते हैं ग़ैब[१] से यह मज़ा[२] भी ख़याल में
'ग़ालिब' सरीरे[३]-ख़ामा[४] नवाए[५] 'सरोश'[६] है ।

विषय परोक्ष से खयाल में आयें या अवचेतन से, वे खयाल अर्थात् चेतन से टकराते हैं और कवि उन्हें शेर के साँचे में ढालता है। वे न तो 'सरोश' की वाणी हैं, न अवचेतन की आवाज। सम्भव है कि गजल के विभिन्न शेरों में अचेतन रूप से सम्बन्ध हो, लेकिन वह सम्बन्ध जो फ्रायड की सहायता के बिना समझ में न आय, उसे मैं सम्बन्ध नहीं कहता। यदि आप फ्रायड के किसी अनुयायी के पास अपना रोग लेकर जायँ तो बहुत सम्भव है कि वह कुछ शब्दों की सूची आपके सामने रखकर आपसे कहे कि मैं एक-पर-एक ये शब्द बोलता हूँ और प्रत्येक शब्द के बाद शीघ्रातिशीघ्र बिना सोचे हुए जो शब्द आपके मन में आये, आप बेखटक कह दें। जैसे उसने कहा 'फूल', आपने कहा 'गुलाब', उसने कहा 'खून', आपने कहा 'जिगर', उसने कहा 'पत्थर', आपने कहा 'सिर', उसने कहा 'जंजीर', आपने कहा 'पाँव', उसने कहा 'रात', और आपने कहा 'जुल्फ', इत्यादि-इत्यादि; तो वह यह परिणाम निकाल सकता है कि आप प्रेम-रोग से पीड़ित हैं, खूने-जिगर पीते हैं, पत्थर से सिर फोड़ते हैं, आपके पाँव में जंजीर है; वरना देखने में पत्थर और सिर, पाँव और जंजीर में सचेतन ढंग से कोई सम्बन्ध नहीं। इसी प्रकार बहुत सम्भव है कि गालिब के इस शेर :

दिल को आँखों ने फँसाया क्या मगर[७]
यह भी हलक़े[८] हैं तुम्हारे दाम[९] के

और इसके बादवाले शेर :

शाह[१०] के है ग़ुस्ले[११] सेहत[१२] की खबर + देखिए कब दिन फिरें हम्माम[१३] के

इन दोनों शेरों में कोई अचेतन सम्बन्ध हो तो हो—कह सकते हैं कि आँखों को 'बीमार' कहा जाता है, इसी वजह से गालिब का खयाल 'गुस्ले-सेहत'[१४] की ओर गया—

बात यह है कि गजल के शेरों में सम्बन्ध होता भी है और नहीं भी होता है। जहाँ शेर कहने का ढंग यह हो :

"गजल कहने का तरीका मैंने यह देखा कि जब कुछ कहना होता तो पहले उस जमीन[१५] (पृष्ठभूमि) को दिमाग में फिराते..........जब ध्यान उस ओर हो जाता तो..........फरमाते[१६] ....हाँ, गजल कहवा लो। कोई क़ाफ़िया[१७] बताया जाता, आप उसमें शेर कहना शरू करते; एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा; बस, यह जान पड़ता कि कहे हुए शेर याद हैं। जबतक यह न कहा जाता कि हज़रत, अब तो इस क़ाफ़िए में बहुत अच्छे-अच्छे शेर हो गये तबतक उसी क़ाफ़िये में शेर कहते चले जाते।"

जहाँ इस प्रकार की तुकबन्दी का नाम कविता हो, वहाँ चेतन और अवचेतन की बहस बेकार-सी बात मालूम होती है।

---

१. परोक्ष, २. विषय, ३. लिखते समय कलम से निकलनेवाली आवाज, ४. कलम, ५. राग, आवाज; ६. सुखद संवाद देनेवाला फरिश्ता, ७. शायद, ८. वृत्त, परिधि; ९. फन्दा, जाल; १०. बादशाह, राजा; ११. स्नान, १२. स्वास्थ्य, स्वास्थ्य-लाभ; १३. स्नानागार, १४. बीमारी के बाद स्वास्थ्य-लाभ करने पर प्रथम स्नान; १५. पृष्ठभूमि, वातावरण; १६. आदेश देते हैं, १७. तुक।

हाँ, तो गजल के शेरों में सम्बन्ध होता है। बहुत-से कवि ऐसी गजलें भी लिखते हैं, जिनमें पंक्तियाँ शृंखलाबद्ध होती हैं, प्रत्येक शेर एक ही विषय से सम्पृक्त होता है या किसी विषय-विशेष की अभिव्यक्ति में सहायता करता है। और, उसका रूप नज़्म का-सा होता है। 'गालिब' की वह प्रसिद्ध गजल, जिसकी अन्तिम पंक्ति है :

'मुद्दत हुई है यार को मेहमां किये हुए + जोशे-क़दह[1] से बज़्मे[2] चिरागां[3] किये हुए'

इसी प्रकार की है। शेरों में अनुरूपता है; लेकिन इस गजल में और किसी नज़्म में ध्रुवों का अन्तर है। यहाँ कुछ विचार वो जज़्बात शृंखलाबद्ध नजर नहीं आते, वे सम्पृक्त होकर आत्मीयता ग्रहण नहीं करते। इसके विपरीत एक ही विचार, एक ही मन्तव्य को बार-बार विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है। विषयवस्तु वही एक है, जिसकी पहले मिसरे में पूर्ण रूप से अभिव्यञ्जना हुई है :

मुद्दत हुई है यार को मेहमां किये हुए

दिल को फिर यह लालसा हुई है कि प्रेम-वेदनाओं और उसके आकर्षणों का आनन्द लूटे। इसीकी भिन्न-भिन्न रूप से अभिव्यक्ति हुई है। 'गालिब' ने अपनी सारी कल्पना-शक्ति शब्दों में लगा दी है। इस मौलिकता की उपलब्धि यही है कि सीधी-सादी बात की विविध रूपों और रंगीन बन्दिशों के साथ पुनरावृत्ति हो। सौन्दर्य है तो महज शाब्दिक और सारी प्रशंसा की रचना मौलिक ढंग से की है। यह प्रश्न भी नहीं उठता कि कवि को इस कविता में किसी अनुभव का प्रदर्शन अभीष्ट है भी या नहीं, और यदि अनुभव था तो उसे दूसरे अनुभव ने पीठ-पीछे डाल दिया; और यह अनुभव शब्दों के उलट-फेर, नये-नये चित्रों की काट-छाँट और विचारों के ठाट-बाट के साथ मिला हुआ है।

'दर्द' की एक गजल है :

काश ता[4] शम्मा[5] न होता गुज़रे परवानः[6] + तुमने क्या क़ह्ल[7] किया बाल[8] वो परे परवानः
शम्मा के सद्क़े[9] तो होते उसे देखा था अभी + फिर जो देखा तो न पाया असरे[10] परवानः
क्यों उसे आतशे[11] सोज़ां[12] में लिये जाती है + सूझता भी है तुझे ऐ नज़रे परवानः।
एक ही जस्त[13] में ली मंज़िले मक़सूद[14] उसने + राहरौ[15] रश्क[16] की जा[17] है सफ़रे[18] परवानः
शम्मा तो जल बुझी और सुब्ह नमूदार[19] हुई + पूछूँ ऐ 'दर्द' मैं किससे खबरे परवानः।

यहाँ एक ही खयाल की बार-बार पुनरावृत्ति नहीं। पतंग, दीपक का प्रेमी, अपने सर्जन में विनाश की सूरत छिपाये रखता है :

मेरी तामीर[20] में मुज़्मर[21] है एक सूरत[22] ख़राबी[23] की

उसकी जिन्दगी का हेतु उसकी मृत्यु का कारण है। वाह्य रूप से देखनेवाली आँख इस रहस्य को

१. बड़ा प्याला, बड़े प्याले में भर-भरके खूब छक-छकके शराब पीना; २. रंग-रास की बैठक, ३. चिरागों का खेल-तमाशा, दीपावली; ४. तक, ५. दीपक, ६. पतंग, ७. ज़ुल्म, अत्याचार; ८. डैना, ९. निछावर करना, अर्पित करना, १०. चिह्न, निशान; ११. आग, १२. जलती हुई, १३. छलांग, १४. अभीष्ट, १५. यात्री, राह चलनेवाला; १६. डाह, स्पर्द्धा; १७. स्थान, १८. यात्रा, १९. दिखाई पड़ना, २०. सर्जन, निर्माण, २१. निहित, छिपा हुआ; २२. रूप, शक्ल; २३. विनाश।

नहीं समझ सकती कि परवाने के विनाश में उसकी जिन्दगी का रहस्य छिपा हुआ है। इसलिए अफसोस होता है कि यदि परवाना शम्मा के रूप पर आसक्त न होता, यदि शम्मा तक उसकी पहुँच न होती तो बेचारा व्यर्थ अपनी जान क्यों देता। उसकी मृत्यु का दोष है परवाने की उड़ने की शक्ति पर। यही उड़ने की शक्ति, जो उसे प्रेयसी की सन्निकटता प्रदान करती है, उसकी मृत्यु का साधन भी बनती है। अभी-अभी परवाना शम्मा के सौन्दर्य का मजा लूट रहा था और अभी ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया। कल्पना केवल उसके पंख और डैनों की नहीं, परवाने की दृष्टि भी इस विनाश के लिए जिम्मेदार है, जो उसे जान-बूझकर धधकती हुई आग के पास ले जाती है। परवाने का जल मरना दुःख का कारण भले ही सही, उसका भाग्य शिक्षाप्रद भी है, जो अपने साहस को कोड़े लगाने का काम करता है। परवाना अपनी मंजिल को जानता है और अपने अभीष्ट स्थान तक पहुँच भी जाता है। एक ही छलांग में उसकी कठिनाई दूर भी हो जाती है। रात इसी बात को देखने में व्यतीत हो गई; प्रातःकाल न शम्मा थी न परवाना। शम्मा तो जल बुझी और परवाने की खबर किसे मालूम ?

परवाने का प्रेम, उसके पंख और डैनों की प्राणघातक उड़न-शक्ति, उसकी दृष्टि की कमनजरी[१], पल-भर में निमिषमात्र में उसका जल बुझना, उसकी छलांग मारने से प्राप्त उपदेश, दीपक के सौन्दर्य और पतंग-प्रेम की अनित्यता—सारांश यह कि कितने ही विचारों का सम्मेलन है और ये खयाल दिल में महसूस किये गये हैं, लेकिन दिमाग को पूर्ण तुष्टि तथा शान्ति मुयस्सर नहीं। शम्मा व परवाने का रहस्यमय अनुनय-विनय गजल का आम विपय है। लेकिन असल कारण विषय की विशेषता नहीं। इस गजल की मिसाल पच्चीकारी की है। अलग-अलग टुकड़े जड़े हुए दीख पड़ते हैं और एक प्रकार का अनुपात तथा सुन्दरता पैदा हो गई है, लेकिन वह अनुरूपता कहाँ, जो किसी सुन्दर गुलाब के विभिन्न अंशों में होती है। वह समन्वय कहाँ, जो उसके रंग वो बू में होता है। यही चीज है, जो नज़्म में मिलती है, मगर शृंखलाबद्ध गजल में नहीं मिलती।

'फिराक' की एक गजल है :

शामेग़म[२] कुछ उस निगाहे[३] नाज़ की बातें करो
बेख़ुदी[४] बढ़ती चली है राज़[५] की बातें करो
यह सकूते[६]-यास[७], यह दिल की रगों का टूटना
ख़ामुशी[८] में कुछ शिकस्ते[९] साज़[१०] की बातें करो
निकहते[११]-ज़ुल्फ़े[१२] परीशां[१३], दास्ताने[१४]-शामे ग़म
सुब्ह होने तक इसी अन्दाज़[१५] की बातें करो
नाम भी लेना है जिसका एक जहाने[१६] रंग-वो-बू
आज कुछ उस नौ-बहारे[१७] -नाज़ की बातें करो

---

१. दृष्टिकोण की संकीर्णता, २. दुःखमय सन्ध्या, ३. भाव-भंगी की दृष्टिवाला, ४. अधीरता, ५. रहस्य, ६. शान्ति, सन्नाटा; ७. निराशा, ८. मौनता, सन्नाटा; ९. टूटना, १०. बाजा, ११. बू, खुशबू, १२. अलकें, १३. बिखरी हुई, १४. कहानी, १५. ढंग, १६. दुनिया, १७. नववसन्त।

कुछ क़फ़स[१] की तीलियों से छन रहा है नूर-सा
कुछ फ़ज़ा[२] कुछ हसरते[३]-परवाज[४] की बातें करो
जिसकी फ़ुर्कत[५] ने पलट दी इश्क[६] की काया 'फ़िराक'
आज उस ईसा[७]-नफ़स[८] दमसाज[९] की बातें करो

और फिर इसका गद्य इस प्रकार करते हैं :

"उदासी और दुःखमय सन्ध्या है; आओ, कुछ उसकी भंगिमापूर्ण निगाहों का जिक्र छेड़ दें; क्योंकि विह्वलता बढ़ती चली जा रही है। और इस समय कुछ रहस्यपूर्ण बातें होनी चाहिए। यह निराशामय शान्ति, यह दिल की रगों का टूटना, इस सन्नाटे में तो साज़ के टूटने का जिक्र छेड़ना उचित मालूम होता है। उसके बालों की खुशबू या दुःखमय सन्ध्या की कहानी, रात-भर इसी ढंग की बातें हों। उसका तो नाम लेना भी रंग व बू की एक दुनिया है। हाँ, तो आज उसी भंगिमापूर्ण नववसंत की कहानी कहो। हम कैदियों की भी क्या जिन्दगी है ! हमारे पिंजड़े की तीलियों से कुछ नूर-सा छन रहा है। इस मजबूरी और ग़म को भूलने के लिए कुछ खुले हुए वातावरण और उड़ने की अभिलाषा का ज़िक्र करो। ऐ 'फ़िराक' ! जिसके विरह ने काया ही पलट दी उसी ईसा की-सी प्राणदा सांसवाले साथी का जिक्र आज[१०] छेड़ो।"

स्पष्ट दीख पड़ता है कि इस गजल तथा गद्य में वह विलगाव और विशृंखलता तो नहीं, जो साधारणतः गजल में पाई जाती है, लेकिन वह लगाव, विचार की वह उठान भी नहीं, जो 'दर्द' की गजल में है। सम्भव है कि "हर अच्छी गजल एक अनादि, अनन्त और व्यापक गजल की कुछ आवाजों की प्रतिध्वनि या उसके बाजे के अनगिनत पदों के रागों का प्रदर्शन है—वह अनादि-अनन्त गजल, जिसे हम वजूद (अस्तित्व) या जिन्दगी कहते हैं, जीवन तथा विश्व कहते हैं।"[११] लेकिन यह बात मात्र गजल की विशिष्टता नहीं—इसके अतिरिक्त मुझे यह भी समझ में नहीं आता है कि इस गजल का हर शेर जिन्दगी के किस कानून या सुनिश्चित रूप से किस हृदयग्राही समस्या या दृश्य का निर्णय करता है।

'थियोफ़िल गुतियर' की एक छोटी-सी नज़्म[१२] है :

इस नोचे खुचे, लंडूरे जंगल में
रक्खा ही क्या है—बस एक डाली से
एक भूला-भटका पत्ता लटक रहा है
हाँ, कुछ भी नहीं—बस एक पत्ता और एक चिड़िया
मेरी रूह में रक्खा ही क्या है
बस मुहब्बत और मुहब्बत का तराना
लेकिन पतझड़ की हवा की सनसनाहट
इस तराने को सुनने नहीं देती

---

१. पिंजड़ा, २. वातावरण, ३. अभिलाषा, ४. उड़ना, उड़ान; ५. विरह, बिछुड़न; ६. प्रेम, प्रेमी ;७-८. ईसा मसीह की साँस लेनेवाला, ९. साथी।

चिड़िया उड़ गई, पत्ता झड़ गया,
मुहब्बत बुझ गई—अब जाड़ा आ पहुँचा
ऐ नन्ही चिड़िया ! मेरी कब्र पर गाना
जब पेड़ फिर हरे-भरे हो जायें

नज़्म, विशेषतः फ्रांसीसी नज़्म, का अनुवाद असम्भव है। लेकिन फिर भी इसका अनुमान करना सम्भव है कि जो बात, जो लगाव, शृंखला, पूर्णता, अनादि, अनन्त वो व्यापक गजल की प्रतिध्वनि इस नज़्म में है वह 'फ़िराक' की उपर्युक्त गजल में नहीं। 'फ़िराक' एक ही साँस में रहस्यपूर्ण बातें, साज़ टूटने की बातें, भंगिमायुक्त नव वसन्त की बातें, उड़ने की अपूर्ण अभिलाषा की बातें, ईसा की-सी प्राणदा साँस लेनेवाले की बातें करते हैं। सारांश यह कि बातें-ही-बातें करते हैं। इन बातों को बढ़ा-चढ़ा सकते हैं या इनका संक्षेपण कर सकते हैं। लेकिन उनकी गजल में पूर्णता, वह रूप-सौन्दर्य, वह अटल बयान और वह प्रभाव भी नहीं, जो इस नज़्म में है। 'फ़िराक' कहते हैं :

यह सकूते-यास यह दिल की रगों का टूटना
खामुशी में कुछ शिकस्ते साज़ की बातें करो।

जिस सकूते-यास, जिस दिल की रगों के टूटने का 'फ़िराक' जिक्र करते हैं, उसी का इस नज़्म में पूर्ण चित्रण है और वही चीज़ इस शेर में नहीं; क्योंकि 'फ़िराक' 'रगों का टूटना', और 'शिकस्ते साज़', 'खामुशी' और 'बातें करो' के शाब्दिक गोरख-धन्धे में फँस जाते हैं, लेकिन इस नज़्म के तीन बन्द अटल हैं। पहले बन्द में निराशा-जनित शान्ति का बाह्य चित्रण है, और बहुत ही प्रभाववर्द्धक चित्रण है। पूरी तस्वीर साफ नजर आ जाती है; और यह चित्र केवल कुछ शब्दों, कुछ टुकड़ों ही से बनाया गया है। लंडोरा जंगल, अकेला पत्ता, और एक चिड़िया; बस, यही टुकड़े हैं। अधिक शब्दों में भी इससे अधिक स्पष्ट और प्रभाववर्द्धक चित्र सम्भव नहीं। नैराश्य का यह चित्र बाह्य संसार में है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रकृति को कवि की निस्साधनता तथा निराशाजन्य अवसाद से सहानुभूति है। यह बाह्य चित्र बाहरी भी है और आन्तरिक भी। मानों बाह्य संसार कवि की अनुभूति में विलीन हो गया है। बाह्य संसार से नजर दिल की दुनिया की ओर जाती है। यहाँ भी वही निस्साधनता है। एक चित्र दूसरे चित्र को पूरा करता है। उसे सुदृढ़ बनाता है और अन्तिम बन्द में यह चित्र पूर्ण हो जाता है। बाह्य तथा अन्तःचित्र एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं और दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता। यदि गजल में अनमिल और बेजोड़ बातें नहीं होतीं तो नज़्म में तो अनमिल और बेजोड़ बातों का होना सम्भव ही नहीं। और, जो सन्तोष, जो पूर्ण शान्ति इस नज़्म के पढ़ने से मिलती है वह किसी गजल में नहीं मिलती।

यदि हम सोच-समझकर शान्तिपूर्वक पूरी-पूरी बातें कर सकते हैं तो फिर उखड़ी-उखड़ी बातें क्यों करें ?

'सरूर' साहेब कहते हैं :

"गजल कहनेवाला कवि मानव-मित्रता के जज़्बे रखता है, मगर उनसे कोई बड़ा काम नहीं लेता। यही कारण है कि वह विच्छिन्न झाँकियों और पिसी हुई बिजलियों में विश्वास करता है।

गजल के नश्तरों से एक मोहक चुभन पैदा होती है और उससे काम लिया जाता रहा है; अभी और भी लिया जा सकता है, मगर ये नश्तर तलवार नहीं बन सकते। गजल की भाषा बड़ी धुली-मँजी हुई चीज है, मगर उसमें वैयक्तिकता को फूलने-फलने का अवसर मुश्किल से मिलता है। उसकी सांकेतिकता पूर्णरूपेण सम्यक् और गहरी है। किन्तु फावड़े को फावड़ा कहने के युग में अधिक अरसे तक काम नहीं दे सकती। इसलिए कविता का भविष्य अधिकतर गजल से नहीं, नज़्म से सम्बद्ध है।"

स्पष्ट रूप से विदित है कि 'सरूर' साहेब भी वही कहते हैं, जो मैंने कहा है; अन्तर केवल यह है कि फावड़े को फावड़ा कहने के युग में भी वे फावड़े को फावरा कहना[१३] नहीं चाहते।

(२) मैंने गजल की खामियों को स्पष्ट कर दिया है। अब 'क़िता'[१] की बारी है। 'ग़ालिब' का मशहूर क़िता है :

ऐ ताज़ः[२] वारिदाने[३]-बिसाते[४]-हवाय[५]-दिल
ज़िन्हार[६] ! अगर तुम्हें हवसे[७] नाय[८]-वो-नोश[९] है।
देखो मुझे जो दीदए[१०]-इबरत[११]-निगाह हो
मेरी सुनो जो गोशे[१२]-नसीहत[१३]-नयूश[१४] है
साक़ी[१५]-बशल्वः दुश्मने-ईमान वो आग[१६] ही
मुतरिब[१७]व नग़मा[१८] रहज़ने[१९]-मकीन[२०] वो होश है
या शब[२१] को देखते थे कि हर गोशए[२२] बिसात[२३]
दामाने बागबान वो कफ़े[२४]-गुल[२५]-फ़रोश है
लुत्फ़े-ख़रामे[२६]-साक़ी वो ज़ौक़े[२७] सदाए[२८]-चंग[२९]
यह जन्नते[३०]-निगाह वः फ़िरदौसे[३१]-गोश है
या सुब्ह[३२] दम जो देखिए आकर तो बज़्म[३३] में
ने वह सरूर[३४] वो शोर न जोश वो ख़रोश है
दाग़े-फ़िराक़े[३५]-सोहबते-शब की जली हुई
एक शम्मः रह गई है सो वह भी ख़ामोश[३६] है

गजलों की अनुचित वाग्धारा के बाद ऐसा जान पड़ता है कि किसी नई दुनिया में जा पहुँचे हैं, जहाँ का कानून-विधान बिल्कुल दूसरा है। असम्बद्धता वो विशृंखलता नाममात्र को नहीं।

---

१. उर्दू-कविता का एक रूप-विशेष, जिसका बाह्य रूप गजल से मिलता-जुलता है; २-३. नवागन्तुक, ४. चादर, फ़र्श; ५. वासनाएँ, ६. खबरदार, ७. लालसा, ८. राग-रंग, ९. पीना, मद्यपान; १०. आँख, ११. शिक्षा ग्रहण करना, १२. कान, १३. शिक्षा, १४. सुननेवाला, १५. मद्यवाला अपनी छवि दिखलाते हुए, १६. ज्ञान, १७. गवैया, १८. गीत, राग; १९. चोर-डाकू, २०. शान वो शौकत, २१. रात, २२. कोना, २३. चादर, २४. हथेली, मुट्ठी; २५. फूल बेचनेवाला, माली; २६. ठुमुककर चलना, २७. स्वाद, आनन्द; २८. आवाज, २९. एक बाजा, ३०. आँखों के लिए स्वर्ग, ३१. स्वर्ग, कानों के लिए स्वर्ग; ३२. प्रातःकाल, ३३. मोहफिल, रास-रंग की मण्डली; ३४. आनन्द, नशा; ३५. विरह, बिछुड़न, ३६. चुप।

विशृंखलता वो विच्छिन्नता के बदले रचनात्मक एकरूपता है अर्थात् आदि, मध्य, अवसान में आपस में सम्बन्ध और अनुरूपता है, उखड़ी-उखड़ी अधूरी बातें नहीं। विचारों में विच्छिन्नता के बदले सम्बन्ध-समन्वय है। मानस-पटल पर विभिन्न तथा विरोधी और असम्पृक्त चिह्न नहीं जम जाते, बल्कि एक सफल चित्र चमकता हुआ दिखाई देता है। हर शेर एक-दूसरे से विलग नहीं। अर्थ के विचार से एक-दूसरे का मुहताज है; और क़िते के समाप्त होने के पहले विचारों का पूर्ण होना सम्भव नहीं। विचार कुछ नये नहीं—संसार अनित्य है, इसके सुन्दर ललित चित्र अनित्य हैं, सुख-आनन्द के पुष्प नश्वर हैं। इस तथ्य से प्रत्येक कवि अवगत है। और इसी विषय पर हर कवि पुष्प-वर्षन करता है। लेकिन 'गालिब' इस साधारण और आम खयाल को कवि-सुलभ सौन्दर्य और सत्यता के साथ कहते हैं। कवि के मानस-पटल पर यह बहुत परिचित-सा तथ्य पत्थर की लकीर जैसा हो गया है। इसने उसके जज़्बात को उत्तेजित किया है, उसकी कल्पना को उकसाया है। यह कल्पना की रंगीनी और जज़्बात की गर्मी की रासायनिक क्रिया है कि कम दामवाले खनिज पदार्थों से मूल्यवान् स्वच्छ सुवर्ण का सर्जन हुआ है।

पहले ही मिसरे[१] से रूपक शुरू होता है। इस रूपक का सफल प्रतिबिम्ब सम्पूर्ण क़िते में मौजूद है। दूसरे रूपक और मूर्त्तियाँ भी हैं :

'दीदए-इबरत निगाह'[२], 'गोशे नसीहत नयूश'[३], 'छवि', 'दुश्मने ईमान ओ आगही'[४], 'नग़मा', 'रहजने तमकीन वो होश'[५], 'दामाने-बागबान'[६], 'कफ़े गुल-फरोश'[७], 'खेरामे-साक़ी'[८], 'सदाए-चंग',[९] 'जन्नते-निगाह'[१०], 'फिरदौसे-गोश'[११], 'दागे फिराक'[१२], हर चित्र—हर रूपक सुन्दर है और सम्पूर्ण नज़्म के सौन्दर्य में वृद्धि भी करता है। कवि का दिमाग सर्वग्राही तथा मननशील है। उसने दुनिया की बहुरंगियाँ देखी हैं। और, जो कुछ उसकी आँखों ने देखा है उसे उसके अनुभूति-प्रवण मस्तिष्क ने सुरक्षित कर लिया है। ये चित्र हर रंग के हैं। जब तीव्र आवेग उसकी कल्पना पर कोड़े लगाता है और उसकी कल्पना उड़ने के लिए पर फैलाती है तो यही चित्र अपनी बहुलता में एकता की छवि लिये हुए प्रकट होते हैं। अर्थात् उनमें अनुरूपता और आत्मीयता होती है और वे एक-दूसरे से विलग और बेमेल नहीं होते।

इस क़िते में जज़्बात का जोश वो तीव्रता प्रत्यक्ष दीख पड़ती है। शब्द अपने-अपने स्थान पर किस शान्ति और दृढ़ता से जमे हुए हैं, मानों उन्हें अपने मूल्य-महत्त्व का भान है। रोब, दाब और आतंक भी मौजूद है। आवाज ऊँचे स्वर और सुन्दर लय की है, और जज़्बात के चढ़ाव-उतार के साथ ऊपर-नीचे होती है। दुनिया के जन्नत निगाह वो 'फिरदौसे-गोश' रुख के वर्णन से विदित होता है कि कवि इस रुख को व्यक्तिगत रूप से जानता है। चित्र वास्तविक हैं, कृत्रिम और काल्पनिक नहीं। इनकी हृदयग्राहिता प्रत्यक्ष है, किन्तु इनका तत्त्व मृगतृष्णा का-सा है। जिस तेजी से

१. शेर की अर्द्ध पंक्ति, २. शिक्षा ग्रहण करनेवाली आँखें, ३. शिक्षाप्रद बातें सुननेवाले कान, ४. धर्म और ज्ञान के शत्रु, ५. मन की शान्ति तथा होश को नष्ट कर देनेवाले डाकू, ६. माली का दामन, जिसमें वह फूल चयन करके रखता है, ७. फूल बेचनेवाले की हथेली, ८. मधुबाला की सुन्दर चाल, ९. चंग की आवाज, १०. आँखों के लिए स्वर्गीय सुन्दर दृश्य, ११. सुन्दर-सुरीली आवाजों के कारण कानों का स्वर्ग, १२. विरह-वेदना के कारण हृदय के छाले।

कवि इनका जिक्र करता है उससे पता चलता है कि ये देर तक टिकनेवाले नहीं। इनकी अन्तिम अवस्था मालूम है। 'जल्वए-साकी', 'नग़मए-मुतरिब', 'लुत्फे-खेराम', 'सदाए-चंग'—सभी नश्वर हैं। इनका सारभूत तत्त्व यह है :

दाग़े फ़िराक़ वो सोहबते शब की जली हुई
एक शम्मः रह गई है सो वह भी खामोश है ॥

कैसा प्रभावशाली है विरानी का यह चित्र ? दुनिया का स्वर्गीय दृश्य और उसका विनाश-विध्वंस—दोनों ही मानस-पटल पर अंकित हो जाते हैं। लेकिन विनाश-विध्वंस का खयाल अधिक प्रभावशाली और ज्यादा देर तक ठहरनेवाला है।

'मीर' भी इसी प्रकार के अनुभव का वर्णन करते हैं :

शब[1] इस दिले गिरफ़्तः[2] को वाकर[3] बज़ोरे[4]-मैं[5]
बैठे थे शीराख़ाने[6] में हम कितने हरज़ाकोश[7]
आई सदा[8] कि याद करो दौरे[9]-रफ़्ता[10] को
इबरत[11] भी है जरूर टुक ऐ जम: तेज़होश
'जमशेद'[12] जिसने वज़ा[13] किया जाम[14] क्या हुआ
वे सोहबतें[15] कहाँ गईं किधर वे ना-[16]वो-नोश
जुज़[17] लाला[18] उसके जाम से पाते नहीं निशां[19]
है कूकनार[20] उसकी जगह अब सुबू-ब-दोश[22]
झूमे है बेद[23] जाय जबानाने-मैगुसार[24]
बालाय[25] खुम[26] है खिश्ते[27] सरे-पीरे[28] मैफ़रोश[29]

विषय एक है। विषय के तत्त्व में कोई मौलिकता या असलियत नहीं। मौलिकता तथा असलियत है तो विचाराभिव्यक्ति में। यहाँ अगर सादगी है तो 'ग़ालिब' के क़िते में गरिमा है। परिणाम यह निकलता है कि इन 'क़ितों' में भी सीमित विषय मिलते हैं। दो क़िते और सुनिए। यह हैं शाह कुदरतुल्लाह 'कुदरत' :

कल हवस[30] इस तरह से तरगीब[31] देती थी मुझे
क्या ही मुल्के रूम है, क्या सरज़मीने[32] तूस है
गर मुयस्सर[33] हो तो किस इशरत[34] से कीजे जिन्दगी
इस तरफ़ आवाजे तब्ल[35] उधर सदाए कूस[36] है

---

१. रात का, २. उदास दिल, सम्पुटित हृदय, ३. खोलकर, प्रसन्न करके; ४. जोर से, प्रभाव से; ५. शराब, ६. शराबखाना, भट्ठी; ७. बकवास करनेवाले, ८. आवाज, ९. युग, १०. गत, बीता हुआ; ११. शिक्षा, १२. ईरान का एक बादशाह, १३. बनाया, १४. प्याला, १५. सहवास, १६. रास-रंग, खाना-पीना; १७. सिवाय, १८. एक फूल, १९. चिह्न, २०. पोस्ते की कली, २१. घड़ा, मटका; २२. कांधा, २३. बेंत, २४. शराब पीनेवाले, २५. ऊपर, २६. ठिलिया, २७. ईंट ढपना, २८. बूढ़ा, २९. शराब बेचनेवाला, ३०. लालसा, तृष्णा; ३१. ललचाना, ३२. प्रान्त, ३३. प्राप्त, ३४. मौज, ठाट-बाट; ३५, तबला, ३६. घंटा।

सुब्ह से ता शाम चलता हो मए-गुलगू[१] का दौर[२]
शब हुई तो माहरूयों[३] से किनार[४] वो बोस[५] है
सुनते ही इबरत यः बोली एक तमाशा मैं तुझे
चल दिखाऊँ क्या तू अपनी आज[६] का महबूस[७] है
ले गई यकबारगी गोरे[८] गरीबां की तरफ़
जिस जगह जाने तमन्ना सौ तरह माकूस[९] है
मरक़दें[१०] दो-चार दिखलाकर लगी कहने मुझे
यह सिकन्दर है यह दारा है यह कैकाऊस है
पूछ तो इनसे कि माल वो हशमते[११] दुनिया से आज
कुछ भी इनके साथ ग़ैर अज[१२]हसरत वो अफसोस है

और यह हैं 'नजीर' अकबराबादी :

कल दामने[१३] सेहरा[१४] में हम गुजरे जो वक्ते-सुब्हदम[१५]
एक कासए[१६] सिर पुर अलम[१७] आया नज़र अपने वहीं
बोला ब[१८]-फ़रियाद[१९] वो फुगां[२०] क्या देखता है ओ मियां
थे हम भी सरवर[२१] आसमां गो[२२]अब पड़े हैं बरज़मीं
गुलबर्ग[२३] से नाजुक बदन सर पाँव से रश्के[२४] चमन
जरीं[२५] वो सीमीं[२६] पैरहन,[२७] दिलकश[२८] मकानों के मकीं[२९]
दिन-रात नाज वो[३०] नेमतें, महत्तलअतों[३१] से सोहबतें[३२]
एशो निशात[३३] को इशरतें[३४] साकी[३५] किरां[३६]मुतरिब[३७] करीं[३८]
बाग वो चमन पेशे[३९] नजर, बज़्मे[४०] तरब[४१] शाम को सेहर[४२]
हर सू[४३] बकसरत[४४] जल्वए[४५] हुस्ने[४६] बुताने[४७] नाजनीं[४८]
एक आसमां के दौर[४९] से एक गर्दिशे[५०] फ़िलफ़ौर[५१] से
अब सोचिएगा ग़ौर से दर[५२] लेहजा[५३] औ[५४]दरलमहा[५५]ईं[५६]
सुनते ही जो थर्रा गया रुखसार[५७] पर अश्क[५८] आ गया
दिल ग़ैरतों[५९] से छा गया, खातिर[६०] हुई बस[६१] सह्मगीं[६२]

---

१. गुलाब के रंग का, सुर्ख; २. क्रम, चक्कर; ३. विधुवदनियां, ४. गोद, ५. आलिंगन, आमोद-प्रमोद, ६. लालच, ७. वन्दी, ८. कब्र, ९. उल्टा हुआ, वन्द; १०. कब्रें, ११. ठाट-बाट, १२. सिवाय, १३. अँगरखे का नीचे लटकता हुआ भाग, १४. मरुस्थल, जंगल; १५. प्रातःकाल, १६. प्याला, खोपड़ी; १७. दुःख, शोक; १८. साथ, १९. आर्त्तनाद, २०. शोकाकुल चीत्कार, २१. पर, २२. यद्यपि, २३. गुलाब की पंखुड़ियां, २४. स्पर्द्धा, डाह; २५. सुनहरा, २६. रुपहला, २७. कपड़ा, २८. आकर्षक, २९. घर में रहनेवाले, ३०. भोग-विलास, ३१. विधुवदनियों, ३२. सहवास, ३३. आमोद-प्रमोद, ३४. सुख, चैन; ३५. मधुवाला, ३६. निकट, ३७. गवैया, ३८. निकट, ३९. सामने, ४०. मण्डली, मोहफिल; ४१. खुशी, ४२. सबेरा, ४३. ओर, तरफ; ४४. प्रचुर ढंग से, ४५ छवि-प्रदर्शन, ४६. सौन्दर्य, ४७. मूर्त्तियां, सुन्दरियां; ४८. कोमलांगी, ४९. गर्दिं, फेरा, चक्र; ५०. चक्र, फेरा; ५१. शीघ्रातिशीघ्र, ५२. में, ५३. क्षण, ५४. वह, ५५. क्षण, ५६. यह, ५७. गाल, चेहरा; ५८. आंसू, ५९. ग्लानि, ६०. मन, ६१. बहुत, अधिक; ६२. डरा आ, भयभीत,

इसमें सिर अपना नागहां[1] हर सू हुआ मिस्ले[2] ज़बां[3]
बोला 'नज़ीर' आगह[4] हूँ हां, मन[5]नीज रोजे[6] हमचुनीं[7]

'शाह कुदरतुल्लाह' और 'नजीर' अकबराबादी भी अपने-अपने ढंग पर वही राग अलापते हैं। कहने को सभी अपना व्यक्तिगत अनुभव बयान करते हैं। 'मीर' कहते हैं—

"बैठे थे शीराखाने में हम कितने हरजाकोश", 'शाह कुदरतुल्लाह' कहते हैं : "कल हवस इस तरह से तरग़ीब देती थी मुझे", और 'नजीर' अकबराबादी कहते हैं . "कल दामाने सेहरा में हम गुजरे जो वक्ते सुब्हदम", लेकिन विषय आम है। अर्थात् वही संसार की अनित्यता और शब्द तथा चित्र जो बनाये गये हैं, वे सब साधारण ढंग के हैं, जिन्हें हर शख्स सोच सकता है। इनमें कोई मौलिकता नहीं ; व्यक्तित्व की झलक नहीं। 'मीर' ने अलवत्ता कुछ ड्रामाई शान पैदा की है :

झूमे है बेद जाय जवानाने-मैगुसार
बालाय खुम है खिश्ते सरे-पीरे-मै-फ़रोश

'शाह कुदरतुल्लाह' ने भी कुछ ऐसी ही दशा पैदा करने की कोशिश की है :

मरक़दें दो-तीन दिखलाकर लगी कहने मुझे
यह 'सिकन्दर' है यह 'दारा' है यह 'कैकाऊस' है

शायद यह वातावरण इतना आम और व्यापक है कि यह खयाल भी नहीं होता कि 'सिकन्दर', दारा और कैकाऊस की कब्रें इकट्ठी कैसे हो गईं। बात यह है कि यहाँ किसी कब्रिस्तान-विशेष का जिक्र नहीं, सारी दुनिया ही कब्रिस्तान है। दुनिया में मृत्यु का साम्राज्य है। 'जम्शेद', 'सोहबते नावो नोश', 'आवाज़े तब्ल वो सदाय कोस', 'मये गुलगूँ का दौर', 'माहरूयों से बोस वो किनार', 'दिल्कश मकानों के मकीं', 'बाग़ वो चमन', 'बज़्मे तरब', 'जल्वये हुस्ने बुताने नाज़नीं'—सब निस्सार प्रदर्शन है, माया का खेल है और यह खेल देखकर बस यही एहसास होता है कि इन सबका सार बस एक खोपड़ी है और 'मन नीज़ रोज़े हमचुनीं'।

संसार की अनित्यता कुछ उर्दू-कवियों की ही जागीर नहीं। प्रत्येक भाषा की कविता में इस प्रकार के अनुभव मिलते हैं। 'डन' की एक कविता है 'मृत्यु'[14] :

"ऐ मौत इतना घमण्ड न कर। लोग तुझे भयानक और शक्तिशालिनी कहते हैं। लेकिन तू ऐसी तो नहीं। अपने खयाल में तू जिन्हें पराजित करती है, ऐ तुच्छ मृत्यु ! वे मरते नहीं, और न तू मुझे मार सकती है। आराम और नींद तो तेरी धुँधली-सी छाया हैं, लेकिन इनमें कितनी शान्ति है ! तुझसे तो और अधिक सुख मिलना चाहिए; अच्छे-अच्छे आदमी शीघ्र ही तेरे साथ चले जाते हैं। उनकी हड्डियों को आराम और उनकी आत्मा को मुक्ति तुझसे मिलती है। तू भाग्य, अवसर, राजाओं तथा अत्याचारियों का ग़ुलाम है; और विष, युद्ध तथा रोग तेरे सुहृद, मित्र हैं। अफ़ीम और जादू से भी नींद आ जाती है, अधिक अच्छी नींद आ जाती है। फिर

१. अचानक, २. समान, मानिन्द; ३. ज़बान, जीभ; ४. अवगत, अभिज्ञ; ५. मैंती, ६. एक दिन, ७. इसी तरह, इदृशी।

तू क्यों इतना इतराती है ? थाड़ी देर सो रहने के बाद हम सदा के लिए जाग जाते हैं। हाँ, फिर मौत न होगी। ए मौत ! तू मर जायगी।"

'मीर' और 'शाह क़ुदरतुल्लाह' और 'नज़ीर' अकबराबादी मृत्यु के व्यापक प्रभुत्व के आगे सिर झुकाते हैं। संसार की अनित्यता देखकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। "मन नीज़ रोज़े हमचुनीं[१]" के खयाल से काँप उठते हैं। ब्योरों में कुछ अन्तर है, लेकिन विचारों तथा अनुभूतियों का ढाँचा भिन्न नहीं। वही अगले वर्ष की तीलियाँ हैं, जिनको अपने-अपने रंग से काम में लाते हैं। 'डन' की कविता में विचारों तथा अनुभूतियों का बिलकुल नया, अनोखा, अपूर्व ढाँचा है, जो और किसी कविता में नहीं मिलता। पहले ही वाक्य से अन्तर स्पष्ट रूप से प्रकट होता है: "ऐ मौत ! लोग तुझे डरावनी और महाबली कहते हैं, लेकिन तू ऐसी तो नहीं।" यहाँ मृत्यु के प्रभुत्व के आगे सर नहीं झुकाया जाता, संसार की अनित्यता का रोना नहीं। मौत से बुज़ुरगना अन्दाज में बातचीत होती है। उसे समझाया जाता है। उसे उसकी गलती के विषय में चेतावनी दी जाती है। इस बातचीत में दिलेरी है। एक नयापन है; व्यक्तित्व की झलक है, जो उर्दू-क़ितों में सम्भव नहीं। यहाँ अगले वर्ष की तीलियाँ नहीं; आद्योपान्त वही वीरभाव है। "ऐ मौत, तू मर जायगी' किस चौंका देनेवाले रंग में कविता का अन्त होता है। सारांश यह कि इस प्रकार की और भी बहुत-सी खूबियाँ हैं, जिनका जिक्र यहाँ जरूरी नहीं।

इस प्रकार के और बहुत-से उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, लेकिन शायद इनकी आवश्यकता नहीं। उर्दू-क़ितों के विषय गजल की तरह सीमित होते हैं। सत्य बात तो यह है कि विषयों के विचार से क़ित्ते की दुनिया गजल की दुनिया से भी अधिक संकीर्ण है। ये विषय अधिकांश नैतिक होते हैं और इनका उद्देश्य शिक्षा देना होता है। संसार की अनित्यता, काल की वक्रगति, धन-वैभव की नश्वरता और सन्तोष की शिक्षा—बस, इन्हीं विचारों की पुनरावृत्ति होती है :

बेज़री[२] का न कर गिला[३] ग़ाफ़िल[४] + रह तसल्ली[५] कि यों मोक़द्दर[६] था
इतने मुनइम[७] जहाँ[८] में गुज़रे हैं + वक्ते[९] रेहलत[१०] के किस कने[११] ज़र[१२] था
साहेबे[१३] जाह[१४] वो शौक़त[१५] वो इक़बाल[१६] + एक अज़ां[१७] जुम्ला[१८] अब सिकन्दर था
थी यः सब कायनात[१९] ज़ेरे[२०] नगीं[२१] + साथ मोर[२२] वो मलख़[२३] सा लश्कर था
ल़ाल[२४] वो याक़ूत[२५] हम[२६] ज़ड़ वो गौहर[२७] + चाहिए जिस क़दर[२८] मुयस्सर[२९] था
आख़िरे[३०] कार जब जहाँ से गया + हाथ ख़ाली कफ़न से बाहर था

सीधे-साधे रंग में, खुले शब्दों में एक बहुत आम और सामान्य घटना का वर्णन है। फकीरी

---

१. एक दिन मेरी भी यही दशा होगी, २. निर्धनता, ३. शिकायत, ४. वेखवर, लापरवाह, ५. सन्तुष्ट, ६. भाग्य, ७. धनवान्, ८. दुनिया, ९. समय, १०. कूच करना, प्रस्थान; ११. पास, १२. धन, सोना; १३. स्वामी, १४. वैभव, १५. ठाट-बाट, १६. सौभाग्यशालिता, १७. उनमें से, १८. कुल, समस्त; १९. विश्व, सृष्टि; २०. नीचे, २१. मुहर, अँगूठी का नग (२० + २१. अधिकार में), २२. चींटी, २३. टिड्डी, २४. माणिक, २५. लाल, २६. भी, २७. मोती, २८. जितना, २९. प्राप्त, ३०. अन्त में।

और अमीरी सब इसी संसार के साथ है, मौत के आगे सब बराबर हैं। धन-वैभव तथा सौभाग्य-शालिता सब साथ छोड़ देते हैं; और प्रत्येक धनवान् व्यक्ति इसी निस्सहाय अवस्था में दरिद्रता के साथ इस संसार से विदा होता है, जो किसी दरिद्र के हिस्से में जन्म से ही पड़ा है। 'मीर' ने संसार की अनित्यता का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था और जो कुछ उन्होंने देखा था उसका उनके हृदय पर गहरा प्रभाव भी पड़ा था। और, इसने उनकी कल्पना को उत्तेजित किया था। यही कारण है कि उन्होंने अपनी विशिष्ट सादगी और सफ़ाई में कल्पना का रंग भरा है। इसलिए तस्वीर चमक उठी है। संसार में जितने धन-वैभवयुक्त भाग्यशाली व्यक्ति हुए हैं, उनके साधारण वर्णन के बाद सिकन्दर का ज़िक्र विशेष रूप से होता है, उसका विशाल साम्राज्य, उसकी 'चींटियों तथा टिड्डी-दल की-सी सेना', उसका खजाना—"लाल वो याक़ूत वो हम ज़र वो गौहर"—यह सब धरे-के-धरे रह गये, उसके काम न आये :

आख़िरेकार जब जहाँ से गया + हाथ खाली कफ़न से बाहर था।

यह तस्वीर काफी शिक्षाप्रद है। रोब-दाब, धन-वैभव किसी ने साथ न दिया। साथ दिया तो खेद, विवशता और निराशा ने। बहुत अच्छी और उच्चकोटि की कविता इस क़िते में न सही, लेकिन कवित्व अवश्य है। आवेगों की तीव्रता ने इसका स्तर गद्य से ऊँचा कर रखा है। किन्तु 'डन' की कविता के सामने ऐसा जान पड़ता है कि 'मीर' के सोचने और महसूस करने का तरीका सामान्य ढंग का था; उसमें 'डन' का वैयक्तिक रंग नहीं।

नैतिक विषयों के अतिरिक्त कभी-कभी व्यक्तिगत पर्यवेक्षण या निजी अनुभव भी क़िते के साँचे में ढाले जाते हैं। इस ढंग के क़ितों में अधिक विविधता की गुंजाइश थी, लेकिन उर्दू के कवियों ने इस ओर ध्यान न दिया। अपनी कठिनाइयों के कारण क़िता जनप्रिय होने का प्रमाण-पत्र प्राप्त न कर सका; विशेषतः ऐसा क़िता, जिसमें प्रचलित ढंग से अलग कोई नई राह निकाली गई होती। ये क़िते प्रायः बहुत छोटे होते हैं। इनकी बिसात कुल दो शेरों की होती है। इसलिए इनमें वही दोष होता है, जो अकेले शेर में वर्त्तमान है :

कल पाँव मेरा कासए-सर पर जो आ गया
यकसर वः उस्तख़्वाने शिकस्तों से चूर था
कहने लगा कि देखके चल राह बेख़बर
मैं भी कभू किसू का सरे पुरग़रूर था

इस क़िते में एक घटना प्रस्तुत की गई है। उद्देश्य वही चेतावनी देना है। संसार की अनित्यता का बहुत ही शिक्षाप्रद नक्शा आँखों के सामने आ जाता है, किन्तु इस छोटे पैमाने में विस्तार सम्भव नहीं; विचारों तथा अनुभूतियों की बहुरंगी की गुंजाइश नहीं। बस, एक ख़याल, एक आवेग, एक घटना चुन ली जाती है। और उसीको कवि ओजपूर्ण तथा प्रभावशाली ढंग से बयान करता है। किन्तु, उसपर भी पूर्ण मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं होती।

इस काव्य-रूप में एक दोष यह भी है कि इसे कवियों ने गजल से पृथक् नहीं क़िया। क़िता गजल के बीच प्रायः मक़ता से पहले होता है। क़िता की पंक्तियों में सम्बन्ध तथा क्रम तो होता है, लेकिन दूसरे शेर, जो गजल में होते हैं वे आपस में सम्बद्ध नहीं होते, और न क़िते से किसी

प्रकार की अनुरूपता रखते हैं। बहुत बार तो यह भी होता है कि एक ही गजल में दो-तीन कि़ते होते हैं। हर कि़ते का विषय एक-दूसरे से अलग और बेलाग होता है। इसलिए उनमें सम्पूर्णता का चित्र नहीं होता। यदि वे ही कि़ते, जिनका ज़िक्र ऊपर हो चुका है, अपने-अपने स्थान पर देखे जायें तो जिस मेल तथा समानता का प्रभाव इतना स्पष्ट है, वह नष्ट हो जायगा :

दिल, दिमाग़ वो जिगर यः सब एक बार
काम आए फ़िराक़[१] में ऐ यार

मत निकल घर से हम भी राज़ी हैं
देख लेंगे कभू सरे[२] बाज़ार

गुले पज़मुर्दा[३] का नहीं ममनून[४]
हम असीरों[५] का गोशए[६]-दस्तार[७]

बाजिबुल[८]-क़त्ल इस क़दर[९] तो हूं
कि मुझे देखकर कहे है पुकार

यह तो आया न सामने मेरे
लाओ मेरी मियां[१०] सिपर[११] तलवार

आ ज़ेयारत[१२] को क़ब्रे आशिक़ पर
एक तरह का है यां भी जोशे बहार[१३]

निकले है मेरी ख़ाक नर्गिस[१४] से
यानी अब तक है हसरते[१५] दीदार[१६]

गजल बहुत लम्बी है। तेरह शेरों के बाद पाँच कि़ते हैं। शेरों में हसब मामूल कोई सम्बन्ध तथा क्रम नहीं। पहले कि़ते में माशूक़ की ख़ूँरेज़ी का जिक्र है और अपने में कत्ल हो जाने की योग्यता होने का इकरार है। इस विषय को पहलेवाली पंक्तियों से कोई लगाव नहीं। इसी तरह इस विषय को दूसरे कि़ते से कोई सम्बन्ध नहीं। माशूक़ की ख़ूँरेज़ी और आशिक़ की दर्शन-लालसा के प्रमाण में कोई खास लगाव नहीं। इसी विलगाव और व्यवस्थाहीनता का परिणाम है कि इस गजल के पढ़ने से किसी सम्पूर्ण अनुभव का एहसास नहीं होता।

इस बात पर आश्चर्य है और अफसोस भी है कि उर्दू-कवियों में इतनी मौलिकता न थी, इतनी सर्जना-शक्ति न थी कि वह कि़ते को एक अलग काव्यरूप बना लेते। कहने को ऐसे तो कि़ते मिलते हैं, जो गजल से अलग लिखे गये हैं, लेकिन इनमें से अधिकांश की विषय-वस्तु बधाई देना, प्रशंसा करना या इतिहास होता है। ये किसी खास मौके पर लिखे जाते हैं; इसलिए इनका प्रभाव आम और टिकाऊ नहीं होता। 'ग़ालिब' का मशहूर कि़ता, जिसका पहला शेर है :

---

१. विरह, बिछुड़न, २. बाजार में, ३. मुरझाया हुआ, ४. कृतज्ञ, ५. कैदियों, बन्दियों; ६. कोना, ७. पगड़ी, ८. कत्ल करने योग्य, ९. इतना, १०. तलवार रखने की खोल, ११. ढाल, १२. दर्शन, १३. वसन्त, १४. एक फूल, जिससे आँखों की उपमा दी जाती है। १५-१६. देखने की इच्छा।

मंजूर[१] है गुज़ारिशे[२] अहवाले[3] वाक़ई[४] + अपना बयान हुस्ने[5] तबीयत[६] नहीं मुझे

एक खास अवसर पर लिखा गया था और यह इस प्रकार के क़ितों में विशेष महत्त्व रखता है। लेकिन कविता की दुनिया में इसका स्थान भी बहुत ऊँचा नहीं।

'ज़ौक़' ने एक क़िता अत्यन्त परिश्रम के साथ, गजल से अलग किसी विशिष्ट अनुभव के आधार पर लिखा है। यदि यह सफल होता और यदि उर्दू के कवि इस प्रकार के सफल क़ितों पर उसका शतांश भी ध्यान देते जितना ध्यान उन्होंने गजल पर दिया तो बहुत सम्भव था कि उर्दू-कविता की अधिक उन्नति होती और शायद वह उन दोषों से मुक्त होती, जिनका आरोप उसपर आजकल होता है। ज़ौक़ का क़िता यह है :

कहूँ क्या 'ज़ौक़' अहवाले[७]-शबे[८]-हिज्र + कि थी एक-एक घड़ी सौ-सौ महीने
न थी शब, डाल रक्खा था एक अंधेर + मेरे बख़्ते[९]-सियह की तीरगी[१०] ने
तपे[११]-ग़म शम्मः[१२]सां होती न थी कम + और आते थे पसीनों पर पसीने
यही कहता था घबराकर फ़लक[13] से + कि ओ बेमेह्र[१४] बदअख़्तर[१५] कमीने
कहाँ मैं और कहाँ यह शब मगर[१६] थे + मेरी जानिब[१७] से तेरे दिल में कीने[१८]
सो इस ज़ुल्मत[१९] के पर्दे[२०] में किए ज़ुल्म + अरे ज़ालिम तेरी कीनाबरी[२१] ने
एवज[२२] किस बादानोशी[२३] के मुझे आज + पड़े यह ज़ह्र के से घोंट पीने
हवास वो होश जो मुझसे क़रीं[२४] थे + क़रीने[२५] से हुए सब बेक़रीने
मेरी सीनाज़नी[२६] का शोर सुनकर + फटे जाते हैं हमसायों के सीने
उठाया गाह[२७] और गाहे बिठाया + मुझे बेताबी[२८] वो बेताक़ती ने
कहा जब दिल ने तू कुछ खाके सो रह + बहुत अल्मास[२९] के तोड़े नगीने
न टूटा जान से ग़ालिब[30] का रिश्ता[31] + बहुत-सी जान तोड़ी जांकनी[३२] ने
बहुत देखा न दिखलाया ज़रा भी + तुलूए[33] सुब्ह से मुँह रोशनी ने
कहा जी ने मुझे यह हिज्र[3४] की रात + यक़ीं[3५] है सुब्ह तक देगी न जीने
लगे पानी चुआने मुँह में आँसू + पढ़ी यासीं[3६] सिरहाने बेकसी[3७] ने
मगर दिन उम्र के थोड़े-से बाक़ी[3८] + लगा रक्खे थे मेरी ज़िन्दगी ने
कि क़िस्मत से क़रीबे-ख़ाना[3९] मेरे + अज़ां[४०] मस्जिद में दी बारे किसी ने
बुशारत[४१] मुझको सुब्हे-वस्ल[४२] की दी + अज़ां के साथ युम्न[४3] वो फ़र्रुख़ी[४४] ने

---

१. उद्दीष्ट, २. निवेदन करना, ३. दशा, ४. यथार्थ, सत्य; ५. सौन्दर्य, ६. स्वभाव, ७. दशा, ८. विरह-रात्रि, ९. भाग्य (दुर्भाग्य); १०. कालिमा, अन्धकार; ११. बुखार, ज्वर; १२. समान, ऐसा; १३. आसमान, १४. निर्दय, १५. निषिद्ध नक्षत्रवाले, १६. शायद, १७. ओर, तरफ; १८. द्वेष, १९. अन्धकार, २०. ओट, बहाना; २१. शत्रुता, २२. बदले, २३. मद्यपान, २४. निकट, २५. सुव्यवस्थित ढंग से, २६. छाती पीटना, २७. कभी, २८. अधीरता, २९. हीरा, ३०. शरीर, ३१. सम्बन्ध, ३२. मृत-यातना, ३३. उगना, निकलना; ३४. विरह, ३५. विश्वास, ३६. मुहम्मद साहेब का एक नाम, कुरान के एक परिच्छेद का नाम, जो इसी शब्द से आरम्भ होता है; ३७. असहायता, ३८. शेष, ३९. घर, ४०. मुसलमानों को मस्जिद में प्रार्थना के लिए बुलाना, ४१. सुखद संवाद, ४२. मिलन, ४३. बरकत, ४४. खुशी, आह्लाद।

हुई ऐसी खुशी अल्लाह वो अकबर[1] + कि खुश होकर कहा खुद यह खुशी ने
मोअज़्ज़िन,[2] मरहबा ! बरवक्त[3] बोला + तेरी आवाज मक्के और मदीने

इस क़िते के दो भाग हैं। पहले बड़े हिस्से में विरह-रात्रि और उसमें संघर्षपूर्ण जीवन का चित्र खींचा गया है। दूसरे भाग में विरह की लम्बी रात के बाद मिलन-प्रभात का सुखद संवाद है। दुःख के बाद सुख का शुभ समाचार है। विरह-रात्रि लम्बी होती है। जब मनुष्य किसी विपत्ति में पड़ता है तो एक-एक क्षण लम्बाई में एक साल से कम नहीं मालूम होता। इसी दीर्घता का चित्र पहले भाग में बड़े धूम-धाम से खींचा गया है। प्रत्येक विवरण मानों कवि की मृत-यातना की गवाही देता है। जब ऐसा जान पड़ता था कि प्रेमी की दशा काबू से बाहर हो गई, जब जीने की सारी आशाएँ खतम हो गई थीं, जब—

लगे पानी चुआने मुँह में आँसू + पढ़ी यासीं सिरहाने बेकसी ने।

एकाएक अज़ान की आवाज आती है, एकाएक विरहाक्रान्त प्रेमी यह प्राणदा शुभ समाचार सुनता है कि विरह-रात्रि समाप्त हो गई और मिलन के दिन का प्रभात हुआ। हृदय आनन्द-आह्लाद से परिपूरित हो जाता है; जिन्दगी की नई लहर दौड़ जाती है और ऐसा जान पड़ता है कि शरीर से निकला हुआ प्राण फिर से लौट आता है और प्रेमी पुनः जी उठता है। इस क़िते में यह सारा सौन्दर्य मौजूद है। शब्द-शब्द और एक-एक शेर से परिपक्वता और परिश्रम का पता चलता है। बन्दिशों और रचना में कहीं तनिक भी ढीलापन नहीं है। यह सब सही, लेकिन वह असर[4] नहीं, जो 'मीर' के शेरों या क़ितों में होता है।

यदि इस क़िते पर दुबारा आलोचनात्मक दृष्टि डाली जाय तो पूर्णतया क्लिष्ट कल्पना का उदाहरण दिखाई देगा। शाब्दिक श्लेष की यह दशा है :

'घड़ी, महीने', 'एक-एक, सौ-सौ', 'शब, अन्धेरे', वख़्ते-सियह, तीरगी', 'जुलमत[5], जुल्म[6], ज़ालिम[7]', 'बादा नोशी[8], जहर के घूँट', 'टूटा रिश्ता, जान तोड़ी, जांकनी[9]', 'जी, जीने', 'रात, सुब्ह', 'ख़ुशी, ख़ुश, ख़ुशी'। स्पष्ट रूप से प्रकट है कि 'ज़ौक़' को जज़्बात[10] की अभिव्यक्ति की अपेक्षा शाब्दिक श्लेष का खयाल अधिक रहता है। इस शाब्दिक श्लेष के कारण जज़्बात अगर व्यक्तिगत भी होते तो वे विच्छिन्न होकर शेर की परिधि से बाहर निकल जाते। कवि की सम्पूर्ण मनोवृत्ति शब्दों की ओर है। इसलिए पढ़नेवालों को भी सभी जगह शाब्दिक सौन्दर्य ही दिखाई पड़ता है। उनका ध्यान जज़्बात की वास्तविकता और उनके उत्साह-आवेश से हटकर शब्दों के जाल में जा फँसता है। अर्थात् जज़्बात का महत्त्व नष्ट हो जाता है और शब्द, जो केवल जज़्बात की अभिव्यक्ति के लिए एक साधन है, असल महत्त्व ग्रहण कर लेते हैं। ऐसी बात उसी समय होती है जब कवि इच्छापूर्वक कविता करता है और जब वह किसी प्रबल आवेग से बाध्य होकर नहीं लिखता। इस प्रकार की कविता में कोई आकर्षण नहीं होता। उसमें आकर्षण

---

१. ईश्वर महान् है, २. अज़ान देनेवाला, ३. ठीक समय पर, उचित समय पर; ४. प्रभाव, संवेदनशीलता, ५. अन्धकार, ६. अत्याचार, ७. अत्याचारी, ८. मद्यपान, ९. मृत-यातना, १०. आवेग।

का केन्द्र कवि का कला-कौशल होता है। 'ज़ौक़' के क़िते में आवेग व्यक्तिगत नहीं, काल्पनिक हैं। और इन काल्पनिक जज़बात में कहीं असलियत की झलक नहीं :

एवज़[1] किस बादानोशी के मुझे आज + पड़े ये ज़ह्र के-से घूंट पीने

इस शेर में केवल शाब्दिक श्लेष है। यही इस शेर की रचना का कारण है। जज़बात के अस्तित्व और असलियत का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। तो फिर विरहाकुल प्रेमी की मृत-यातना हमारे हृदय पर क्या प्रभाव डाल सकती है :

कहा जब दिल ने तू कुछ खाके सो रह + बहुत अल्मास[2] के तोड़े नगीने

इस शेर में क्लिष्ट कल्पना पराकाष्ठा को पहुँच गई है। प्रत्यक्ष रूप से दीख पड़ता है कि कवि ने पहले दूसरे मिसरे की रचना की और तब उसपर एक और मिसरा बढ़ाया। यही तथ्य दूसरे शेरों से भी प्रकट होता है। "क़रीने[3] से हुए सब बेक़रीने", "फटे जाते हैं हमसायों[4] के सीने", "बहुत अल्मास के तोड़े नगीने", "यक़ीं है सुब्ह तक देगी न जीने", "पढ़ी यासीं[5] सिरहाने बेकसी[6] ने", "तेरी आवाज मक्के[7] और मदीने"—यह सभी मिसरे पहले लिखे गये, फिर दूसरा मिसरा लगाकर शेर पूरा किया गया। ऐसा जान पड़ता है कि 'ज़ौक़' ने पहले काफिए चुन लिये, फिर हर काफिए[8] पर एक मिसरा लगाया, तब जाकर शेर पूरा हुआ। सारांश यह कि इस क़िते में तुकबन्दी के सिवा और कुछ भी नहीं। शाब्दिक अनुपात तथा अनुरूपता, एक प्रकार की विचार-प्रगति मौजूद है, लेकिन जज़बात की आत्मा का पता नहीं। इसी वजह से यह क़िता बेअसर[9] है।

'क़िता' तो एक अपूर्ण-सा काव्य-रूप है। इसके नाम ही से पूर्णता की कमी प्रकट होती है। रूप की हैसियत से मतला[10] और मकता[11] के न होने के कारण इसमें कुछ कमी-सी जान पड़ती है, विशेषत: उन कानों को, जो गजल से परिचित हैं। अर्थ की हैसियत से भी इसमें कुछ कमी रह जाती है। अधिकांश क़ितों में किसी घटना, किसी ख़याल, किसी अनुभव का अधूरा-सा वर्णन होता है; जैसे किसी चीज़ को बीच से बयान किया जाय और उसके आदि-अन्त का जिक्र न हो या कोई बात अचानक याद पड़ जाय और उसका जिक्र सरसरी अथवा प्रासंगिक ढंग से कर दिया जाय।

क्रमबद्ध गजल और क़िते में, वाह्य रूप को छोड़कर कोई अन्तर है तो यही कि क्रमबद्ध गजल के शेरों में वह घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं, जो क़िते के शेरों में होता है। लेकिन दोनों में लगाव और क्रम है और इस लगाव और क्रमबद्धता की उन्नति की जा सकती है। आखिर को नज़्म कुछ दूसरी दुनिया की चीज़ तो नहीं। गजल के विशिष्ट रूप को स्थिर रखते हुए इस रूप में नज़्म लिखी जा सकती थी और लिखी जा सकती है। इसी प्रकार क़िते का वाह्य रूप अपूर्ण सही, इस रूप में भी नज़्म लिखी जा सकती थी और लिखी जा सकती है। 'आतिश' की एक शृंखलावद्ध गजल है :

---

१. वदले, २. हीरा, ३. ढंग से, ४. पड़ोसी, ५. कुरान का वह परिच्छेद, जो 'यासीन' शब्द से शुरू होता है, ६ मुहम्मद साहेव का एक नाम, ७. अरब देश के दो प्रतिष्ठित नगर और मुसलमानों के प्रतिष्ठित तीर्थस्थान हैं, ८. तुक, ९. निष्प्रभाव, १०. गजल की पहली पंक्ति, ११. गजल की अन्तिम पंक्ति।

शबे वस्ल थी, चांदनी का समां था + बग़ल में सनम[१] था, खुदा मेहबां था
मुबारक शबेक़द्र[२] से भी वः शब थी + सेहर[३] तक महवो[४] मुश्तरी[५] का क़िरां[६] था
वः शब थी कि थी रोशनी जिसमें दिन की + ज़मीं पर से एक नूर[७] ता[८] आसमां था
निकाले थे दो चांद उसने मुक़ाबिल[९] + वः शब सुब्हे जन्नत[१०] का जिस पर गुमां[११] था
उरूसी[१२] की शब की हलावत[१३] थी हासिल[१४] + फ़रहनाक[१५] थी रूह[१६] दिल शादमां[१७] था
मुशाहिद[१८] जमाले[१९] परी की थीं आँखें + मकाने-विसाल[२०] एक तिलिस्मी[२१] मकां था
हुज़ूरी[२२] निगाहों को दीदार[२३] से थी + खुला था वः पर्दा कि जो दरमियां[२४] था
किया था उसे बोसे-बाज़ी[२५] ने पैदा + कमर की तरह से जो ग़ायब[२६] देहां[२७] था
हक़ीक़त[२८] दिखाता था इश्क़े[२९] मजाज़ी[३०] + निहां[३१] जिसको समझे हुए थे अयां[३२] था
बयां ख़्वाब की तरह जो कर रहा है + यह क़िस्सा है जब का कि 'आतिश' जवां था

इस गजल में एक विशिष्ट अनुभव की अभिव्यंजना की गई है। सब शेर एक किस्से को बयान कर रहे हैं। हर शेर में अलग-अलग किस्सों के टुकड़े नहीं। यही कारण है कि मन को जो प्रफुल्लता इस गजल से मिलती है वह 'ग़ालिब' की उस गजल में, जिसका मतला है :

ग़ैर[३३] लें महफ़िल[३४] में बोसे[३५] जाम के[३६] + हम रहें यों तिश्नालब[३७] पैग़ाम[३८] के

'आतिश' की गजल में एक सूक्ष्म लालित्य है, जो 'गालिब' की गजल में नहीं। तब भी 'आतिश' के शेरों में कुछ ढीलापन है; इनमें वह अनिवार्य सम्बन्ध नहीं, जो नज़्म में होता है।

'नज़ीर' अकबराबादी की एक क़िता[३९]-बन्द नज़्म है :

यह जवाहिर[४०] ख़ानए दुनिया जो है बा आब[४१] वो ताब
अहले[४२] सूरत का है दरिया, अहले[४३] मानी का सुराब[४४]
वह मुतल्ला[४५] क़स्रे[४६] रंगीं, वह मुनक़्क़श[४७] बाम[४८] वो दर[४९]
जिन की रंगीनी से था क़स्रे अरम[५०] को पेच-वो[५१]-ताब
वह अज़ीमुश्शां[५२] मकां देती थीं जिनकी रफ़अतें[५३]
हँस के ताक़े[५४] आसां को ताक़े अब्रू[५५] से जवाब।

---

१. माशूक़, प्रेयसी; २. मुसलमानों के विश्वासानुसार एक अति पवित्र रात (रमजान महीने की २७वीं रात), ३. प्रातःकाल, ४. चांद, ५. बृहस्पति ग्रह, ६. निकटता, ७. प्रकाश, ८. तक, ९. अपने सामने, १०. स्वर्ग, ११. ख़याल, १२. विवाह, १३. मिठास, १४. प्राप्त, १५. प्रफुल्लता प्रदान करनेवाली, १६. प्राण, १७. खुश, १८. देखनेवाला, १९. सौन्दर्य, छवि; २०. मिलन, २१. जादू का, २२. समीपता, २३. बीच, २४. चुम्बनों की भरमार, २५. अदृश्य, २६. मुँह, २७. सत्य, २८. प्रेम, २९. सांसारिक, ३० छिपा हुआ, ३१. प्रकट, ३२. दर्शन, ३३. दूसरे लोग, ३४. सभा, ३५. चुम्बन, ३६. प्याला. ३७. प्यासा, ३८. संवाद, बुलावा; ३९. ऐसी कविता जिसकी मध्यम पंक्ति का मतलब अन्त में पूरा होता है, ४०. मणि-माणिक्य का ख़जाना, ४१. चमक-दमक, ४२. बाह्यरूप देखनेवाले, ४३. अन्तरात्मा के पारखी, ४४. मृगतृष्णा, ४५. स्वर्ण-मण्डित, ४६. महल, ४७. चित्रित, ४८. कोठा, ४९. दरवाज़ा, ५०. स्वर्ग, ५१. चिन्ता, ५२. भव्य, ५३. ऊँचाइयाँ, ५४. ताखा, ५५. भौं।

सेहन में बुस्तां[१]-सरा ऐसे पुर अज़ गिलमान[२] वो हूर[३]
जिनके अन्हारों[४] में जाए[५] आब[६] वो गिल[७] ख़ालिस[८] गुलाब
इनमें थे वह साहबे-[९] सवत जिन्हें कहती थी ख़ल्क़[१०]
'कैक़बाद'[११] वो 'क़ैसर'[१२] वो 'कैख़ुस्रु'[१३] वो 'अफ़रासियाब'[१४]
मेहवश,[१५] बहराम[१६]-सौलत, बद्र[१७]-क़द्र वो चर्ख़-[१८]-रख़्श[१९]
मुश्तरी[२०]-हिम्मत, सुरैया[२१]-बारगह,[२२] कैवां[२३] जनाब[२४]
वह तजम्मुल[२५], वह तमौवुल[२६], वह तफ़ौवुक़[२७], वह ग़ुरूर[२८]
वह तहश्शुम[२९], वह तनौवुम[३०], वह तऐउश[३१], वह शबाब[३२]
हर तरफ़ फ़ौजे[३३]-बुतां[३४], हरसू[३५] हुजूमे[३६] गुल[३७]-रुखां
जिनके आरिज़[३८] रंजेमाह[३९] वो रश्के[४०] रूए[४१] आफ़ताब
चश्मक[४२] वो आन[४३] वो इशारात[४४] वो अदा वो सरकशी[४५]
तन्ज़[४६] वो ताडरीज़[४७] वो कनायत,[४८] ग़मज़ा[४९] वो नाज़ वो अताब[५०]
सुब्ह से ले शाम तक और शाम से लेता[५१] सुबह
मुत्तसल[५२] रक़्स[५३] वो सरोद[५४] वो पै-बपै[५५] जामे[५६] शराब
साक़ी[५७] वो मुतरिब[५८], नदीम[५९] वो मस्ती वो मैख़्वारगी[६०]
साग़र वो मीना, गुल वो इत्र वो मै वो नुल्क़[६१] वो कबाब
कसरते[६२] अहले[६३] निशात वो जोशे नोशानोश[६४] से
अज़[६५] ज़मीं ता आसमां शोरे नै[६६] वो चंग[६७] रुबाब[६८]
वह बहारें, वह फ़िज़ाएं[६९], वह हवाएं वह सरूर[७०]
वह तरब[७१], वह ऐश कुछ जिसका नहीं हद्दो-हिसाब
या तो वह हंगामए तनशीत[७२] था या दफ़अतन[७३]
कर दिया ऐसा कुछ इस दौरे[७४] फ़लक[७५] ने इनक़लाब

---

१. बाग़ में बने मकान, २. कम उम्रवाले सुन्दर लड़के, ३. परियां, ४. नहरें, ५. जगह, बदले, ६. पानी, ७. मिट्टी, ८. स्वच्छ, ९. धनवान् लोग, १०. जनता, ११, १२, १३, १४. ईरान, तूरान, रूम देशों के बादशाहों के नाम हैं; १५. सूर्य की भाँति, १६. एक ग्रह, १७. पूर्ण चन्द्र के ऐसा प्रताप, १८. आसमान, १९. घोड़ा, २०. बृहस्पति ग्रह, २१. एक नक्षत्र, २२. कचहरी, २३ एक नक्षत्र, २४. ड्योढ़ी, २५. ठाट-बाट, २६. धन-वैभव, २७. ऊँचाई, महानता, २८. घमण्ड, २९. ठाट-बाट, ३०. धन-वैभव, ३१. सुख-चैन, ३२. जवानी, ३३. सेना, भीड़; ३४. सुन्दरियाँ, ३५. ओर, ३६. भीड़, ३७. कमल-वदनियाँ, ३८. कपोल, ३९. स्पर्द्धा, डाह; ४०. चेहरा, ४१. चेहरा, कनखी, ४२. भावभंगी, ४३. संकेत, ४४. उद्दण्डता, ४५. व्यंग्य, ४६. विरोध, ताना; ४७. इशारा, ४८. कटाक्ष, ४९. जुल्म, कड़ाई; ५०. तक, ५१. लगातार, ५२. नृत्य, ५३. गाना, ५४. एक-पर-एक, ५५. प्याला, ५६. मधुबाला, ५७. गवैया, ५८. साथी, मित्र; ५९. मद्यपान, ६०. चिखना, ६१. अधिकता, ६२. आमोद-प्रमोद में लीन, ६३. रास-रंग, खाना-पीना; ६४. से, ६५, ६६, ६७, ६८. बांसुरी तथा अन्य वादन, ६९. वातावरण, ७०. आनन्द, नशा; ७१. खुशी, ७२. आमोद-प्रमोद, ७३. अचानक, एकाएक; ७४. चक्र, ७५. आसमान।

जो वः सब जाते रहे दम में हुबाब[१]-आसा[२] मगर
रह गए इबरत[३]अफ़्ज़ा वह क़स्रे[४] वीरानो-[५]-ख़राब
था जहाँ वह मजमए[६] आली[७] वहाँ अब है तो क्या
नक़्शे[८] सुम्मे[९] -गोर[१०] या कोहना[११] कोई परे-उक़ाब[१२]
हैं अगर दो ख़िश्त[१३] बाहम[१४] तो लबे[१५] अफ़सोस हैं
और जो कोई ताक़ है तो सूरते चश्मे[१६] पुर[१७] आब[१८]
ख़्वाब कहिए इस तमाशे को 'नज़ीर' अब या ख़याल
कुछ कहा जाता नहीं वल्लाहु[१९] आऽलम बिस्सवाब

यहाँ वाह्यरूप गजल का है, लेकिन वास्तव में क़िता है। इसकी पंक्तियों में जो सम्बन्ध है वह 'आतिश' की गजल के शेरों में नहीं। इससे स्पष्ट है कि इस क़िते के लिखने में काफ़ी परिश्रम किया गया है। क्लिष्ट कल्पना है, लेकिन कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है कि क्लिष्ट कल्पना का स्थान सहज भाव ने ले लिया है। इस क़िते के दो भाग हैं। पहले भाग में इस मणि-मण्डित भव्य-भवन-स्वरूप संसार का चमकता हुआ चित्र खींचा गया है।

वह मुतल्ला क़स्रे रंगीं वह मुनक़्क़श बाम बोदर
जिनकी रंगीनी से था क़स्रे अरम को पेच वो ताव

फिर एकाएक यह चित्र विलीन हो जाता है और ऐसा परिवर्त्तन होता है कि

हैं अगर दो ख़िश्त बाहम तो लबे अफ़सोस हैं
और जो कोई ताक़ है तो सूरते चश्मे पुर आब

चमक-दमक के सिवा, यहाँ भी वही अगले वर्ष की तीलियाँ हैं। विषय वही संसार की अनित्यता है और काव्य की दृष्टि से 'गालिब' का क़िता बहुत आगे है। 'ग़ालिब' के क़िते में सात शेर थे, यहाँ अट्ठारह हैं, लेकिन बात कुछ अधिक नहीं कही गई है और न अधिक काम ही की बात कही गई है। मैंने कहा है कि ये क़िते प्रायः बहुत संक्षिप्त होते हैं; यहाँ वह संक्षेपण नहीं, लेकिन अधिक विस्तार कोई गुण नहीं। जिस बात को हम सात शेरों में कह सकते हैं उसके लिए अट्ठारह शेर लिखना उचित नहीं।

हाँ, तो कहने का तात्पर्य यह था कि उर्दू में क्रमबद्ध गजल और क़िता दो चीजें ऐसी थीं, जिनपर नज़्म की आधार-शिला रखी जा सकती थी, किन्तु इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। जो क्रमबद्ध गजलें और क़िते उपलब्ध हैं, उनमें नज़्म का पूरा-पूरा भाव नहीं मिलता—'वोल-ओरलियन' की एक छोटी-सी नज़्म[१५] है :

---

१. बुलबुला, २. तरह, समान; ३. शिक्षा के प्रभाव डालनेवाले, ४. महल, ५. नष्ट-भ्रष्ट, ६. मण्डली, ७. सम्मेलन, ८. महान्, शानदार; ९. खुर, १०. नीलगाय, ११. पुराना, १२. गीध; १३. ईंट, १४. साथ, मिले हुए, जुटे हुए; १५. होंठ, ओठ; १६. आँख, १७. भरा हुआ, १८. पानी, १९. सही बात को भगवान् ही जानता है।

मेरा दिल रो रहा है
जैसे आकाश रो रहा है
आह ! यह कैसी ख़लिश[१] है
जो मेरे दिल में चुभी जा रही है

पृथ्वी पर, छतों पर
बूँदों की आवाज कैसी मधुर है
किसी व्यथित हृदय से
पावस[२] के गीत का लुत्फ़[३] पूछो

मेरा विदग्ध हृदय
अकारण रो रहा है
क्या किसी ने विश्वासघात नहीं किया ?
यह गम बिला[४] वजह है

सबसे निकृष्ट पीड़ा वही है
जिसका कारण समझ में न आए
मुझे न किसी से प्रेम है और न किसी से घृणा है
फिर भी मेरे दिल में कितना दर्द[५] है !

निराशा-जनित शान्ति और दिल की रगों का टूटना इसे कहते हैं। यह निजी अनुभव का प्रतिबिम्ब है। यहाँ बातें नहीं बनाई गई हैं; यहाँ मजमून[६] नहीं बाँधा गया है। यहाँ जो अनुपात तथा अनुरूपता, विचार, प्रगति, आदि, मध्य और अन्त में जो गहरा सम्बन्ध है, वह न 'आतिश' की गजल में है और न 'नज़ीर' अकबराबादी के क़िते में।

सन्दर्भ-संकेत

१. तीन उदाहरणों पर ध्यान दिया जाय :

1. My Daphne's hair is twisted gold,
Bright stars a-piece her eyes do hold,
My Daphne's brow enthrones the graces,
My Daphne's beauty stains all faces;
On Daphne's cheeks grow rose and cherry,
On Daphne's lips a sweeter berry,
Daphne's snowy hand but touched does melt,
And then no heavenlier warmth is felt;

१. चुभन, २. वर्षा, ३. आनन्द, मजा; ४. अकारण, ५. प्रेमभाव, ६. विषय।

My Daphne's voice tunes all the spheres,
My Daphne's music charms all ears
Fond am I thus to sing her praise,
These glories now are turned to bays.

[*John Lyly*]

2. Restore thy tresses to the golden ore,
Yield Cytherea's son those arcs of love,
Bequeath the heavens the stars that I adore,
And to the orient do thy pearls remove,
Yield thy hands' pride unto the ivory white,
To the Arabian odors give thy breathing sweet,
Restore thy blush unto Aurora bright.
To Thetis give the honour of thy feet;
Let Venus have thy graces her resigned,
And thy sweet voice give back unto the spheres;
But yet restore thy fierce and cruel mind
To Hycran tigers and to ruthless bears;
Yield to the marble thy hard heart again
So shalt thou cease to plague and I to pain.

[*Samuel Daniel*]

3. Fair is my love, when her fair golden hairs
With the loose wind ye weaving chance to mark;
Fair when the rose in her red cheeks appears;
Or in her eyes the fire of love does spark.
Fair, when her breast, like a rich-laden bark,
With precious merchandise she forth doth lay;
Fair, when that cloud of pride, which oft doth dark
Her goodly light, with smiles she drives away
But fairest she, when so she doth display
The gates with pearls and rubies richly dight;
Through which her words so wise do make their way
To bear the message of her gentle sprite
The rest be works of nature's wonderment
But this the work of heart's astonishment.

[*Edmund Spenser*]

२. My mistress' eyes are nothing like the sun;
Coral is far more red than her lips' red:
If snow be white, why then her breasts are dun:
If hairs be wires, black wires grow on her head.
I have seen roses damask'd red and white,
But no such roses see I in her cheeks;
And in some perfumes is there more delight
Than in the breath that from my mistress reeks.
I love to hear her speak,—yet well I know
That music hath a far more pleasing sound;
I grant I never saw a goddess go,—
My mistress, when she walks, treads on the ground;
And yet, by heaven, I think my love as rare
As any she belied with false compare.

[*Shakespeare* : Sonnet CXXX]

३. सन् १८१२ ई० में 'फ़ान हेमर' ने 'ख़्वाजा हाफ़िज़' के दीवान का पूरा अनुवाद प्रकाशित किया और उसी अनुवाद के प्रकाशन से जर्मन-साहित्य में प्राच्य आन्दोलन का आरम्भ हुआ........'ख़्वाजा हाफ़िज़' के अतिरिक्त 'गेटे' अपनी कल्पनाओं में 'अत्तार', 'शेख़ सादी', 'फ़िरदौसी' और आम इस्लामी साहित्य का भी कृतज्ञ है। एकाध स्थानों पर रदीफ़[1] व क़ाफ़िया[2] के साथ गजल भी लिखी है। और अपनी भाषा में फारसी-रूपकों को भी (जैसे—गौहरे[3] अशआर, तीरे मिज़गां,[4] ज़ुल्फ़े गिरहगीर[5]) बेधड़क प्रयोग करता है। बल्कि फारसीपने के जोश में बटुकोपासना की ओर भी संकेत करने में संकोच नहीं करता है। दीवान[6] के विभिन्न भागों के नाम भी फ़ारसी हैं—जैसे मुगन्नी-नामा, साक़ीनामा, इश्क़नामा, तैमूरनामा, हिकमतनामा इत्यादि। इन सब बातों के बावजूद 'गेटे' किसी फारसी-कवि का अनुयायी नहीं और उसकी कवि-सुलभ प्रकृति नितान्त स्वतन्त्र है। प्राच्य उद्यानों में उसका राग अलापना महज़ क्षणिक है। वह अपने पश्चिमीपने को कभी हाथ से नहीं देता....पीछे आनेवाले कवि, 'प्लाटन', 'रूकर्ट' और 'बोडेन- स्टाट' ने इस प्राच्य आन्दोलन को, जिसका आरम्भ 'गेटे' के दीवान से हुआ था, पूर्णता तक पहुँचाया। 'प्लाटन' ने साहित्यिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए फारसी भाषा सीखी। क़ाफ़िया, रदीफ़, बल्कि ईरानी पिंगल के नियमों का पालन करते हुए गजलें

१. गजल के प्रत्येक शेर का अन्तिम शब्द, २. तुक, ३. काव्य-पंक्तियों के मोती, ४. आँखों की बरौन-रूपी बाण, ५. लहराती अथवा पेचदार अलकें, ६. गजलों का संग्रह ।

लिखीं, रुबाइयाँ[1] लिखीं और नेपोलियन पर एक क़सीदा[2] भी लिखा। 'गेटे' की तरह फ़ारसी रूपक, जैसे 'उरूसे[3] गुल', 'ज़ुल्फ़े[4] मुश्कीं', 'लालाज़ार'[5] को भी बेखटक व्यवहार में लाता है और मात्र गजल की आत्मा पर जान देता है। 'रूकर्ट' अरबी, फ़ारसी और संस्कृत तीनों प्राच्य भाषाओं का ज्ञाता था। उसकी दृष्टि में मौलाना रूमी के दर्शन का बड़ा सम्मान था और उसकी गजलें अधिकांश रूमी ही के अनुकरण में लिखी गई हैं....'गेटे' के बाद प्राच्य रंग में सबसे अधिक स्वीकृत कवि 'बोडेन स्टाट' हुआ है, जिसने अपनी कविताओं को 'मिर्ज़ा शफ़ीअ' के फ़ारसी नाम से प्रकाशित किया। यह छोटा-सा संग्रह इतना स्वीकृत हुआ कि थोड़े ही समय में इसके १४० संस्करण निकले। इस कवि ने पाश्चात्य आत्मा को इस ख़ूबी से आत्मसात् कर लिया है कि जर्मनी में 'मिरज़ा शफ़ीऽ' के शेरों को लोग बहुत समय तक फ़ारसी-कविता का अनुवाद समझते रहे। ...निम्न श्रेणी के कवियों में 'ख़्वाजा हाफ़िज़' के अनुयायियों में 'डुमर', 'हर्मन स्टाल', 'लूश्के', 'स्टावर्गलिट्ज', 'लिण्ट होल्ड' और 'फ़ान शाक' भी उल्लेखनीय हैं...."

[पयामे 'मशरिक़' की भूमिका : 'इक़बाल']

Yasmin

४. How splendid in the morning glows the lily : with what grace he throws.
His supplication to the rose : do roses nod the head, Yasmin ?
But when the silver dove descends I find the little flower o.f friends,
Whose very name that sweetly ends I say when I have said Yasmin.
The morning light is clear and cold : I dare not in that light behold
A whiter light, a deeper gold, a glory too far shed, Yasmin.
But when the deep red eye of day is level with the lone highway
And some to Meccah turn to pray, and I toward thy bed, Yasmin :
Or when the wind beneath the moon is drifting like a soul aswoon,

१. चौपदे, २. उर्दू-फ़ारसी कविता का एक रूप, ३. नववधू के समान गुलाब, ४. कस्तूरी जैसी काली तथा सुगन्धित अलकें, ५. लाला के फूल की क्यारी।

And harping planets talk love's tune with milky wings out
spread, Yasmin;
Shower down thy love, O burning bright! for one night or
the other night
Will come the gardener in white, and gathered flowers are
dead, Yasmin.

[*James Elory Flecker*]

५. The *qita* (fragment) is properly a subdivision of the *qasida* i.e. it consists of a number of verses removed from their context in the *qasida* of which they formed a part. Such excerpts have no claim to be treated as an independent poetical type. But the name is also given to any poem, complete in itself, that follows the *qasida* pattern in respect of the monorhyme (which characterises all types of Persian Verse except the *mathnavi*) and cannot be classified either as a *rubai* or a *ghazal* or included among the Verse-forms of less importance. So the *qita*........ not being so narrowly restricted in length, affords larger opportunities both in the choice of a theme and in the way of handling it. More unconventional and spontaneous than the *qasida* and *ghazal*, this type comes nearer to our ideal of poetry........Man. *Qitas* are what the French call *vers' doccession* in the sense that their subject or motive is supplied by some circumstance of passing interest.

Unlike the *qita* which lends itself to every conceivable topic and occasion the *ghazal* is pre-eminently, though not exclusively, consecrated to love. Shorter than the *qasida* but otherwise resembling it in form, it differs from it and from the *qita* also in having less continuity and a lesser connection of ideas. The treatment of the subject is extremely conventional........... Though Persian amatory verse is seldom deficient in beauty of form, those who are most familiar with it will confess that as a whole, it suggests 'the little emptiness of love' rather than *la grande passion*. There are important exceptions, e.g., the semi-mystical odes in which love has become a religion and the

worship of human beauty is subtly mingled with raptness of divine enthusiasm...........The fashionable love lyric runs in a narrow world which very few Moslem poets have dared to break. Like mediaeval Minnesong, it is artificial and monotonous in phrase, and its sentiment (which may be quite genuine) leaves us unmoved.

६. The poetry of barbarism is not without its charm. It can play with sense and passion the more readily and freely in that it does not aspire to subordinate them to a clear thought or a tenable attitude of the will. It can impart the transitive emotions which it expresses; it can find many partial harmonies of mood and fancy; it can by virtue of its red-hot irrationality, utter wilder cries, surrender itself and us to more absolute passion, and heap up a more indiscriminate wealth of images than belong to poets of seasoned experience or of heavenly inspiration.

For the barbarian is the man who regards his passions as their own excuse for being; who does not domesticate them either by understanding their cause or by conceiving their ideal goal. He is the man who does not know his derivations nor perceive his tendencies, but who merely feels and acts, valuing in his life its force and its filling, but being careless of its purpose and its form. His delight is in abundance and vehemence; his art, like his life, shows an exclusive respect for quantity and splendour of materials. His scorn for what is poorer and weaker than himself is only surpassed by his ignorance of what is higher.

The world has no inside, it is a phantasmagoria of continuosu visions, vivid, impressive, but monotonous and hard to distinguish in memory. like the waves of the sea or the decorations of some barbarous temple, sublime only by the infinite aggregation of parts.

The poet, without being especially a philosopher, stands by virtue of his superlative genius on the plane of universal

reason, far above the passionate experience which he overlooks and on which he reflects; and he raises us for the moment to his own level, to send us back again, if not better endowed for practical life, at least not unacquainted with speculation.

He had not attained, studying the beauty of things, that detachment of the phenomenon, that love of the form for its own sake, which is the secret of contemplative satisfaction.

The passion he represents is lava hot from the crater, in no way moulded, smelted, or refined. He had no thought of subjugating impulses into the harmony of reason. He did not master life, but was mastered by it.

That life is an adventure, not a discipline; that the exercise of energy is the absolute good, irrespective of motives or of consequences. These are the maxims of a frank barbarism; nothing could express better the lust of life, the dogged unwillingness to learn from experience; the contempt for rationality, the carelessness about perfection, the admiration for mere force, in which barbarism always betrays itself.

[*George Santayana* : **Interpretation of Poetry & Religion**]

७. मआसिर...., अंक ४

८. Even his short poems have no completeness, no limpidity. They are little torsos made broken so as to stimulate the reader to the restoration of their missing legs and arms. What is admirable in them is pregnancy of phrase, vividness of passion and sentiment, heaped-up scraps of observation, occasional flashes of light, occasional beauties of versification,—all like

"the quick sharp scratch
And blue spurt of a lighted match."

There is never anything largely composed in the spirit of pure beauty, nothing devotedly finished, nothing simple and truly just.

[*George Santayana* : **Interpretation of Poetry & Religion**]

९. व क़ाल-लल हातिमी........

'नसीब' जिससे कवि अपनी रचना आरम्भ करता है, के विषय में 'हातिमी' का कथन है कि यह पीछे लिखे जानेवाले विषयों से जो प्रशंसा या निन्दा-सूचक होते हैं, पूर्णरूपेण संपृक्त हो, विलग न हो। क़सीदे के अंशों (खण्डों) की दशा

मनुष्य के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की-सी है। जब एक अङ्ग दूसरे से विलग होगा तो शरीर की बनावट बिगड़ जायगी, उनमें अनुपात न रहेगा, उसका सौन्दर्य नष्ट हो जायगा और उसके लेशमात्र चिह्न भी न रह जायेंगे।

[किताबुल अम्दा,....२, पृष्ठ ९४]

१०. मआसिर...., अंक ४

११. मआसिर...., अंक ४

१२. La derniere Feuille

Dans La foret Chauve et rovillee
Il ne reste plus au remeau
Qu'une Pauvre feuille oubliee,
Rien qu'une feuille et qu'un oiseau.
Il ne reste plus dans mon ame
Qu'un send amour pour y chanter,
Mais le vent d'automne qui brame
Ne permet pas de l'ecouter;
L' oiseau s'en va, la feuille tombe,
L' amour s'etient car c'est l'hiver.
Petit oiseau, veins sur ma tombe
Chanter, quand l'arbre sera vert !

[*Theophile Gautier* : 1811—1872]

१३. 'सरूर' साहेब कहते हैं :

(१) उर्दू-कविता की सर्वोत्कृष्ट क्रिया है—गजल। गजल सौन्दर्य एवं प्रेम की कहानी है। जबतक दुनिया में चाँदनी, बहार[1], जवानी, राग और सब्ज़ा[2] मौजूद है और उसका आकर्षण अवशिष्ट है, गजल भी ज़िन्दा है और उसकी सुषमा भी प्रकाशमान। मगर ज़िन्दगी महज़ चाँदनी और बहार का नाम नही। इसी तरह कविता महज़ गजलगोइ[3] में परिवेष्टित नहीं और न यह कहा जा सकता है कि गजल काव्य की पराकाष्ठा है....मैं गजल का बड़ा प्रशंसक हूँ....मगर मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि ताऊस[4] व रुबाब[5] के साथ शमशीर[6] व सेनान[7] के सौन्दर्य को भी ध्यान में रखना चाहिए।

(२) मैं गजल की रूप-माधुरी में विश्वास करता हूँ। यह हल्के-फुल्के सूक्ष्म जज़बात[8] को व्यक्त करने का अच्छा साधन है। कभी-कभी हम इसमें थोड़े-से ही शब्दों के द्वारा अच्छे-से-अच्छे विचारों को व्यक्त कर सकते हैं; कभी-कभी इसके माध्यम से हम सारी ज़िन्दगी पर नज़र डालकर फिर लौट सकते हैं। मगर

---

१. वसन्त, २. जमीन का ऐसा टुकड़ा, जिस पर हरी-हरी दूब जमी हुई हो, ३. गजल लिखना, ४. मोर, ५. एक बाजा, ६. तलवार, ७. भाला, ८. आवेग।

गजल के सत्तर पर्दों में जीवन-भर विचाराभिव्यक्ति करते रहने के बाद हमारी दशा उस क़ैदी की-सी हो गई है, जो अन्धकार के बाद प्रकाश का सामना नहीं कर सकता....गजल के इशारे, कनाये[1], उसकी बारीकियाँ और रहस्यपूर्ण बातें बड़ी ही अर्थ-गर्भित सही, लेकिन विस्तार, सर्जन, क्रमबद्ध विचार तथा व्याख्या-विवेचन में भी एक सौन्दर्य है।

(३) कहानियों और गजलों का आर्ट तलवार की धार का आर्ट है। दोनों ही वास्तव में चावल पर कुल-हु[2]-अल्लाह लिखने और चित्र-नगीने बनाने की कलाएँ हैं। दोनों में गौरव है, मगर दोनों में ख़तरा भी है। गजल के कारण हमारे कविगण न क्रमानुसार सोच सकते हैं न शृंखलाबद्ध ढंग से लिख सकते हैं। इशारों-इशारों में बातें करते रहने के कारण इनकी वाक्‌शक्ति नष्ट हो गई है। ये चीजों के सम्बन्ध से अवगत नहीं, न रचना के सौन्दर्य को जानते हैं.... गजल के कवि प्रायः नज़्म की रचनात्मक क्षमताओं का अनुमान नहीं कर पाते। इशारों-संकेतों पर रीझे हुए होने के कारण वे विस्तार, विवरण और विवेचन के सौन्दर्य को नहीं देख पाते।

(४) मुझे इसका एहसास है कि गजल के कारण बौद्धिक विच्छिन्नता में वृद्धि होती है; और यही कारण है कि हमारे यहाँ बड़ी कविताएँ और उपन्यास बहुत कम हैं; गजलें और कहानियाँ अधिक हैं। हमें यह भी स्वीकार है कि गजल के अधिकांश प्रतीक अब इतने घिस चुके हैं कि उनमें प्रफुल्लता शेष नहीं रह गई। फिर यह भी है कि गजल के कारण मनुष्य ज़िन्दगी-भर इशारों में बातें करता है और शॉर्टहैण्ड बोलता है। उसे विस्तार, विवरण तथा निर्माण के सौन्दर्य से कोई सम्पर्क नहीं होता। यही कारण है कि बहुत-से नज़्म के कवि भी नज़्म के नाम से गजलें लिखते हैं। वे नज़्म के प्लाट, उसकी रचना और चरम बिन्दु को जानते ही नहीं। लेकिन प्रेम-सम्बन्धी कविता के लिए गजल अब भी बहुत मौजूँ है।

(५) गजल पर आक्षेप लगाने या प्रशंसा करने से अधिक गजलगोई के ऐतिहासिक कारणों को समझना आवश्यक है। गजलगोई अच्छी चीज हो या बुरी, वह हमारी सभ्यता की एक परम्परा है और इस सभ्यता के सामने चूँकि कोई बड़ा आदर्श या बड़े ज़मीन व आसमान न थे, इसलिए यह चीज़ बँधे-बँधाये 'अक्षों' के चारों ओर घूमती रही और कुछ सीमित विचारों के उलट-फेर को ही जीवन का सार समझती रही। गजल ने संकेतों का आदी बना दिया, विस्तार और विवरण से दूर कर दिया; गजल वास्तविकता तक आवेगपूर्ण भावनाओं के द्वारा पहुँचने की कोशिश करती रही। उसने अध्ययन तथा निरीक्षण को

१. संकेत, २. ईश्वर या ब्रह्मवाक्य।

अधिक महत्त्व न दिया। गजल वह मसीह है, जिसके पास कोई सलीब[1] नहीं है। वह मुजाहिद[2] है, जिसके जेहाद[3] का कोई उद्देश्य नहीं, मगर जिसकी सचाई सर्वस्वीकृत है; यह वह सिपाही है, जो लड़ना जानता है, पर यह नहीं जानता कि क्यों लड़ता है।

(६) गजल कहनेवाला कवि कोई संदेश प्रस्तुत नहीं करता, वह समुद्र-तल से मुक्ता चुनने या बाग़ से कलियाँ तोड़ने ही में लगा रहता है। वह इन चीजों से कोई हार भी नहीं बना सकता। जहाँ कहीं कोई सुन्दर दृश्य नज़र आता है, वह अपना ऐनक सामने रख देता है। वह किसी एक दिशा में चलने का आदी नहीं और कोल्हू का बैल भी नहीं। वह चतुर्दिक की सैर करता है। वह एक पारद प्रकृति रखता है और किसी एक मंजिल पर नहीं ठहर सकता। वह बौद्धिक विच्छिन्नता का शिकार अवश्य है। उसे विचारों की विशृंखलता से दामन बचाना नहीं आता। वह संकेतों का इतना अभ्यस्त हो गया है कि साफ और दो टूक बात उसे कम आती है। मगर अपनी कमजोरियों के बावजूद वह कैसी उड़ान सिखाता है, वह किस प्रकार सागर को गागर में भर सकता है और एक शब्द में कैसी भक्-से उड़ जानेवाली बारूद भर देता है। वह कुछ न कहते हुए भी क्या-कुछ कह देता है। उसकी सभ्यता ने उसे यही मूक वार्त्ता सिखाई थी। यह मूक वार्त्तालाप प्राकृतिक रूप से इस चीख-पुकार के युग में अगला-सा आकर्षण नहीं रखता। इसलिए गजल वर्त्तमान युग में सारे रोगों का भेषज नहीं। वह आजकल के मानव की आत्मा की प्यास पूर्ण रूप से नहीं बुझा सकती। जिन्दगी की मंज़िल का एहसास, उसकी दिशा का निर्धारण और कारवाँ की चाल को तेज करने में उससे सहायता नहीं मिल सकती। नई यात्रा में यह हमारा पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकती, किन्तु राह का साथी अवश्य बन सकती है; और यात्रा पर चलते रहने के लिए अपनी विशिष्ट पारदर्शिता के द्वारा हमारे हृदय में कुछ उमंग भी भर सकती है। उसके आकर्षण तथा उन्माद से हम हरे-भरे हो सकते हैं।

'रशीद' साहेब कहते हैं :

(१) हम इससे इनकार नहीं कर सकते हैं कि अन्य विद्याओं तथा कलाओं की तरह पाश्चात्य देशों में कविता और साहित्य भी उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच चुका है, और यह बड़ी खुशी की बात है। कारण कि यह ऐसी पैतृक सम्पत्ति है, जिसमें प्रत्येक राष्ट्र और देश को जल्दी या देर से हिस्सा मिलेगा। इसकी उन्नति के जहाँ और बहुत-से कारण हैं, वहाँ एक कारण यह भी है कि पश्चिम

---

१. लकड़ी का वह चौखट, जिसपर ईसामसीह को फांसी दी गई थी, २. धर्मयुद्ध का सेनानी, ३. धर्मयुद्ध।

के विद्वद्वर और जनसाधारण दोनों ही न दैहिक छूत-छात में विश्वास रखते हैं, न मानसिक अस्पृश्यता में। इसलिए सामूहिक रूप से उनके साहित्यिक, नन्दतिक या रचनात्मक विचारों और सरगर्मियों को उनकी अत्यन्त बहुमुखी तथा दौड़ती-उछलती जिन्दगी से सीधे तौर पर जो प्रफुल्लता, शक्ति तथा विचित्रता मिलती हैं वह हमको मुयस्सर नहीं। इसके अतिरिक्त उनको जैसी वगटूट प्रतियोगिता का लगातार सामना रहता है, वह भी हमारे हिस्से में नहीं आई है। विचार करने की बात है कि जो काव्य-साहित्य अपेक्षाकृत प्राथमिक श्रेणी का हो या उससे कुछ ही आगे हो, उसपर आलोचना के ऐसे सिद्धान्त किस तरह लागू किये जा सकते हैं, जो अत्यन्त प्रौढ़ और उन्नत काव्य-साहित्य से ग्रहण किये गये हैं। हमारे काव्य-साहित्य के बहुत-से रूप अभी हमारे लेखकों की व्यक्तिगत गन्दगियों से परिष्कृत होकर व्यापक विस्तार नहीं प्राप्त कर सके हैं।

(२) गजल के विषय में एक दिलचस्प बात यह कही जाती है कि गजल लिखनेवाला कवि जगद्‌विख्यात कवि नहीं बन सकता। प्रश्न यह है कि गजलगो या किसी भी कवि के लिए जगद्विख्यात होना आवश्यक ही क्यों हो? अविभाजित भारतवर्ष काफ़ी बड़ा देश था; इस समय भी इसका क्षेत्रफल कुछ कम नहीं, लेकिन 'टैगोर' के अतिरिक्त कितने अन्य कवि जगद्विख्यात हुए? विश्वकवि होना निश्चय ही बड़े गौरव की बात है, लेकिन इतना भी नहीं कि यदि कोई कवि विश्वकवि न हो तो उसकी कविता उपेक्षित ठहराई जाय। ....'ग़ालिब', 'अनीस', 'अकबर', 'हाली', 'इक़बाल' इत्यादि विश्वकवि हुए विना ही उर्दू के बहुत श्रेष्ठ और अपने समय के अद्वितीय कवि हैं। शायद प्रभावग्राही होने के कारण मैं इस बात में भी विश्वास करता हूँ कि प्रत्येक कवि "जो कल्ब को गरमा दे और रूह को तड़पा दे" गौरव करने योग्य कवि है, चाहे उसपर विश्वकवि होने की छाप लगी हो या नहीं। इससे किसी बड़े कवि के महत्त्व को कम करना उद्दिष्ट नहीं, बल्कि अच्छे कवि को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना मन्तव्य है, जिसका वह अवश्य पात्र है।

(३) मैंने हमेशा इस बात को स्वीकार किया है कि उर्दू-कविता में गजल चाहे कितनी ही प्रिय तथा स्वीकृत क्यों न हो, वह सबसे उत्तम कविता नहीं है। कविता के इससे अधिक सराहनीय अंग हैं, जिनकी ओर हमारे कवियों ने या तो बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, और यदि दिया भी तो किसी-न-किसी कारण से दूर तक न चल सके। गजल की प्रचुरता, और ज्यादातर दूसरी और तीसरी श्रेणी के कवियों की बहुलता, इसको प्रमाणित करती है। और यह स्पष्टतया विदित है कि इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि यह आधिक्य गजल के सर्वगुण-सम्पन्न होने का प्रमाण है। इसके कारण तो गजल का मूल्य-महत्त्व घट गया है। गजलगोई यदि एक ओर इतनी सहज है कि उसे प्रत्येक योग्य-अयोग्य व्यक्ति

अपने मनोरंजन का साधन बना सकता है तो दूसरी ओर, इतनी कठिन भी है कि असाधारण योग्यतावाले कवियों को छोड़कर यह किसी और के काबू में नहीं आ सकती।

(४) जैसा कि पहले निवेदन कर चुका हूँ, गजल पर एक बड़ा आक्षेप खण्ड-विचारकता का लगाया जाता है, और यह सही है। लेकिन मुझे इसमें कोई खोट नज़र नहीं आता। उर्दू-साहित्य और कविता के बहुत-से ऐसे रूप हैं, जिनमें सम्बन्ध-समन्वय तथा आनुक्रमिक ढंग के साथ विचाराभिव्यक्ति की जा सकती है और की जाती रही है। इसलिए यदि यह कहा जाय कि हमारे काव्य में एक प्रकार की कविता ऐसी है, जो खण्ड-विचारकता पर आधारित है और इसका निर्माण उन लोगों के लिए हुआ है अथवा इसका आविर्भाव आपसे हुआ है, जो जीवन-वैचित्र्य तथा उसकी प्रवंचनाओं को देखते तो हैं टुकड़ों (bits) में या पृथक्-पृथक्, लेकिन उसको प्रस्तुत करते हैं बड़ी योग्यता तथा विवेचन-विस्तार के साथ पूर्ण इकाई (units) में, तो इसमें आपत्ति करने की कौन-सी बात है। इस प्रकार खण्ड-विचारकता कुछ और नहीं, तो दोष होते हुए भी 'गुण' ठहराई जा सकती है।........

गजल में खण्ड-विचारकता को एक और दृष्टिकोण से देखना चाहिए। अभी-अभी निवेदन कर चुका हूँ कि खण्ड-विचारकता दोष ही नहीं, गुण भी हो सकती है। कवि अपने आवेगों, चिन्तनों तथा अनुभवों को जल्दी-से-जल्दी, संक्षिप्त तथा हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत कर देता है। यह गुण प्रत्येक कवि में नहीं पाया जाता, किन्तु हर कवि कुछ-न-कुछ कहता ही रहता है। तो फिर उसकी थकी, हारी, घिसी-पिटी कविता को इतना महत्त्व क्यों दिया जाय और उसे इतना विस्तृत क्यों बनाया जाय कि उसकी लपेट में प्रमुख कविगण भी आ जाते हों। यदि इस अनहोनी बात को सम्भव मान भी लिया जाय कि साधारण कवि के हृदय में दैवी प्रेरणा हो तो वह उसे विकृत कर देगा। रहा यह कि गजल के होते हुए हमारी कविता में कवि को नये अनुभवों की अभिव्यक्ति का अवसर नहीं मिलता और हमारा कवि घूम-फिरकर वही अगले बरस की कफ़स की तीलियों में फँसकर रह जाता है। यह आक्षेप सही है, लेकिन सभी कवियों की रचनाओं के विषय में सत्य नहीं।

खण्ड-विचारकता अच्छी चीज हो या न हो, एक तथ्य अवश्य है....

१४. Death be not proud, though some have called thee
Mighty and dreadful, for thou art not so,
For those, whom thou think'st thou dost overthrow.

Die not, poore death, nor yet canst thou kill me.
From rest and sleepe, which but thy pictures bee,
Much pleasure, then from thee, much more must flow,

And soonest our best men with thee doe goe,
Rest of their bones and soules deliverie.
Thou art slave to fate, chance, kings and desperate men,
And dost with poyson, warre, and sickness dwell,
And poppie, or charms can make us sleepe as well,
And better than thy stroake, why swell'st thou then
One short sleepe past, we wake eternally,
And death shall be no more; death thou shall die.

१५. ARIETTE

Il pleure dans mon coeur
Comme il pleut sur la ville;
Quelle est cette langueur
Qui penetre, mon coeur ?

O bruit doux de la pluie
Par terre et sur les toits ?
Four un coeur qui s'ennuie,
O le chant de la pluie ?

Il pleure sans raison
Dans ce coeur qui s'ecoeure.
Quoi ! mulle trahison ?
Ce deuil est sans raison.

C'est bien la pire peine
De ne savoir pourquoi,
Sans-amour et sans haine,
Mon coeur a tant de peine,

[*Paul Verlaine*]

३

उर्दू-कविता का इतिहास अपना विषय नहीं; इसलिए बहुत-से ऐसे कवियों की यहाँ कोई चर्चा नहीं, जो उर्दू-साहित्य में काफ़ी महत्त्व रखते हैं। मेरा तात्पर्य यह है कि जो मानक मैंने स्थिर किये हैं उनके आलोक में कुछ सुविख्यात कवियों की रचनाओं की जाँच-परख की जाय। 'मीर', 'सौदा', 'दर्द' एक ओर, तो 'ज़ौक़', 'ग़ालिब', 'मोमिन' दूसरी ओर इस काम के लिए मौज़ूँ हैं। मैंने इन्हें इसलिए चुना है कि ये उर्दू के प्रमुख कवियों में हैं। इनकी गजलों से अधिक-से अधिक लोग अवगत हैं और इन कवियों पर आलोचना करते हुए मुझे जो कुछ उर्दू-गजल और गजलगो कवियों के विषय में कहना है उसे मैं सुगमतापूर्वक कह सकता हूँ।

मुझे कहने दीजिए कि इन कवियों मे उच्चकोटि का कवि होने की क्षमता मौजूद थी और यह तथ्य गजल की ख़ामी और संकीर्णता के बावजूद प्रकट है। अफ़सोस है तो यह है कि ये अपनी योग्यता से पूरा-पूरा काम न ले सके और इस त्रुटि का इलज़ाम भी उनपर नहीं। जिस माहौल में वे पले, जो परम्पराएँ उन्हें पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में मिलीं, जो नमूने उनके सामने थे, उन चीजों ने उनकी कवित्व-क्षमता को एक ढर्रे पर लगा दिया। हाँ, यदि वे पाश्चात्त्य साहित्य से अवगत होते, उच्चकोटि की कविता के नमूने उनके सामने होते और वे काव्य के सही अर्थ को समझते तो सम्भवतः अधिक अच्छे कवि होते, और आज उर्दू-कविता साहित्य-संसार में इतनी गिरी हुई दशा में न दीख पड़ती। लेकिन वे अपनी परम्परा से मजबूर थे। फारसी-कविता के प्रभाव ने मानों उड़ने की शक्ति का ही शोषण कर लिया और उनके मूल्यवान् गुण सारे-के-सारे नष्ट हो गये। उनकी गजलों में मूल्यवान् रत्न नहीं, रत्नों के टुकड़े हैं। हाँ, इन टुकड़ों से अन्दाजा होता है कि असली जवाहिरात कितने बेशकीमत होंगे।

'आज़ाद' ने अपने काव्य गुरु 'ज़ौक़' के मुख से 'मीर' के सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख किया है :

"स्वर्गीय गुरुदेव एक वयोवृद्ध सज्जन के मुख से बयान करते थे कि एक दिन वे 'मीर' साहेब के पास गये। निकलते जाड़े के दिन थे, वसन्त का आगमन था। देखा, टहल रहे हैं, चेहरे पर उदासी छाई है और रह-रहकर यह मिसरा[१] पढ़ते हैं :

'अब के भी दिन बहार के यों ही गुज़र गये'

ये सलाम करके बैठ गये। थोड़ी देर बाद उठे और सलाम करके चले आये। 'मीर' साहेब को खबर भी न हुई। भगवान् जाने, दूसरे मिसरे की फ़िक्र में थे या इस मिसरे की भाव-प्रवणता में डूबे हुए थे।"

मैं समझता हूँ कि 'आज़ाद' के दोनों अनुमान ग़लत हैं। 'मीर' के दिल में कैसे-कैसे जज़्बात उत्पन्न होते होंगे ! वसन्त की बहुरंगियां और उसका आनन्द-सन्देश, सारे संसार की

१. उर्दू-शेर की अर्द्ध पंक्ति।

प्रफुल्लता और आमोद-प्रमोद, तब अपनी दरिद्रता, निर्धनता, निराशा तथा दुःखमय जीवन—ये सारी चीजें आँखों के सामने घूमती रही होंगी। वसन्त अपनी चित्ताकर्षक सुषमा के साथ आये और सारी दुनिया को खुशी से निहाल करे, लेकिन 'मीर' का मुरझाया हुआ दिल विकसित नहीं हो सकता था, ऐसी कितनी बहारें[1] आईं और गईं, लेकिन 'मीर' के दिल की कली कभी न खिली। वसन्त की क्या-क्या मन्त्र-मुग्धकारी तरुणाइयाँ, हास-विलास के कैसे-कैसे चित्र, कैसी रंगीन तरंगें, कितनी हृदयग्राही आशाएँ और पद-दलित अभिलाषाएँ 'मीर' के सामने न होंगी, जिनका वे चित्रण करना चाहते होंगे। लेकिन मनोवाञ्छा को व्यक्त करने की कुंजी उनके पास कहाँ! इस एक मिसरे में इन बहुमुखी आवेगों, विचारों और चित्रों की बस एक अपूर्ण-सी झलक अलबत्ता नजर आती है। मेरा खयाल है कि इस घटना में सारे गजलगो[2] कवियों की कहानी छिपी है। इस किस्से से गजल की सीमा और उसकी पराकाष्ठा प्रकट है।

(२) 'मीर' की संवेदनशीलता विशिष्ट तथा सीमित ढंग की थी। या यों कहिए कि 'मीर' की दुनिया तंग थी। मीर उन्हीं अन्तर्बहिः प्रभावों को ग्रहण करते थे, जो एक विशिष्ट रंग के अर्थात् दर्द-ग़म का नमूना होते थे। उनके स्वभाव की इस विशिष्टता को, माहौल के प्रभाव और उनकी जिन्दगी का जैसा ढाँचा बन गया था उसने, और भी सुदृढ़ कर दिया था। आनन्द-प्रद हर्षवर्धक प्रभाव 'मीर' को पसन्द न थे। उनका उदासीन स्वभाव सफल-मनोरथ चित्त को प्रफुल्लित करनेवाले आवेगों की ओर उन्मुख न होता था। उनकी विपद्ग्रस्त अवस्था विशद कल्पना से भागती थी। यही कारण है कि मीर के आवेगों तथा कल्पनाओं में विभिन्नता नहीं। सब एक ही रंग में रँगे हुए हैं। केवल यही नहीं, 'मीर' की बुद्धि और समझ-बूझ भी सीमित ढंग की थी। उनके विचार गहरे व उदात्त नहीं, सतही और साधारण हैं। किसी स्थान पर भी वे उच्च कोटि की मानसिक शक्ति रखने का प्रमाण उपस्थित नहीं करते। चिन्तन-मनन उनकी आदत थी, किन्तु इस ग़ौर-फ़िक्र का कोई प्रभावशाली फल देखने मे नहीं आता। मानसिक शक्ति की तरह उनकी कल्पना में भी वह ज़ोर नहीं, वह गौरव तथा महानता नहीं, जो कतिपय अन्य कवियों की कल्पना की प्रमुख विशेषता है। यह सब कुछ सही, लेकिन अपनी सीमाओं के भीतर 'मीर' लाजवाब हैं। कुछ बातें ऐसी हैं, जो केवल उन्हीं की विशेषताएँ हैं और इस दृष्टि से वे अद्वितीय व अकेले हैं। मैंने कहा है कि उनकी अनुभूतियों की दुनिया सीमित तथा संकीर्ण थी। लेकिन वे जो कुछ भी महसूस करते थे उसे प्रबल रूप से महसूस करते थे। वे स्वयं भी प्रभावित होते थे और दूसरों को भी प्रभावित करते थे। उनके विचार मामूली सही, लेकिन उनमें एक जोश व ख़रोश है, इसलिए कि वे जोश के साथ महसूस किये गये हैं। आवेगों की तीव्रता ने मानों उनका रूप ही बदल दिया है। उसी तरह 'मीर' की कल्पना में ऊँचाई पर उड़ने की शक्ति कम और क्षीण सही, किन्तु जहाँ तक उसकी उड़ान है, जिन चीजों तक उसकी पहुँच है, उन सबका चित्र बहुत ही साफ तथा हृदयग्राही ढंग से खींचा गया है।

इस समग्र वर्णन का विवेचन यह है : 'मीर' की दुनिया में प्रेम का साम्राज्य है, वहाँ प्रेम

---

१. वसन्त, २. गजल लिखनेवाले।

ही का सिक्का चालू है। प्रेम सर्वव्यापी है, कोई स्थान प्रेम से खाली नहीं, कोई हृदय ऐसा नहीं, जिस पर प्रेम का शासन न हो, वे लिखते हैं :

क्या हक़ीक़त[१] कहूँ कि क्या है इश्क़[२] + हक़[३] शेनासों का हाँ ख़ुदा है इश्क़
इश्क़ से जा[४] कोई नहीं ख़ाली + दिल से ले[५] अर्श तक भरा है इश्क़

यह एक बुरी बला है। यदि यह 'फ़रहाद' को पहाड़ काटने की शक्ति प्रदान करता है तो यह मृत्यु का 'दुलार का नाम' भी है। इस आकस्मिक संकट की विशेष कृपादृष्टि हुई तो दिल पर :

जोशे मुहीते[६] इश्क़ में क्या जी से गुफ़्तगू[७]
इस गौहरे[८] गिरामी[९] से अब हाथ धो रहो

'मीर' को इश्क़ के एक ख़ास रुख़ से परिचय है। वे इसे आमोद-विलास का हेतु नहीं समझते। उनके खयाल में इसका परिणाम सदा निराशाजनक होता है। इस विषय में 'मीर' प्रचलित विचारधारा का अनुसरण करते हैं, लेकिन उनका अनुसरण अन्धानुसरण नहीं। 'मीर' की आँखों ने प्रेम की यह छवि देखी थी। कहा जाता है कि 'मीर' के दिल को प्रेम ने अपना निशाना बनाया था। उसी ने उनके हृदय को शोक-ग्रस्त तथा उदासीन बना दिया था। यह घटना सही हो या गलत, 'मीर' के शेरों से स्पष्टतया विदित है कि जिन भावावेशों की अभिव्यक्ति वे अपने शेरों में करते हैं, उनको उन्होंने अपने दिल में जोश के साथ महसूस किया था :

बुतां[१०] के इश्क़ ने बेअख़्तियार[११] कर डाला
वह दिल कि जिसका ख़ुदाई[१२] में अख़्तियार रहा
वह दिल कि शाम व सेहर[१३] जैसे पक्का फोड़ा था
वह दिल कि जिससे हमेशा जिगर फ़िगार[१४] रहा
तमाम उम्र गई उस प हाथ रखते हमें।
वह दर्दनाक[१५] अलग़रज़[१६] बेक़रार[१७] रहा
सितम[१८] मे, ग़म में सरअंजाम[१९] उसका क्या कहिए
हज़ारों हसरतें[२०] थीं तिस प[२१] दिल को मार रहा
बहा, तो ख़ून हो आँखों की राह बह निकला
रहा जो सीनए सोज़ां[२२] में दाग़दार रहा
सो उसको हमसे फ़रामोशकार[२३] यों ले गये
कि उससे क़तरए ख़ूँ भी न यादगार रहा

इस क़िते[२४] में प्रेम की मृत यातना का दुःख-भरा वर्णन है। यह सही है कि यहाँ भी वर्णन-शैली

---

१. सत्य, तथ्य; २. प्रेम, ३. सत्य को पहचाननेवाले, ४. जगह, स्थान; ५. वह कुर्सी, जिस पर खुदा बैठता है, ६. समुद्र, ७ वार्त्तालाप, बातचीत; ८. मोती, ९. बहुमूल्य, १०. सुन्दरियाँ, ११. विवश, १२. सृष्टि, १३. प्रातःकाल, १४. फटा हुआ, १५. पीड़ाजनक, १६. सारांश यह कि, १७. अधीर, १८. अत्याचार, जुलम; १९. अन्ततोगत्वा, २०. अपूर्ण अभिलाषाएँ; २१. उस पर भी, २२. विदग्ध हृदय, २३ भूल जानेवाले, भुलक्कड़; २४. उर्दू-कविता का एक रूप-विशेष।

आम ढंग की है और विचार तथा उसकी अभिव्यक्ति में प्रचलित प्रथाओं की पावन्दी की गई है, लेकिन इस क़िते की सत्यता से किसे इनकार हो सकता है। आवेगों की तीव्रता ने कविता का रूप धारण कर लिया है। यदि 'मीर' के आगे काव्य के उत्तम नमूने होते और वे उनकी ओर ध्यान देते, तो अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त करते।

वात यह है कि 'मीर' प्राकृतिक रूप से विदग्ध हृदय लेकर आये थे। प्रेम की उलझनों ने इस विदग्धता में और वृद्धि कर दी। उनकी जिन्दगी के ढाँचे ने प्रेम का अनुमोदन किया। उन्हें चारों ओर अपने व्यक्तिगत दु:खमय जीवन का ही चित्र दिखाई पड़ा। माहौल ने इस विचारधारा का और विशिष्ट रूप से समर्थन किया। यही कारण है कि 'मीर' की दुनिया इतनी अन्धकारमय है; कहीं पर आशा का सितारा चमकता हुआ दिखाई नहीं देता; उनकी जिन्दगी दु:ख से भरी थी। सगे-सम्वन्धियों की वेमुरौवती, दरिद्रता-निर्धनता, उसपर दिल्ली की वरवादी, आम वरवादी और क्रान्त ने उनके संवेदशील हृदय को दु:ख-शोक का भण्डार वना दिया था। वे कहते हैं :

कैसे-कैसे मकान हैं सुथरे + एक अज़ां[1]-जुमला करवला[2] है यहाँ
एक सिसकता हैं एक मरता है + हर तरफ़ ज़ुल्म हो रहा है यहाँ
सद[3] तमन्नां[4] शहीद[5] हैं यक जा[6] + सीना[7]-कोवी है ताज़िया[8] है यहाँ
दीदनी[9] है अवस[10] यह सोहवते[11]-शोख़ + रोज़ो शव[12] तुर्फ़ा[13] माजरा[14] है यहाँ
ख़ानए[15] आशिक़ां[16] है जाए[17]-ख़ूव + जाय रोने की जा-व[18]-जा है यहाँ

संसार एक करवला है। अरमान आते हैं तो वलिदान होने के लिए। कोई सिसकता है तो कोई दम तोड़ रहा है। सारांश यह कि चारों ओर दुख-दर्द का सामान है। फिर छाती पीटना क्यों न हो। रोने-कलपने के सिवा कोई उपाय नहीं। 'मीर' हैं और रोना :

मुझे काम रोने से अकसर[19] है नासिह[20] + तू कवतक मेरे मुँह को धोता रहेगा

उनके दिल ने वह नाला[21] पैदा किया है कि जिससे जरस[22] के भी होश उड़ते हैं। लेकिन 'मीर' को रोने का कुछ शौक नहीं। क्या करें दिल के हाथों मजवूर हैं :

मनए[23]-गिरिया न कर तू ऐ नासिह + इसमें बेअख़्तियार[24] हैं हम भी

मनुष्य रोने के लिए वाध्य क्यों न हो जव इस दुनिया में कोई आशा पूरी न हो, जव इस संसार-रूपी उद्यान में वह फूलों की सुगन्ध से परिचित न हो, जव उसके दिल की कली कभी न खिले :

हम तो ना काम[25] ही जहां[26] में रहे + यां कभू[27] अपना मुद्दआ[28] न हुआ

यदि 'शिक्षा ग्रहण करनेवाली आंख' हो तो 'मीर' को देखो और शिक्षा ग्रहण करो; यदि

१. उन सवमें से, २. वह स्थान, जहाँ हज़रत हुसेन मारे गये थे, दु:ख की जगह; ३. सौ, ४. इच्छा, अभिलाषा; ५. वलिदान, ६. स्थान, जगह; ७. छाती पीटना, ८. काग़ज़ का वना हुआ इमाम हुसेन के मकवरे का ढाँचा, ९. दर्शनीय, १०. निरर्थक, ११. सहवास, १२. दिन-रात, १३. विचित्र, १४. घटना, हाल; १५. घर, १६. प्रेमियों, १७. स्थान, १८. स्थान-स्थान पर, १९. वहुधा, २०. शिक्षा देनेवाला, २१. विलाप, २२. घंटा, २३. रोकना, २४. अधीर, २५. निष्फल, २६. संसार, २७. कभी, २८. अभीष्ट. मन्तव्य।

"धर्मोपदेश सुननेवाले कान" रखते हो तो 'मीर' की सुनो और अक्ल के नाख़ुन लो :

सब्ज़ होती ही नहीं यह सरज़मीं[१] + तुख़्मे[२] ख़्वाहिश दिल में तू बोता है क्या

सुख-चैन की आशा निरर्थक है, आराम की इच्छा अनुचित है। धरती कठोर है और आकाश दूर है। आसमान क्षण-भर के लिए भी सुख-चैन से जीवन व्यतीत करने का अवसर नहीं देता, सदा निराशा-ही-निराशा मनुष्य के भाग्य में लिखी है :

अबके भी सैरे बाग़ की जी में हवस[३] रही
अपनी जगह बहार में कुन्जे[४] क़फ़स[५] रही
मैं पा शिकस्ता[६] जा न सका क़ाफ़िले[७] के साथ
आती अगरचे[८] देर सदाए[९] जरस[१०] रही
जों[११] सुब्ह इस चमन[१२] में न हम खुलके हँस सके
फ़ुर्सत[१३] रही जो 'मीर' भी सो एक नफ़स[१४] रही

कितनी हसरत से भरे ये चित्र हैं। इस दुःख के समय में जीवन-अवधि के क्षण-मात्र-भर की ही होने का ध्यान आने से शोकाकुलता और भी बढ़ जाती है :

कहा मैंने कितना है गुल[१५] का सबात[१६]
कली ने यह सुनकर तबस्सुम[१७] किया

केवल गुल ही नहीं, सारा संसार क्षण-भंगुर है। जीवन-अवधि कम है और इस थोड़े समय में एक एक क्षण के लिए भी सुख-चैन प्राप्त नहीं। सभी सांसारिक वस्तुएँ नश्वर हैं :

आई नज़र जो गोर[१८] 'सुलेमां' की एक रोज़
कूचे[१९] पर उस मज़ार[२०] के था यह रक़म[२१] हुआ
के सरकशां[२२] जहां में खिंचा था यही तो सिर
पायाने[२३]-कार मोर[२४] की ख़ाके[२५] क़दम हुआ

दुनिया से दिल लगाना भूल है, शान-शौकत पर भरोसा करना मूर्खता है, धन-सम्पत्ति पर गर्व करना निरर्थक है। निराशा और फिर संसार की अनित्यता का ख़याल, 'मीर' का हृदय शोक-सन्ताप का निशाना क्यों न हो :

चार दीवारिए[२६]-अनासिर[२७] 'मीर' + खूब जागह[२८] है पर है बेबुनियाद[२९]

यही निस्सारता देखकर 'मीर' 'ताज़ा वारिदाने-बिसाते-हवाय[३०] दिल' को चेतावनी देते हैं कि इस दुनिया में किसी से दिल न लगा, नहीं तो निराशा और अफ़सोस के सिवा वहाँ क्या लाभ होगा।

---

१. भूमि, २. बीज; ३. तृष्णा, ४. कोना, ५. पिंजड़ा, ६. भग्न, टूटा हुआ; ७. कारवाँ, ८. यद्यपि, ९. आवाज़, १०. घण्टा, ११. समान, ऐसा; १२. बाग़, उद्यान; १३. मोहलत, अवकाश; १४. श्वास, क्षण; १५. फूल, गुलाब का फूल; १६. स्थिरता, १७. मुस्कराहट, १८. क़ब्र, १९. गली, २०. क़ब्र, २१. लिखा हुआ, २२. उद्दण्ड लोग, २३. अन्ततोगत्वा, २४. चींटी, २५. पैर की धूल, २६. परिधि, घेरा; २७. तत्त्व, २८. स्थान, २९. निराधार, ३०. दिल की वासनाओं के फ़र्श पर अभी आकर बैठनेवाले नौजवान।

ऐसी दशा में सन्तोष ही करना अच्छा है :

> मत ढुलक मिज़गां[1] से अब तू ऐ सरिश्के[2] आबदार[3]
> मुफ़्त में जाती रहेगी तेरी मोती की सी आब[4]
> कुछ नहीं, बहरे[5]-जहां[6] की मौज[7] पर मत भूल 'मीर'
> दूर से दरिया नज़र आता है लेकिन है सुराब[8]

इसलिए वह शिक्षा देते हैं :

> दुनिया की न कर तू ख़्वास्तगारी[9] + इससे कभी बहराबर[10] न होगा

इस सरसरी जायज़ा लेने से यह बात तो स्पष्ट हो गई: कि प्रेम की सितम-अंगेज़ी[11], निराशा तथा शोक-दुःख की उत्ताल तरंगों का वर्णन, संसार की अनित्यता, अकिंचनता व सन्तोष की शिक्षा, यही 'मीर' की कविता के चार तत्त्व हैं। इन्हीं का वर्णन विभिन्न रूपों में बार-बार होता है। ये विषय नये नहीं, इनसे उर्दू गजलें भरी-पड़ी हैं। किन्तु 'मीर' की पंक्तियों में ये बहु-प्रयुक्त विषय एक विचित्र भाव-प्रवणता धारण कर लेते हैं। यह असर किसी दूसरे उर्दू-कवि के वस की बात नहीं। यही कारण है कि बहुप्रयुक्त विषय भी घिसे-पिटे, सामने पड़े हुए नहीं जान पड़ते, बल्कि एक प्रकार का नयापन लिये हुए होते हैं। उनमें एक अपनी अलग विशिष्टता होती है, जिसे 'मीरपन' कह सकते हैं और सच है कि नयापन अपने-आप में कोई प्रशंसनीय वस्तु नहीं और यह भी आवश्यक नहीं कि कवि सोच-सोचकर नई-नई बातों का आविष्कार करे। जानी हुई बातें, आम मानवीय अनुभूतियाँ शेर की सामग्री बन सकती हैं। हाँ, शर्त्त यह है कि कवि उन्हें जोश के साथ महसूस करे, उनपर अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दे। यदि ऐसा हुआ तो जानी हुई बातें नई हो जाती हैं, आम मानवीय अनुभूतियाँ ख़ास निजी अनुभूतियों का रूप धारण कर लेती हैं। यही बात 'मीर' में पाई जाती है। यदि 'मीर' नज़्म के सही अर्थ को जानते होते और गजल के बदले नज़्में लिखते तो वे संसार के एक बहुत ही अच्छे निराशावादी कवि होते। 'मीर' ने जिस सफ़ाई, भाव-प्रवणता और संवेदनशीलता के साथ इन जज़्बात की अभिव्यंजना की है उससे किसे इनकार हो सकता है। लेकिन उनका चित्र-चित्रण एक विशिष्ट ढंग का है। वे केवल कुछ ही भावावेशों की अभिव्यक्ति करते हैं। चित्र का दूसरा मुखपृष्ठ उनकी रचना में नहीं दीख पड़ता। शोक, दुःख की बात अपनी जगह पर ठीक है, लेकिन मनुष्य अपने साहस तथा बल-पौरुष से मुसीबतों का सामना कर सकता है। कम-से-कम दुःख-दर्द को सहन तो कर ही सकता है। दुनिया की ख़राबी-बरबादी दुरुस्त, लेकिन मनुष्य इस मुश्किल को आसान करने का रास्ता ढूँढ सकता है। 'मीर' के दिल में इस प्रकार का विचार भी कभी नहीं होता। वह तो भाग्यवादी मत में विश्वास करते हैं; जो कुछ होना है वह होकर रहेगा। मनुष्य मुसीबतों का शिकार-मात्र हो सकता है और बस। दूसरा कोई उपाय नहीं। इसीलिए

---

१. आँखों की पलकों पर के बाल, बरौनी; २. आँसू, ३. चमकीला, ४. पानी, चमक; ५. समुद्र, ६. संसार, ७. लहरें, तरंग; ८. मृग-मरीचिका, ९. माँग, चाह; १०. भाग पानेवाला, लाभान्वित होनेवाला; ११. अत्याचार।

'मीर' संसार-त्याग की शिक्षा देते हैं; और सच तो यह है कि जिन्दगी का जो रुख़ वह दिखलाते हैं उसे देखकर किसी का जी दुनिया में लग भी नहीं सकता। 'मीर' कहते हैं :

मैं कौन हूँ ऐ हम[१]-नफ़सां सोख़्ता[२] जां हूँ
एक आग मेरे दिल में है जो शोला[३]-फ़िशां हूँ

'मीर' की कविता उनके विदग्ध हृदय की व्याख्या है। उनके दिल में एक आग है और उनकी कविता इसी आग की व्यंजना है।

छाती जला करे है सोज़[४] दुरूं[५] बला है + एक आग सी लगी है क्या जानिए कि क्या है
हो जाय यास[६] जिसमें सो आशिक़ी है वरना[७] + हर रंज को शफ़ा[८] है हर दर्द की दवा है
शादी[९] ऐ ग़म जहाँ में दह[१०] चंद हमने पाया + है ईद एक दिन तो दस रोज़ यां एज़ा[११] है
फिरते हो 'मीर' साहेब सबसे जुदा-जुदा तुम + शायद कहीं तुम्हारा दिल इन दिनों लगा है

इस अभ्यन्तर की विदग्धता से 'मीर' की छाती 'जला करे है'। इसी वजह से 'मीर' की कविता कविता नहीं, एक नाचती हुई ज्वाला है :

आजकल बेक़रार हैं हम भी + बैठ जा चलते, यार, हैं हम भी
आन में कुछ हैं आन में कुछ हैं + तोहफ़ए रोज़गार हैं हम भी
मनए-गिरिया न कर तू ऐ नासिह + इसमें बेअख़्तियार हैं हम भी
नाले करियो समझके ऐ बुलबुल + बाग़ में एक किनार हैं हम भी

कैसी हसरत कूट-कूटकर भरी है! इस हसरत का सादगी, सफ़ाई, पवित्रता के साथ संगीतमय वर्णन है। जब 'मीर' अपने आवेगों की अभिव्यंजना करते हैं, ऐसे आवेग, जिन्हें व्यक्तिगत रूप से उन्होंने महसूस किये हैं तो उनकी पंक्तियों में एक आश्चर्यजनक सादगी पाई जाती है। सीधे-साधे, छोटे, कोमल शब्दों में वे अपनी अछूती अनुभूतियों तथा भाव-प्रवणता को सफाई के साथ संवेदनशील ढंग से समग्र रूप में बयान करते हैं। और उनके शेरों में ऐसी स्वर-लहरी होती है, मानों उनमें संगीत की आत्मा आ बसी है। वे इन मामूली शब्दों में ऐसा जादू भर देते हैं कि उससे दिल पर गहरा असर होता है गोया उन शब्दों में रासायनिक परिवर्त्तन हो जाता है और उनकी प्रकृति बदल जाती है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर बड़ी सुन्दरता और आसानी के साथ जम जाता है। शब्दों की व्यवस्था भी प्रायः वही होती है, जो बोलचाल में प्रचलित है। यह तो मालूम ही नहीं होता कि गजल लिखी गई है; बल्कि ऐसा जान पड़ता है, जैसे कोई बातें कर रहा है, और बातें भी ऐसी, जो हृदय की कोर छू लेती हैं। यदि प्रत्येक शब्द को अलग-अलग देखा जाए तो शब्दों में कोई खास बात नहीं, लेकिन उनके मेल से एक विचित्र जादू पैदा हो जाता है।

'मीर' कुशल चित्रकार भी हैं। बाह्य और अन्तर की तस्वीर वे बड़ी सुन्दरता और खूबी से खींचते हैं :

कहा मैंने कितना है गुल[१२] का सबात[१३]
कली ने यह सुनकर तबस्सुम किया[१४]

---

१. साथियो, मित्रो; २. विदग्ध हृदय, ३. दहकती हुई, ज्वाला फेंकती हुई; ४. जलन, ५. अन्तस्तल, ६. नैराश्य, ७. नहीं तो, ८. आरोग्यता, ९. खुशी, १०. दसगुना, ११. शोक-दिवस, १२. फूल, विशेषतः गुलाब का; १३. स्थिरता, १४. मुस्कराना।

कैसी ताजा और प्रफुल्लित तस्वीर है। इसकी नवीनता में अनित्यता की झलक पाई जाती है, जिससे यह अधिक प्रभावशाली हो जाती है :

नाज़ुकी[1] उसके लब[2] की क्या कहिए
पंखड़ी एक गुलाब की-सी है

यहाँ भी वही प्रफुल्लता है। अब दूसरे रंग की तस्वीरें देखिए :

न देखा 'मीरे' आवारा[3] को लेकिन + ग़ुबार[4] एक नातवां[5] सा कूबकू[6] था

टुक 'मीर' जिगर सोख़्ता[7] की जल्द ख़बर ले
क्या यार भरोसा है चिराग़े सेहरी[8] का

इस शेर में वाह्य और आन्तरिक चित्र-चित्रण का सुन्दर समन्वय है और सच्ची बात तो यह है कि 'मीर' आन्तरिक भावावेशों का अधिक-से-अधिक चित्र खींचते हैं :

उल्टी हो गईं सब तदबीरें[9] कुछ न दवा ने काम किया
देखा इस बीमारीए दिल ने आखिर[10] काम तमाम किया
अहदे[11]-जवानी रो-रो काटा पीरी[12] में लीं आँखें मूँद
यानी[13] रात बहुत थे जागे सुबह हुई आराम किया

'मीर' की रचनाओं में खामियाँ भी हैं, और बहुत हैं; लेकिन उन खामियों का विवरण आवश्यक नहीं। 'मीर' के विषय में 'आज़ुर्दा' की राय है : "पस्तश[14] अगरचे अन्दक पस्त अस्त अम्मा बुलंदश बिसियार बुलंद"। यह राय प्रायः दूसरे रूप में मशहूर है : "बुलंदश[15] बिसियार बुलन्द व पस्तश बग़ायत पस्त" और आलोचनात्मक दृष्टि से यही अधिक सही है। मीर की रचना का असल दोष उसकी असमानता है। उसका अधिकांश निम्न स्तर का तथा गिरा हुआ है। यह एक आश्चर्य की बात है कि एक ही कवि ने ऐसे उदात्त और फिर गिरे हुए शेर कैसे लिखे। लेकिन ऐसी और भी मिसालें मौजूद हैं। एक अँगरेजी कवि वर्डज़वर्थ ही को लीजिए। उसपर भी यह आलोचना ठीक उतरती है कि "बुलंदश बिसियार बुलंद व पस्तश बग़ायत पस्त"। और उसकी रचनाओं का एक बड़ा भाग बहुत गिरा हुआ और निम्न स्तर का है। जो कुछ भी हो, ऐसा जान पड़ता है मानों दो 'मीर' हैं। एक गजल के सीमित-संकीर्ण क्षेत्र में सुन्दर परिष्कृत शेर गढ़ता है—ऐसे शेर, जो दिल पर तीर व नश्तर का काम करते हैं, जो एक बार पढ़ने के बाद दिमाग पर अंकित और जबान पर जारी हो जाते हैं। और, दूसरा बहुत मामूली, ग्रामीण तथा बेढंगे शेर मौज़ूं करता है, जिसको कविता से कोई सरोकार नहीं, जिसमें न तो संवेदनशीलता है, न कल्पना-शक्ति; और जिसको प्रकृति ने आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की ही नहीं है। इस रहस्य को समझना मुश्किल नहीं। वास्तव में दो 'मीर' हैं—एक वह, जिसके भावुक हृदय में

---

१. सुकुमारता, २. ओठ, ३. मारा-मारा फिरनेवाला, ४. हवा में उड़ती हुई धूल, ५. कमज़ोर, ६. गली-गली, ७. जला हुआ, विदग्ध; ८. प्रातःकालीन, ९. उपाय, १०. अन्ततोगत्वा, ११. समय, १२. बुढ़ापा, १३ अर्थात् १४. उनकी निम्नस्तर की रचनाएँ यद्यपि कुछ गिरी हुई हैं, लेकिन उच्चकोटि की कविताएँ बड़ी ही उदात्त हैं, १५. उनकी अच्छी कविताएँ बड़ी ही उच्चकोटि की हैं, लेकिन निम्नस्तर वाली रचनाएँ अत्यन्त गिरी हुई हैं।

विभिन्न प्रकार के जज़्बात और भावावेश गुजरे हैं, जिसने अपनी जिन्दगी और माहौल में कुछ शिक्षाप्रद तथ्यों का प्रदर्शन अपनी आँखों से देखा है। जब 'मीर' इन व्यक्तिगत अनुभूतियों और तथ्यों को प्रतिबिम्बित करते हैं तो इनकी पंक्तियाँ तासीर से परिपूर्ण होती हैं। दूसरा 'मीर' फ़ारसी से प्रभावित है; यह वही विषय छन्दोबद्ध करता है, जो साधारणतः फ़ारसी में पाये जाते हैं। केवल विषय ही नहीं, वही शब्द-संगठन और उपमाएँ भी हैं, जो उर्दू-कविता में फारसी से उधार ली गई हैं। जब 'मीर' इस अनुसरण की मनोवृत्ति से प्रभावित होकर लिखते हैं, या अपने विशिष्ट क्षेत्र से बाहर जा निकलते हैं अथवा अपने खास रंग से हटकर किसी दूसरे रंग की ओर प्रवृत्त होते हैं तो उनके शेरों का झुकाव पूर्णरूपेण अवनति की ओर होता है। इसी तथ्य के कारण 'मीर' की रचना में यह अप्रिय विषमता उत्पन्न हो गई है। इस विषमता का असर उस समय बड़ा बुरा मालूम होता है जबकि यह दशा विभिन्न गजलों में नहीं, बल्कि एक ही गजल के विभिन्न शेरों में पाई जाती है। बहुत बार तो ऐसा होता है कि अच्छे और निम्नकोटि के शेर एक ही स्थान पर एकत्र हो जाते हैं, जिसके कारण मन बड़ा खिन्न हो जाता है और कभी-कभी तो धैर्य बिलकुल छूट जाता है। एक गजल के शेर हैं :

अपनी हस्ती[१] हुबाब[२] की-सी है + यह नुमाइश[३] सुराब[४] की-सी है
नाज़ुकी उसके लब[५] की क्या कहिए + पंखड़ी एक गुलाब की-सी है।
बार-बार उसके दर प[६] जाता हूँ + हालत एक इज़्तराब[७] की-सी है
मैं जो बोला कहा कि यह आवाज़ + उसी ख़ानाख़राब[८] की-सी है।
'मीर' उन नीम[९]-बाज़ आँखों में + सारी मस्ती शराब की-सी है।

कैसे मँजे-धुले साफ शेर हैं, और 'मीर' के विशिष्ट रंग में? लेकिन इसी गजल में ये दो शेर भी मिलते हैं :

नुक़तए[१०] ख़ाल[११] से तेरा अबरू[१२] + बैत[१३] एक इन्तख़ाब[१४] की-सी है।
आतिशे-ग़म में दिल भुना शायद + देर से बू[१५], कबाब की-सी है।

शाब्दिक श्लेष और कृत्रिम विचार, दोनों दोष मौजूद हैं; तासीर और दर्द का लेश-मात्र भी पता नहीं।

(३) 'मीर' सांसारिक प्रेम के क्षेत्र के योद्धा हैं। लेकिन कभी-कभी रीति-रिवाज के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम के गूढ़ तत्त्वों की चर्चा भी करते हैं :

हम आप ही को अपना मक़सूद[१६] जानते हैं + अपने सिवाय किसको मौजूद जानते हैं
अपनी ही सैर करने हम जल्वागर[१७] हुए हैं + इस रम्ज़[१८] को वह लेकिन मादूद[१९] जानते हैं

१. अस्तित्व, २. बुलबुला, ३. प्रदर्शन, ४. मृग-मरीचिका, ५. ओठ, ६. द्वार, ७. बेचैनी, ८. आवारा, बेघरबार का; ९. अधखुली, १०. बिन्दु, ११. तिल, जो शरीर में पाये जाते हैं; १२. भौं १३. घर का द्वार, शेर; १४. चुना हुआ, १५. गन्ध, १६. उद्दीष्ट, १७. प्रकट, १८. गूढ़ तत्त्व, १९. इने-गिने।

इज्ज़[1] वो नेयाज़[2] अपना अपनी तरफ़ है सारा + इस मुश्तेखाक[3] को हम मस्जूद[4] जानते हैं
सूरत-[5] पज़ीर हमबिन हरगिज़ नहीं वह मानी* + अहले[6] नज़र हमीं को माबूद[7] जानते हैं
इश्क़ उनको अक़्ल को है जो मासिवा[8] हमारे + नाचीज़[9] जानते हैं नाबूद[10] जानते हैं

कभी-कभी इन गूढ़ तत्त्वों का वर्णन अत्यन्त हृदय-ग्राही रूप में होता है, ऐसा जान पड़ता है कि कुछ देर के लिए 'मीर' ने उन तत्त्वों को पा लिया है :

है मासिवा क्या जो 'मीर' कहिए + आगाह[11] उससे सारे हैं आगाह
जल्वे हैं उसके शानें हैं उसकी + क्या रोज़ क्या खु़र[12] क्या रात क्या माह[13]
ज़ाहिर[14] कि बातिन[15] औवल कि आख़िर + अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह

लेकिन उर्दू-कविता में आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र के योद्धा 'मीर', 'दर्द' हैं। कभी-कभी 'दर्द' सांसारिक प्रेम के क्षेत्र में भी जा निकलते हैं। लेकिन वे स्वयं कहते हैं कि मात्र तृष्णा ही सांसारिक प्रेम नहीं। जिस सांसारिक प्रेम का वर्णन उनकी रचनाओं में है, वह सद्‌गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति है, जो परब्रह्म तक पहुँचा देती है। 'मीर', 'दर्द' प्रेम के फन्दे में कभी नहीं फँसे। इष्ट-मित्र तो कई थे, लेकिन महबूबों से कभी सरोकार न रहा। इसलिए जहाँ 'मीर'-'दर्द' की रचनाओं में लिप्सा नहीं पाई जाती, वहाँ वे प्रेम के चमत्कारपूर्ण प्रभावों से भी अनभिज्ञ जान पड़ते हैं। इन मानवीय आवेगों तथा प्रचण्ड भावावेशों के वर्णन से 'दर्द' की कविता खाली है। लेकिन वे आध्यात्मिक प्रेम से अवगत हैं। इस कारण से प्रायः उन्हें 'मीर' से श्रेष्ठ माना जाता है। कारण कि उनकी विषय-वस्तु महान् व उदात्त है। लेकिन यह खयाल सही नहीं।

प्रेम एक आम मानवीय जज़्बा है, जिससे प्रत्येक हृदय परिचित है। आध्यात्मिक प्रेम बहुत ही दुर्लभ है। यह हर एक शख़्स के वश की बात नहीं। बहुत कम ही लोग हैं, जो इससे वास्तिक रूप में अवगत हैं। इसलिए जिन शेरों में आध्यात्मिक प्रेम छिपा हुआ रहता है, वे शीघ्र-प्रभावी नहीं होते और उनका असर जनसाधारण पर जल्दी नहीं होता। अतः 'दर्द' के शेरों का प्रभाव-क्षेत्र सीमित है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सांसारिक प्रेम की तुलना में आध्यात्मिक प्रेम का स्थान अधिक ऊँचा होने पर भी कविता में यह प्रश्न नहीं उठता। यदि कवि का हृदय प्रेम से परिचित है और वह अपने अनुभवों को सही ढंग से व्यक्त करता है तो उसके शेर अच्छे होंगे, नहीं तो बुरे। प्रेम आध्यात्मिक है या सांसारिक—इस प्रश्न के ऊपर बहस नहीं। असली बात देखनी यह है कि जज़्बात असली हों या नक़ली, उनमें जोश है या नहीं। इसलिए कवि की हैसियत से 'दर्द' की श्रेष्ठता का यह प्रमाण नहीं हो सकता कि वे आध्यात्मिक प्रेम से सरोकार रखते हैं और सांसारिक प्रेम से दूर-ही-दूर रहते हैं। इसके अतिरिक्त

---

१. दीनता, २. नम्रता, ३. मुट्ठी-भर मिट्टी, मनुष्य; ४. पूज्य, देवता; ५. रूप धारण करनेवाला, ६. पैनी दृष्टिवाले, ७. पूज्य, ८. अतिरिक्त, ९. तुच्छ, १०. विनष्ट, ११. अवगत, १२. सूर्य, १३. चन्द्रमा, १४. प्रत्यक्ष, १५. गुप्त।

*ईरान का एक प्रसिद्ध चित्रकार।

आध्यात्मिक प्रेम कुछ उन्हीं की जागीर नहीं । 'मीर' व 'सौदा' तथा अन्य उर्दू-कवियों की रचनाओं में भी इसकी चाश्नी मौजूद है । 'दर्द' की विशेषता केवल यह है कि वे हमेशा उन्हीं भावावेशों की अभिव्यक्ति करते हैं, जो आध्यात्मिक प्रेम के कारण उनके हृदय में उमड़ उठते हैं ।

दोनों जगत् उस परम स्रष्टा की ज्योति से प्रकाशमान् हैं, मस्जिद, मंदिर उसीसे आबाद हैं; उसी की छत्रच्छाया में शेख़ व बरहमन बसते हैं, कोई स्थान उससे खाली नहीं :

जग में आकर इधर-उधर देखा + तू ही आया नज़र जिधर देखा

लेकिन जिस मसनद पर वह विराजमान है, वहाँ बौद्धिकता का प्रवेश सम्भव नहीं । और प्रवेश हो तो कैसे जब बुद्धि अहमत्व की सीमा से बाहर नहीं जा सकती ।

या रब[1] यह क्या तिलिस्म है इदराक[2] व फ़ह्म[3] यां[4]
दौड़े हज़ार आप से बाहर न जा सके ।

मनुष्य की बुद्धि उसके गूढ़ तत्त्व तक पहुँचने में असमर्थ है । किन्तु इतना तो समझ सकती है कि प्रत्येक प्राणी में उसकी झलक अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद है । मनुष्य की आँखें भी ऐसी हैं, जो उसके रूप-लावण्य से नितान्त अपरिचित हैं; ऐसी आँखों से तो आँखों का न होना अच्छा है :

तुझी को जो यां जल्वा[5] फ़र्मा न देखा + बराबर है दुनिया को देखा न देखा ।

इस संसार में अनेकता का साम्राज्य है । लेकिन यदि ध्यानपूर्वक देखो तो इस अनेकता में एकता का सुन्दर स्वरूप दिखाई पड़ता है :

जम्मः[6] में अफ़रादे[7]-आलम[8] एक हैं + गुल[9] के सब औराक़[10] बरहम[11] एक हैं
होवे कब कसरत[12] से वहदत[13] में ख़लल[14] + जिस्मो[15] जांगो[16] दो हैं बाहम[17] एक हैं ।

इसलिए दिल को लालसा हो तो उसी को, ढूँढने की, तमन्ना हो तो उसी की, यदि यह नहीं तो दिल का कोई मूल्य-महत्त्व नहीं :

क्या फ़र्क़ दाग़ वो गुल में कि जिस गुल में बू न हो
किस काम का वह दिल कि जिस दिल में तू न हो ।

लेकिन यह तमन्ना, यह खोज कुछ आसान नहीं । संसार की निश्चित व निर्धारित वस्तुएँ वास्तविकता को छिपा देती हैं । हाँ, यह पर्दे उठ जायँ तो फिर चारों ओर एक ही सत्ता की छवि दृष्टिगोचर हो । यह सामर्थ्य केवल मनुष्य के हृदय में है कि उसका निवास-स्थान बन सके :

अज़ो[18] समा[19] कहाँ तेरी वुसअत[20] को पा सके
मेरा ही दिल है वह कि जहाँ तू समा सके ।

जबतक प्राण है, उसी की खोज हो; जबतक ज़बान है उसी की वार्त्ता हो :

मेरा जी है जब तक तेरी जुस्तजू[21] है + ज़बां जब तलक[22] है तेरी गुफ़्तगू[23] है

---

१. ईश्वर, भगवान्; २. बौद्धिकता, ३. समझ, ४. यहाँ, ५. छवि, ६. एकत्र, इकट्ठे; ७. व्यक्ति, ८. संसार, ९. गुलाब का फूल, फूल; १०. पंखुड़ियाँ, ११. बिखरे हुए, १२ अनेकता, बहुलता; १३. एकता, १४. बाधा, १५. शरीर, १६. यद्यपि, १७. एकत्र, मिले. हुए; १८ ज़मीन, १९. आसमां, २० विस्तार, फैलाव; २१. खोज, २२. तक, २३. बातचीत,

लेकिन प्रेम की कठिनाइयाँ जल्द दूर नहीं होतीं; दिल की कली का खिलना आसान नहीं :

मेरा गुंचए[1]-दिल है वह दिलगिरफ़्ता[2] + कि जिसको किसूने[3] कभी वा[4] न देखा

दुःख, संकट, भर्त्सना, आपत्ति—सारांश यह कि प्रेम के कारण मैंने क्या-क्या न देखा, लेकिन उसने आकर कभी अपनी छवि न दिखाई। उसकी तटस्थता ने कैसी-कैसी आपत्तियाँ खड़ी कीं, मगर उसने कृपा-दृष्टि न की। लेकिन यह उसका क़सूर नहीं; स्वयं अपनी जिन्दगी का आवरण परदा डाले हमारे-उसके बीच में खड़ी है। जबतक यह परदा बीच से उठ न जाय, प्रेयसी का छवि-दर्शन सम्भव नहीं :

हेजाबे[5] रुखे[6] यार थे आपही हम
खुली आँख जब कोई परदा न देखा।

असावधानी एक ओर और जीवन-अवधि कम; तो फिर हृदय आपत्ति-ग्रस्त क्यों न हो। जिस आपत्ति का ज़िक्र 'दर्द' करते हैं, जिस निराशा तथा शोक-सन्ताप का वे वर्णन करते हैं, वह सांसारिक नहीं। प्रत्येक शाम को वे अपने को ऐसा हतभाग्य महसूस करते हैं जैसे अन्धेरी सन्ध्या और प्रतिदिन प्रातःकाल के समय उनकी दशा उस उन्मादग्रस्त प्रभात की-सी है, जिसने प्रेमोन्माद के आवेश में अपने कपड़े फाड़ डाले हैं। लेकिन यह हतभाग्यता, यह उन्माद-ग्रस्तता किसी सांसारिक माशूक़ के कारण नहीं। इस उदासीनता, इस विरह-वेदना का अनुभव केवल दिल ही को नहीं, सारे संसार की यही दशा है; क्योंकि सारी दुनिया को इस जुदाई का भान है, वे कहते हैं :

कुछ दिल ही बाग़ में नहीं तन्हा[7] शिकस्त[8] दिल
हर गुंचा[9] देखता हूँ तो हैगा[10] शिकस्त-दिल

स्पष्टतया विदित है कि 'दर्द' के अनुभव 'मीर' के अनुभवों से भिन्न हैं, और जिस तरह 'मीर' किसी एक पूर्ण अनुभव का चित्र नहीं खींचते, उसी तरह 'दर्द' भी किसी सम्पूर्ण अनुभव का विस्तृत विवेचन नहीं करते। बल्कि 'मीर' की तरह वह भी अलग-अलग प्रभावों और अपूर्ण रूपकों की झलक दिखाते हैं। 'दर्द' अक्सर क्रमबद्ध गजलें लिखने की कोशिश करते हैं। वह स्वयं कहते हैं : "क्रमबद्ध रचना में विचित्र स्वाद होता है, वह हृदय को प्रफुल्लित कर देती है।" काश ! उर्दू के कवि इस तथ्य को जानते होते और इसका प्रयोग करते ! किन्तु, उन्हें तो गजल की विशृंखलता ऐसी प्रिय लगी कि वे शृंखलाबद्ध रचना के स्वाद और मूल्य को न पहचान सके। यदि 'दर्द' की तरह वे भी समझते कि क्रमबद्ध रचना में विचित्र स्वाद होता है तो उनका हृदय भी प्रफुल्लित हो जाता और वे पाठकों के हृदय को भी प्रफुल्लित करते। ख़ैर, जो कुछ भी हो, यह बड़ी बात है कि 'दर्द' इस तथ्य को जानते थे। किन्तु जिस आनुक्रमिकता तथा अनुरूपता का चित्र किसी नज़्म में दिखाई पड़ता है, वह 'दर्द' की गजलों में नहीं। हाँ, यह कह सकते हैं कि उनकी गजलों में विचार-विशृंखलता और आवेगों की विकीर्णता अपेक्षाकृत कुछ कम है।

मैंने कहा है कि जिन अनुभवों की अभिव्यक्ति 'दर्द' करते हैं, वे अपेक्षाकृत अपरिचित हैं।

---

१. कली, २. संकुचित हृदय, दुःखी; ३. किसी ने, ४. खुला हुआ, ५. परदा, ६. चेहरा, ७. अकेला, ८. टूटा हुआ, भग्न; ९. कली,, १०. है।

और इन अनुभवों को 'दर्द' उस जोश व उद्रेक के साथ महसूस भी नहीं करते, जो 'मीर' का हिस्सा है। यही कारण है कि 'दर्द' के शेरों में वह तासीर नहीं, जो 'मीर' के शेरों में होती है, और जिस तरह 'मीर' की रचना में दो प्रकार की पंक्तियाँ मिलती हैं—अनुभूत व कृत्रिम, उसी तरह 'दर्द' की रचनाओं में भी अनुभव-जनित और कृत्रिम शेर मिलते हैं। कुछ शेर तो ऐसे हैं, जो मानों बोल उठते हैं कि वास्तव में ये तेज आवेग हृदय में उत्पन्न हुए हैं, किन्तु कुछ शेर ऐसे भी मिलते हैं, जो महज़ रस्मी तौर पर लिखे गये है। 'दर्द' फरमाते हैं : "दास ने कभी बिना स्वाभाविक उत्प्रेरणा के महज़ क्लिष्ट कल्पना के जोर पर शेर नहीं लिखा।" फिर भी यह बात दिन की तरह प्रकाशमान है कि कतिपय आवेगों ने हृदय में हलचल पैदा की और कुछ ने दरिया की सतह पर एक लहर भी न उठाई; और 'दर्द' को इसकी ख़बर भी न हुई; जैसे :

कहा जब मैं तेरा बोसा[१] तो जैसे क़न्द[२] है प्यारे
लगा तब कहने पर क़न्दे मुकर्रर[३] हो नहीं सकता
दिले-आवारा[४] उलझे याँ किसी की ज़ुल्फ़ से[५] यारब[६]
इलाज[७] आवरगी का इससे बेहतर हो नहीं सकता
नहीं चलता है कुछ अपना तो तेरे इश्क़[८] के आगे
हमारे दिल प कोई और तो डर हो नहीं सकता

इन शेरों में केवल क्लिष्ट कल्पना ही भर है, असलियत व सचाई नाममात्र को भी नहीं है। 'दर्द' ने इन शेरों में महज़ प्रचलित रस्मी विचारों को रस्मी ढंग से प्रकट किया है। शाब्दिक श्लेष भी मौजूद है : "बोसा, क़न्द, क़न्दे-मुकर्रर, दिले-आवारा, ज़ुल्फ़, आवारगी।" प्रभाव लेशमात्र भी नहीं—इन विचारों ने कवि के हृदय को प्रमुदित नहीं किया है, उसकी कल्पना को आकाश में उड़ने के लिए उत्प्रेरित नहीं किया है। इसीलिए उनमें काव्य की आत्मा शून्य है। इस ढंग में और 'दर्द' की विशिष्ट शैली में आकाश-पाताल का अन्तर है। 'दर्द' की विशिष्ट शैली यह है :

अर्ज़[९] वो समा[१०] कहाँ तेरी उसअत[११] को पा सके + मेरा ही दिल है वह कि जहाँ तू समा सके
वहदत[१२] में तेरी हर्फ़[१३] दुई[१४] का न आ सके + आईना[१५] क्या मजाल तुझे मुँह दिखा सके
क़ासिद[१६] नहीं यः काम तेरा अपनी राह ले + उसका पयाम[१७] दिल के सिवा कौन ला सके
ग़ाफ़िल[१८] ख़ुदा की याद प मत भूल ज़ीनहार[१९] + अपने तईं[२०] भुला दे अगर तू भुला सके
यारब[२१] यः क्या तिलिस्म है इदराक[२२] वो फ़हम[२३] यां[२४] + दौड़े हज़ार आपसे बाहर न जा सके

जज़्बात उभरते हैं, मानों एक मौज उठती है, ऊँची और जोश से भरी हुई। एक-एक शब्द असर में डूबा हुआ है। क्लिष्ट कल्पना का कहीं नाम-निशान नहीं, सर्वथा स्वाभाविक भाव ही वर्त्तमान है। लेकिन फिर भी इस गजल में वह ख़ूबी नहीं, जो अच्छी नज़्म में होती है। तसौवुफ़ कुछ

१. चुम्बन, २. चीनी, मिश्री; ३. साफ उत्तम मिश्री, ४. मारा-मारा फिरनेवाला, ५. अलकें, ६. ऐ परमात्मा, ७. उपचार, चिकित्सा; ८. प्रेम, ९. धरती, १०. आकाश, ११. विस्तार, फैलाव; १२. एकता, १३. अक्षर, १४. द्वैतभाव, १५ ऐनक, १६. दूत, १७. संवाद, १८. लापरवा, असावधान; १९. कदापि नहीं, २०. अस्तित्व को, २१. हे भगवान, २२. बौद्धिकता, २३. समझ, २४. यहाँ।

प्राच्य देशों की ही निजी सम्पत्ति नहीं, पाश्चात्य देशों में भी इस रंग की कविता मिलती है। सतरहवीं शताब्दी में अँगरेजी में अच्छे-अच्छे सूफ़ी कवि हुए हैं।[४] या फिर 'ब्लेक'[५] को लीजिए। 'ब्लेक' की कविता के आगे 'दर्द' की गजलें कुछ यों ही-सी ज्ञात होती हैं; और इस प्रसंग में 'दान्ते'[६] का नाम लेना तो कुछ बेकार-सा जान पड़ता है। ख़ैर, इन पाश्चात्य कवियों को तो जाने दीजिए, 'दर्द' फ़ारसी के सूफ़ी कवियों की भी बराबरी नहीं कर सकते।

बहरहाल[१], 'दर्द' की दुनिया भी 'मीर' की दुनिया की तरह सीमित व संकीर्ण है, बल्कि और भी संकीर्ण है! आध्यात्मिक प्रेम और उसकी आवश्यक बातों को छोड़कर अन्य मानवीय आवेग तथा भावावेश विचार एवं अनुभूतियाँ 'दर्द' के लिए अधिक महत्त्व नहीं रखतीं। संसार की बहुरंगी छटा पर उनकी नज़र नहीं ठहरती, कारण कि उन्हें तो पर्दे के भीतर कोई दूसरी ही छवि नज़र आती है। संसार का निरीक्षण, निरीक्षण की हैसियत से 'दर्द' की रचनाओं में मौजूद नहीं।

'दर्द' साफ, परिष्कृत, प्रांजल भाषा में अपने विचारों व अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। वर्णन-शैली में कहीं रुकावट या उलझाव नहीं। शब्द सब सीधे-सादे, साधारण, आमफ़हम हैं, लेकिन उनसे वास्तविकता की बू आती है। संक्षिप्त, किन्तु समग्र रूप में वे कठिन-से-कठिन और गम्भीर-से-गम्भीर विचारों को व्यक्त कर देते हैं, जिसे देखकर प्रायः आश्चर्य होता है। लयदारी तथा संगीत भी मौजूद है और वह अत्यन्त हृदय-ग्राही भी होता है, मानों प्रत्येक शब्द जज़्बात से परिपूर्ण और हर शेर लयदारी से भरा हुआ है। किन्तु यह लयदारी एक विशिष्ट सीमित ढंग की है। 'दर्द' के शेरों में दर्द[२] भी है, लेकिन वह हृदय-विदारकता नहीं, जो 'मीर' के शेरों में छिपी रहती है। 'दर्द' के शेरों की मिसाल एक चौड़े और गहरे दरिया की-सी है, जो बिना किसी रुकावट और उतावलेपन के बह रहा है। सतह प्रशान्त है। कभी-कभी कोई तरंग उठकर दरिया की सतह पर लहराती है। फिर मिट जाती है, मगर नदी सदा बहती रहती है। 'मीर' में यह शान्ति और स्थिरता नहीं। अर्थात् 'मीर' के जज़्बात अधिक जोश से भरे हैं। इसलिए वे दिलों पर भी जल्दी असर करते हैं। इन आवेगों ने 'मीर' की हस्ती में ऐसा तूफ़ान उठाया है, जिससे उनके मन की शान्ति सदा के लिए नष्ट हो गई है। यही कारण है कि 'मीर' की शिराओं-धमनियों में रक्त के बदले दर्द प्रवाहित जान पड़ता है। जिस अकृतार्थता व शोक-सन्ताप, जिस नैराश्य की वे तस्वीर खींचते हैं उसकी क्षमता किसी दूसरे को प्राप्त नहीं, 'दर्द' अपने जीवन का चित्रण इस प्रकार करते हैं :

तोहमतें[3] चन्द[४] अपने ज़िम्मे धर चले + जिस लिये आये थे सो हम कर चले
ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है + हम तो इस जीने के हाथों मर चले
क्या हमें काम इन गुलों से ऐ सबा[५] + एक दम[६] आए इधर उधर चले
शम्मः[७] के मानिंद[८] हम इस बज़्म[९] में + चश्म[१०]-नम[११] आए थे दामनतर[१२] चले

---

१. जो कुछ भी हो, २. संवेदनशीलता, ३. लांछन, मिथ्या आरोप; ४. कुछ, ५. समीर; ६. क्षण, ७. चिराग, ८. सदृश, ९. महफ़िल, सभा, १०. आँख, ११. भीगा, १२. पापपूर्ण।

जों[1] शरर[2] ऐ हस्तिए[3] बेबूद[4] यां + बारे हम भी अपनी बारी भर चले
साक़िया[5] यां लग रहा है चल चलाव + जब तलक बस चल सके साग़र[6] चले

कितने सहज, नर्म, कोमल, साफ शब्दों में अपने जज़्बात को व्यक्त किया है, उन्हें अभिव्यंजित करने में कोई कठिनाई नहीं। प्रत्येक शब्द अपने विशिष्ट स्थान पर किस संतुलित ढंग से स्थित है। और, प्रत्येक शब्द इतना परिष्कृत है कि आवेगों की झलक प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ती है। इन शब्दों को यदि अलग-अलग देखिए तो इनमें कोई ख़ास बात नज़र नहीं आती, किन्तु इस गजल में दूसरे शब्दों की अनुरूपता व संतुलन के कारण एक विचित्र भाव पैदा हो गया है। हसब मामूल लयदारी भी मौजूद है, और कितनी प्रिय ! शेर नहीं सुरीले राग हैं, यद्यपि बेमेल व बेलाग —

अब 'मीर' यह राग अलापते हैं :

फ़क़ीराना[7] आए सदा[8] कर चले + मियां ख़ुश रहो हम दुआ कर चले
जो तुझ बिन न जीने को कहते थे हम + सो उस अह्द[9] को अब वफ़ा[10] कर चले
शफ़ा[11] अपनी तक़दीर ही में न थी + कि मक़दूर[12] तक तो दवा कर चले
वह क्या चीज़ है आह जिसके लिए + हर एक चीज़ से दिल उठाकर चले
कोई नाउमीदाना[13] करते निगाह + सो तुम हमसे मुँह भी छिपाकर चले
कहें क्या जो पूछे कोई हमसे 'मीर' + जहां[14] में तुम आए थे क्या कर चले

इस गजल में 'दर्द' की गजल से कुछ अधिक ही साफ़, सीधे, साधारण शब्दों का व्यवहार किया गया है। वही सन्तुलन यहाँ भी है। जज़्बात व भावावेशों की झलक भी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ती है। लयदारी भी है, और कितनी मन्त्र-मुग्धकारी ! लेकिन यदि 'दर्द' के शेरों में नैराश्य व अकृतार्थता का आरम्भ है, तो यहाँ उसकी परिपक्वता है :

ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है + हम तो इस जीने के हाथों मर चले

इस शेर में वह तासीर, वह असलियत, वह संवेदनशीलता कहाँ, जो 'मीर' के इस शेर में है :

जो तुझ बिन न जीने को कहते थे हम + सो उस अह्द को अब वफ़ा कर चले

यही अन्तर सभी शेरों में पाया जाता है। 'मीर' संवेदनशीलता और तासीर में 'दर्द' से दो क़दम आगे ही रहते हैं।

बहरहाल 'दर्द' भी अपने विशिष्ट रंग में बहुत अच्छे हैं। इस क्षेत्र में उर्दू-कविता में कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता :

तुझी को जो यां जल्वाफ़र्मा[15] न देखा + बराबर है दुनिया को देखा न देखा
मेरा ग़ुंचए[16] दिल है वह दिल गिरफ़्ता[17] + कि जिसको किसू[18] ने कभू[19] वा[20] न देखा

१. ज्यों, ऐसा; २. चिनगारी, ३. अस्तित्व, जीवन; ४. नश्वर, न होने के बराबर; ५. मधुबाला, ६. प्याला, ७. फकीरों की तरह, ८. आवाज लगाकर, ९. प्रतिज्ञा, १०. पूरा, ११. आरोग्यता, १२. वश, अख़्तियार; १३. निराशा के साथ, १४. संसार, १५. छवि दिखलानेवाला, १६. कली, १७. सम्पुटित हृदय, १८. किसी, १९. कभी, २०. खुला हुआ, विकसित।

यगाना[1] है तू आहा बेगानगी[2] में + कोई दूसरा और ऐसा न देखा
अज़ीयत[3], मुसीबत, मलामत[4], बलाए + तेरे इश्क़ में हमने क्या-क्या न देखा
किया मुझको दाग़ों[5] ने सर्वे चिरागां[6] + कभू तूने आकर तमाशा न देखा
तग़ाफ़ुल[7] ने तेरे यह कुछ दिन दिखाए + इधर तूने लेकिन न देखा न देखा
हिजाबे[8] रुखे यार थे आप ही हम + खुली आँख जब कोई पर्दा न देखा
शब[9] वो रोज़ ऐ 'दर्द' दर[10] पै हो उसके + किसू ने जिसे याँ न समझा न देखा

इन शेरों की तासीर से किसे इनकार हो सकता है। 'दर्द' कभी अपने को हाथ से जाने नहीं देते। इसीलिए उनमें वह अधीरता नहीं, जो 'मीर' की विशेषता है। 'दर्द' अपने को लिये-दिये रहते हैं। इस वजह से उनके शेरों में एक खास शान पैदा हो गई है, जो और किसी के शेरों में नहीं मिलती। इस शान, इस स्वाभिमान से हृदय प्रभावित हो जाता है।

(४) 'मीर' और 'दर्द' स्वभाव में कुछ एक-से थे। 'सौदा' इन दोनों से विभिन्न प्रकृति लेकर आये थे। 'मीर' आप-बीती खून-भरे असर में डूबे हुए शब्दों में इस तरह बयान करते हैं कि सुननेवाले बेचैन हो जाते हैं। 'सौदा' ने भी अपनी प्रतिभा के जोर से दर्द-भरे शेर छन्द-बद्ध किये हैं। लेकिन इन शेरों में 'मीर' वाली बात नहीं। 'मीर' की आँखें दिल की ओर झुकी हुई थीं। वे अपने जज़्बात व भावावेशों को देखने में लगे रहते थे। ऐसे तल्लीन रहते थे कि दुनिया और उसके भीतर की चीजों की उन्हें कोई खबर न होती थी। 'सौदा' की आँखें खुली हुई थीं। वे दुनिया की बहुरंगी का निरीक्षण करते थे। इसलिए उनकी दुनिया 'मीर' व 'दर्द' की दुनिया की तरह सीमित व संकुचित न थी। इनके विषय अधिक बहुमुखी हैं और उनमें वह अनोखापन नहीं, जो 'मीर' और 'सौदा' की रचनाओं में मिलता है।

'सौदा' में एक खूबी और भी 'मीर' व 'दर्द' से बढ़कर थी। वे शब्दों तथा उनके संगठनों के प्रयोग में अधिक सावधानी और चिन्तन-मनन से काम लेते थे; और हमेशा नये शब्द और उनके सुशोभन संगठनों की खोज में रहते थे। इसलिए जहाँ तक शब्दों और संगठनों का सम्बन्ध है, उनकी श्रेष्ठता सर्वस्वीकृत है। इसके अतिरिक्त सौदा की रचनाओं में अच्छी और नवीन उपमाएँ भी मिलती हैं, जो 'मीर' व 'दद' को मुयस्सर नहीं। प्रफुल्लित उपमाएँ और प्रभावशाली तथा बोलती हुई तस्वीरें 'मीर' व 'दर्द' के शेरों में भी मिलती हैं, किन्तु वे इतनी बहुमुखी व अनोखी नहीं जितनी 'सौदा' के शेरों म पाई जाती हैं। 'सौदा' नई-नई उपमाएँ गढ़ते हैं, और बड़ी सुन्दरता के साथ उन्हें अपने शेरों में जड़ देते हैं। किन्तु शब्द, उनके संगठन, रूपक इत्यादि स्वयं कितने ही प्रशंसनीय क्यों न हों, केवल इन्हीं के बल पर किसी कवि की श्रेष्ठता प्रमाणित नहीं हो सकती। ये सब बातें तो केवल विचाराभिव्यक्ति के साधन-मात्र हैं। ध्यान देने योग्य चीजें जज़्बात और विचार हैं, और उनकी असलियत तथा वास्तविकता, उनका जोश व

---

१. एकता, अद्वितीय; २. परायापन, ३. तकलीफ़, पीड़ा; ४. भर्त्सना, ५. ज़ख़्म के चिह्नों ने, ६. वह सरो का वृक्ष, जिस पर सजावट और तमाशे के लिए मोमबतियाँ या बिजली के बल्ब जलाये गये हों। ७. लापरवाही, ८. पर्दा, ९. रात, १०. पीछे पड़ा हुआ।

ख़रोश। यदि प्रमापक केवल शाब्दिक रहे तो 'सौदा' का स्थान बहुत ऊँचा होगा। किन्तु यह प्रमापक ठीक नहीं।

'सौदा' की ग़ज़ल का नमूना यह है :

गुल[1] फेंके है ग़ैरों की तरफ़ बल्कि समर[2] भी
ऐ ख़ना[3]-बर अन्दाज़े-चमन कुछ तो इधर भी
क्या ज़िद है मेरे साथ, ख़ुदा जाने, व गरना[4]
काफ़ी है तसल्ली को मेरी एक नज़र भी।
ऐ अब्र[5] क़सम है तुझे रोने की हमारे
तुझ चश्म[6] से टपका है कभू[7] लख़्ते जिगर[8] भी
किस हस्तिए[9] मौहूम[10] पै नाज़ां[11] है तू ऐ यार
कुछ अपने शब[12] वोरोज़[13] की है तुझको ख़बर भी
तनहा[14] मेरे मातम[15] में नहीं शाम शियह[16]-पोश
रहता है सदा चाक[17] गरेबाने[18] सेहर[19] भी
'सौदा' तेरी फ़रियाद[20] से आँखों में कटी रात
आई है सेहर होने को टुक तू कहीं मर भी।।

वह विदग्धता और आर्द्रता, जो 'मीर' और 'दर्द' को प्राप्त है, यहाँ सिरे से मौजूद नहीं; और मौजूद हो तो कैसे जब 'सौदा' आर्द्र हृदय ही अपने साथ न लाये थे। वह तो सदा विकसित प्रफुल्ल-चित्त रहते थे। यदि शब्दों और बन्दिशों को देखा जाय तो भी स्पष्ट अन्तर नज़र आयगा। शब्द सीधे-सादे नहीं; बन्दिशें भी ऐसी नहीं जैसे कोई बातें करता हो। शब्दों और विशेषतः बन्दिशों में गौरव और रोब-सा मालूम होता है। प्रत्येक शब्द अपनी जगह पर नगीने की तरह जड़ दिया गया है। उलट-फेर से शेर का मतलब नष्ट हो जाने का भय है। शाब्दिक सौन्दर्य प्रचुर मात्रा में मौजूद है। प्रत्येक शेर मानों एक सुन्दर मूर्त्ति है, मगर निष्प्राण ! जज़्बात में प्रखरता नहीं। उन्हें सुनना कानों को भला मालूम होता है, लेकिन जो आनन्द मिलता है वह उसी प्रकार का है, जो किसी काम के सुन्दर ढंग से प्रतिपादित होने से मिलता है। कवि ने अपने मतलब को साफ़, सम्पूर्ण, सुन्दर तथा टकसाली ढंग से अदा किया है। किन्तु अर्थ के विचार से ये शेर दिल पर तीर व नश्तर का काम नहीं करते। हाँ, एक प्रकार की मादकता अवश्य हासिल होती है, वही मादकता, जो किसी सुन्दर वस्तु के देखने से होती है। लेकिन ये शेर 'मीर' के शेरों की तरह दिल को बेक़ाबू नहीं कर देते।

'सौदा' अक्सर 'मीर' के विशिष्ट क्षेत्र में भी क़दम रखते हैं; संवेदना और निराशा, संसार की अनित्यता का नक्शा खींचते हैं :

---

१. फूल, २. फल, ३. बाग-रूपी घर को उजाड़नेवाले, ४. नहीं तो, ५. बादल, ६. आँख, ७. टुकड़ा, ८. कलेजा, ९. अस्तित्व, जीवन; १०. अनिश्चित, काल्पनिक; ११. गर्वान्वित, १२. रात, १३. दिन, १४. अकेला, १५. शोक, १६. काला कपड़ा पहने हुए, १७. फटा हुआ, १८. गले के पास का कपड़ा, कण्ठा; १९. प्रभात, २०. विलाप, चीख़ना-चिल्लाना।

जाते हैं लोग क़ाफ़िले[1] के पेश[2] वो पस[3] चले + दुनिया अजब सरा[4] है जहाँ आके पस चले
कहियो सबा[5] सलाम हमारा बहार[6] से + हम तो चमन[7] को छोड़ के सूए[8]-क़फ़स[9] चले
ऐ गुंचा[10] आंख खोल के सूए-चमन तो देख + जमईअ़ते[11]-दिली प तेरी फूल हँस पड़े
तेरे सुख़न[12] को मैं बसरवो[13] चश्म नासिहा + मानूँ हज़ार बार अगर दिल प बस चले
निकला जो नाला[14] दिल से तो सीने से दौड़े अश्क[15] + सुन[16] मर्दुमाने[17]-क़ाफ़िला बांगे[18] जरस[19] चले
सैयाद[20] अब तो कीजे क़फ़से हमें रिहा[21] + ज़ालिम फड़क-फड़क के पर वो बाल[22] घिस चले

'मीर' व 'दर्द' की गजलों से तुलना करने से साफ़ जान पड़ता है कि ये जज़्बात व्यक्तिगत नहीं और वह जोश व ख़रोश भी नहीं। 'सौदा' निजी भावावेशों की अभिव्यंजना नहीं करते। संसार-निरीक्षण ने जो दृश्य उन्हें दिखाया है उसी का चित्रण करते हैं। रचना का ढंग खास नहीं आम है :

जाते हैं लोग क़ाफ़िले के पेश वो पस चले + दुनिया अजब सरा है जहाँ आके बस चले

प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि किसी दृश्य का चित्रण उद्दीष्ट है। संसार-रूपी काफ़िले का ज़िक्र है, अपने हतभाग्य होने का रोना नहीं। 'दर्द' की रचना में शैली ख़ास है :

तोहमते चन्द अपने ज़िम्मे धर चले + जिस लिये आए थे हम सो कर चले

न जिन्दगी के कारवाँ का जिक्र है, न सराय-दुनिया से कोई सरोकार। अपनी कहानी है और अपनी जीवन-गाथा का सार। 'मीर' के शेरों में रचना-विधान खास ही नहीं, खासों में भी खास है। शेर क्या है, लालसा-अभिलाषा-जनित शोक-सन्ताप की कुंजी है :

फ़क़ीराना[23] आए सदा कर[24] चले + मियां ख़ुश रहो हम दुआ कर चले

संसार-निरीक्षण भी व्यक्तिगत अनुभव है, आन्तरिक नहीं, बहिर्गत। इसलिए यह नहीं कह सकते कि 'मीर' व 'दर्द' व्यक्तिगत अनुभवों का चित्रण करते हैं और 'सौदा' के अनुभव कृत्रिम हैं। जो कुछ आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, यह सब व्यक्तिगत अनुभव हैं। असल भेद यह है कि 'मीर' व 'दर्द' और विशेषतः 'मीर' के शेरों में जो दर्द व जोश है वह सौदा को मुयस्सर नहीं। तासीर से भरे हुए शेर 'सौदा' के दीवान में भी मिलते हैं, लेकिन उनकी तासीर दिल को नहीं छूती। 'मीर' का प्रत्येक शब्द एक स्थायी दर्द है और हर शेर एक नासूर। 'सौदा' के शेरों में यही बात नहीं। उनके शेरों में संसार की बहुरंगी' जज़्बात की विविधता के चित्र हैं, और ये चित्र अक्सर आँखों में चकाचौंध पैदा करते हैं। 'मीर' के जज़्बात की हसरत-भरी तस्वीरें हृदय में खिंच जाती हैं।

मैंने अभी तक जो कुछ कहा है, उसका उद्देश्य 'मीर' व 'सौदा' में जो कुछ प्रत्यक्ष अन्तर है, उसे प्रकट करना है। 'सौदा' के लिए 'मीर' का अनुसरण आवश्यक न था; और यदि 'सौदा' 'मीर' का अनुकरण करते तो 'मीर' ही जैसे, लेकिन 'मीर' से कम दर्जे के कवि होते। 'सौदा' का

१. कारवाँ, साथ मिलकर यात्रा करनेवाली जमात; २. आगे, ३. पीछे, ४. स्थान, घर; ५. प्रभात, ६. वसन्त-ऋतु, ७. बगीचा, ८. ओर, ९. पिंजड़ा, बन्दीखाना; १०. कली, ११. शान्ति, स्थिरता; १२. बात, १३. सिर आँखों से, हृदय से; १४. विलाप, चीख, पुकार; १५. आँसू, १६. सुनकर, १७. लोग, जनसमूह; १८. आवाज़, १९. घण्टा, २०. चिड़ीमार, २१. मुक्त, २२. डैना, २३. फकीरों की तरह, २४. अत्याचार, जुल्म।

अपना अलग रंग है। 'मीर' की तरह 'सौदा' भी अपनी शैली रखते हैं। उनका ढंग जुदा है। दो-तीन मिसालों से यह बात स्पष्ट हो जायगी :

बदला तेरे सितम[१] का कोई तुझसे क्या करे
अपना ही तू फ़रेफ़्तः[२] होवे ख़ुदा करे
क़ातिल[३] हमारी नाश[४] की तश्हर[५] है ज़रूर[६]
आइन्दा[७] ता कोई न किसी से वफ़ा[८] करे
इतना लिखाइयो मेरे लौहें[९] मज़ार[१०] पर
यां[११] तक न ज़ीहयात[१२] को कोई ख़फ़ा करे
फ़िक्रे मआश[१३] वो इश्के[१४]-बुतां[१५] यादे रफ़्तगां[१६]
इस ज़िन्दगी में अब कोई क्या-क्या किया करे
गर हो शराब वो ख़िलवते[१७] महबूबे[१८]-ख़ूबरू[१९]
ज़ाहिद[२०] तुझे क़सम है जो तू हो तो क्या करे
तनहा[२१] न रोज़े हिज्र[२२] है 'सौदा' प यह सितम[२३]
परवाना[२४] सां[२५] बेसाल[२६] की हर शब जला करे

बहार वे सिपरे[२७] जामे[२८]-यार गुज़रे है + नसीम[२९] तीर-सी छाती के पार गुज़रे है
शराब हलक़ से होती नहीं फ़रो[३०] तुझ बिन + गुलूए[३१] ख़ुश्क[३२] से तेग़ आबदार[३३] गुज़रे है
गुज़र मेरा तेरें कूचे में गर नहीं तो न हो + मेरे ख़याल में तो लाख बार गुज़रे है
हज़ार हर्फ़[३४] शिकायत का देखते ही तुझे + ज़बां पै शुक्र है बे अख़्तियार[३५] गुज़रे है
कहे है आज तेरे दर पै इज़्तरावे[३६] नसीम[३७] + कि इस जहां से कोई खाकसार[३८] गुज़रे है
तेरी गली से गुज़रता हूँ इस तरह ज़ालिम + कि जैसे रेत से पानी की धार गुज़रे है
मैं वह नहीं कि कोई मुझसे मिलके हो बदनाम + न जाने क्या तेरी ख़ातिर[३९] में यार गुज़रे है
मुझे तो देखके जोश वो ख़रोश 'सौदा' का + इसी हो सोच में लैल[४०] वो निहार गुज़रे है
यह आदमी है कि सिर मारता फिरे है ब[४१] संग[४२] + कि बादे तुन्द[४३] सुए कोहसार[४४] गुज़रे है
नसीम है तेरे कूचे में और सबा[४५] भी है + हमारी ख़ाक से देखो तो कुछ रहा भी है
तेरा ग़रूर मेरा इज़्ज़[४६] ता[४७] कुजा[४८] ज़ालिम + हर एक बात की आख़िर कुछ इन्तहा[४९] भी है

१. अत्याचार, जुल्म; २. आसक्त, ३. क़त्ल करनेवाला, जल्लाद; ४. शव, लाश; ५. घुमाना, फिराना; ६. आवश्यक, ७. भविष्य में, ८. प्रेम, मुहब्बत; ९. तख़्ती, वह पत्थर जो क़ब्र के सिरहाने की ओर होता है, १०. क़ब्र, ११. यहाँ, १२. प्राणी, जीवित व्यक्ति; १३. जीविका, १४. प्रेम, १५. मूर्त्तियाँ, सुन्दरियाँ; १६. वह लोग, जो चले गये, दिवंगत आत्माएँ; १७. एकान्तवास, १८. मित्र, माशूक; १९. सुन्दर, २०. धर्मपरायण व्यक्ति, ५. अकेला, २१. विरह, २२. ज़ुल्म, २३. पतंगा, २४. ऐसा, २५. मिलन, २६. ढाल, १२. प्याला, २७. समीर, २८. दवना, २९. गला, ३०. सूखा, ३१. चमकदार, ३२. अक्षर, बात; ३३. विवशतापूर्वक, ३४. बेचैनी, ३५. समीर, ३६. विनम्र व्यक्ति, ३७. मन, ३८. रात, ३९. प्रभात, दिन; ४०. से, ४१. पत्थर, ४२. हवा, ४३. तेज, ४४. पहाड़ी प्रदेश, ४५. प्रातःकाल की हवा, ४६. नम्रता, ४७. तक, ४८. कहाँ, ४९. अन्त।

जले है शम्मः से परवाना[१] और मैं तुझसे + कहीं है मेह्र[२] भी जग में कहीं वफ़ा भी है
ख़याल अपने में गो[३] हों तराना[४] संजां मस्त + कराहने को दिलों के कभी सुना भी है
सितम खा[५] हैं असीरों[६] प इस क़दर सैयाद + चमन-चमन कहीं बुलबुल की अब नवा[७] भी है
समझ के रखियो क़दम दश्ते[८] -ख़ार में मजनूँ + कि इस नवाह[९] में 'सौदा' बरहना[१०]पा भी है

ये मिसालें विना किसी विशिष्टता के प्रस्तुत की गई हैं। इन ग़ज़लों में विषय तो उसी प्रकार के हैं जैसे 'मीर' की गजलों में पाये जाते हैं, किन्तु यहाँ रंग ही दूसरा है। यह बात नहीं है कि इनमें असर नहीं; असर है, लेकिन दूसरे प्रकार का। 'मीर' का एक शेर है :

न देखा 'मीरे' आवारा को लेकिन + ग़ुबार एम नातवांना[११] कूबकू है

इसके बाद 'सौदा' के ये दो शेर पढ़िए :

मुझे तो देख कि जोश वो ख़रोश 'सौदा' का
इसी ही सोच में लैल वो निहार गुज़रे है
यह आदमी है कि सिर मारता फिरे है बसंग
कि बादे-तुंद सुए-कोहसार गुज़रे है

इन दो मिसालों से 'मीर' व 'सौदा' में भेद प्रकट होता है। 'मीर' एक गुबार (उड़ती हुई धूल) है, और वह भी कमजोर-सा जो हवा के नर्म-नर्म झोंकों से गली-गली मारा-मारा फिरता है; 'सौदा' तेज आँधी हैं जो पहाड़ी प्रदेश की ओर से होकर गुजरते हैं। 'सौदा' दीन-हीन कमजोर धूल नहीं। उनमें एक सशक्तता है, एक ओज है, वही जोर-शोर जो तेज आँधी में होता है। और 'सौदा' गली-गली मारे नहीं फिरते। वह तेज़ आँधी की तरह पहाड़ी प्रदेश का रूख़ करते हैं; सँकरी गली-कूचों से उन्हें सरोकार नहीं, उनके जोश व खरोश के लिए विस्तृत क्षेत्र की आवश्यकता है। मैंने कहा है कि इन गजलों में विषय उसी प्रकार के हैं, जो 'मीर' की गजलों में पाये जाते हैं, अर्थात् शोक-संताप से भरे हुए विषय। कभी वह अपनी लाश को चारों ओर घुमाया जाना चाहते हैं, तो कभी अपनी क़ब्र के सिरहाने के पत्थर पर यह मिसरा खुदवाने का आदेश देते हैं कि 'यां तक न ज़ीहयात को कोई ख़फ़ा करे'। वियोग के समय में तो ख़ैर सितम अनिवार्य है, वह मिलन की रात्रि में भी परवाने की तरह जला करते हैं। उनका वसन्त माशूक़ के हाथ से प्याला पिये बिना ही बीत जाता है, तो फिर समीर तीर की तरह छाती के पार क्यों न गुज़रे। साक़ी[१२] के बिना शराब गले से नीचे नहीं उतरती। अर्थात् सूखे हुए कण्ठ से तेज तलवार पार होती है। नसीम[१३] व सबा[१४] उसकी गली में हैं। इसलिए वे कहते हैं : "हमारी ख़ाक से देखो तो कुछ रहा भी है।" शम्मा से परवाने[१५] जलते हैं और वे अपने महबूब[१६] से। राग अलापने-वालों से वह पूछते हैं : "कराहने को दिलों के कभी सुना भी है।" इसी प्रकार दर्द-भरे विषयों की कमी नहीं, लेकिन इन विषयों में वह संवेदनशीलता नहीं, जो 'मीर' के इस शेर में है :

---

१. पतंग, २. कृपा, प्रेम; ३. यद्यपि, ४. राग अलापनेवाले, ५. जायज़, ६. कैदियों, ७. काँटों का जंगल, ८. जवार, ९. नंगा, १०. पैर, ११. कमज़ोर, १२. पिलानेवाला, शराब पिलानेवाला, मधुवाला; १३. शीतल-मंद-सुगन्ध समीर, १४. पुरवैया हवा की लहरें, १५. पतंग, १६. प्रीतम, मित्र।

टुक 'मीरे' जिगर-सोख़्ता[१] जल्द ख़बर ले
क्या यार भरसा है चिराग़े[२] सेहरी[३] का

'सौदा' इस प्रकार से दुहाई देने को कम-हिम्मती की बात समझते हैं। इनके तो बातें करने का ढंग ही कुछ और है :

बदला तेरे सितम का कोई तुझसे क्या करे
अपना ही तू फ़रेफ़्तः होवे ख़ुदा करे

वे फिर कहते हैं :

तेरा ग़रूर[४] मेरा इज्ज़[५]ता[६] कुजा[७] ज़ालिम + हर एक बात की आख़िर कुछ इन्तहा[८] भी है

अर्थात् उनका साहस, उनकी सशक्तता उन्हें निचे नहीं बैठने देती, उन्हें रोने-कलपने के लिए नहीं आमन्त्रित करती। यदि वे 'कांटों के जंगल' में जा निकलते हैं, तो 'मजनूँ' को ललकारते हैं :

समझ के राखियो क़दम दश्ते[९]-ख़ार में 'मजनूँ'
कि इस नवाह[१०] में 'सौदा' बरहना[११] पा[१२] भी है

वह अपने नंगे पैर होने का रोना नहीं रोते।

'मीर' की तरह 'सौदा' का दिल भी एक फोड़ा था :

अहवाल[१३] की हमारे तुमको तो क्या ख़बर है
गुज़रे है जिसके जी पर सो ख़ूब जानता है
और दिल है जो बग़ल में सो इस तरह का फोड़ा
हरगिज़ न वह पके है ज़ालिम न फूटता है

'सौदा' भी 'बांसुरी की तरह' विलाप कर रहे हैं और कोई मुँह लगाता है तो वह दुहाई देते हैं। किन्तु उनकी दुहाई में रोना-कलपना नहीं है :

जो वह पूछे तुझे क़ासिद[१४] कि 'सौदा' ख़ुश तो रहता है
तो यह कहियो कभू रो-रो दिल अपना शाद[१५] करता है

सच है, 'सौदा' कभी रो-रोकर अपना दिल ख़ुश करते हैं और पढ़नेवालों के मन को भी प्रसन्न करते हैं।

'सौदा' का एक शेर है :

इश्क़ से तो नहीं हूँ मैं वाक़िफ़[१६] + दिल को शोऽला[१७] सा कुछ लपटता है।

यह तो नहीं कह सकते कि 'सौदा' इश्क से परिचित न थे, यद्यपि कभी-कभी यह सन्देह-सा होता है कि 'सौदा' इश्क़ और इश्क़ के चमत्कारों के दर्शक-मात्र थे :

मुल्के दिल क़त्ल करके 'सौदा' का + लश्करे[१८]-हुस्न यों पलटता है

---

१. जला हुआ, २. दिया, ३. प्रातःकालीन, ४. गर्व, ५. नम्रता, दीनता; ६. तक, ७. कहाँ, ८. अन्त, विराम; ९. कांटों का जंगल, १०. जेवार, ११. नंगा, १२. पैर, १३. दशा, १४. दूत, १५. ख़ुश, प्रसन्न; १६. अवगत, परिचित; १७. ज्वाला, १८. सौन्दर्य की सेना।

बात देखी हुई मालूम होती है, दिल पर गुजरी नहीं है। जो भी हो, यह नहीं कह सकते कि 'सौदा' इश्क़ से परिचित न थे। लेकिन जो ज्वाला उनके हृदय को विदग्ध करती है उसमें कुछ खास बात है। वह जलाता तो है, लेकिन जला नहीं देता, बल्कि दिल को एक शक्ति-सी प्रदान करता है। जलन जरूर है, इससे भी इनकार सम्भव नहीं :

नहीं मालूम इस सीने में क्या जो शम्मः[1] जलता है
धुआँ नोके-ज़बां[2] से बात करने में निकलता है

हाँ, तो जलन जरूर है, लेकिन उसे बर्दाश्त[3] करने की ताकत[4] भी है।

मैंने कहा है कि 'सौदा' की आँखें खुली हुई थीं। उनकी दृष्टि व्यापक थी, संसार की बहुरंगी से परिचित भी। 'दर्द' की भाँति वह दुनिया की रंगीनियों में सदा एक सत्ता के छवि-दर्शन की खोज में रहते थे, 'सौदा' ने भी सूफ़ी मत-सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति अक्सर की है। वह प्रेम से परिचित हों या न हों, आध्यात्मिक प्रेम से तो अवश्य अनभिज्ञ थे, यद्यपि रस्मी तौर पर कभी-कभी वह इस राह में भी जा निकलते थे :

हर संग[5] में शरार[6] है तेरे ज़हूर[7] का
'मूसा' नहीं कि सैर[8] करूँ कोहे[9]-तूर[10] का

हाँ, तो वह आध्यात्मिक प्रेम से अनभिज्ञ थे। इसीलिए वह इस संसार में अनेकता का निरीक्षण 'दर्द' की अपेक्षा अधिक करते थे और इसकी विविधता से अधिक परिचित थे। उसी प्रकार वह आन्तरिक भावावेशों का ज्ञान भी रखते थे, किन्तु अधिकतर एक दर्शक की हैसियत से। 'सौदा' अपने जज़्बात में सदा डूबे नहीं रहते, बल्कि सभी प्रकार के मानवीय आवेगों के दर्शक थे और अपनी कल्पना-शक्ति की सहायता से उनकी अभिव्यक्ति करते थे। जो जज़्बात व भावावेश वह देखते या महसूस करते, जो नये-नये चित्र उनकी कल्पना का सर्जन करते, उन सबकी अभिव्यंजना एक शेर में सम्भव न थी। 'मीर', 'सौदा', 'दर्द' सभी को शेर की संकीर्णता का एहसास हुआ था। 'मीर' बहुधा क़िते का प्रयोग करते हैं। 'दर्द' कम व बेश क्रमबद्ध शेर लिखते हैं। लेकिन, इस संकीर्णता का भान 'सौदा' को कुछ अधिक था। उनके मस्तिष्क में भावावेशों तथा कल्पनाओं का जो तूफ़ान उठता है, उसे वह दो मिसरों[11] में बन्द नहीं कर सकते और प्रायः क़िता[12] का प्रयोग करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। ध्यान देने से मालूम होता है कि 'मीर' शेर व गजल के पिंजड़े में बन्द रहने में संतुष्ट थे और उन्हें अकेले शेर में किसी ख़ास कमी का एहसास नहीं हुआ था। 'दर्द' अपनी न्यूनाधिक क्रमबद्ध गजलों की सीमाओं में मगन दीख पड़ते हैं; 'सौदा' को यह सन्तोष प्राप्त न था। वह चाहते थे कि जितनी अधिक अर्थगर्भिता हो सके, एक शेर के छोटे-से पैमाने में भर दें। किन्तु सागर को गागर में बन्द करना सम्भव नहीं। इसलिए, जहाँ उनकी अर्थगर्भिता से मन प्रसन्न होता है वहाँ विचारों के अपूर्ण रहने से चित्त को क्षुब्धता भी होती है। 'सौदा' को

१. शीशे के गिलास में जलती हुई मोमबत्ती, चिराग़; २. जिह्वा का अग्रभाग, ३. सहना, ४. शक्ति, ५. पत्थर, ६. चिनगारी, ७ प्रदर्शन, ८. पर्यटन, भ्रमण; ९. पहाड़, १०. नाम है एक पहाड़-विशेष का, ११. उर्दू शेर की अर्द्ध पंक्ति, १२. उर्दू-कविता का एक रूप-विशेष।

स्वाभाविक रूप से प्रशस्त भूमि की आवश्यकता थी। इसीलिए वे अक्सर किताबन्दी के लिए बाध्य हो जाते थे। उनके विचारों का प्रवाह उन्हें प्रशस्त क्षेत्र की खोज करने के लिए प्रेरित करता था :

वक्ते अखीर 'सौदा' बालीं[१] प उसकी रो-रो
बैठा हुआ कहे था हर दोस्त यार भाई
मर्ज़ी[२] अगर हो तेरी जा उसको हम ले आवें
दूरी[३] ने जिसकी तेरी सूरत[४] यः कुछ बनाई
सुनकर यः बात बोला इतना ही आह भरकर
है नज़अ में[५] अज़ीअत[६] बीमार की दवाई

कैसी संक्षिप्त लेकिन साफ़ और नई तस्वीर है। किन्तु 'सौदा' को दो-तीन शेरों से संतोष नहीं होता। वह अपनी बातों को कहने के लिए कुछ और विस्तृत क्षेत्र चाहते हैं :

तुझ बिन अजब मआश[७] है 'सौदा' का इन दिनों
तू भी टुक उसको जाके सितमगार[८] देखना
ने हर्फ़[९] वो ने हिकायत[१०] वो ने शेर वो ने सुख़न[११]
ने सैरे बाग़ वो ने गुल[१२] वो गुलज़ार[१३] देखना
ख़ामोश[१४] अपने कुल्बए[१५] एहज़ाँ[१६] में रोज़[१७] वोशब[१८]
तनहा[१९] पड़े हुए दर[२०] वो दीवार देखना
या जाके उस गली में जहाँ था तेरा गुज़र[२१]
ले सुब्ह ता[२२] ब[२३] शाम कई बार देखना
तस्कीने[२४] दिल न इसमें भी पाई तो बाऱ्हे[२५] शग़ल[२६]
पढ़ना यः शेर गर कभू अशआर देखना
कहते थे हम न देख सकें रोज़े हिज्र[२७] को
पर जो ख़ुदा दिखाए सो लाचार देखना।

प्रेमी का शोक-सन्तापपूर्ण भाग्य, उसके मन की अशान्ति तथा उद्विग्नता, एकान्त-वास की मुसीबत, उन्माद तथा विक्षिप्तता, अभिलाषा-निराशा—ये सारी बातें इस किते में मौजूद हैं। एक शेर में आशिक़ी से पहले की ज़िन्दगी की तस्वीर की ओर संकेत है :

ने हर्फ़ वो ने हिकायत वो ने शेर वो ने सुख़न
ने सैरे बाग़ ने गुल वो गुलज़ार देखना

अब वह वार्त्तालाप, क़िस्से-कहानियाँ, कविता तथा साहित्य, बाग की सैर करना, फूलों-उद्यानों को

---

१. सिरहाने, २. इच्छा, ३. तटस्थता, विलग होना; ४.दशा, ५. मृत-यातना, ६. दुःख, पीड़ा; ७. जीवन व्यतीत करने का ढंग, ८. अत्याचारी, ९. बात, १०. कहानी, ११. बात, साहित्य; १२. फूल, १३. बगीचा, उद्यान; १४. चुपचाप, १५. कोठरी, १६. दुःख, शोक-सन्ताप, १७. दिन, १८. रात, १९. अकेले, २०. दरवाज़ा, २१. आना-जाना, २२. २३. तक; २४. शान्ति, २५. वास्ते, २६. मनोरंजन, २७. विरह।

देखना कहाँ ! अब तो रंग ही दूसरा है। किन्तु स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के समय की यह स्मृति पृष्ठभूमि का काम देती है। और अब जो प्रेम ने कायापलट कर दिया है, उसके वर्णन को अधिक प्रभावशाली बना देती है। हाँ, तो पहले बात-चीत, क़िस्से-कहानियाँ थीं, काव्य-साहित्य के चरचे थे, फूलों-फुलवारियों की सैर होती थी, और अब यह हाल है कि :

ख़मोश अपने कुल्बए-एहज़ाँ में रोज़ वो शब + तन्हा पड़े हुए दर वो दीवार देखना

प्रत्येक शेर एक प्रभावशाली चित्र है और सारे चित्र मिलकर एक सम्पूर्ण चित्र तैयार करते हैं।

यदि 'सौदा' कहीं किसी व्यक्तिगत अनुभव को प्रतिबिम्बित करते हैं तो कभी किसी घटना का सजीव वर्णन :

तरग़ीब[1] न कर मुझको वाँ चलने को ऐ 'सौदा'
उस यार ने अब हमसे यह चुहल[2] निकाली है
वारिद[3] मैं हुआ उसके कल घर में तो यह देखा
त्योरी सी चढ़ा सूरत कुछ और बना ली है
हर बात प है मेरी औरों से उसे चश्मक[4]
मुझ पर वः कनाया[5] है नौकर प जो गाली है
ग़ैर[6] उसके इशारे से जब करने लगे नोकें[7]
उठ्ठा मैं यह कहकर तब याँ मुर्ग़ की पाली[8] है
एक उनमें यों बोला क्यों जाते हो बैठो तुम
जाओगे तो यह मजलिस फिर लुत्फ़[9] से ख़ाली है
उस शोख़ ने यह सुनकर बोला कि ख़ुदा से डर
सर पर से बला अपने जों तों की मैं टाली है
पस[10]ग़ौर[11] कर ऐ नादाँ[12] जिस घर में यः सोहबत[13] है
वाँ जाके ख़ुशी आना यह ख़ाम[14] ख़याली है

आशिक़ का माशूक़ की मित्र-मण्डली में जाना, उसके पहुँचने पर माशूक़ का त्योरी चढ़ाना, अन्य लोगों से सैन करना और संकेतात्मक ढंग से उसे गाली देना, ग़ैरों से चोटें, आशिक़ का अपना अपमान महसूस करके उठना, उसका शोक-सन्ताप तथा क्रोध, एक शत्रुभाव रखनेवाले व्यक्ति का व्यंग्यपूर्ण ढंग से कहना : "जाओगे तो यह मजलिस फिर लुत्फ़ से ख़ाली है"। फिर उस शोख़ का स्पष्ट रूप से प्रेमी को एक बला ठहराना। इस ठठोल का पूरा-पूरा नक्शा 'सौदा' ने शब्दों में उतारा है। केवल विभिन्न गतिविधियों का दृश्य ही नहीं, भिन्न-भिन्न आवाज़ों का भी चरबा उतारा है। फिर अन्तिम सीन में इसी सीन का नतीजा निकाला है। अन्तिम पंक्ति प्रथम पंक्ति से सम्बद्ध है। इस अनुरूपता से अर्थ-बोध पूर्ण हो जाता है; और किसी चीज़ की न तमन्ना बाक़ी रहती है न उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। काश 'सौदा' इस प्रकार के क़िते और लिखे होते !

१. लालच दिलाना, २. हँसी-ठट्ठा, ३. उपस्थित होना, ४. नोक-झोंक, ५. संकेत, ६. अपरिचित व्यक्ति, दुश्मन; ७. नोक-झोंक, ८. झुण्ड, ९. आनन्द-मजा, १०. अतः, ११. ध्यान दे, १२. मूर्ख, १४. सहवास, १४. मिथ्या भ्रम, भूल।

उनको विस्तृत क्षेत्र की आवश्यकता थी। इसलिए वे गजल व शेर की त्रुटियों को दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक महसूस करते थे। किन्तु इसका निराकरण न कर सके थे। उनमें भी उतनी सर्जन-शक्ति न थी, इतनी मौलिकता न थी कि अपने लिए कोई नया रास्ता निकालते; हालांकि 'मीर' व 'दर्द' व 'सौदा' में अगर किसी को नई राह की आवश्यकता थी तो वह 'सौदा' को थी। उन्होंने निकाली भी तो एक बँधी-टँकी पुरानी राह अर्थात् क़सीदा, जिसका ज़िक्र आगे होगा।

बहरहाल, उनकी वर्णन-शैली बहुत ही पुष्ट और सुदृढ़ होती है। वह शब्दों तथा उनकी बन्दिशों का निर्णय बहुत ध्यानपूर्वक करते हैं, और एक जौहरी की तरह उनको अपने विशिष्ट स्थान पर जड़ देते हैं। उनके शब्दों में गौरव तथा महानता और बन्दिशों में मौलिकता एवं अनोखापन होता है। उनकी उपमाएँ प्रकृति-निरीक्षण के फलस्वरूप होती हैं; उनके रूपक प्रायः अनोखे और अप्राप्य होते हैं। इस विषय में भी 'सौदा' के शेरों में अपेक्षाकृत अधिक विविधता है। उनका स्वर ऊँचा, लेकिन प्रिय है। 'सौदा' की अधिकारपूर्ण वर्णन-शैली दिन की तरह प्रकाशमान है। उनकी रचना में एक अपरिमित ओज भी है, जो 'मीर' व 'दर्द' को मुयस्सर नहीं। वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति इस ज़ोर-शोर, इस धूमधाम से करते हैं कि श्रवण-शक्ति प्रभावित हो जाती है। यह हंगामा, यह झनकार किसी दूसरे कवि को प्राप्त नहीं:

मक़दूर[१] नहीं उसकी तजल्ली[२] के बयां[३] का
जों[४] शम्मः[५] सारापा[६] हो अगर सर्फ़[७] ज़बां का
पर्दे को तइउन[८] के दरे-दिल से उठा दे
खुलता है अभी पल में तिलिसमात जहाँ का
इस गुलशने[१०] हस्ती[११] में अजब दीद[१२] है लेकिन
जब चश्म[१३] खुली गुल[१४] की तो मौसिम है ख़ज़ां[१५] का
देखलाइए ले जाके तुझे मिस्र[१६] का बाज़ार
लेकिन नहीं ख़्वाह[१७] कोई वां[१८] जिन्से[१९] गेरां[२०] का
'सौदा' जो कभू गोश से हिम्मत के सुने तू
मज़मून यही है जर[२२]-से-दिल की फ़ुग़ां[२३] का
हस्ती से अदम[२४] तक नफ़से[२५] चन्द[२६] की है राह
दुनिया से गुज़रना सफ़र ऐसा है कहां का

●

१. शक्ति, २. छवि, सौन्दर्य; ३. वर्णन, ४. समान, ऐसा; ५. चिराग़, दीया; ६. नख-शिख, ७. व्यवहार, व्यय; ८. नियम-बद्धता, ९. द्वार, १०. उद्यान, बाग़; ११. संसार, अस्तित्व; १२. दृश्य, १३. आँख, १४. फूल, १५. पतझड़, १६. एक देश जो अरब के निकट है, १७. चाहनेवाला, १८. वहाँ, १९. वस्तु, २०. महँगा, २१. कान, २२. घण्टा, २३. आह, २४. अनस्तित्व, २५. सांस, २६. कुछ इने-गिने।

सन्दर्भ-संकेत

१. आबे-हयात

२. फ़ारुक़ी साहेब की पुस्तक "मीर तक़ी 'मीर' " से लिये हुए कुछ उद्धरणों को ध्यानपूर्वक देखें :—

१. "ताज़्किरए बहारे बेखज़ां" में लिखा है कि 'मीर'—

"अपने नगर में एक अप्सरा-जैसी सुन्दरी से, जो उनके सम्बन्धियों में से थी, गुप्तरूप से प्रेम करते थे; उनका मन उसी में रमा हुआ था। अन्ततः उनके प्रेम ने अच्छा रंग दिखलाया........इस भेद के खुल जाने की शर्म से वह अपूर्णकाम अत्यन्त दुःखों तथा शोक-संतप्त हृदय के साथ दुःखी मन से जन्मभूमि से नाता तोड़, घर-द्वार लुटाकर अकबराबाद से लखनऊ पहुँचे। और देश-निकाला का हृदयविदारक शोक-सन्ताप सहते हुए अपने इष्ट-मित्रों के दर्शन से वंचित इसी स्थान पर उन्होंने अपने प्राण आदिस्रष्टा को समर्पित किये। जब तक जीवित रहे प्रेम-पाश गर्दन में और उन्माद की ज़ंजीर उनके पैरों में पड़ी रही। उनकी प्रेम-सम्बन्धी हृदय में टीस पैदा करनेवाली रचनाओं से विदित होता है कि वे सैकड़ों अभिलाषाएँ अपने साथ क़ब्र में लेते गये।"

बहुत सम्भव है कि अकबराबाद के लोगों ने इसी कारण उनकी उपेक्षा की हो; और मुहम्मद हसन ने इसी वजह से 'मीर' को अपने 'समय का उपद्रवी' व्यक्ति लिखा हो और 'ख़ाने आरज़ू' को भी उनसे शिकायत हुई हो। और नवयुवक 'मीर' का भाव-प्रवण हृदय शुभेच्छुओं के नीरस उपदेशों को सहन न कर सका हो।

"तज़्किरए बहारे बे ख़ेजां" का भाव 'मीर' के प्रति नम्रता तथा संवेदनापूर्ण है। इसलिए कोई वजह नहीं कि तज़्करा-लेखक ने द्वेष तथा शत्रुता से उत्प्रेरित होकर यह प्रेम-कहानी लिखी है।

२. 'मीर' स्वयं लिखते हैं कि यौवनावस्था की तरुणाई के समय उन्माद ने उग्र रूप धारण किया और मस्तिष्क पर पित्त आच्छादित हो गया। बराबर बकते रहने को जी चाहता था। अपने-पराए की बदनामी का ख़याल छोड़ मान-प्रतिष्ठा भंग करना ही अच्छा लगता था। सब किसी को गाली देना और पत्थर मारना ही अपना काम-धन्धा था। 'ख़ान आरज़ू' ने कहा कि ऐ प्यारे, सन्तुलित गालियाँ असन्तुलित आशीर्वादों से श्रेयस्कर और कपड़े फाड़ने से अधिक अच्छा है। चूँकि काव्य-रचना की ओर स्वाभाविक मनोवृत्ति थी, जो गाली मुँह तक आई वह कविता की अर्द्ध-पंक्ति या पूर्ण पंक्ति हो गई।

दिल-दिमाग़ के स्वस्थ हो जाने पर भी मन को काव्य-रचना का स्वाद मिलता रहा। कभी-कभी दो-चार शेर जो 'ख़ाने आरज़ू' की सेवा में निवेदन किये उसे उन्होंने बहुत पसन्द किया और काव्य-साहित्य की अधिक-से-अधिक आराधना करने का आदेश दिया।

एक दिन 'ख़ाने आरज़ू' ने कहा कि आज 'मिर्ज़ा सौदा' अपना यह मतला[1] बड़े अभिमान के साथ पढ़ गये :

चमन में सुब्ह जो उस जंगजू[2] का नाम लिया
सबा[3] ने तेग़[4] का आबे खां[5] से काम लिया

'मीर' साहेब ने इसको सुनकर झट यह मतला पढ़ा—

हमारे आगे तेरा जब किसू ने नाम लिया
दिले सितमज़दा[6] को हमने थाम-थाम लिया

'ख़ाने आरज़ू' इसको सुनकर विस्मृति की अवस्था में उछल पड़े और कहा— "खुदा चश्मे बद से महफ़ूज़ रखे।"

३. इस शत्रुता और अत्याचार से 'मीर' को इतनी अन्तःवेदना हुई कि वह दरवाजे बन्द किये हुए पड़े रहते थे और शोक तथा क्रोध के कारण वे उन्माद-ग्रस्त-से रहने लगे। यौन-प्रेम-भावना को दबाने से जो उलझाव और पेचीदगी उनके स्वभाव में पैदा हो गई थी, वह जीते-जी खतम न हो सकी, बल्कि उसने मन की गहराइयों पर अपना आधिपत्य जमा लिया और कल्पना की उग्रता के कारण वे चन्द्रमा में भ्रमजनित रूप अथवा काल्पनिक आकार देखने लगे। मनसवी 'ख़्वाब वो ख़याल' में जो चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है, उसमें यौन-प्रेरणाओं का पूरा दख़ल है। और जो अभिलाषा वास्तविकता के निष्ठुर संसार में पूरी न हो सकी थी उसने कल्पना की आसान दुनिया में पूरी होने की राह निकाल ली।

'मीर' को उन्माद का कुछ हिस्सा विरासत के रूप में भी मिला था। उनके अपने चाचा पागल थे और उनका जवानी में ही स्वर्गवास हो गया था। 'ज़िक्रे मीर' में लिखा है :

उनके (पितामह के) दो लड़के थे। बड़े ख़लल[7]-दिमाग़ से ख़ाली न थे। जवानी ही में मर गये और उनकी कहानी समाप्त हो गई :—

इस मौके पर इष्ट-मित्रों तथा सम्बन्धियों ने दवा-दारू करने में कोताही नहीं की, विशेषतः फ़ख़रुद्दीन खाँ की स्त्री ने, जो 'मीर' की निकट की सम्बन्धिनी

१. गजल या क़सीदे की पहली पंक्ति, २. लड़ाका, ३. प्रातःकालीन समीर, ४. तलवार, ५. बहता हुआ पानी, एक प्रकार का बहुत महीन कपड़ा, ६. ज़ुल्म से पीड़ित, दुःखी; ७. ख़लल-दिमाग़, दिमाग़ की ख़राबी।

थीं, तावीज़, गंडे, झाड़-फूँक और दवा-दारू की पूरी कोशिश की। 'ज़िक्रे मीर' में लिखा है :

'फ़ख़रुद्दीन ख़ाँ' की स्त्री, जो एक फ़क़ीर की मुरीद थीं, उनसे निकट का सम्बन्ध रखती थीं। उन्होंने बहुत रुपया ख़र्च किया; जादू-टोना करनेवालों ने मन्त्र फूँका और हकीमों ने उनके बदन से ख़ून निकाला।

अन्ततः वे स्वस्थ हो गये, किन्तु 'बहारे-बे-ख़ेज़ाँ' के लेखक के कथनानुसार "जबतक जीवित रहे,....उन्माद की जंजीर उनके पैरों में पड़ी रही।'

'मीर' के बयान से भी इसकी पुष्टि होती है। जब वे 'ख़ाने आरज़ू' के यहाँ से रुष्ट होकर और खाना खाते से उठकर 'हौज़-क़ाज़ी' पहुँचे तो वहाँ अलीमुल्लाह नाम का एक व्यक्ति मिला। उसने पूछा—"आप मीर मोहम्मद तक़ी 'मीर' हैं?" बोले—"हाँ, कैसे पहचाना?" उसने कहा—"आपका भ्रान्त-चित्त होना तो विख्यात है।" सच तो यह है कि उनके पैरों की जंजीरों की झंकार कहीं-कहीं उनके दीवान[1] में भी सुनाई पड़ती है। प्रेमोन्माद तथा विक्षिप्तता-सम्बन्धी भावों को इतनी सचाई के साथ किसी अन्य उर्दू-कवि ने नहीं लिखा।

५. तज़्किरा 'बहारे-बे-ख़ेज़ाँ' में लिखा है कि 'मीर' अपने शहर में एक अप्सरा-जैसी सुन्दरी से, जो उनके सम्बन्धियों में थी, गुप्त रूप से प्रेम करते थे। उस समय उनकी उम्र सतरह-अठारह साल से कम न थी, जवान थे, भावुक थे। बहुत सम्भव है कि 'ख़ाने-आरज़ू' को यही आशिकमिज़ाजी बुरी लगी हो और भाई ने इसीलिए 'मीर' को 'फ़ित्नए रोज़गार' लिखा हो। अकबराबाद के निवासियों की उपेक्षा और 'मीर' के पागलपन का भी असल कारण यही हो सकता है।

'मीर' के दीवान में जगह-जगह पर इस तरह के इशारे हैं, जिनसे मालूम होता है कि उनका दिल प्रेम की कटार का घायल है और उनकी कविता इसी जिन्दगी की सच्ची और बेलाग तस्वीर है। "उनका दीवान प्रेम का प्रामाणिक बही-खाता है। इसमें जिन भावावेशों तथा घटनाओं का वर्णन है, वह उस समय तक नहीं किया जा सकता जबतक कवि स्वयं इस शोणित-समुद्र में डुबकियाँ न लगा चुका हो और उसने इस आग में कूदकर उसे पुष्पोद्यान न बना दिया हो........"

'मीर' को प्रेम में असफलता हुई। यह असफलता साधारण नहीं है। इसके कारण उनके तन-बदन की एक-एक तंत्री झंकृत हो उठी और उनका प्रेम-पात्र एक मूक वेदना की भाँति उनके समस्त जीवन में समा गया। उनके

१. उर्दू-फ़ारसी गजलों का संग्रह।

आत्म-व्यस्त और एकान्तप्रिय होने का मनोवैज्ञानिक कारण भी यही पराजय और नैराश्य है :

सैकड़ों हर्फ़[1] हैं गिरह[2] दिलमें + पर कहाँ पाइए लबे[3] इज़हार[4]

'मीर' एक मनोवैज्ञानिक संघर्ष में फँसे हुए हैं। उनके अन्तस्तल के किसी छिपे हुए कोने में एक उथल-पुथल मची हुई है। एक ओर अपनी बड़ाई का एहसास है और दूसरी ओर अपने नैराश्य तथा असहायता का भान। इन चीज़ों ने मिलकर उन्हें नई उगी हुई घास की तरह कुचल डाला और चिराग़ की तरह बुझा दिया; लेकिन इन्हीं ने इनकी प्रेम-कविता में अमृत की बूँदें भी टपका दीं।

क़ाज़ी अब्दुलवदूद साहेब लिखते हैं (मआसिर[5] ९ और १०) :

१. लेखक ने इस प्रेम-व्यापार को स्वीकार करते हुए इसका ज़िक्र बहुत जगह किया है; और एक स्थान पर इसे सारे अकबराबाद-निवासियों के (जिनमें उनके अपने भाई और 'ख़ाने-आरज़ू' भी सम्मिलित थे) 'मीर' से रुष्ट होने का कारण बताया है (पृष्ठ ९७)। इस प्रसंग में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं : (क) लेखक ने यह भी नहीं बताया कि 'बहार'[6] किसने लिखा है और 'मीर' के प्रारम्भिक वृत्तान्त की जानकारी के लिए उसके पास कौन-से विशिष्ट साधन थे। (ख) 'बहार' का लेखक इस कहानी का स्रोत नहीं लिखता; केवल यह कहता है कि 'मशहूर है'। 'शिब्ली' का यह कथन कि जो बात जितनी ज्यादा मशहूर होती है उतनी ही गलत होती है, नितान्त स्वीकार करने योग्य नहीं, लेकिन इसमें इतना तथ्य अवश्य है कि 'मशहूर' और 'सही' होना दोनों एक बातें नहीं हैं। मेरी राय में यह बात भी स्वीकार करने योग्य नहीं कि 'बहार' के लिखे जाने के समय में, जो इस कल्पित प्रेम-व्यापार के कम-वो-बेश ११० वर्ष और 'मीर' की मृत्यु के ३५ वर्ष बाद लिखी गई, 'मीर' की यौवनावस्था की यह कहानी सर्वसाधारण की ज़बान पर थी। ऐसा होता तो अन्य तज़्किरा-लेखक भी इसे जानते होते, हालाँकि 'बहार' के लेखक के अलावा किसी ने इसका ज़िक्र नहीं किया। (ग) और यह बात भी नहीं है कि 'नवादिर-उल-कोमला',के रचयिता की तरह 'बहार' के लेखक को 'मीर' के जीवन-वृत्तान्त की जानकारी विशेष रूप से हो। वह 'मीर' के जरूरी और मशहूर हालात से अनभिज्ञ जान पड़ता है और उनके सम्बन्ध में ग़लत तथा भ्रमात्मक बातें लिखता है। उसके कथनानुसार 'मीर' 'आरज़ू' की बहिन के लड़के थे, हालाँकि वे 'मीर' की सौतेली माँ के भाई थे। वह 'मीर' के दिल्ली में दीर्घ

---

१. अक्षर, बातें; २. ग्रन्थि, ३. ओठ, ४. अभिव्यक्ति, ५. एक उर्दू-पत्रिका जो पटना से निकलती थी, ६. 'तज्किरए-बहारे-बे-खिज़ाँ' नामक पुस्तक।

काल तक ठहरने की बात को बिल्कुल नहीं जानता; और जानी हुई बातों पर ध्यान देने से पता चलता है कि वह यह भी नहीं जानता कि 'मीर' की मृत्यु कब हुई। (घ) वास्तविकता यह जान पड़ती है कि 'मीर' की रचना में जो विदग्धता तथा आर्द्रता है, उससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इसका कारण प्रेम में असफलता है। केवल उक्त लेखक ही नहीं, उसके समकालीनों में बहुतों का यह ख़याल रहा होगा। उसने अनुमान और किंवदन्ती में भेद न करके एक बात लिख दी। (ङ) यदि इस प्रेम-व्यापार के कारण उनके अपने भाई ने यह लिखा होता कि मीर 'फ़ितनए रोज़गार है' तो उसका समय वह होता जब 'मीर' देहली जाकर 'आरज़ू' के यहाँ ठहरे हुए थे। मोहम्मद हसन की तहरीर उस समय आई जब वह दिल्ली में रहने की वजह से इस योग्य हो चुके थे कि किसी के सम्बोधन के पात्र हो सकें। (च) प्रेम-विषयक बातों में जिस मुहब्बत का ज़िक्र है, उसके अतिरिक्त उनके किसी अन्य प्रेम का हाल मालूम नहीं। सम्भावनाओं का क्षेत्र बहुत प्रशस्त है। उनका विवेचन तो किया जा सकता है, मगर यह किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा सकता। 'बहार' के लेखक के बयान का होना, न होना बराबर है : (छ) ग्रन्थकार ने लिखा है कि 'ज़िक्र'* के निम्नलिखित उद्धरण में उपर्युक्त प्रेम-व्यापार की ओर संकेत है : "कविता पढ़ता था, प्रेमियों के ऐसा जीवन व्यतीत करता था, रातों को रोता था, सुडौल शरीरवालों से प्रेम करता था" (पृष्ठ २९५)। लेकिन इनसे 'बहार' के लेखक के बयान की पुष्टि नहीं होती। इस उद्धरण का सम्बन्ध आगरा नहीं, दिल्ली से है। यह 'ज़िक्र' जिस बहस में है, उसका शीर्षक 'ज़िक्र' के व्यवस्थापक ने यह स्थिर किया है—"दुर्रानियों के हमले[1] से दिल्ली की ख़राबी और ग़ारतगरी[2] की पुरदर्द[3] दास्तान[4]", और इस उद्धरण के पहले ये शब्द हैं : "अचानक मैं उस मुहल्ले में जा पहुँचा, जहाँ रहा करता था और लोगों के साथ उठता-बैठता था।" (ज़िक्र, पृष्ठ १००)

२. इस मसनवी ('मुआमलाते इश्क़') के कुछ शेरों पर ध्यान दिया जाय :

एक साहेब[5] से जो लगा मेरा + उनके उश्वों[6] ने दिल ठगा मेरा
वे तो हरचंद[7] अपने तौर[8] के थे + पर तसर्रुफ़[9] में एक और के थे
करते ज़ाहिर[10] न एहतियात[11] बहुत + मुझसे भी रखते एख़तलात[12] बहुत
देखे अजबस[13] बरामद:[14] सीने + ऐसा मालूम दिल जो यों छीने
सद्र[15] के नाहिए[16] से लेता नाफ़[17] + चुप की जागह[18] है क्योंकि कहिए साफ़
उससे फिर आगे गुंचए[19] गुल है + याँ सोख़न[20] बायसे[21] तअम्मुल[22] है

१. आक्रमण, २. लूट-पाट, ३. रोमांचकारी, करुण; ४. कहानी, ५. व्यक्ति, ६. हाव-भाव, ७. यद्यपि, ८. ढंग, ९. अधिकार, १०. देखने में, ११. चौकसी, बचाव; १२. मेल-जोल, १३. इतना अधिक, १४. निकाला हुआ, १५. सीना, १६. आसपास, जवार; १७. ढोंढ़ी, १८. स्थान, १९. कली, २०. बात, २१. कारण, २२. ठहरना, सोचना।

*इसका तात्पर्य 'ज़िक्रे मीर' से है।

पर्दे में भी जो कुछ कहा जावे + आपसे तो न टुक रहा जावे
क्यों पड़ी रान पर नज़र ता साक़[1] + उस बिन अब ज़िन्दगी हुई है ताक़[2]
वह क़दम काश फ़र्क़[3] सर पर हो + साक़े सीमीं[4] मेरी कमर पर हो
क्या बयाँ करिये बेक़रारी[5] का + ज़िक्र क्या हाले इज़्तरारी[6] का
जी पड़ा तरसे साथ सोने को + दिल परीशान जम्मा[7] होने को
एक दिन हम वे मुत्तसिल[8] बैठे + अपने दिलख़्वाह[9] दोनों मिल बैठे
शौक़ का सब कहा क़बूल[10] हुआ + यानी मक़सूदे[11]-दिल हुसूल[12] हुआ
वास्ते जिसके था मैं आवारा + हाथ आई मेरे वः महपारा[13]
गह[14]-गहे दस्त[15] दी हमागोशी[16] + हमसरी[17] हमकिनारी[18] हमदोशी[19]

२. (क) परिच्छेद ८ में लिखा जा चुका है कि 'अप्सरा-जैसी सुन्दरी सम्बन्धी' से प्रेम करने का कोई स्वीकार करने योग्य प्रमाण मौजूद नहीं। और परिच्छेद ११ में 'मीर' की उस मसनवी[20] का जिक्र किया गया है, जिसमें उन्होंने एक ऐसी स्त्री के साथ ऐन्द्रिय प्रेम (शुद्ध पाठ सम्भवतः यही है) करने का हाल छन्दोबद्ध किया है, जो किसी और के अधिकार में थी, वह स्त्री विवाहिता रही हो या उपपत्नी हो। परिच्छेद ९ में 'मीर' का यह वाक्य भी, जो उनके दिल्ली-निवास के सम्बन्ध में है, नकल किया जा चुका है : "इश्क़ बा ख़ुश क़न्दा[21] बबाख़तम।" इन बातों के ऊपर इतना और बढ़ा दीजिए कि उन्होंने दो शादियाँ कीं। मेरा यह ख़याल तो है ही कि तरुणावस्था के प्रेम की कहानी सच्ची नहीं, मैं यह भी समझता हूँ कि 'मीर' इस प्रकार की मुहब्बत तो कर सकते थे, जिसका वर्णन उपर्युक्त मसनवी में है। लेकिन उन्हें अपनी ज़ात[22] से इतना अधिक प्रेम था कि किसी दूसरे से प्रेम करना उनके लिए सम्भव न था। उनकी प्रेम-सम्बन्धी कविता ज़िन्दगी से आम असंतोष की द्योतक है। अच्छे आशिक़ाना शेर कहने के लिए स्वयं आशिक होना आवश्यक नहीं।

३. अधिक विस्तार के लिए देखिए प्रायोगिक आलोचना, अंक १, पृष्ठ १५१—१५३।

४. 'बोवेन', 'हरबर्ट', 'टरहर्न' को लीजिए, अधिक मिसालों की आवश्यकता नहीं। यह कविता 'बोवेन' की है :

---

१. पिंडली, २. दुःखी, ३. माथा, ४. रुपहला, चाँदी के ऐसा उजला, बहुत गोरा; ५. अधीरता, ६. बेचैनी, ७. स्थिर, ८. सटे हुए, ९. मित्र, एक-दूसरे को चाहनेवाले; १०. मंजूर, स्वीकार; ११. अभीष्ट, १२. प्राप्त, १३. चाँद का टुकड़ा, १४. कभी, १५. हाथ, प्राप्त हुआ; १६. आलिंगन, १७. बराबरी, १८. आलिंगन, १९. कन्धा मिलाना, २०. उर्दू-कविता का एक रूप, २१. सुडौल शरीरवालों से प्रेम किया, २२. व्यक्तित्व।

Dear, beauteous death ! the jewel of the just,
Shining no where, but in the dark;
What mysteries do lie beyond thy dust,
Could men out look that mark ?

He that hath found some fledged birds nest may know,
At first sight, if the bird be flown;
But what fair well or grove he sings in now,
That is to him unknown.

An yet, as Angels in some brighter dreams
Call to the soul, when man doth sleep :
So some strange thoughts transcend our wonted themes.
And into glory peep.

If a star were confin'd into a Tomb
Her captive flames must need burn there;
But when the hand that lockt her up, gives room,
She'd shine through all the sphere.

They are all gone into the world of light !
And I alone sit lingring here;
Their very memory is fair and bright,
And my sad thoughts doth clear.

It glows and glitters in my cloudy brest
Like stars upon some gloomy grove,
Or those faint beams in which this hill is drest
After the sun's remove.

I see them walking in an Air of glory,
When light doth trample on my days;
My days, which are at best but dull and hoary,
Mere glimering and decays.

O holy hope ! and high humility,
High as the Heavens above !
Those are your walks, and you have show'd them me
To kindle my cold love.

O Father of eternal life, and all
Created glories under thee,
Remove thy spirit from this world of thrall
Into true liberty.

Either disperse these mists, which blot and fill
My perspective (still) as they pass,
Or else remove me hence unto that hill,
Where I shall need no glass.

[*Henry Vaughan*]

५ 'ब्लेक' की कुछ कविताएँ देखिए :

1. AH SUNFLOWER

Ah Sunflower, weary of time,
Who countest the steps of the sun;
Seeking after that sweet golden clime
Where the traveller's journey is done;
Where the youth pined away with desire,
And the pale virgin shrouded in snow
Arise from their graves, and aspire
Where my Sunflower wishes to go !

2. To see a world in a grain of sand,
And a heaven in a wild flower;
Hold infinity in the palm of your hand,
And eternity in an hour.

3. THE TIGER

Tiger, Tiger, burning bright
In the forests of the night,
What immortal hand or eye
Framed thy fearful symmetry ?

In what distant deeps or skies
Burned that fire within thine eyes ?
On what wings dared he aspire ?
What the hand dared seize the fire ?

And what shoulder and what art
Could twist the sinews of thy heart?
When thy heart began to beat,
What dread hand formed thy dread feet?

What the hammer, what the chain
Knit thy strength and forged thy brain?
What the anvil? What dread grasp
Dared thy deadly terrors grasp?

When the stars threw down their spears,
And watered heaven with their tears,
Did he smile his works to see?
Did he who made the lamb make thee?

६. और ये 'दान्ते' की कुछ पंक्तियाँ हैं :

O somma luce, che tanto ti levi
Dai concetti mortali, alla mia mente
Ripresta un poco di quel che parevi,

E fa la lingua mia tanto possente,
Ch'una favilla sol della tua gloria
Possa lasciare alla future gente;

Che per tornare alquanto a mia memoria,
E per sonare un poco in questi versi,
Piu si concepera di tua vittoria.

Io credo, per l' acume ch' io soffersi
Del vivo raggio, ch' io sarei smarrito,
Se gli occhi miei da lui fossero aversi.

E mi ricorda ch' io fui piu ardito
Per questo a sostener tanto, ch' io giunsi
L' aspetto mio col valor infinito.

O abbondante grazia, ond' io presunsi
Ficcar lo visco per la luce eterna
Tanto, che la veduta vi consunsi!

Nel suo profondo vidi che s' interna
Legato con amore in un volume,
Cio che per l' universo si squaderna

Sustanzia ed accidenti e lor costume,
Quasi confiati insieme per tal modo,
Che cio ch' io dico e un semplice lume.

La forma universal di questo nodo
Credo ch' io vidi, perche piu di largo,
Dicendo questo, mi sento ch' io godo.

Un punto solo m'e maggior letargo,
Che venticinque secoli alla impresa,
Che fe' Nettuno ammirar l' ombra d' Argo

Cosi la mente mia, tutta sospesa,
Mirava fissa immobile ed attenta,
E sempre di mirar faceasi accessa.

A quella luce cotal si diventa,
Che volgersi da lei per altro aspetto
E impossibil che mai si consenta;

Perocche il ben ch' e del valere obbietto,
Tutto s' accoglie in lei, e fuor di quella
E diffettivo cio che li e perfetto.

Omai Sara piu corta mia favella,
Pure a quel ch' io ricordo che di un fante
Che bagni ancor la lingua alla mammella.

Non perche piu ch'un semplice sembiante
Fosse nel vivi lume ch' io mirava,
Che tal e sempre qual era davante;

Ma per la vista che s' avvalorava
In me guardando, una sola parvenza,
Mutandom' io, a me si travagliava :

Nella profonda e chiara sussistenza
Dell' alto lume parvemi tre giri
Di tre colori e d' una continenza;

E l' un dall' altro, come Iri de Iri,
Parear riflesso, e il terzo parea foco
Che quinci e quindi egualmente si spiri.

O quanto e corto il dire, a e come fioco
Al mio concetto! e questo a quel ch' io vidi
E tanto, che non basta a dicer poco,

O luce eterna, che sola in te sidi,
Sola t' intendi, e da te intelletta
Ed intendente te, ami ed arridi!

Quella circulazion, che si conectta
Pareva in te come lume riflesso,
Dagli occhi miei alquanto circonspetta,

Dentro da se del suo colore stesso,
Mi parve pinte della nostra effige,
Per che il mio viso in lei tutto era messo

Qual e'l geometra che tutto s' affige,
Per misurar lo cerchio, e non ritrova
Pensando quel principio ond' egli indige;

Tale era io a quella vista nuova
Veder voleva, come si convenne
L' imago al cerchio, e come vi s'indova;

Ma non eran da cio le proprie penne,
Se non che la mia mente fu percossa
Da un fulgore, in che sua voglia venne.

All' alta fantasia qui manco possa;
Ma gia volgeva il mio disiro e il velle,

Si come rota ch' egualmente e mossa,
L' amor che move il sole e l' altre stelle.

[*Pardiso* XXXIII 67—145]

और यह एक कविता है 'एमिली ब्रोन्ती' की। काश ! उर्दू के कवि इस ढंग से अपने व्यक्तिगत अनुभवों का वर्णन करते !

Still let my tyrants know, I am not doom'd to wear
Year after year in gloom and desolate despair;
A messenger of Hope comes every night to me,
And offers for short life, eternal liberty.

He comes with Western winds with evening's wandering airs;
With that clear dusk of heaven that brings the thickest stars;

Winds take a pensive tone, and stars a tender fire,
And visions rise, and change, that kill me with desire.

Desire for nothing known in my maturer years;
When joy grew mad with awe, at counting future tears;

When, if my spirit's sky was full of flashes warm,
I knew not whence they came, from sun or thunder storm.

But first, a hush of peace—soundless calm descends;
The struggle of distress and fierce impatience ends.
Mute music soothes my breast—unutter'd harmony
That I could never dream, till Earth was lost to me.

Then dawns the Invisible; the Unseen its truth reveals;
My outward sense is gone, my inward essence feels;
Its wings are almost free—its home, its harbour found,
Measuring the gulf, it stoops, and dares the final bound !

O dreadful is the check—intense the agony—
When the ear begins to hear, and the eye begins to see;
When the pulse begins to throb—the brain to think again—
The soul to feel the flesh, and the flesh to feel the chain.

Yet I would lose no sting, would wish no torture less;
The more that anguish racks, the earlier it will bless;
And robed in fires of hell, or bright with heavenly shine,
If it but herald Death, the vision is divine.

[*Emily Bronte*]

देखिए—'प्रायोगिक आलोचना', अंक १, पृष्ठ १३९—१४१ ।

४

'मीर' और 'सौदा' पर जो सरसरी आलोचना की गई है, उससे उर्दू-गजल की खूबियों और खामियों दोनों का अनुमान करना सम्भव है। परवर्ती कवियों ने अपनी अलग-अलग शैली निकाली, लेकिन किसी की गजल ने इसकी व्यापक सीमाओं के आगे क़दम नहीं रखा। काव्य के दूसरे रूपों में रचनाएँ तो जरूर कीं, लेकिन गजल के तत्त्व को न बदला और कविता के इस रूप-विशेष पर उसके अन्य रूपों की अपेक्षा अधिक समय लगाया। इसलिए 'ग़ालिब', 'मोमिन' और 'ज़ौक़' की रचनाओं पर विस्तारपूर्वक बहस करने की जरूरत नहीं। गजल में जो आम रूपगत दोष हैं और प्राचीन कवियों की गजलों में पाये जाते हैं, वह इनकी गजलों में भी मौजूद हैं।

'सौदा' की उस्तादी और रचना-सामर्थ्य 'ज़ौक़' के हिस्से में आई। लेकिन वह रंगीन कल्पना-शक्ति, जो प्रकृति ने 'सौदा' को प्रदान की थी, वह जोश-खरोश, वह शोख़ी तथा हास्य-रसज्ञता 'ज़ौक़' के भाग्य में कहाँ! बात यह है कि 'ज़ौक़' स्वभाव से ही शुष्क प्रकृति के थे। वह अपनी गजलों में बस इतना ही कमाल दिखाते हैं कि विभिन्न भावावेशों तथा विचारों को कुशलतापूर्वक सुन्दर ढंग से संक्षेप के साथ बयान करते हैं। उनमें बड़ी कमी यह है कि जिन मानसिक गतियों तथा काल्पनिक रूपों का वे प्रदर्शन करते हैं, उनसे उनके दिल वो दिमाग प्रभावित नहीं होते। इसीलिए उनकी रचनाओं में तासीर मानों है ही नहीं। उनकी कविता का क्षेत्र 'सौदा' के क्षेत्र से छोटा है। उनकी गजलों में यों तो सभी प्रकार की बातें पाई जाती हैं; लेकिन 'ज़ौक़' प्रायः नैतिक विषयों से अधिक दिलचस्पी रखते हैं और साफ तथा परिष्कृत और प्राञ्जल ढंग से उनकी अभिव्यक्ति करते हैं। उनकी रचना में वे सारी खूबियाँ, जो गद्य में होती हैं, मौजूद हैं। विचारों का वर्णन इतने सरल-सहज ढंग से करते हैं कि वे शीघ्र समझ में आ जाते हैं। शैली सीधी-सादी, संक्षिप्त, समग्र और सही है—बहिर्गत आडम्बरों से मुक्त। किन्तु वह विशिष्ट सौन्दर्य जो कविता में होता है, जैसे जज़्बात की गर्मी, भावों की प्रफुल्लता, कल्पना का वर्ण-वैविध्य इत्यादि ये सारी चीज़ें नहीं होने के बराबर हैं। ये चीज़ें 'सौदा' की रचनाओं में मिल जाती हैं, परन्तु 'ज़ौक़' की कविता में नहीं मिलतीं। 'सौदा' भी अक्सर कृत्रिम विचारों और भावावेशों का बयान करते हैं, किन्तु उनमें यह सामर्थ्य है कि वह कृत्रिम को असली बना सकें; 'ज़ौक़' को प्रकृति ने इस शक्ति से वंचित रखा।

'ज़ौक़' की एक गजल है :—

बजा[1] कहे जिसे आलम[2] उसे बजा समझो
ज़बाने ख़ल्क़[3] को नक्कारए[4] ख़ुदा समझो
अज़ीज़ो[5] इसको न घड़ियाल की सदा[6] समझो

---

१. ठीक, दुरुस्त; २. संसार, ३. जनता, ४. ढोल, नगाड़ा; ५. प्यारे, लोगों; ६. आवाज़।

य: उम्रे रफ़्ता[1] की अपनी सदाए पा[2] समझो
नफ़स[3] की आमद[4] वो शुद है नमाज़े अहले[5] हयात
जो यह क़ज़ा[6] हो तो ऐ ग़ाफ़िलो[7] क़ज़ा[8] समझो
तुम्हारी राह में मिलते हैं ख़ाक[9] में लाखों
इस आरज़ू[10] में कि तुम अपना ख़ाके पा समझो
दुआएँ देते हैं हम दिल से तेग़े क़ातिल[11] को
लबे[12] जराहते[13] दिल को लबे दुआ समझो
तुम्हें है नाम से क्या काम मिस्ले[14] आईना
जो रूबरू[15] हो उसे सूरत-आश्ना[16] समझो
नहीं है कमज़रे[17] ख़ालिश[18] से ज़र्दी[19]-ए-रुख़सार[20]
तुम अपने इश्क़[21] को ऐ 'ज़ौक़' कीमिया[22] समझो

उपर्युक्त सारी विशेषताएँ इस गजल में मौजूद हैं। विचारों को सफलतापूर्वक बयान किया है, लेकिन हृदय तृप्त एवं प्रसन्न नहीं होता, और इसका कारण यह है कि स्वयं 'ज़ौक़' को भी वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं हुआ था। आमद[23], स्वाभाविकता का कहीं नाम नहीं; सभी कुछ आवुर्द[24]-ही-आवुर्द है। प्रौढ़ता है, अभ्यास-प्रौढ़ता है, लेकिन असर नहीं, कवित्व नहीं; यह गजल नहीं एक कवि-सुलभ अभ्यास है। हाँ, अभ्यास अवश्य स्वीकृत है। 'ज़ौक़' की गजलों में प्रायः यही पाया जाता है कि उन्होंने इनमें अपने रचना-सामर्थ्य का प्रमाण दिया है; व्यक्तिगत भावों तथा आवेशों की अभिव्यक्ति उद्दिष्ट नहीं।

मैंने कहा है कि 'ज़ौक़' नीति-सम्बन्धी विषयों से अधिक दिलचस्पी रखते हैं और इसमें भी उनका 'सौदा' से सादृश्य है; किन्तु जो ज़ोर-शोर 'सौदा' में है, वह 'ज़ौक़' में कहाँ ? :

वही जहाँ में रुमूज़े[25] क़लन्दरी[26] जाने
भभूत तन प जो मल्बूसे[27] क़ैसरी[28] जाने
ग़ुलाम उसकी मैं हिम्मत का हूँ कि जो अपने
जिगर के ख़ून को दस्तरख़्वाने[29] तवंगरी[30] जाने
फ़हीम[31] है वही आफ़ाक़[32] में तेरा जोया[33]
कि जिसमें पाए तुझे उससे फिर बरी[34] जाने

---

१. गया हुआ, व्यतीत हुई; २. पैर, ३. साँस, ४. आना-जाना, ५. जीवित प्राणी, ६. टूट जाना, नष्ट होना; ७. लापरवाह लोग, ८. मृत्यु, ९. मिट्टी, १०. अभिलाषा, ११. क़त्ल करनेवाला, १२. होंठ, ओठ; १३. ज़ख़्म, १४. सदृश, १५. आमने-सामने, १६. परिचित, १७. सोना, १८. स्वच्छ, १९. पीलापन, २०. गाल, २१. प्रेम, २२. वह रासायनिक क्रिया, जिससे ताँबे को सोना बनाया जाता है, २३. स्वाभाविक भाव, २४. क्लिष्ट कल्पना, २५. रहस्य, २६. फ़क़ीरी, २७. आवृत, कपड़ा पहने हुए, २८. राजकीय, २९. दस्तरख़्वान, वह कपड़ा जिसपर रखकर मुसलमान खाना खाते हैं, ३०. शक्तिशालिता, अमीरी; ३१. समझदार व्यक्ति, ३२. संसार, ३३. ढूँढ़नेवाला, ३४. मुक्त।

जो ख़ार[१] राहे तलब[२] में हुआ हो दामनगीर[३]
गयूर[४] उसको बेह[५] अज़[६] ख़िज़्रे[७] रहबरी[८] जाने
जहाँ में क़िस्सए युसुफ़ है आइना[९] कि पेसर[१०]
पेदर[११] का दर्द न मेहरे[१२] बेरादरी[१३] जाने
गुदाज़े[१४]-दिल ने किया है मेरा तिलाई[१५] रंग
वो तालिब[१६] उसका है जो कीमियागरी[१७] जाने

'ज़ौक़' को यह ज़ोर-शोर, यह उच्च-घोष, यह ओज प्राप्त नहीं। और यह भी स्पष्ट है कि 'ज़ौक़' ने अपने मक़ता[२४] में 'सौदा' के इस शेर से लाभ उठाया है :

गुदाज़े-दिल ने किया है मेरा तिलाई रंग + वह तालिब उसका है जो कीमियागरी जाने

किन्तु 'ज़ौक़' चेहरे के पीलेपन से अवगत हों तो हों, हृदय की आर्द्रता से तो परिचित नहीं। कहने को तो वह कहते हैं :

पानी तबीब[१८] देगा हमें क्या बुझा हुआ
है दिल ही जिन्दगी से हमारा बुझा हुआ
कहते थे आफ़ताबे[१९] क़यामत[२०] जिसे सो वह
निकला चिराग़े दाग़े दिल अपना बुझा हुआ
फिर दिल में आहे-सर्द हुई मेरे शोलावर[२१]
लो फिर भड़क उट्ठा यः फ़तीला[२२] बुझा हुआ
हम आप जल बुझे मगर उस दिल की आग को
सीने में हमने 'ज़ौक़' न पाया बुझा हुआ

यहाँ केवल बातें-ही-बातें हैं। जिस दिल की आग का वह ज़िक्र करते हैं वह कभी प्रज्वलित नहीं होती, भड़क नहीं उठती। उनकी कविता बुझा हुआ फ़तीला है, बल्कि ऐसा फ़तीला, जिसने कभी आग की शकल ही नहीं देखी है। वह विदग्धता-आर्द्रता कहाँ, जो 'मीर' का हिस्सा है। इतना भी असर नहीं, जो 'सौदा' के शेरों में है। कुछ और शेरों पर ध्यान दिया जाय :

जीना हमें असला[२३] नज़र अपना नहीं आता
गर आज भी वह रश्के[२४] मसीहा[२५] नहीं आता
मज़कूर[२६] तेरी बज़्म[२७] में किसका नहीं आता
पर ज़िक्र हमारा नहीं आता नहीं आता
आता है दम आँखों में दमे[२८] हसरते दीदार[२९]
पर लब प कभी हर्फ़े[३०] तमन्ना[३१] नहीं आता

---

१. काँटा, २. चाह की राह, ३. दामन पकड़नेवाला, ४. स्वाभिमानी, ५. अच्छा, ६-८. से पथ-प्रदर्शन करनेवाले खिज़ा, ९. स्पष्ट, १०. पुत्र, ११. बाप, १२. प्रेम, १३. भ्रातृ-सुलभ, १४. पिघलाव, १५. सुनहरा, १६. चाहनेवाला, १७. रासायनिक क्रिया, १८. वैद्य, १९. सूर्य, २०. प्रलय-काल, २१. चिराग की लौ, २२. बत्ती, २३. अवश्य, २४-२५. मसीह से स्पर्धा करनेवाला, २६. ज़िक्र, २७. सभा, २८. समय, २९. दर्शन, ३०. अक्षर, बात; ३१. इच्छा, अभिलाषा।

किस दम नहीं घुटता मेरा दम सीने[1] में ग़म से ?
किस वक़्त मेरा मुँह को कलेजा नहीं आता
हम रोने प आ जायँ तो दरिया ही बहाएँ
शबनम[2] की तरह से हमें रोना नहीं आता
हस्ती[3] से ज़ियादा है कुछ आराम अदम[4] में
जो जाता है यां से वः दोबारा नहीं आता

दो-चार शेरों को छोड़कर 'ज़ौक़' की उड़ान इन शेरों से आगे नहीं जाती। जीने मे निराशा, यार की सभा में अपना ज़िक्र न होना; तमन्ना की बात का मुँह तक न आना; बाह्य रूप से यह सब बातें अपूर्ण अभिलाषा तथा निराशा की चीजें हैं। लेकिन इनसे पढ़नेवाले को हसरत वो मायूसी नहीं होती। कुछ अधिक साहस हुआ और लेखनी में कुछ अधिक शक्ति भरी तो कहा :

किस दम नहीं घुटता मेरा दम सीने में ग़म से
किस वक़्त मेरा मुँह को कलेजा नहीं आता
हम रोने प आ जायँ तो दरिया ही बहाएँ
शबनम की तरह से हमें रोना नहीं आता

इन शेरों में अगले तीन शेरों से अधिक जोर है, अधिक प्रवाह है, शायद कुछ अधिक असर है। किन्तु, यह जोर, यह रवानी, यह असर ज़ोरे-क़लम का नतीजा है, अभ्यास का फल है, रचना-सामर्थ्य का परिणाम है, तीव्र आवेगों का नतीजा नहीं। हम दम घुटते नहीं देखते, कलेजा मुँह को आते नहीं देखते, रोने से दरिया बहते हुए नहीं देखते। अर्थात् यह सब बातें-ही-बातें हैं। बातें क़रीने से की गई हैं। असर है तो वर्णन-शैली की सुन्दरता के कारण; सौन्दर्य है तो शाब्दिक।

मैंने कहा है कि 'जौक़' के अभ्यास की बात सर्वस्वीकृत है। इसी अभ्यास की वजह से और इसी अभ्यास के प्रदर्शन के लिए वह कठिन पृष्ठभूमियों तथा मुश्किल तरहों में गजलें लिखते हैं। और, कहने को तो ये गजलें सफल भी होती हैं और अपनी विशिष्टताओं की वजह से प्रशंसा भी पा लेती हैं, लेकिन एक बार पढ़ने के बाद फिर उन्हें दोबारा पढ़ने की इच्छा नहीं होती :

बुलबुल हूँ सेहने[5] बाग़ से दूर और शिकस्ता[6] पर
परवाना हूँ चिराग़ से दूर और शिकस्ता पर
क्या ढूँढे दश्ते[7] गुमशुदगी[8] में मुझे कि है
उन्क़ा[9] मेरे सुराग़[9] से दूर और शिकस्ता पर
साक़ी बते[10]-शराब है तुझ बिन पड़ी हुई
ख़ुम[11] से अलग अयाग़[12] से दूर और शिकस्ता पर

---

१. छाती, हृदय; २. ओस, ३. अस्तित्व, जीवन; ४. अनस्तित्व, विनाश, ५. आँगन, खुला स्थान; ६. पंख-भग्न, ७. मरुभूमि, निर्जन-स्थान, लुप्तावस्था, भूली हुई अवस्था; ८. एक काल्पनिक पक्षी, जो अदृश्य है, ९. पता, खोज; १०. शराब की सुराही, जो पंडुक के आकार की हो; ११. मटका, ठिलिया; १२. प्याला।

ख़ुद उड़के पहुँचे नामः[1] जो हो मुर्ग़[2] नामाबर[3]
उस शोख़-ख़ुश[4] -दिमाग़ से दूर और शिकस्ता पर
करता है दिल का क़स्द[5] कामाँदार[6] तेरा तीर
पर है निशाने दाग़ से दूर और शिकस्ता पर
ऐ 'ज़ौक़' मेरे तायरे[7] दिल को कहाँ फ़राग़[8]
कोसों है वह फ़राग़ से दूर और शिकस्ता पर

रदीफ़[9] 'से दूर और शिकस्ता पर' कठिन है; और क़ाफ़िए 'चिराग़'[10], 'सुराग़' इत्यादि भी मुश्किल। इस गजल में केवल यही प्रबन्ध किया गया है कि रदीफ़ के शब्दों के आलोक में शेर की रचना की गई है और वे अपनी जगह पर सुव्यवस्थित दीख पड़ते हैं। क़ाफ़िए भी आसान नहीं। इनका भी ध्यान रखना आवश्यक है। कहना पड़ता है कि 'ज़ौक़' ने इस पथरीली ज़मीन[20] को ख़ूब हरी-भरी बनाया है। किन्तु, कविता की हैसियत से इस गजल का स्थान कुछ ऊँचा नहीं, इसमें शाब्दिक श्लेष के अतिरिक्त और क्या रखा है; केवल तुकबन्दी कविता का स्थान नहीं ले सकती :

साक़ी[11] बते-शराब है तुझ बिन पड़ी हुई
ख़ुम से अलग अयाग़ से दूर और शिकस्ता पर

'बते-शराब' में मात्र शाब्दिक श्लेष है। यदि रदीफ़ में 'शिकस्ता पर' का टुकड़ा न होता तो फिर 'बते-शराब' का भी बयान न होता। इसी 'शिकस्ता परी' का खयाल सभी शेरों में मौजूद है। बुलबुल, परवाना, उनक़ा, मुर्ग़, मुर्ग़े, नामाबर, तीर, तायरे दिल इत्यादि सभी जगह यही खयाल है।

कविता में कार्य-विधान यह है कि पहले कवि के हृदय में जज़्बात की लहर उठती है, उसकी कल्पना उमड़ने पर उन्मुख होती है। तदुपरान्त वह अपने हृदयावेशों, अपने मानसिक रूपकों का शब्दों की सूरत में चित्रण करता है। और, शब्दों का चुनाव, बन्दिशों का गठन, चित्रों की खोज, उन आवेगों और विचारों को और भड़काती और उन्हें सूक्ष्मातिसूक्ष्म बनाती है। उनको नये-नये भावावेशों तथा रूपकों से मालामाल करके उनके मूल्य-महत्त्व में चार चाँद लगाती है। 'ज़ौक़' का कार्य-विधान ऐसा नहीं। इसी वजह से उनके शेरों में असलियत और वास्तविकता की कमी है। वह जान-बूझकर शेर कहते हैं। कभी यह होता है कि शब्दों की खोज, बन्दिशों की मौलिकता, मूर्त्त चित्रों का चुनाव आवेगों और विचारों में एक लहर पैदा करता है; एक तरंग सतह पर उभरती है; किन्तु शेरों में तासीर का सुन्दर रूप दीख नहीं पड़ता :

---

१. पत्र, चिठ्ठी, २. पक्षी, ३. पत्र-वाहक, ४. प्रफुल्ल-चित्त, ५. संकल्प, इरादा; ६. धनुर्धारी, ७. पक्षी, ८. फ़रागत, अवकाश; ९. गजल-कसीदे के प्रथम शेर के दोनों मिसरा और हर पंक्ति के दूसरे मिसरे का अन्तिम शब्द, जो बार-बार आता है, १०. मधुबाला।

क्या ग़रज़[1] लाख ख़ुदाई[2] में हों दौलतवाले
उनका बन्दा[3] हूँ जो बन्दे[4] हैं मुहब्बतवाले
रहे जो[5] शीशए[6]-साअत वह मुक़द्दर[7] दोनों
कभी मिल भी गये दो दिल जो कदूरत[8]वाले
हिर्स[9] के फैलते हैं पाँव बक़दरे[10] उसअत[11]
तंग ही रहते हैं दुनिया में फ़रागत[12]वाले
नहीं जुज़[13] शम्मा मुजाविर[14] मेरी बालीने[15] मज़ार[16]
नहीं जुज़ कसरते[17]-परवाना ज़ेयारत[18] वाले
न सितम[19] का कभी शिकवा न करम[20] की ख़्वाहिश
देख तो हम भी हैं क्या सब्र[21] वो कनाअत[22]वाले
नाज़[23] है गुल को नेज़ाकत[24] प चमन में ऐ 'ज़ौक़'
उसने देखे ही नहीं नाज़ वो नेज़ाकतवाले

गजल लम्बी है, लेकिन केवल इन्हीं शेरों में जज़बात की झलक है। दूसरे शेरों में सिवाय अभ्यास के और कुछ भी नहीं; इनका मूल्य गद्य से अधिक नहीं। यही बात अधिकांश गजलों के विषय में भी सही है। उनकी लम्बी गजलों में कभी ऐसे शेर भी नजर आते हैं, जो कुछ असर रखते हैं; किन्तु उनमें भी वह स्वाभाविक भाव, वह अकृत्रिमता, वह तासीर नहीं, जो 'मीर' व 'दर्द' के शेरों में है, वह जोश-ख़रोश, वह गरिमा, वह रंगीनी नहीं, जो 'सौदा' के शेरों में पाई जाती है।

'ज़ौक़' ने कुछ क़िते भी बड़े प्रबन्ध वो परिश्रम के साथ पद्य-बद्ध किये हैं। उनकी दशा भी वही है, जो उनकी गजलों की है :

कल एक तारिके[25]-दुनिया से मैंने पूछा 'ज़ौक़'
कि तू उखड़ के इधर से उधर हुआ पैवस्त[26]
गुज़रती होगी ब आराम जिन्दगी तेरी
कि तुझको अब न ग़मे-नीस्त[27] है न शादिए[28] हस्त[29]
कहा यः उसने कि क़ैदे[30]-हयात[31] में इनसां
कभी न होगा दिल आसूदा[32] गर हो मस्ते-अलस्त[33]
उठाए हाथ जहाँ से व लेक[34] क्या इम्कां[35]
कि बा-फ़राग़[36] करे कुंजे[37] आफ़ियत[38] में नशस्त[39]

१. मतलब, २. सृष्टि, ३. सेवक, ४. जन, लोग; ५. सदृश, समान; ६. घड़ी का शीशा; ७. द्वेषयुक्त, रुष्ट; ८. गन्दगी, ईर्ष्या-द्वेष; ९. लालच, १०. अनुपात में, ११. फैलाव, विस्तार; १२. बेफ़िक्री, १३. सिवाय, १४. पुजारी, पण्डा; १५. सिरहाने, १६. क़ब्र, दरगाह; १७. आधिक्य, १८. दर्शन करना, १९. ज़ुल्म, अत्याचार; २०. कृपा, उदारता, २१. धैर्य; २२. संतोष, २३. गर्व, २४. सुकुमारता, २५. विरक्त, संसार-त्याग करनेवाला; २६. मिला हुआ, २७. नहीं होना, २८. ख़ुशी, २९. होना, ३०. बन्धन, ३१. जीवन, ३२. संतुष्ट, ३३. अन्तकाल के ध्यान में मगन, ३४. लेकिन, ३५. सम्भावना, ३६. बेफ़िक्री से, ३७. कोना, ३८. आराम, ३९. बैठक।

छुटा जो कोई गिरफ़्तारियों[१] से दुनिया की
तो सिलसिले[२] में फ़क़ीरी के वह हुआ पाबस्त[३]
रहा वः ख़िदमते[४] मुर्शिद[५] की क़ैद में बरसों
कि हक़[६]परस्त हो वह पहले जो हो पीर[७]-परस्त
गर एक उम्र[८] में पहुँचा मोक़ामे[९] आली[१०] पर
कहा यः शौक़ ने ही हिम्मते-बुलंद न पस्त[११]
जो दस्तगाह[१२] तसर्रुफ़[१३] में भी हुई उसको
तो यह इरादा हुआ और भी हों बालादस्त[१४]
हमेशा जंग रही बादे-सुल्हे[१५]-कुल के भी
कि नफ़्स[१६] दुश्मने सरकश[१७] है इसको दीजे शिकस्त[१८]
जो होशियार है तो है वः शरअ[१९] का पाबन्द[२०]
फँसा हुआ है वह कैफ़ीअतों[२१] में गर है मस्त
नहीं है दामे[२२] अलाएक़[२३] से मुतलक़[२४] आज़ादी
मजाल क्या कि निकल जाय कोई करके जस्त[२५]
कहा है ख़ूब किसी ने यह शेर बरजस्ता[२६]
गया ज़बाँ से निकल उसकी जैसे तीर अज़[२७] शिस्त[२८]
*के कर्द क़तए तअल्लुक़ कुदाम शुद आज़ाद
बुरीदये ज़ हमा बा ख़ुदा गिरफ़्तार अस्त

इस क़िते की विषय-वस्तु का निचोड़ अन्तिम शेर में मौजूद है। इस संसार में किसी को स्वाधीनता मुयस्सर नहीं। जो दुनिया के बन्धन में नहीं, वह ख़ुदा का बन्दी है। संसार से विरक्त मनुष्य को आराम नसीब कहाँ? जीवन के बन्धन में मनुष्य को सन्तोष कैसे सम्भव हो? इसी विषय को 'ज़ौक़' ने विस्तारपूर्वक कहा है। ऐसा जान पड़ता है कि 'ज़ौक़' को पहले यह फ़ारसी शेर पसन्द हुआ। फिर जी में यह ख़्वाहिश हुई कि जो ख़याल इसमें संक्षेप में पद-बद्ध हुआ है उसे विस्तारपूर्वक बयान किया जाय। परिणाम यही किता है। गजलों की तरह विषय यहाँ भी नैतिकता है; और उसका बयान ज़ोर वो चुस्ती के साथ हुआ है, किन्तु अभिव्यक्ति का ढंग गद्य से मिलता-जुलता है। फ़ारसी शेर ने क़ाफ़िया और विषय दोनों का अनुकरण आवश्यक ठहरा दिया। तत्पश्चात् क़ाफ़ियों ने प्रत्येक शेर और हर शेर के विषय की ओर इशारा किया। इस क़िते में

१. बन्धनों से, २. ज़ंजीर, ३. पैर बँधा हुआ, जकड़ा हुआ; ४. सेवा, ५. गुरु, ६. भगवदोपासक, ७. गुरु-सेवक, ८. दीर्घ काल, ९. स्थान, १०. ऊँचा, आदरणीय; ११. नीचा, निम्नकोटि का; १२. योग्यता, १३. अधिकार, १४. ऊँचा, उन्नत; १५. पूर्ण शान्ति; १६. वासना, कामना; १७. उद्दण्ड, हठीला; १८. पराजित कीजिए, १९. उद्दण्ड, हठीला; २०. धर्मशास्त्र, २१. मनोभावों, २२. जाल, फन्दा; २३. सम्बन्ध, २४. नितान्त, पूर्णतया; २५. छलाँग, २६. यथायोग्य, २७. से, २८. धनुष की ताँत।

*किसने सम्बन्ध-विच्छेद किया, कौन आज़ाद हुआ? जो सबसे कटकर विलग हो (भी) गया, तो भगवान् (के झमेलों) में फँस गया।

विचारधारा का विकास दीख पड़ता है। किन्तु यह विकास स्वाभाविक नहीं, बिल्कुल कृत्रिम है। विचारों में अप्रिय शुष्कता भी है, जिससे मन क्षुब्ध हो जाता है और कल्पना को कोई आनन्द नहीं प्राप्त होता। शब्दों का क्रम भी नितान्त कृत्रिम है और है आकर्षण-विहीन। इनमें प्रायः कर्कशता भी दीख पड़ती है :

कल एक तारिके दुनिया से मैंने पूछा 'ज़ौक़'
कि तू उखड़ के इधर से उधर हुआ पैवस्त

दूसरा मिसरा कितना कर्कश है ! इससे कानों को आघात पहुँचता है। और यह कर्कशता, जो इस मिसरे में इतनी प्रमुख है, वह सारे क़िते में वर्त्तमान है। असल बात यह है कि 'ज़ौक़' के कान सुरीली आवाज़ से परिचित न थे। केवल इस क़िते ही में नहीं, 'ज़ौक़' के अधिकांश शेरों में लयदारी की स्पष्ट रूप से कमी है। यदि कहीं पर लयदारी है भी तो वह आकर्षण और वह जादू कहाँ, जो 'मीर' व 'दर्द' व 'सौदा' को अपने-अपने रंग में प्राप्त है :

हंगामा[१] गर्म[२] हस्तिए[३] नापायदार[४] का + चश्मक[५] है बर्क़[६] की कि तबस्सुम[७] शरार[८] का
आना है गर तो आओ कि सीने से चलके अब + आँखों में आके ठैरा है दम इन्तज़ार का
हो पाकदामनों[९] को ख़लिशगर[१०] से क्या ख़तर + खटका नहीं निगाह को मिज़गाने[११]यार का
ऐ 'ज़ौक़' होश गर है तो दुनिया से दूर भाग + इस मैकदे[१२] में काम नहीं होशियार का

यहाँ कुछ लयदारी है, लेकिन वह लयदारी कहाँ, जो 'मीर' के इस शेर में है :

हस्ती अपनी हुबाब[१३] की-सी है + यह नुमाइश[१४] सुराब[१५] की-सी है

२. जिस तरह 'ज़ौक़' व 'सौदा' में बहुत-कुछ समानता है उसी तरह 'ग़ालिब' और 'सौदा' के दिमाग और कल्पना में भी सादृश्य है। ग़ालिब' ने शब्द-सौष्ठव तो 'सौदा' से नहीं सीखा, लेकिन जज़्बात की बुलन्दी और कल्पना की उड़ान में वह 'सौदा' से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। 'ग़ालिब, का दिमाग़ बुलन्द और कल्पना सामान्य थी। उनका दृष्टिकोण संकीर्ण व सीमित न था। इसलिए वह गजल के प्रचलित विषयों पर सन्तोष नहीं करते और अक्सर दार्शनिक विचारों को शेर में दाखिल करते हैं। और प्रकृति ने उन्हें यह शक्ति प्रदान की थी कि वे कृत्रिम आवेगों और विचारों को जोश के साथ महसूस कर सकें। इस विचार से वे 'सौदा' से श्रेष्ठतर थे और इसी वजह से वह 'सौदा' से अधिक सफल हुए :

इशरते[१६] क़तरा[१७] है दरिया में फ़िना[१८] हो जाना
दर्द का हद से गुज़रना[१९] है दवा हो जाना

---

१. हलचल, २. तेज़, ३. अस्तित्व, सृष्टि; ४. अनित्य, नश्वर; ५. चमक, झलक; ६. बिजली, ७. मुसकान, ८. चिनगारी, ९. पवित्र आत्माएँ, १०. चुभन पैदा करनेवाला, ११. पलकों की बरौनी, १२. मधुशाला, १३. बुलबुला, १४. प्रदर्शन, १५. मृगतृष्णा, १६. आनन्दोल्लास, १७. बिन्दु, बूँद; १८. नष्ट, विलीन; १९. बढ़ जाना, आगे चला जाना।

तुझे क़िस्मत में मेरी सूरते[1] क़ुफ़्ले[2]-अबजद
था लिखा बात के बनते ही जुदा हो जाना
अब जफ़ा[3] से भी हैं महरूम[4] हम अल्लाह ! अल्लाह !!
इस क़दर दुश्मने अरबाबे[5]-वफ़ा हो जाना
ज़ोफ़[6] से गिरिया[7] मुबद्दल[8] ब दमे[9] सर्द हुआ
बावर[10] आया हमें पानी का हवा हो जाना
बख़्शे[11] है जल्वए[12] गुल ज़ौक़े[13] तमाशा[14] 'ग़ालिब'
चश्म[15] को चाहिए हर रंग में वा[16] हो जाना

'ग़ालिब' ने भी नई उपमाएँ, नये रूपक गढ़े हैं : 'क़ुफ़्ले अबजद', 'पानी का हवा हो जाना' इत्यादि। 'सौदा' की शोख़ी मौजूद है, लेकिन तासीर में 'सौदा' से बहुत आगे हैं। 'ग़ालिब' को भी दृश्य देखने का शौक मुयस्सर है, उनकी आँखें भी खुली हुई हैं, वह भी विश्व-निरीक्षण की क्षमता रखते हैं; उनके पारदर्शी नेत्र बाह्य रूपकों तथा आन्तरिक अनुभूतियों को देखते हैं और वे अपने शेरों में उनकी अभिव्यक्ति करते हैं; और उनके शेरों में आवेगों और विचारों का महत्त्व बराबर है, कठिन-से-कठिन विषय को भी आसानी से बयान कर देते हैं :

इशरते क़तरा है दरिया में फ़िना हो जाना
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना

इस गम्भीर व कठिन विषय को अत्यन्त सहज व समग्र रूप से बयान किया है।

अन्य कवियों की तुलना में 'ग़ालिब' अधिक प्रबन्ध के साथ क़िताबन्दी[17] करते हैं और उनके क़ितों में काफ़ी विविधता है। जहाँ पर उपदेश देने का उद्देश्य होता है वहाँ वह वासना-रूपी चादर पर बैठे हुए नौजवानों को जीवन की वेदनापरक अनित्यता से अवगत कराते हैं, और जहाँ आम दृश्यों का चित्रण करते हैं तो धरती के वासियों को वसन्त-ऋतु द्वारा संसार की शोभा-वृद्धि का तमाशा दिखाते हैं। कभी बादशाह की प्रशंसा का राग अलापते हैं और कभी दिल के जिल्लत उठाने के प्रेम का चित्र या नाज का नज़ारा क़लम के ज़ोर से कागज पर खींचकर दिखाते हैं। सारांश यह कि विभिन्न रंगों में अपने विचारों के तारुण्य की शोभा दिखाते हैं :

फिर इस अन्दाज़ से बहार आई + कि हुए मेह[18] वोमह[19] तमाशाई[20]
देखो ऐ साकिनाने[21] ख़ित्तए-[22]ख़ाक + इसको कहते हैं आलम[23] आराई[24]
कि ज़मीं हो गई है सर-ता[25]-सर + रूकशे[26] सतहे[27] चर्ख़ मीनाई[28]

---

१. समान, २. Letter lock, अक्षर-ग्रन्थि; ३. ज़ुल्म, अत्याचार; ४. वंचित, ५. प्रेमीजन, ६. कमज़ोरी, ७. रुलाई, ८. परिणत, ९. ठण्डी साँस, १०. विश्वास, ११. प्रदान करता है, देता है; १२. छवि, सुषमा, १३. रुचि, १४. दृश्य देखना, १५. आँख, १६. खुलना; १७. दो या अधिक शेरों का ऐसा प्रयोग कि किसी एक को भी छोड़ देने से अर्थ न निकले। १८. सूर्य, १९. चन्द्रमा, २०. दर्शक, २१. निवासियों, २२. प्रदेश, २३. संसार, २४. सँवारना, शृंगार करना; २५. सर्वांग, पूर्णतया, २६. सामने होना, मुक़ाबिल होना; २७. आसमान, २८. शीशे के रंग का।

सब्ज़े[१] को जब कहीं जगह न मिली + बन गया रूए[२] आब[३] पर काई
सब्ज़: व गुल को देखने के लिए + चश्मे[४] नर्गिस[५] को दी है बीनाई[६]
है हवा में शराब की तासीर + बादा[७] -नोशी है बाद-पैमाई[८]

वर्णन-शैली साधारण है, किन्तु अनुभूतियां निजी हैं। कवि के हृदय ने वसन्त-ऋतु द्वारा संसार की शोभा-वृद्धि से आनन्द उठाया है। उसकी रंगीनियों से उसकी कल्पना प्रमुदित हुई है। शब्दों में कैसी ताज़गी और प्रफुल्लता है; और यह नवीनता तथा प्रफुल्लता इस बात की द्योतक है कि यहाँ क्लिष्ट कल्पना नहीं, वलिक असली जज़्बात की अभिव्यक्ति है।

'ग़ालिब' का एक शेर है :

है आदमी बजाय[९] -ख़ुद एक महशरे[१०] ख़्याल
हम अनजुमन[११] समझते हैं ख़िलवत[१२] ही क्यों न हो

यह शेर स्वयं 'ग़ालिब' के लिए मौज़ू है। नाना प्रकार के विचार उनके मन में उठा करते थे और इसी विचार-वैविध्य को उन्होंने अपने काव्य में प्रकट किया है। इसीलिए उनकी तबीयत अक्सर क़िता लिखने को उद्यत हो जाती थी; और यदि क़िता नहीं तो वह क्रमबद्ध गजल लिखते या गजल के कुछ शेरों में अर्थ के विचार से सम्बन्ध एवं अनुरूपता उत्पन्न करते :

लाज़िम[१३] था कि देखो मेरा रस्ता कोई दिन और
तनहा[१४] गये क्यों अब रहो तनहा कोई दिन और
आये हो कल और आज ही कहते हो कि जाऊँ
माना कि हमेशा नहीं अच्छा कोई दिन और
जाते हुए कहते हो क़यामत[१५] को मिलेंगे
क्या ख़ूब! क़यामत का है गोया[१६] कोई दिन और
हाँ ऐ फ़लके[१७] पीर[१८] जवाँ था अभी 'आरिफ़'
क्या तेरा बिगड़ता जो न मरता कोई दिन और
तुम माहे[१९]-शबे[२०]-चारदहुम[२१] थे मेरे घर के
फिर क्यों न रहा घर का वः नक़्शा[२२] कोई दिन और
तुम कौन-से थे ऐसे खरे दाद[२३] वो सितद के
करता मलकुलमौत[२४] तक़ाज़ा कोई दिन और
मुझसे तुम्हें नफ़रत सही 'नैयर' से लड़ाई
बच्चों का भी देखा न तमाशा कोई दिन और

---

१. घास, २. चेहरा, ३. पानी, ४. आँख, ५. एक फूल, जिससे आंखों की उपमा दी जाती है, ६. नयन-ज्योति, ७. मद्यपान, ८. हवा नापना, निरर्थक कार्य; ९. अपनी जगह, १०. प्रलयकाल, ११. सभा, १२. एकान्त, १३. उचित, १४. अकेले, १५. प्रलयकाल, १६. मानो, १७. आसमान, १८. बूढ़ा, १९. चन्द्रमा, २०. रात, २१. चौदहवीं अर्थात् पूर्णिमा का चाँद, २२. रूप, दशा; २३. लेन-देन, २४. यमराज।

गुज़री न बहरहाल यः मुद्दत[१] ख़ुश[२] वो नाख़ुश
करना था जवाँमर्ग[3] गुज़ारा कोई दिन और

इस गजल को संकलित करने का ख़ास कारण है। इसमें विचारों में आपस में मेल है और साथ-साथ आवेगों में वास्तविकता भी है। लेकिन भिन्न-भिन्न शेरों में जो सम्बन्ध और आनुक्रमिकता है, वह अनिवार्य नहीं। यह तो ठीक है कि सभी शेर एक ही घटना से सम्बद्ध हैं, एक ही होनेवाली बात के आसपास चक्कर काटते हैं, लेकिन गजल में विचारों और आवेगों का आरम्भ, प्रगति और पराकाष्ठा नहीं। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो दूसरा और तीसरा शेर मतला[४] से पहले होना चाहिए। इसी तरह मुखातिब कभी 'आरिफ़' और कभी 'फ़लकेपीर' है। इससे भी कुछ विच्छिन्नता पैदा हो जाती है। इस गजल से यह बात प्रमाणित होती है कि उर्दू के कवि गजल-गोई के इतने अभ्यस्त हो गये थे कि इसकी विशृंखलता और विच्छिन्नता उनका स्वभाव बन गई थीं; यहाँ तक कि यदि वे किसी प्रबल निजी आवेग से आक्रान्त होते भी थे तो उसकी अभिव्यंजना लगाव तथा अनुरूपता के साथ नहीं कर सकते थे। और जब आवेग निजी नहीं, काल्पनिक वो ख़याली हो तो फिर लगाव व अनुरूपता कहाँ?

'ग़ालिब' की रचनाओं में कुछ दोष भी हैं। एक तो उनकी शैली की विषमता है। 'मीर' व 'दर्द' की तरह उनका कोई ख़ास अन्दाज़े-बयान नहीं। कम-से-कम तीन तरह की शैली उनकी रचनाओं में पाई जाती है। पहले रंग में फ़ारसीपन का प्राधान्य है; शब्दों और बन्दिशों में फ़ारसी रंग स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। केवल कहीं-कहीं पर कुछ उर्दू के शब्द जोड़ देते हैं, जो प्रायः बेमौक़ा जान पड़ते हैं :

शबनम ब[४] गुले-लाला न ख़ाली ज़े[५] अदा[६] है
दाग़े दिले बेदर्द नज़रगाहे[७] हया है
दिल ख़ूँ[८]-शुदए कशमकशे[९] हसरते[१०] दीदार[११]
आईना ब-दस्ते[१२] बुते[१३] बदमस्ते[१४] हिना[१५] है
तिमसाल[१६] में तेरी है वः शोख़ी कि बसद[१७] शौक़
आईना ब अन्दाज़े[१८]-गुल आग़ोश[१९]-कुशा है
मजबूरी वो दावाय-गिरफ़्तारिए-उल्फ़त
दस्ते[२०] तहे-संग-आमदा[२१] पैमाने-वफ़ा[२२] है
मालूम हुआ हाले-शहीदाने[२३]-गुज़श्ता[२४]
तेग़े-सितम[२५] आईनए-तस्वीर-नुमा है

---

१. समय; अवधि, २. सुख, चैन; ३. जवानी में मरनेवाले, ४. में, ५. से, ६. भंगिमा, भावभंगी; ७. देखने की जगह, ८. विदग्ध हृदय, ९. संघर्ष, १०. लालसा, ११. दर्शन, १२. हाथ में, १३. मूर्त्ति, प्रेमपात्र; १४. उन्मत्त, १५. मेंहदी, १६. चित्र, १७. सैकड़ों, अत्यधिक; १८. फूल के अनुपात में, १९. गोद, अंक; २०. हाथ, २१. पत्थर के नीचे आया हुआ या पड़ गया हुआ, २२. प्रेम निबाहने का वचन, २३. धर्मयुद्ध में मारे गये लोग, २४. बीता हुआ, गत; २५. ज़ुल्म की तलवार।

पहले, दूसरे और चौथे शेर में अगर 'है' को बदल दिया जाय तो फिर ये शेर उर्दू के शेर शेष न रह जायेंगे। बन्दिशें सब-की-सब फारसी ही की हैं। यह बात इतनी स्पष्ट है कि अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। एक ओर तो इतना फारसीपन और दूसरी ओर अतिशय सादगी है। अत्यन्त सीधे-साधे मामूली शब्दों में, संक्षेप के साथ सरल तथा आसानी से समझ में आ जानेवाले ढंग से अपने विचारों को व्यक्त करते हैं। मतलब शीघ्र ही हृदयंगम हो जाता है, समझने में कोई कठिनाई नहीं होती :

'इब्ने[1] मरियम[2]' हुआ करे कोई + मेरे दुख की दवा करे कोई
बात पर वाँ ज़बान कटती है + वह कहें और सुना करे कोई
बक रहा हूँ जुनूं[3] में क्या-क्या कुछ + कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई
न सुनो गर बुरा कहे कोई + न कहो गर बुरा करे कोई
रोक लो गर ग़लत चले कोई + बख़्श दो[4] गर ख़ता करे कोई
कौन है जो नहीं है हाजतमंद[5] + किसकी हाजत रवा[6] करे कोई
जब तवक़्क़ो[7] ही उठ गई 'ग़ालिब' + क्यों किसी का गिला[8] करे कोई

यह सादगी कैसी मनोहर है ! प्रत्येक शब्द शीशे की तरह झलकता हुआ है। लयदारी भी मौजूद है। यह 'ग़ालिब' की विशेषता है। इनके शेरों में लयदारी सभी जगह विद्यमान है। और जिस तरह जज़्बात तथा विचारों में विविधता है उसी तरह लयदारी में भी भिन्न-भिन्न रंग का परिवर्त्तन है। लेकिन, जहाँ अधिक शेर लयदारी में डूबे हुए निकलते हैं वहाँ कभी-कभी आवाज़ ज़रा-सी भद्दी भी हो जाती है। जो कुछ भी हो, 'ग़ालिब' का तीसरा रंग इन दोनों रंगों के बीच में है। फारसी शब्दों और बन्दिशों का सीधे-साधे ढंग से सुखद सम्मिश्रण है :

आह को चाहिए एक उम्र सेहर[9] होने तक
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़[10] के सर होने तक
आशिक़ी सब्रतलब[11] और तमन्ना बेताब[12]
दिल का क्या रंग करूँ ख़ून जिगर होने तक
परतवे[13]-ख़ुर[14] से है शबनम को फ़िना[15] की तालीम[16]
मैं भी हूँ एक एनायत[17] की नज़र होने तक
एक नज़र बेश नहीं फ़ुर्सते हस्ती ग़ाफ़िल
गर्मिये[18] बज़्म[19] है एक रक़्से[20] शरर[21] होने तक

---

१. पुत्र, २. हज़रत ईसा की माँ का नाम था, ३. पागलपन, उन्माद; ४. क्षमा कर दो, ५. आवश्यकतावाला, ६. पूरा करना, आवश्यकता दूर करना; ७. आशा, ८. शिकायत, ९. प्रभात, प्रातःकाल; १०. अलकें, ११. धैर्य की माँग करनेवाला, १२. अधीर, १३. झलक, १४. सूर्य, १५. विनाश, नश्वरता; १६. शिक्षा, १७. कृपा, देन; १८. चमक-दमक, चहल-पहल, शोभा; ९. सभा, जलसा; १०. नृत्य, ११. चिनगारी।

ग़मे-हस्ती का 'असद' किससे हो जुज़[1] मर्ग[2] इलाज
शम्मः[3] हर रंग में जलती है सेहर[4] होने तक

इस गजल में वह भद्दापन नहीं, जो पहले रंग में मिलता है। फ़ारसी की वन्दिशें और क्रम हैं, किन्तु ये भद्दी नहीं जान पड़तीं; ये तो आँखों को भली और कानों को प्रिय लगती हैं। इस शैली में दूसरे रंग की शैली से अधिक गुंजाइश और विस्तार है। सभी प्रकार के जज़्वात वो खयालात की समाई सम्भव है; फिर लयदारी भी कम नहीं।

'ग़ालिव' में केवल शैली की ही विषमता नहीं, विषय-वस्तु में भी यही विषमता है। कहीं पर तो वे उदात्त दार्शनिक विचारों को कविता की परिधि में खींच लाते हैं और कहीं सामान्य सूफ़ी मत के विचारों को जोश और असर के साथ बयान करते हैं। कहीं गहरे तथा सुन्दर भावावेशों की अभिव्यक्ति करते हैं तो कहीं पर संसार-निरीक्षण का ताजा एवं विकसित चित्र खींचते हैं। लेकिन इस बहुरंगी के साथ-साथ वह पुराने तथा घिसे-पिटे विचारों और प्रचलित प्रेम-सम्बन्धी जज़्बात को ग्रामीण और कुत्सित ढंग से पद-बद्ध भी करते हैं। इस विषमता के कारण मन विक्षुब्ध हो जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि उनकी 'फरियाद की कोई लय नहीं है'; उनका 'नाला नै[5] का पाबन्द[6] नहीं है।'

इन खामियों के होते हुए भी 'ग़ालिव' एक विशिष्ट आर्ट के मालिक हैं। बात यह है कि कवि दो प्रकार के होते हैं। कुछ कवि ऐसे होते हैं, जो नई राहें निकालते हैं, पुराने रास्तों पर चलना अपनी शान के विरुद्ध समझते हैं; प्राचीन प्रणाली से उनका जी घबराता है और वे नई डगर का आविष्कार करते हैं। कुछ कवि ऐसे भी होते हैं, जो किसी नई राह की आवश्यकता नहीं समझते, जो जाने हुए रास्ते पर चलते हैं, उसी को प्रशस्त करते हैं या अपनी चाल में कुछ नई शान या बाँकपन पैदा करते हैं। 'गालिब' इसी प्रकार के कवि हैं।

नई शैली वही निकालता है, जिसमें कुछ मौलिकता का तत्त्व होता है, जिसका व्यक्तित्व परम्परागत बातों की सीमाओं में कब्र की-सी तंगी महसूस करने लगता है, जिसके अनोखे, दुर्लभ अनुभव साधारण विनियुक्त और जाने हुए साँचों में उचित निकास नहीं पाते। इसलिए वह एक नई परम्परा का सूत्रपात करता है, नये रूपों का आविष्कार करता है, साहित्य में नई शाखाएँ निकालता है, अर्थात् अपनी इमारत अलग बनाता है। दूसरे लोग उसका अनुसरण करते हैं, उसके बनाये हुए पथ पर चलते हैं, उसकी रविश, उसका रंग पकड़ते हैं। किन्तु नई राह निकालना हर शख्स के वश की बात नहीं और न सभी व्यक्तियों को इसकी आवश्यकता है, और न यह बड़ाई का कोई प्रमाण है। परम्पराओं की सीमाओं के भीतर रहते हुए भी महानता सम्भव है। अगर नई रविश का आविष्कार करना कठिन है, और यह प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं, तो किसी विनियुक्त, सुदृढ़, सीमित रविश में वैयक्तिक विशिष्टता भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है। 'गालिब' के समय में गजल ने उर्दू-कविता की सरज़मीन में सुदृढ़ जड़ पकड़ ली थी। यों कहने को

१. सिवाय, अतिरिक्त, २. मृत्यु, ३. चिराग, ४. प्रभात, सवेरा, ५. बाँसुरी, ६. बँधा हुआ, बन्दी।

तो काव्य के और रूप भी थे, किन्तु सर्वस्वीकृति का जो मानपत्र गजल को मिला था, वह किसी दूसरे काव्य-रूप को मुयस्सर न था। गजल को यह मानपत्र क्यों मिला, इसके बहुत-से कारण थे। लेकिन उन कारणों को बताने का यह मौका नहीं। यह बात तो जानी हुई है कि 'ग़ालिब' के समय में गजल ही एक काव्य-रूप थी, जिसे ग़ालिब अपना सकते थे। यों कहने को तो कसीदा भी था और ग़ालिब ही के समय में 'ज़ौक़' ने कसीदे ही को अपनाना चाहा था और समय की साहित्यिक रुचि तथा उसके प्रमापक के अनुसार उसमें विशिष्ट सफलता भी प्राप्त की थी, लेकिन कसीदा और गजल में आकाश-पाताल का अन्तर था। कसीदा बादशाह के दरबार के लिए अवश्य मौजूं था या फिर केवल धार्मिक जज़्बात और धर्म के महात्माओं के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का एक साधन था। इसने जन-साधारण में अपना घर नहीं बनाया और न बना सकता था। गजल की तो घर-घर चर्चा थी और जो लोग कसीदे की डगर पकड़ते थे वे भी गजल से बिल्कुल विलग नहीं हो सकते थे। 'ज़ौक़' और 'ज़ौक़' से पूर्व 'सौदा' को गजल के क्षेत्र में आना पड़ा था। जो कुछ भी हो, 'ग़ालिब के सामने दो रास्ते थे—कसीदा और गजल। उनका स्वभाव कसीदे के अनुकूल न था। कसीदे उन्होंने लिखे अवश्य, और इन कसीदों के कुछ हिस्से कविता की दृष्टि से काफी उच्च कोटि के भी हैं। यह और बात है कि जो बातें साधारणतः कसीदे का जौहर समझी जाती हैं, वे 'गालिब' के कसीदों में नहीं मिलतीं। जिस व्यक्ति का यह कथन हो :

सौ पुश्त[1] से है पेशए आबर[2] सिपहगरी
कुछ शायरी ज़रीअए[3] इज्ज़त नहीं मुझे

वह कसीदे के क्षेत्र का वीर नहीं हो सकता। इसलिए 'ग़ालिब' के लिए वास्तव में केवल एक ही राह थी और वह थी गजल की ; और यही रास्ता 'ग़ालिब' ने पकड़ा भी। कह सकते हैं कि 'ग़ालिब' के सामने मसनवी[4] का रूप भी था ; और उर्दू-फारसी दोनों में मसनवी के नमूने उनके सामने मौजूद थे, लेकिन 'ग़ालिब' ने उनकी ओर ध्यान न दिया। इसका एक कारण तो यह है कि मसनवी को भी सर्वस्वीकृति का मानपत्र नहीं मिला था और फिर 'ग़ालिब' में सर्जनात्मक योग्यता भी न थी। उनमें जोश था, उमंग थी, लेकिन इस जोश व उमंग को वह देर तक कायम नहीं रख सकते थे। शायद इसीलिए उन्होंने मसनवी की ओर ध्यान नहीं दिया।

'ग़ालिब' के समय में लोगों को पाश्चात्त्य काव्य की जानकारी न थी, और न इस जानकारी की आवश्यकता महसूस की जाती थी। जहाँ पाश्चात्त्य देशों का अन्धानुकरण न था वहाँ पश्चिम से किसी प्रकार लाभान्वित होने का खयाल भी न था। इसलिए 'ग़ालिब' वर्त्तमान समय के नवयुवक कवियों की तरह नये काव्य-रूपों को ग्रहण या उनका आविष्कार नहीं कर सकते थे। यह सब सही, लेकिन 'ग़ालिब' में यह क्षमता न थी कि वह गजल से हटकर 'नजीर' की तरह शृंखला तथा क्रमबद्ध रूपों में अपने अनुभवों का बयान करते। कसीदा न सही, मसनवी भी न —

१. पीढ़ी, २. बाप-दादा, ३. साधन, माध्यम ; ४. उर्दू-कविता का एक रूप, जिसमें शृंखलाबद्ध ढंग से कोई बात कही जाती है ; इसमें प्रत्येक शेर का काफिया-रदीफ भिन्न होता है।

सही, लेकिन यदि 'ग़ालिब' को गजल से बिल्कुल असन्तोष होता तो वह भी 'नजीर' की तरह मुसद्दस[१], मुख़म्मस[२], मुसल्लस[३] इत्यादि में अपने विचारों व अनुभवों को शृंखला व क्रमबद्ध रूप में व्यक्त करते।

मैं कह चुका हूँ कि 'ग़ालिब' के समय में गजल को सर्वस्वीकृति का मानपत्र मिल चुका था। 'ग़ालिब' से पहले अच्छे-अच्छे गजल-गो कवि हो चुके थे, गजल की रूपरेखा निर्धारित हो चुकी थी, इसकी विषयवस्तु का ढांचा तैयार हो चुका था और अच्छे शायरों ने अपना-अपना रंग भी कायम कर लिया था। 'ग़ालिब' ने इसी गजल में अपने लिए एक जगह बना ली और अपना अलग रंग कायम किया। लेकिन उन्होंने गजल की रूपरेखा अपनी जगह पर रहने दी, इसमें किसी प्रकार की कमी-बेशी नहीं की। यदि कभी इसमें किसी तरह की कमी महसूस की तो यह कह दिया :

ब[४] क़द्रे-शौक़ नहीं ज़र्फ़[५] तंगनाए[६] ग़ज़ल
कुछ और चाहिए उसअत[७] मेरे बयां के लिए

या इसी तरह का एकाध शेर कहकर अपनी तात्कालिक अशान्ति प्रकट करते थे। दिल की भड़ास निकली और फिर उसी गजल के डमरूमध्य में अपने विचारों और आवेगों की प्रशस्तता को समेटते रहे। कभी जरा जोश ने मजबूर किया, कभी दिल की गहराइयों से जज़्बात लगातार उभरने लगे, या विचारों, शृंखलाबद्ध विचारों का हुजूम हुआ तो क़िता या क्रमबद्ध गजल की राह पकड़ी, जिसके कुछ उदाहरण ऊपर लिखे जा चुके हैं। लेकिन इसमें कोई खास मौलिकता न थी, कोई नयापन न था; क्योंकि क़िते और क्रमबद्ध शेर अन्य कवियों में भी मिलते हैं। गजल से क़िता अलग किया जा सकता था, क्रमबद्ध गजल को बराबर व्यवहार में लाया जा सकता था; लेकिन 'ग़ालिब' ने दोनों बातों की आवश्यकता न समझी। अर्थात् उनका आर्ट परम्परागत ढंग का है।

'ग़ालिब' का आर्ट परम्परा-पालक सही, किन्तु अपनी सीमाओं के भीतर अपनी-आप मिसाल है। 'मीर' के आर्ट में गहराई है, और शायद जहाँ तक केवल गहराई का सम्बन्ध है, कोई दूसरा कवि 'मीर' से आगे नहीं बढ़ सका है। 'ग़ालिब' के आर्ट में वह गहराई नहीं, उसमें फैलाव है, विविधता है; ऐसी कुशादगी, जिसका 'मीर' को शायद कभी गुमान भी न था। यों कहने को तो 'मीर' के मोटे दीवानों में हर प्रकार के शेर मिलते हैं, देखने में विविधता है, कुशादगी है, लेकिन 'मीर' की सफल पंक्तियों से साफ पता चलता है कि 'मीर' की दुनिया सीमित ढंग की है, जिसमें अथाह गहराई है, लेकिन फैलाव कुछ अधिक नहीं। यही फैलाव 'ग़ालिब' के आर्ट की बड़ी खूबी है। 'ग़ालिब' की विचार-परिधि का फैलाव बहुत अधिक है; इस जाल में सभी कुछ सिमट आया है। इसलिए उसमें वह संकीर्णता नहीं, जो 'मीर' के शेरों में मिलती है। 'ग़ालिब' एक ओर कहते हैं :

---

१. उर्दू-काव्य का वह रूप, जिसमें प्रत्येक छन्द में छह-छह मिसरे होते हैं; २. उर्दू-काव्य का वह रूप, जिसके हर बन्द में पाँच मिसरे होते हैं, ३. मुसल्लस के प्रत्येक बन्द में तीन मिसरे होते हैं, ४. शौक़ के अनुपात में, ५. बरतन, पात्र, योग्यता; ६. संकीर्ण डमरू-मध्य, ७. फैलाव, कुशादगी।

धौल धप्पा उस सरापा[1] नाज[2] का सेवा[3] नहीं
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती[4] एक दिन

और दूसरी ओर यह उच्चघोष करते हैं :

दिले हर क़तरा है साज़े अनल बह्र + हम उसके हैं हमारा पूछना क्या

अर्थात् 'ग़ालिब' का आर्ट अपनी गुंजाइशों की जानकारी रखता है, और उन गुंजाइशों को प्रकट भी कर सकता है।

इस उसअत (प्रशस्तता) पर जोर देने का यह मतलब नहीं कि इसमें गहराई नहीं, और यह मतलब भी नहीं कि यह आर्ट सतही ढंग का है।

'ग़ालिब' कहते हैं :

हुस्ने[5]-फ़रोग़[6]-शमए-सोख़न[7] दूर है 'असद'
पहले दिले गुदाख़ता[8] पैदा करे कोई

अर्थात् वह इस तथ्य से अवगत थे कि आर्द्र हृदय के बिना साहित्य-रूपी शम्मा के सौन्दर्य में चमक सम्भव नहीं। 'मीर' के आर्ट में जो गहराई है वह इसी आर्द्र हृदय की देन है; और इसी पिघले हुए दिल की देन 'ग़ालिब' के आर्ट में भी मौजूद है, और वही इस आर्ट की गहराई का कारण है। दो-चार मिसालों से यह बात स्पष्ट हो जायगी :

रही न ताक़ते गुफ़्तार[9] और अगर हो भी
तो किस उमीद प कहिए कि मुद्दआ[10] क्या है

× × ×

मुनहसर[11] मरने प हो जिसकी उम्मीद + नाउम्मीदी उसकी देखा चाहिए

× × ×

कोई उम्मीद बर[12] नहीं आती + कोई सूरत नज़र नहीं आती
मौत का एक दिन मो-ऐ[13]-अन है + नींद क्यों रात-भर नहीं आती
आगे आती थी हाले-दिल प हँसी + अब किसी बात पर नहीं आती

× × ×

सब कहाँ कुछ लाल:[14] वो गुल[15] में नुमायां[16] हो गईं
ख़ाक में क्या सूरतें होंगी कि पिन्हा[17] हो गईं

× × ×

कहते हैं जीते हैं उम्मीद प लोग + हमें जीने की भी उम्मीद नहीं

ये उदाहरण बिना किसी विशिष्टता के प्रस्तुत किये गये हैं। इनसे 'ग़ालिब' के आर्ट की गहराई का अनुमान करना सम्भव है।

कवि अपने समय में बौद्धिकता के सबसे ऊँचे स्थान पर होता है, ऐसे ऊँचे स्थान पर, जहाँ दूसरे लोग नहीं पहुँच सकते हैं। इस ऊँचे स्थान से वह आगे-पीछे, बुलन्दी-पस्ती का जायज़ा

१. नखशिख, आद्योपान्त; २. हाव-भाव, विलास-चेष्टा, गर्व; ३. काम, धर्म; ४. पहल, आगे हाथ बढ़ाना; ५. सौन्दर्य, ६. चमक, ७. साहित्य, ८. आर्द्र-हृदय, पिघला हुआ दिल; ९. वार्तालाप, बोलना; १०. अभिप्राय, ११. निर्भर, १२. फलान्वित होना, पूरा होना; १३. निश्चित, निर्धारित; १४. एक प्रकार का लाल फूल, जिसमें हल्की सुगन्ध होती है; १५. गुलाब का फूल, १६. प्रकट, स्पष्ट; १७. छिपा हुआ।

लेता है। जो चीजें वह देखता है उनसे प्रभावित होता है, और उनसे प्रभावित होने में उसके व्यक्तित्व की झलक नजर आती है; फिर वह उन्हीं प्रभावों को अपने आर्ट की सहायता से एक चिरन्तन रूप प्रदान करता है। उसका हृदय भावुक होता है; उसकी आँखें दूरदर्शी तथा सूक्ष्मदर्शी होती हैं। वह सतही चीजों के अतिरिक्त उन चीजों को भी देख लेता है, जो बाह्य रूप से दिखाई नहीं देतीं, लेकिन वे अपने गुप्त स्थानों से, अपने छिपे हुए कोनों से, जीवन और जीवित वस्तुओं पर अपना प्रभाव डालती हैं, और उन्हें किसी विशिष्ट रूप में परिणत करती हैं या किसी खास रंग में रँग देती हैं। 'ग़ालिब' अपने समय में बौद्धिकता के इसी उच्च स्थान पर थे और उसी जगह से जिन्दगी, माहौल, आँखों के सामने की तथा आये दिन होनेवाली चीजों को देखते थे। लेकिन, अपनी भाव-प्रवणता का प्रदर्शन करने के लिए उन्हें एक साँचा मिला, यानी गजल और वह भी दोषयुक्त। इसलिए वह इतनी उदात्त व महान् कृतियाँ प्रस्तुत न कर सके, जो उनके गौरव के उपयुक्त होतीं।

गजल की एक त्रुटि, या विशेषता कहिए, यह भी है कि इसमें अनुभव बहुत साधारण रूप में अपनी विशेषताओं से विलग होकर प्रकट होते हैं। वे विशेषताएँ, जो कवि के माहौल और उसके व्यक्तित्व से सम्बन्धित हैं, नष्ट हो जाती हैं, और उसके अनुभव ऐसे साधारण और अनिश्चित रूप में दीख पड़ने लगते हैं कि उनकी वैयक्तिक शान, उनका अनोखापन शेष नहीं रह जाता। गजल की इस कमी के बावजूद 'ग़ालिब' अपनी वैयक्तिक शान कायम रखते हैं : उनके आर्ट में एक अनोखापन है, जो और कहीं नहीं मिलता। वह फारसीनुमा शेर लिखें या सीधे-सादे शब्दों में अपने आवेगों, विचारों को व्यक्त करें, हर भेष में 'ग़ालिब' का अन्दाज साफ दिखाई देता है। वह भेष फारसी हो :

***[1] हवाए-सैरे-गुल आईनए-बे-मेहरिए क़ातिल**
तमाशाए-ब-ख़ूँ ग़लतीदने सद दिल पसन्द आया

या सीधा-सादा हिन्दी-परिधान हो :

जान दी दी हुई उसी की थी + हक तो यह है कि हक अदा न हुआ

सारांश यह कि वह किसी भेष में क्यों न हों, हमेशा अपने कद के अन्दाज से पहचाने जाते हैं :

***[2] ब हर रंगे की ख़्वाही जामा मीपोश**
मन अन्दाजे क़दत रा मी शनासम

'ग़ालिब' का एक विशिष्ट व्यक्तित्व था। उसमें एक आत्मसम्मान था, एक शान थी, एक

---

*[1] उस क़ातिल का फलों की सैर को जाना उसकी निष्ठुरता का प्रमाण है; उसकी यह इच्छा हुई है कि सैकड़ों के दिलों को खून में लथपथ होते हुए देखे।

*[2] तुम चाहे जिस तरह का भी कपड़ा पहनो, मैं तुम्हारे कद का अन्दाजा कर लूँगा, इसे पहचान लूँगा।

रीति-भद्रता थी, जिसे वह कभी न छोड़ते थे। "हम अपनी वज़ा (ढंग) क्यों छोड़ें?" वह कहते हैं। उनके व्यक्तित्व में उलझाव था और गहराई भी; और फिर एक प्रकार की शोख़ी भी और गम्भीरता भी। वह हँसते भी थे और हँसाते भी थे, और फिर रुलाने की भी क्षमता रखते थे। उनकी तबीयत में गजब का उभार था; अजीब जोश था। एक शेर है:

जला है जिस्म[1] जहाँ दिल भी जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब ख़ाक जुस्तजू[2] क्या है

शरीर जल जाय, दिल भी जलकर राख हो जाय, लेकिन 'ग़ालिब' की आवाज में एक जोर है, एक कड़क है, जिससे मालूम होता है कि शरीर और हृदय के जलने पर भी उनकी आध्यात्मिक शक्ति अपनी जगह पर स्थिर है, बल्कि जलने के बाद उसमें एक नई जान पड़ गई है, और यह जान और जानदारी 'ग़ालिब' के आर्ट की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

'ग़ालिब' के आर्ट की असल महान् कृति यह है कि उसने गजल, विशेषतः अकेले शेर की संकीर्णता को प्रशस्तता में परिणत करने का सफल प्रयास किया। दो मिसरों की क्या बिसात है, उसमें गुंजाइश बहुत कम है। किसी चीज का पूरे तौर पर बयान करना असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। 'ग़ालिब' ने इस मुश्किल को आसान करने में दूसरे कवियों की तुलना में अधिक सफलता प्राप्त की है। 'ग़ालिब' का कथन है कि हर काम का आसान होना कठिन होता है। उसी तरह एक शेर का नज़्म बन जाना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है। किन्तु सच तो यह है कि आदमी को इन्सान होना मुयस्सर हो या न हो, 'ग़ालिब' के शेरों को नज़्मियत[3] मुयस्सर है।

'ग़ालिब' इस बात की कोशिश करते हैं कि एक शेर में विभिन्न विचार व जज़्बात या एक ही खयाल एक ही जज़्बात के विभिन्न पहलुओं को समेट लाएँ। इस उद्देश्य में समग्र रूप से तो सफलता सम्भव नहीं, लेकिन वह एक युक्ति लगाते हैं, जिससे मुश्किल आसान हो जाती है। कई खयाल तो पूरी तरह एक शेर में पदबद्ध हो नहीं सकते, किन्तु 'ग़ालिब' एक बात का कुछ इस तरह बयान करते हैं कि दूसरी बातों की ओर ध्यान जा पड़ता है और शेर पढ़कर बुद्धि इन दूसरी बातों की खोज में लग जाती है; मानों विचार-वैविध्य का द्वार खुल जाता है और 'ग़ालिब' का शेर उस दरवाजे की कुंजी है। यदि आप नदी के किनारे खड़े होकर नदी का दृश्य देखें तो सम्भव है कि नदी की सतह पर आपको पूर्ण शान्ति नजर आये। फिर पत्थर का एक टुकड़ा उठाकर फेंक मारिए तो पानी की सतह पर एक लहर उठेगी। यह लहर दूसरी लहरों को उकसायेगी। लहरों का दायरा बढ़ता जायगा। एक भँवर की-सी दशा दीख पड़ेगी और ये लहरें फैलते-फैलते नजरों से गायब हो जायेंगी। 'ग़ालिब' के शेर कल्पना-सागर में इसी प्रकार की लहरें उठाते हैं:

मुनहसर[4] मरने प हो जिसकी उमीद
नाउमीदी उसकी देखा चाहिए

---

१. शरीर, २. खोज, ३. काव्यात्मकता, ४. निर्भर, ।

'ग़ालिब' का एक शेर है :

नहीं ज़रीअए[1] राहत जराहते[2]-पैकां[3]
वह ज़ख़्मे-तेग[4] है जिसको कि दिलकुशा[5] कहिए

मैं गजल और गजल के शेरों को तीर का घाव कहता हूँ और इसीलिए मैं उसमें वह आराम नहीं पाता, जो तबीयत ढूँढती है और जो नज़्मों में मिलता है। लेकिन 'ग़ालिब' के शेरों में तलवार के घाव का आनन्द मिलता है। अर्थात् 'ग़ालिब' के आर्ट का कमाल यह है कि वह तीर के घाव को तलवार के घाव की तरह दिलकुशा बना सकता[3] है।

(३) 'ग़ालिब' और 'सौदा' की मार्मिकता और अर्थगर्भिता 'मोमिन' में भी मौजूद है। 'मोमिन' भी महान् और उदात्त विचारों को शेर की परिधि में लाते हैं, और अक्सर उनकी कल्पना की उड़ान इतनी ऊँची होती है कि विषय-वस्तु उल्का की तरह गायब हो जाती है। उनके विचारों की मार्मिकता तो सर्वविदित एवं विख्यात है, इसलिए वे 'ग़ालिब' के साझीदार हैं, बल्कि प्रमुख साझीदार हैं :

कुरंए[6]-ख़ाक[7] है गर्दिश[8] में तपिश[9] से मेरी
मैं वह मजनूँ[10] हूँ कि ज़िन्दा में भी आज़ाद रहा

वह कहते हैं कि जमीन की गर्दिश का कारण संसार का कोई नियम नहीं; यह गर्दिश कवि के दिल की तड़प की वजह से है। धरती के चक्कर खाने के कारण कारागार भी चक्कर खा रहा है। तो फिर उसे कारागार में बन्दी करके रखने से क्या लाभ हो सकता है। दिल की तड़प ने उसे चिरन्तन स्वतन्त्रता प्रदान कर दी है। विचार की मार्मिकता स्पष्ट है; किन्तु विचारों की मार्मिकता किसी कवि के विचारों की चरम सीमा नहीं हो सकती। 'मोमिन' में यह दोष है कि वह विचारों की मार्मिकता तथा अर्थगर्भिता को कभी-कभी असल कविता समझने लगते हैं। विचारों की मार्मिकता और कविता दोनों पर्यायवाची शब्द नहीं। 'मोमिन' का परिश्रम, अर्थगर्भिता में उनकी तल्लीनता, उनकी कल्पना की उड़ान—ये सारी बातें प्रशंसनीय अवश्य हैं, लेकिन उनके शेरों में अक्सर तासीर नहीं होती। इसलिए दिल वो दिमाग को कुछ मजा नहीं मिलता है :

बचाऊँ आबला[11]-पाई[12] को क्योंकर ख़ारे[13] माही[14] से
कि बाहम[15] अर्श[16] से फिसला है यारब[17] पाँव दिक्कत[18] का
सारिश्के[19] एतराफ़े[20] इज्ज़[21] ने अलमास[22]-रेज़ी की.
जिगर सद[23] पार:[24] है अन्देशए[25]-ख़ूँगश्ता-ताक़त का

१. साधन, २. घाव, जख़्म; ३. तीर, ४. तलवार, ५. हृदय को प्रफुल्लित करनेवाला, ६-७. भूमण्डल, ८. चक्कर, ९. तड़प, १०. पागल, ११-१२. पाँव में छाले पड़ना, १३. काँटा, १४. मछली (जिसपर धरती स्थित है), १५. एक-दूसरे के साथ-साथ; १६. आकाश, १७. हे भगवन्, १८. झंझट, कठिनाई; १९. आँसू, २०. स्वीकार करना, २१. दीनता, २२. वज्र-वर्षण, २३. सौ, २४. टुकड़ा, २५. मृतशक्ति का ध्यान।

न यह दस्ते[१] जुनूं[२] है और न वह जेबे[3] जनूं-केशां[४]
कि है दस्ते मिज़ा[५] से चाक[६] पर्दा चश्मे[७] हैरत[८] का
न दे तेग़े ज़बां क्यों कर शिकस्ते[९] रंग के ताने
कि सफ़हाए[१०]-ख़िरद[११] पर हमला[१२] है फ़ौजे ख़िजालत[१३] का
न पूछो गर्मिए[१४]-शौक़े सना[१५] की आतिश[१६]-अफ़रोज़ी
बना जाता है दस्ते-इज्ज़ शोला[१७] समए[१८]-फ़िक़रत का

हर शेर 'मोमिन' की अर्थगर्भिता और मार्मिकता का नमूना है। जैसे पहले शेर में 'मोमिन' का उद्देश्य ईश्वर की महिमा का गुणगान करना है। किन्तु ईश्वर-वन्दना आसान काम नहीं। यह रास्ता कुछ सुगम नहीं। 'मोमिन' इसी कठिनाई का बयान करते हैं। ईश्वर-स्तुति की फ़िक्र में इनकी बुद्धि ने बहुत कुछ दौड़-धूप की, यहां तक कि पांव में छाले पड़ गये, लेकिन उद्देश्य-सिद्धि में सफलता कहां! अन्त में साहस ने उड़ने के लिए पर फैलाये और दोनों मिलकर एक साथ अर्श तक पहुंचे। किन्तु रास्ते की कठिनाइयों के कारण पांव स्थिर न रह सके, और फिसले तो ऐसे फिसले कि जाकर पाताल में रुके। लेकिन यहां एक दूसरी कठिनाई और दिक्कत का सामना हुआ। अब अपने पांव के छालों को जमीन की मछली के कांटों से बचायें तो किस तरह? दूसरे शेरों में भी इसी प्रकार का शिल्प-सौष्ठव है। लेकिन 'मोमिन' की प्रशंसा के साथ-साथ यह भी कहना पड़ता है कि इन शेरों में तासीर नाम को भी नहीं।

मैंने कहा है कि विचारों में मार्मिकता और कविता दोनों पर्यायवाची शब्द नहीं। यदि कोई कवि मार्मिकता को कविता समझने लगे तो उसकी कविता का महत्त्व विनष्ट नहीं होगा, तो घट अवश्य जायगा। किन्तु उर्दू-कविता में मार्मिकता और अर्थगर्भिता अर्थात् बौद्धिक तत्त्व की कमी रही है। इसका अधिक-से-अधिक भाग सामने पड़े हुए, सस्ते विचारों से भरा-पड़ा है। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि कविता को जज़्बात की अभिव्यक्ति के लिए एक यन्त्र-मात्र समझा गया है। और, यह गलतफहमी केवल प्राच्य देशों तक ही सीमित नहीं है; पश्चिमी देश भी दीर्घ काल तक इसका शिकार रहे हैं; और यह इसलिए कि कविता को महज मनोविनोद का साधन समझा गया है। कविता महज मनोविनोद का साधन नहीं। इसमें मनुष्य अपनी सर्वोत्कृष्ट मानसिक योग्यताओं से काम लेता और ले सकता है। कविता तुकबन्दी नहीं, लेकिन अधिक-से-अधिक उर्दू गजलों में तुकबन्दी के सिवा और कुछ भी नहीं। ग़नीमत है कि 'ग़ालिब' और 'मोमिन' इस तथ्य को जानते थे और वे अपने शेरों में अपनी सर्वोत्कृष्ट मानसिक योग्यताओं से काम लेते थे। इसलिए 'ग़ालिब' से भी कुछ अधिक 'मोमिन' के शेर केवल हमारे जज़्बात को ही नहीं भड़काते, बल्कि हमें कुछ सोच-विचार करने के लिए भी आमन्त्रित करते हैं। 'मोमिन' के सीधे-सादे शेरों में भी सोच-विचार करने की प्रेरणा मौजूद है:

१. हाथ, २. उन्माद, ३. परिधान, ४. सतत उन्माद-ग्रस्त व्यक्ति, ५. आंख की बरौनी, ६. परिष्कृत, ७. आंख, ८. आश्चर्य, विस्मयावस्था; ९. टूटना, भंग होना; १०. सेना की पंक्तियां, ११. बुद्धि, १२. आक्रमण, १३. लज्जाशीलता, १४. लालसा की तीव्रता, १५. प्रशंसा, १६. आग जलाना, १७. ज्वाला, १८. विचार-प्रदीप।

सब्र[1] वहशत[2]-असर न हो जाए + कहीं से हरा[3] भी घर न हो जाए
तुम मेरे पास होते हो गोया + जब कोई दूसरा नहीं होता

× × ×

यः उज्र[4]-इम्तहाने-जज़बे-दिल[5] कैसा निकल आया
हम इल्ज़ाम[6] उसको देते थे क़सूर अपना निकल आया

× × ×

पामाल[7] एक नज़र में क़रार[8]-वो सबात[9] है
उसका न देखना निगहे इल्तफ़ात[10] है

× × ×

दर्द है जां के एवज़[11] हर रग वो पै में सारी[12]
चारः[13]-गर हम नहीं होने के जो दर्मा[14] होगा

इस तरह की मिसालें 'मोमिन' की रचनाओं में बहुत मिलती हैं। यह बात स्पष्टतया विदित है कि यहाँ विचार-मार्मिकता या अर्थगर्भिता असल उद्देश्य नहीं। साथ-ही-साथ ये शेर मन को अपनी ओर खींच लाते हैं। इसलिए जो मानसिक आनन्द इन शेरों से मिलता है, वह प्रायः उर्दू के शेरों से नहीं मिलता।

जो कुछ भी हो, जहाँ 'मोमिन' अर्थगर्भिता उत्पन्न करने के लिए परिश्रम करते हैं, वहाँ नई-नई तरकीबें[15] भी गढ़ते हैं और अक्सर ये तरकीबें हृदयंगम हो जाती हैं; लेकिन कभी-कभी ये उर्दू के सरल समतल प्रवाह में गिरह भी डाल देती हैं। किन्तु ऐसा कम होता है। साधारणतः ये बन्दिशें अपने आकर्षण और मौलिकता के कारण रचना-सौन्दर्य में वृद्धि करती हैं। हाँ, कभी यह भी होता है कि जिस तरह 'मोमिन' कभी-कभी अपनी विचार-मार्मिकता के फेर में कविता से हाथ धो बैठते हैं, उसी प्रकार वे कभी-कभी अपनी रचनात्मक शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए नई-नई पद-योजनाओं का आविष्कार करते हैं। यदि किसी कवि के विचार अनोखे हैं, यदि उसके अनुभवों में मौलिकता है, तो वह अविच्छिन्न रूप से नई-नई बन्दिशों का आविष्कार करता है। लेकिन, अक्सर उर्दू के कवि इस तथ्य को भूल जाते हैं और वे यह भी भूल जाते हैं कि शब्द कितने ही अनोखे क्यों न हों, रूपक कितने ही दुर्लभ क्यों न हों, यदि उनका प्रयोग केवल उनके सौन्दर्य-प्रदर्शन के निमित्त हो तो वे प्रशंसनीय नहीं हो सकते। 'मोमिन' ने बहुत बार ऐसी भूलें की हैं। 'ख़मोशी-असर', 'अजल-चारा', 'जराहत-ज़ार', 'अश्के-वाज़ूना-असर', 'बेगाना-आशना' इत्यादि इस प्रकार की बहुत-सी पद-योजनाओं का प्रयोग करते हैं। और यद्यपि वह कभी-कभी बहक जाते हैं, फिर भी साधारणतः ये तरकीबें शेरों में बड़ी सुन्दरता के साथ अपने-अपने स्थानों पर जम जाती हैं, और किसी विचार या अनुभव को व्यक्त करने में लाभदायक सिद्ध होती हैं। इनमें लालित्य भी होता है, और इनकी वजह से विषय संक्षेप में और ओजपूर्ण ढंग से पदबद्ध हो जाता है।

---

१. धैर्य, २. विक्षिप्तता का प्रभाव उत्पन्न करनेवाला, ३. जंगल, मरुस्थल; ४. बहाना, ५. चित्ताकर्षण, ६. दोष, ७. पददलित, रौंदा हुआ; ८. ठहराव, ९ टिकाव; १०. कृपा, ११. बदले में, १२. संचालित, १३. दवा करनेवाला, १४. चिकित्सा, इलाज; १५. बनावट, रचना, शब्द-संगठन।

'मोमिन' के काव्य की दुनिया भी सीमित है। 'ग़ालिब' वो 'सौदा' की दुनिया की तरह विस्तृत व प्रशस्त नहीं; और वे इस छोटी-सी दुनिया से कभी बाहर निकलना भी नहीं चाहते। इसलिए विषयों के विचार से उनके शेरों में वह विविधता नहीं, जो 'सौदा' और 'ग़ालिब' की रचनाओं में है। लेकिन 'मोमिन' एक विशिष्ट शैली के निर्माता हैं; उनकी अपनी अलग शैली है, और वे अपने विशिष्ट रंग में अपना सानी नहीं रखते। यह ठीक है कि वे 'दर्द' और 'ग़ालिब' की तरह सूफ़ी मत के सिद्धान्तों को नज़्म नहीं करते, और यह भी सही है कि वे उच्चकोटि के दार्शनिक विचारों से परहेज़ करते हैं। इस वजह से उनकी कविता का क्षेत्र और संकीर्ण हो जाता है। 'मीर' की तरह 'मोमिन' की दुनिया में भी प्रेम का शासन है। प्रेम-सम्बन्धी जज़्बात जो उनके शेरों में मिलते हैं, वे वही हैं जो उनके दिल पर गुज़रे हैं; कृत्रिम आवेगों से उन्हें परहेज़ है। जिस प्रेम का ज़िक्र वे करते हैं, वह आध्यात्मिक प्रेम नहीं, ऐहिक प्रेम है, वही प्रेम, जिसकी उन्हें जानकारी थी। इसलिए उनके सारे जज़्बात व भावावेश आन्तरिक हैं। यह प्रेम वही है, जो आम तौर से उर्दू गजलों में मिलता है। इसके करिश्मे भी वही हैं। मिलन, विरह, अश्रुपात, उन्माद, करुण क्रन्दन तथा आहें इत्यादि—इन्हीं बातों का विभिन्न रूपों में वर्णन 'मोमिन' की गजलों में भी है, और यह भी स्पष्टतया विदित है कि ये जज़्बात कुछ नये नहीं। सारे ग़ज़लगो कवि इन्हीं विषयों का सहारा लेते हैं; भेद केवल इतना है कि 'मोमिन' इनपर महज़ रीत्यनुसार विचार-विमर्श नहीं करते। उनका हृदय इन भावावेशों से परिचित था। उनकी गजलों में केवल तुकबन्दी नहीं, सत्य व वास्तविकता का सौन्दर्य है।

'मोमिन' के प्रेम की विशेषता उनके शेरों में स्पष्ट है। 'मोमिन' किसी पर्दानशीन के प्रेम-पाश में फँसे हुए थे। मिलन-विरह का संघर्ष, आशा-निराशा का चित्रण प्रत्येक स्थान पर है। उनके जज़्बात वास्तविक हैं, वे हृद्गत अनुभूतियों का वर्णन करते हैं। इसलिए उनके वर्णनों में प्राञ्जलता और माधुर्य है; कहीं ग्राम्यता तथा अश्लीलता का पता नहीं। जैसे—

सब्र वहशत[१]-असर न हो जाए + कहीं सेहरा[२] भी घर न हो जाए
रश्के[३]पैग़ाम[४] है एनांकशे[५]-दिल + नामाबर[६] राहबर[७] न हो जाए
इश्क़े-पर्दा[८]-नशीं में मरते हैं + ज़िन्दगी पर्दा[९]-दर न हो जाए
मेरी तग़ईरे[१०]-रंग को मत पूछ + तुझको अपनी नज़र न हो जाए
ऐ दिल आहिस्ता आहे-ताब[११]-शिकन + देख टुकड़े जिगर न हो जाए

इन शेरों में तासीर है। ये सुनते ही दिमाग़ पर असर और दिल में घर करते हैं, कारण कि इनमें असलियत है; तदुपरान्त वर्णन-शैली हृदयग्राही है। सुन्दर विचारों तथा आवेगों को हसीन शब्दों तथा शब्द-संगठनों द्वारा व्यक्त किया गया है। जज़्बात तो वही हैं, जो सारे उर्दू-कवियों में मिलते हैं; लेकिन इनका बयान यहाँ पर 'मोमिन' के विशिष्ट ढंग से हुआ है, जिसकी वजह से उनकी

१. उन्मादकारी, २. जंगल, मरुस्थल; ३. स्पर्धा, ४. संदेश, ५. दिल की लगाम खींचनेवाला, ६. पत्रवाहक, ७. पथ-प्रदर्शक, ८ परदे के भीतर रहनेवाली का प्रेम, ९. पर्दा फाड़नेवाला, १०. रंग बदलना, ११. हिम्मत तोड़ देनेवाली आह।

सुन्दरता बढ़ जाती है । और, इस आकर्षक शैली के साथ-साथ प्रत्येक शेर लयदारी से भरा हुआ है ।

एक गजल है :

मुझ प तूफ़ां[१] उठाए लोगों ने + मुफ़्त बैठे बिठाए लोगों ने
कर दिए अपने आने जाने के + तज़्किरे[२] जाय-जाय लोगों ने
वस्ल[३] की बात कब बन आई थी + दिल से दफ़्तर[४] बनाए लोगों ने
बात अपनी वहां न जमने दी + अपने नक़्शे[५] जमाए लोगों ने
सुनके उड़ती सी अपनी चाहत[६] को + दोनों के होश उड़ाए लोगों ने
और ही कुछ पढ़ा दिया उसको + दुश्मनों के पढ़ाए लोगों ने
बिन कहे राज़हाय[७] पिनहानी[८] + उसे क्यों कर सुनाए लोगों ने
क्या तमाशा है जो न देखे थे + वह तमाशे दिखाए लोगों ने
कर दिया 'मोमिन' उस सनम[९] को ख़फ़ा[१०] +क्या किया हाय-हाय लोगों ने

गजल मुसलसल[११] है और सीधी-सादी, वास्तविकता से भरपूर । यहां तुकबन्दी नहीं, रस्मी बातों का बयान नहीं, अपने ऊपर घटी हुई घटना है, अपनी प्रियतमा के रुष्ट होने की कहानी है; बनावटी विचार व घटनाएँ नहीं । 'मोमिन' के शेरों में यही वास्तविकता है, जो दूसरे कवियों में कम मिलती है, और यदि मिलती भी है तो भद्दापन व बाजारूपन लिये हुए । 'मोमिन' के शेरों में यह दोष नहीं :

वः जो हममें तुममें क़रार[१२] था तुम्हें याद हो कि न याद हो
वही यानी वादा निबाह का तुम्हें याद हो कि न याद हो
वः जो लुत्फ़[१३] मुझ प थे पेश्तर वः करम कि था मेरे हाल पर
मुझे सब हैं याद ज़रा-ज़रा तुम्हें याद हो कि न याद हो
वः नए गिले[१४] वः शिकायतें वः मज़े-मज़े की हिकायतें[१५]
वः हरएक बात प रूठना तुम्हें याद हो कि न याद हो
कभी बैठे सबमें जो रूबरू[१६] तो इशारतों[१७] ही से गुफ़्तगू[१८]
वः बयान शौक़ का बरमला[१९] तुम्हें याद हो कि न याद हो
हुए इत्तफ़ाक़[२०] से गर बहम[२१] तो वफ़ा[२२] जताने को दम[२३]-ब-दम,
गिलए-मलामते-अक़रुबा[२४] तुम्हें याद हो कि न याद हो
कभी हममें तुममें भी चाह थी कभी हमसे तुमसे भी राह थी
कभी हम भी तुम भी थे आश्ना[२५] तुम्हें याद हो कि न याद हो

---

१. तूफ़ान, २. वर्णन, ३. मिलन, ४. विस्तृत वर्णन, ५. रंग जमाना, धाक बैठाना, ६. प्रेम, ७. रहस्य, ८. गुप्त, ९. प्रियतमा, १०. रुष्ट, ११. शृंखलाबद्ध, लगातार; १२. प्रतिज्ञा, १३. कृपा, १४. शिकायतें, १५. कहानियाँ, १६. आमने-सामने, १७. संकेतों, १८. बातचीत, १९. खुल्लमखुल्ला, २०. अचानक, संयोगवश; २१. एक साथ, २२. सच्चा प्रेम, २३. क्षण-प्रतिक्षण, २४. मित्र, २५. मिलन ।

वः बिगड़ना वस्ल[1] की रात का वः न मानना किसी बात का
वः नहीं-नहीं की हर ग्रान[2] ग्रदा[3] तुम्हें याद हो कि न याद हो
जिसे ग्राप गिनते थे ग्राश्ना, जिसे आप कहते थे बा वफ़ा
मैं वही हूँ 'मोमने' मुबतला[4] तुम्हें याद हो कि न याद हो

शायद इस गजल की वास्तविकता के विषय में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं, प्रत्येक शब्द से इसकी असलियत प्रमाणित होती है। ब्योरों के विवेचन से साफ़ जान पड़ता है कि सच्ची घटनाओं की ओर संकेत किया गया है, कोई कल्पित कहानी नहीं है :

कभी बैठे सबमें जो रूबरू[5] तो इशारतों[6] ही से गुफ़्तगू[7]
वः बयान शौक़ का बरमला[8] तुम्हें याद हो कि न याद हो
हुए इत्तफ़ाक़[9] से गर बहम[10] तो दफ़ा[11] जताने को दमबदम[12]
गिलए-मलामते[13]-अक़्रिबा[14] तुम्हें याद हो कि न याद हो

यदि इस गजल की वास्तविकता में कुछ सन्देह भी हो तो ये दो शेर उस सन्देह को दूर करने के लिए काफ़ी हैं। गजल श्रृंखलाबद्ध है, लेकिन शेरों में वह सम्बन्ध एवं क्रमिकता कहाँ, जो नज़्म में होती है। यह तो खै़र उर्दू-कवियों की आम कमी है और 'मोमिन' भी इस विषय में मजबूर हैं। जो कुछ भी हो, बड़े मज़ेदार ढंग से शिकवा-शिकायत और प्रेम निबाहने की प्रतिज्ञा की याद दिलाई जाती है। कृपा, अनुग्रह, नाज़, नखरे, ख़ास-ख़ास स्मरणीय लमहे फिर ज़िन्दा हो जाते हैं, और उस अगली रंगीन कहानी की मौजूदा रुखाई से तुलना की जाती है। अब वे सारे क़ौल-क़रार भूल गये हैं। "वः नए गिले वः शिकायतें, वः मज़े मज़े की हिकायतें" सभी कुछ हृदय-पृष्ठ से मिट गई हैं। अब तो शायद शोक-ग्रस्त 'मोमिन' का नाम भी याद नहीं है। कभी 'मोमिन' को क्रोध आता है तो अपनी बेनसीबी का रोना रोने के बदले जली-कटी सुनाने लगते हैं और गजल में वासोख़्त का रंग झलकने लगता है :

ग्रब और से लौ लगाएँगे हम + जो[15] शम्मः तुझे जलाएँगे हम
बरबाद न जायगी कदूरत[16] + क्या-क्या तेरी ख़ाक उड़ाएँगे हम
बिगड़े तो करेंगे और से सुल्ह + तुझपर भी बुरी बनाएँगे हम
दिल देके एक और लाला-रू[17] को + हर दाग़ प दाग़ खायेंगे हम
लब का तेरे दाविए[18]-मसी ही + मर ग्रौर प ग्राज़माएँगे[19] हम
गर तेरी तरफ़ को बेक़रारी[20] + खींचेगी तो लोट जाएँगे हम
गर देखके हँस दिया हमें तो + मुँह फेर के मुसकुराएँगे हम
क्या ज़िक्र है होंट चाटने का + कुछ और मज़ा चखाएँगे हम

---

१. मिलन, २. क्षण, समय; ३. भावभंगी, शोकग्रस्त, दुःख में पड़ा हुआ, ४. सगे-सम्बन्धी, ५. आमने-सामने, ६. संकेतों, ७. बातचीत, ८. खुल्लमखुल्ला, ९. संयोगवश, १०. एक साथ, ११. प्रेम में सचाई, १२. क्षण-प्रतिक्षण, १३. भर्त्सना, १४. सगे-सम्बन्धी, १५. समान, १६. गन्दगी, ईर्ष्या; १७. लाला के फूल जैसा मुखड़ा, १८. मसीहा बनने का दावा, जो मुर्दों को जिला दिया करते थे, १९. जाँचना, परखना, २०. अधीरता।

बुत-ख़ानए[१]-चीं हो गो तेरा घर
'मोमिन' हैं तो फिर न आएँगे हम

देखा ! बिल्कुल वासोख़्त का रंग है, लेकिन आम वासोख़्तों की तरह रस्मी नोक-झोंक नहीं, कल्पित बातें नहीं। यहाँ भी असलियत है, वास्तविकता है :

गर तेरी तरफ़ को बेक़रारी + खींचेगी तो लोट जाएँगे हम

इस शेर में बड़ी ही सूक्ष्म वास्तविकता है। यों 'मोमिन' कहते तो हैं कि अब और किसी से लौ लगायेंगे, किसी और लाला-रू को दिल देके हर दाग़ प दाग़ खायेंगे; और यदि कहीं देखके उसने हँस दिया तो वह मुँह फेर के मुस्कुरायेंगे, और इस निर्णय में निश्चयात्मकता-सी जान पड़ती है। अन्तिम पंक्ति में—

"बुत-ख़ानए-चीं हो ग-तेरा घर—'मोमिन' हैं तो फिर न आयेंगे हम"—यह सब सही, लेकिन 'मोमिन' को यह भी स्वीकार है कि अधीरता उसकी ओर खींचेगी। यों कहने को तो वह कहते हैं कि यदि ऐसा हुआ तो वह लोट जायेंगे। लेकिन यह बात-ही-बात है। इस शेर से अचेतन रूप में यह बात प्रमाणित होती है कि 'मोमिन' लाख रुष्ट हों और रोष प्रकट करें, वह अब भी उसी के लिए अधीर हैं और उसी के लिए अधीर रहेंगे। जितने ही ज़ोर-शोर से वह विलग होने की प्रतिज्ञा करते हैं, जितना ही अधिक क्रोध और कठोरता दिखलाते हैं, उतना ही उनके दिल का भेद खुल जाता है, और वह अपनी प्रतिज्ञा के बावजूद उस बुत-खानए-चीन में जायेंगे, सैकड़ों बार जायेंगे।

इन तीनों गजलों से 'मोमिन' की प्रेम-गाथा के कुछ महत्त्वपूर्ण तथा सूक्ष्म पहलुओं पर रोशनी पड़ती है। ये तीनों गजलें अपना अलग-अलग रंग रखती हैं; लेकिन फिर भी तीनों 'मोमिन' के ख़ास रंग में हैं। सभी में लयदारी भी है, मगर अलग-अलग विशेषता लिये हुए, जिससे मालूम होता है कि लयदारी के विचार से 'मोमिन' की गजलों में काफ़ी विभिन्नता है, और इसमें 'मोमिन' अपने समकालीन कवियों से किसी सूरत से कम नहीं हैं :

नावक[२]-अन्दाज़ जिधर दी दए[३] जाना होंगे
नीम[४]-बिस्मिल कई होंगे कई बेजाँ[५] होंगे
तू कहाँ जायगी कुछ अपना ठिकाना कर ले
हम तो कल ख़्वाबे[६]-अदम में शबे[७] हिजराँ[८] होंगे
करके जख़्मी मुझे नादिम[९] हों यह मुम्किन ही नहीं
गर वः होंगे भी तो बेवक़्त पशीमाँ[१०] होंगे
सब्र यारब[११] मेरी वहशत[१२] का पड़ेगा कि नहीं
चारा[१३]-फ़रमा भी कभी क़ैदिये ज़िन्दा[१४] होंगे

१. चीन का मन्दिर, २. तीर चलानेवाले, ३. आँखें, ४. अधमरे, ५. मरे हुए, ६. अनस्तित्व की निद्रा, परलोक में सोते हुए; ७. रात, ८. विरह, ९. शर्मिन्दा, लजाया हुआ; १०. पश्चात्ताप करता हुआ, ११. ऐ ख़ुदा, हे भगवन्; १२. विक्षिप्तता, १३. सहायक; १४. क़ैदख़ाना, कारागार।

फिर बहार आई वही दश्त[1] -नवर्दी होगी
फिर वहां पांव वही ख़ारे[2] -मुग़ीलां होंगे
संग[3] और हाथ वही वह ही सिर और दाग़े जुनूं[4]
वह ही हम होंगे वही दश्त[5] वो बेयाबां[6] होंगे
उम्र सारी तो कटी इश्क़े-बुतां में 'मोमिन'
आख़िरी वक़्त में क्या ख़ाक मुसलमां होंगे।

लयदारी, जोश से भरी हुई लयदारी, हर शेर में मौजूद है; और जिस प्रकार की लयदारी दूसरी मिसालों में मौजूद है, उससे भिन्न।

शैली के विचार से 'मोमिन' की गजलों में वह असमानता नहीं, जो 'ग़ालिब' की रचनाओं में पाई जाती है। उनके शेर विभिन्न स्तरों के अवश्य हैं—बुलन्द, मामूली, निम्न कोटि के। किन्तु भावाभिव्यक्ति के ढंग में वह स्पष्ट अन्तर नहीं, जिसका ज़िक्र 'ग़ालिब' के प्रसंग में हुआ। विचाराभिव्यक्ति का ढंग प्रायः एक तरह का है; असमानता का कारण विचारों की बुलन्दी व पस्ती, जज़्बात की असमानता व भद्दापन है। 'मोमिन' ने विभिन्न काव्य-रूपों में कविता की; लेकिन समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार गजल पर अधिक ध्यान रहा; और इसी रूप में उन्होंने अपने सच्चे जज़्बात की अभिव्यक्ति का संकल्प सफलतापूर्वक किया। महज़ दस्तूर के मुताबिक ऐसे भावावेशों का चित्रण न किया, जिन्हें वे निजी रूप से जानते न थे। लेकिन 'मोमिन' को भी कभी किसी अकेले शेर और गजल की त्रुटियों का एहसास नहीं हुआ। उन्हें इसमें कभी विस्तार तथा फैलाव की आवश्यकता न मालूम हुई। 'मीर', 'सौदा' और 'ग़ालिब' की तरह उनकी प्रतिभा के जोश ने उन्हें प्रबन्ध के साथ क़िते लिखने के लिए तैयार न किया। क़ितों की रचना तो अक्सर हुई, लेकिन वे संक्षिप्त ढंग के हुए; उनकी बिसात प्रायः दो शेरों से अधिक नहीं। हां, कभी जोश उभरने लगा तो शृंखलाबद्ध गजलों की राह में जा निकले; किन्तु शृंखलाबद्ध गजलें भी अपेक्षाकृत कम ही दीख पड़ती हैं। 'मीर' की तरह 'मोमिन' भी अपने संकीर्ण क्षेत्र में प्रसन्न हैं, और अपने अनुभवों के टुकड़ों को शेर के रूप में प्रकट करते हैं।

●

---

१. जंगल या रेगिस्तान में मारा-मारा फिरना, २. बबूल के कांटे, ३. पत्थर, ४. उन्माद, ५. मरुस्थल, ६. मरुस्थल।

सन्दर्भ-संकेत

१. 'ज़ौक़' के सम्बन्ध में 'फ़िराक़ की कुछ बातें सुनिए :—

(क) 'ज़ौक़' की भाषा का माधुर्य और लालित्य 'मीर' को छोड़कर किसी और के यहाँ नहीं मिलता।

(ख) यदि 'ज़ौक़' ने हजार-डेढ़ हजार शेरों की भी उर्दू में कोई मसनवी लिखी होती तो वह लाजवाब चीज होती। इस अलिखित मसनवी के सद्‌गुणों की कल्पना करके दिल पर एक चोट लगती है।

(ग) काव्य की आत्मा जो कुछ भी हो या बहुत कुछ भी हो, कविता एक कला या आर्ट है। आर्ट का अर्थ है किसी चीज को बनाना या कुछ करना। कला के लिहाज से 'ज़ौक़' की कृति भुलाई जा ही नहीं सकती।

(घ) 'ग़ालिब' व 'मोमिन' की पंक्ति में, बल्कि 'मोमिन' से कुछ आगे, उर्दू-भाषा के अनुभवी प्रतिनिधि की हैसियत से बैठे और महत्ता की पगड़ी सिर पर रखे उस्ताद 'ज़ौक़' भी नजर आ रहे हैं।

(ङ) बात, बात, बात और कुछ नहीं। वैयक्तिक जज़्बात वो अनुभूतियों का पता नहीं, मगर बातों में वह रवानी है कि एक बार तो सुन ही लेना पड़ता है। 'ज़ौक़' पंचायती कवि है, जनमत का कवि है.......'ज़ौक़' की रचनाओं से हमारे दिमाग के उस हिस्से को एक हल्की-सी प्रसन्नता, एक सुखकर तृप्ति मिलती है, ठीक उसी प्रकार की, जो आम विचारों को व्यक्त करने में असाधारण अभिव्यंजना-शक्ति के प्रदर्शन को देखकर मिलती है।

२. 'ग़ालिब' के सम्बन्ध में बड़े विचित्र अभिमत पढ़ने को मिलते हैं। 'बिजनौरी' के व्यंग्य की तिक्तता मशहूर है। मैंने 'बिजनौरी' की आलोचना पर कुछ विस्तारपूर्वक 'उर्दू तन्क़ीद पर एक नजर' में लिखा है (पृष्ठ १३९—१४५) बिजनौरी की आत्मा अब भी क्रियाशील है।
'नुक़ूदे ग़ालिब' से मैं कुछ उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ, जो दिलचस्पी से खाली नहीं।

(क) 'ग़ालिब' और 'डन' दोनों के यहाँ हमें बौद्धिकता और कल्पना या फ़िक्र तथा जज़्बा मिला-जुला नजर आता है। वे दोनों ही चिन्तन[1] को सीधे अनुभूति[2] में परिणत कर देने की क्षमता रखते हैं। और चिन्तन का एहसास

---

१. फ़िक्र, २. एहसास।

इस तरह करते हैं जिस तरह गुलाव की खुशवू का। इस विशेषता को अँगरेजी के प्रख्यात आलोचक 'टी० एस० ईलियट' ने महान् कविता के लिए अनिवार्य ठहराया है। और जब वह 'मिल्टन' की कविता पर बहस करते समय Dissociation of sensibility पर शोक प्रकट करता है तो उसका इशारा भी सम्भवतः इन्हीं दोनों प्रकार की योग्यताओं के बीच सम्मिश्रण अथवा सहकार्य के अभाव की ओर जान पड़ता है।

ऐसी कविता हमेशा उस समय सम्भव होती है जबकि कवि के अनुभव का क्षेत्र बहुत प्रशस्त हो, और वह एक प्रकार के अनुभव से दूसरे प्रकार के अनुभव की ओर यात्रा कर सकता हो। जिस तरह 'डन' अपनी प्रेम-सम्बन्धी कविताओं में वाग्मिता, अध्यात्म, कानून, कालत्रयी साहित्य, मूर्त्ति-विज्ञान, पवित्र तथा कलुपित प्रेम और आधुनिक विज्ञान से लाभान्वित होता है, उसी तरह 'ग़ालिब' भी प्रचलित विद्याओं अर्थात् नीति, दर्शन, आयुर्वेद और इस्लामी देवमाला से लाभ उठाते हैं। ये सारे स्रोत असली और सीधे निजी अनुभवों के उपरान्त हैं। 'ईलियट' के कथनानुसार मनुष्य के अनुभवों में विच्छिन्नता, अव्यवस्था और खण्डचेतन बुद्धि पाई जाती है। कवि के अनुभव चाहे ये कितने ही विभिन्न हों, ग्रन्थावली में परिणत होते रहते हैं। ऐसे कवि को मानसिक जगत् की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। और, वह अपने इच्छानुसार भिन्न-भिन्न विद्याओं से संगृहीत पारिभाषिक शब्दों में अपने बुनियादी अनुभवों का वयान करने की योग्यता रखता है। इससे उसको काव्य-सृष्टि में एक प्रकार की प्रशस्तता पैदा हो जाती है। और, उसकी बुद्धि की तत्परता, और संग्रह तथा उपयोग की क्षमता का भी अनुमान होता है, और आन्तरिक आकर्षण के कोने सिकुड़ने के बदले और प्रशस्त होते जाते हैं। 'ईलियट' ने कहा है कि कवि चाहे किसी के प्रेम-पाश में बन्दी हो या 'स्पिनोजा' का अध्ययन करे, और चाहे इन अनुभवों का आपस में या टाइप की मशीन और खाना पकने की ख़ुशबू से कोई सम्बन्ध न हो, किन्तु कवि की समझ में ये सारे अनमिल, वेजोड़ अनुभव अपनी पृथक्ता स्थिर नहीं रख सकते, वल्कि वरावर गड्डमड्ड होते रहते हैं। 'ग़ालिब' ने एक जगह द्रव्य की अविनश्वरता की समस्या का गजल की भाषा में इस प्रकार वयान किया है :

सब कहां कुछ लालः[1] वो गुल[2] में नुमायां[3] हो गईं
ख़ाक में क्या सूरतें होंगी कि पिन्हां[4] हो गईं

इस भाव के बहुत-से शेर हमें 'उमर ख़ैयाम' के यहाँ भी दिखाई पड़ते हैं। जीवन-शक्ति के उन्नयन की समस्या पर 'डारविन' से बहुत पहले मुसलमान

१. एक लाल रंग का फूल, जिसमें हलकी-सी खुशवू होती है, २. गुलाब का फूल, ३. प्रकट, ४. छिपा हुआ, गुप्त।

विचारकों ने गौर किया था। और 'फ़ाराबी', 'बुअली-सीना', 'अबुल हसन' और 'मौलाना रूम' के नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं, यद्यपि इनके विचारों का फल वैज्ञानिक यथार्थता पर आधारित न था, तो भी इन्हें इस बात का अन्तर्बोध हो गया था कि जीवन-शक्ति स्वतः विकासोन्मुख है। रचनात्मक विकास का सबसे नवीन सिद्धान्त फ्रांसीसी दार्शनिक, 'बर्गसां' ने प्रस्तुत किया है, जो बुद्धि से अधिक अन्तर्ज्ञान में विश्वास करता है। 'इक़बाल' भी इसी सिद्धान्त से प्रभावित हुए हैं। इस प्रसंग में 'ग़ालिब' ने अपनी कवि-सुलभ अन्तर्दृष्टि का प्रदर्शन इस तरह किया है :

आराईशे[1]-जमाल[2] से फ़ारिग़[3] नहीं हनोज़[4]
पेशे[5]-नजर है आइना दायम[6] नक़ाब[7] में

(असलूब अहमद अनसारी)

२. 'ग़ालिब' ने उर्दू-शायरी की क्लासिकी परम्परा का अनुसरण न करके अपनी कविता में अपने व्यक्तित्व और वैयक्तिकता पर अधिक जोर दिया है। इस विचार से उसको उर्दू का पहला रोमानी (Romantic) कवि कहना चाहिए। रूमानियत की सबसे प्रमुख और चारित्रिक विशेषता वैयक्तिकता का असीम एहसास है, जो पग-पग पर अपनी स्वीकृति चाहता है। इसके आधार पर 'ग़ालिब' ने अपने अनुभवों को प्रस्तुत करते हुए उस सुसंस्कृत वर्ग के सामूहिक अनुभवों व मानकों का लेहाज नहीं किया, जो हमारे प्राचीन कवियों की नजर के सामने होते थे; और वह अपने उन्हीं अनुभवों को व्यक्त करने में लगा रहा है, जो केवल उसके अपने व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखते थे। क्लासिसिज्म में अनुभवों का महत्त्व मूल्यों के एहसास के साथ सम्बद्ध है और रूमानियत में खुद व्यक्ति के व्यक्तित्व से। अतः 'ग़ालिब' ने अपने को केवल उन्हीं विषयों के बयान करने में सीमित नहीं रखा, जो काव्यगत परम्परा के भण्डार में प्रमाणित और टकसाली समझे जा चुके थे। उसने सबके जाने-पहचाने और आम-फ़हम अनुभवों को ही अभिव्यक्ति के नये-नये परिधान पहनाने पर सन्तोष नहीं किया; उसने नई और विशिष्ट बात को नये और विशिष्ट ढंग से कहने की कोशिश की है। उसने चिन्तन एवं अनुभूति के अदृश्य क्षेत्रों की खोज की है और उनकी रंग-बिरंगी झलकियाँ दिखाई हैं; और यही उसकी प्राकृतिक मनोवृत्ति की माँग थी। 'ग़ालिब' की इस विशिष्ट गरिमा का सही अन्दाजा आपको उस समय होता है जब आप उर्दू के प्राचीन कवियों की रचनाओं को पढ़ते-पढ़ते एकदम 'ग़ालिब' की रचना पढ़ने लगें। यहाँ कवि के अनोखे

---

१. शोभा, सजावट; २. सौन्दर्य, रूप-लावण्य; ३. विमुक्त, फ़ुर्सत पाये हुए; ४. अबतक, ५. सामने, आगे; ६. सदा, हमेशा; ७. पर्दा, बुर्क़ा।

रंग, कल्पना और निराली चिन्तन-पद्धति व अनुभूति ने अनुभवों तथा अर्थ-समूहों का एक विभिन्न संसार बसा रखा है। और यह संसार विस्तृत भी है, विविधतापूर्ण और दिलचस्प भी।

[आफ़ताब अहमद]

३. बात यह है कि 'ग़ालिब' एक सामन्त-पुत्र होने के कारण सामन्त-युग की सभी विशेषताएँ अपने अन्दर रखते हैं। यह तो स्पष्ट है कि सामन्त-युग में प्रेम की यौन-भावना को ही सबसे अधिक महत्त्व प्राप्त था। 'क्रिस्टोफ़र कॉडवेल' ने इस यौन-भावना को बुर्जुआ-युग से संपृक्त किया है। वह उसको इसकी उपज बताता है। वह उसके निकट बुर्जुआ-सभ्यता में यौन तथा आवेगात्मक प्रेम को महत्त्व प्राप्त होता है। शाही सामन्त-युग में प्रेम की कल्पना रोमानी होती है, जिसमें जुरअत, साहस और वीरता की विशेषताएँ ख़ास तौर पर महत्त्व रखती हैं, और आध्यात्मिक काल में प्रेम की अफ़लातूनी कल्पना को ही लोग सब कुछ समझते हैं। 'ग़ालिब' के प्रेम में हमें पूर्वोक्त दोनों विशेषताएँ गले मिलती हुई दीख पड़ती हैं। 'ग़ालिब' ऐसे शाही और सामन्त-युग की पैदावार थे। लेकिन उनके समय में सभ्यता सामन्त-युग से निकलकर बुर्जुआ की विशेषताओं की परिधि में प्रवेश कर रही थी। इसलिए उनके यहाँ इस विशेषता का पता चलता है। वह यौन-भावना में विश्वास करते हैं, किन्तु यह भावना उनके यहाँ नैतिकता का स्वभाव नहीं पैदा करती। 'कॉडवेल' के नजदीक यौन-प्रेम सामाजिक सम्बन्धों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। 'ग़ालिब' इसमें सामाजिक सम्बन्धों का ध्यान रखते हैं। माशूक को 'सम्पत्ति' समझने के बावजूद नैतिक और सामाजिक बन्धन उन्हें इस बात की आज्ञा नहीं देते कि वे प्रेम में वासना को अपना व्यवसाय बना लें। उनकी कविता इसका स्वप्न भी नहीं देख सकती। जो कुछ भी हो, 'ग़ालिब' का प्रेम एक बड़े शिष्ट मनुष्य का प्रेम है, एक ऐसे मनुष्य का, जो अपने युग की पैदावार भी होता है। उसे ख्वाहिश-परस्ती आम सामाजिक बन्धनों से मुक्त नहीं कर सकती; बल्कि जो ऐसा व्यक्ति है कि इस प्रेम में प्रचलित नैतिक मूल्यों का भी ध्यान रखता है, जो माशूक को वासना-पूर्ति का साधन ही नहीं समझता, बल्कि उसे समाज का एक व्यक्ति भी समझता है।

['इबादत' बरेलिब]

४. यहाँ पर इस बात की ओर इशारा कर देने में कोई आपत्ति नहीं कि गजल में जीवन और समय की घटनाएँ तथा दुर्घटनाएँ सीधे ढंग से प्रवेश नहीं करतीं जिस तरह से कि वे नज़्मों, इतिहास की पुस्तकों या अखबारों में रास्ता पाती रहती हैं। ये बड़ी देर में और बड़ी दूर से खास लय और रंग में गजल में

प्रकट होती हैं। यही कारण है कि उर्दू में गजल का विशिष्ट स्थान है। गजल काव्य का एक रूप अवश्य है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि यह काव्य-रचना का प्रमाणक है। गजल को यह विशिष्टता 'ग़ालिब' ने प्रदान की! और बावजूद इसके कि 'ग़ालिब' न उर्दू-भाषा के अग्रगण्य लोगों में थे, न गजल के प्रवर्त्तक ही थे!

'ग़ालिब' ने गजल को सभ्यता का पद प्रदान किया, और आज हमारे अच्छे-से-अच्छे कवि को भी गजल से छुटकारा नहीं। गजल अब इतनी मात्र काव्य-रूप न रह गई जितनी कि वह उर्दू की तासीर और उसका भाग्य बन चुकी है। 'ग़ालिब' ने गद्य और पद्य दोनों को दिलेरी दी और आकर्षण भी दिया। गजल के भाग्य को 'ग़ालिब' ही ने निर्धारित किया; और इसको ऐसा वातावरण प्रदान किया, जहाँ उर्दू की समस्त काव्यात्मक सम्भावनाओं तथा कविता को फूलने-फलने की सामग्रियाँ और सुविधाएँ एकत्र हैं।

उर्दू-कविता के विद्यार्थियों को इस बात का भान होगा कि उर्दू गजल की आत्मा के विचार से ग़ालिब कोई बड़े महारथी न थे। उनसे पहले, खुद उनके समय में और उनके बाद भी, उनसे श्रेष्ठतर गजल लिखनेवाले हुए हैं; लेकिन यह 'ग़ालिब' ही की महान् कृति थी, जिसने गजल को हमारी संस्कृति और हमारी संस्कृति को गजल बना दिया। उर्दू-कविता में गजल का यह 'स्थायी अधिकार' अभिनन्दनीय समझा जाय या नहीं, आश्चर्यजनक अवश्य है। 'ग़ालिब' के सहारे उर्दू-कविता काफ़ी दुर्गम घाटियाँ पार करती हुई 'इक़बाल' तक पहुँची, और 'इक़बाल' ने उसे कहाँ-से-कहाँ पहुँचा दिया, इसका अन्दाजा लगाना आसान नहीं।

[रशीद अहमद सिद्दीक़ी]

५. ग़ालिब की उर्दू और फ़ारसी कविता की आधारभूत धारणाएँ अलग-अलग नहीं हैं; दोनों में एक दार्शनिक भंगी मिलती है, कोई गूढ़ दर्शन नहीं मिलता। यह कहना भूल है कि 'ग़ालिब' आनन्दवाद का उपदेश देते हैं। वह न तो निराशावादी हैं न आशावादी। हाँ, उनके यहाँ आशा व भय, हास-विलास तथा शोक-सन्ताप, लालसा व लालसा-भंग, प्रसन्नता व अतृप्त अभिलाषा की विभिन्नता मिलती है। उन कवियों के यहाँ जो गजल को अपनी विचाराभिव्यक्ति का साधन बनाते हैं, किसी प्रकार के दर्शन की खोज करना निरर्थक है। गजल का आर्ट शृंखला व क्रमबद्ध रचनात्मक और सुव्यवस्थित चिन्तन के लिए मौजूं नहीं है। यह इशारों की दुनिया, यह सैन-संकेत और सूक्ष्म कोमल रहस्य की बस्ती किसी स्पष्ट और दिव्य सिद्धान्त का भार-वहन नहीं कर सकती। 'ग़ालिब' ने एक स्थान पर गजल के संकीर्ण डमरू-मध्य का ज़िक्र करते हुए

अपने विचार व्यक्त करने के लिए और अधिक विस्तार की माँग की है, मगर इससे यह न समझना चाहिए कि 'ग़ालिब' ने गजल की कला और रूप को नहीं माना; उन्होंने इसे माना और बरता भी। 'ग़ालिब' यद्यपि इसके फ़ार्म से सन्तुष्ट न थे, तो भी उनकी अधिकांश श्रेष्ठ रचनाएँ इसी काव्य-रूप में मिलती हैं। 'ग़ालिब' के यहाँ दर्शन मिलता है, मगर वह उस अर्थ में दार्शनिक नहीं हैं जिस अर्थ में 'इक़बाल' दार्शनिक हैं। उनके काव्य में कोई सन्देश नहीं है, जिन अर्थों में कि 'हाली' और 'अकबर' का सन्देश है। वह दार्शनिक बुद्धि रखते हैं, उनका स्वभाव आवेगों से बढ़कर चिन्तन की ओर ले जाता है। वह विश्लेषणात्मक दृष्टि रखते हैं। उन्होंने उर्दू-कविता को एक बुद्धि-तत्त्व प्रदान किया। उनके चिन्तन और उनकी अभिव्यंजना का ढंग दोनों ही हमें उनकी जिन्दगी और अपनी जिन्दगी की केवल एक झलक ही नहीं दिखाते, उसके विषय में कुछ सोचने के लिए भी बाध्य करते हैं। 'ग़ालिब' से पहले के अच्छे कवि हमें इस प्रकार सोचने पर मजबूर नहीं करते। वे जिन्दगी की चलती-फिरती तस्वीरों और जज़बात की परछाइयों में कोई लगाव नहीं ढूँढ़ते। 'मीर' जैसे महान् कवि का अध्ययन भी हमें एक गहरे नर्म आवेगात्मक प्रवाह में डुबा देता है। 'मीर' के यहाँ प्रेम ताजा और मौलिक है। उनसे परिचित होकर हम जीवन के लालित्य से परिचित होते हैं। मगर 'मीर' की कल्पना 'ग़ालिब' की कल्पना की तरह प्रतिबिम्बित नहीं। 'मीर' के यहाँ प्रेम पर भारतीय सूफ़ीमत की परम्परा आच्छादित है; 'ग़ालिब' के प्रेम में समरकन्द व बोख़ारा, प्राचीन ईरान व हिन्दुस्तान तीनों मिल-जुल गये हैं। इस वजह से 'ग़ालिब' की कल्पना अधिक कयामत पैदा करनेवाली है, अधिक सर्जनात्मक है........'ग़ालिब' ने इश्क किया है, मगर उन्होंने जीवन के दूसरे अनुभव भी प्राप्त किये थे। 'ग़ालिब' के यहाँ दर्द व ग़म भी है; मगर इस दर्द व ग़म से ऊपर उठने और उसपर यदा-कदा हँस लेने का जज़बा भी। 'ग़ालिब' मरीज़[3] नहीं हैं, वह मरीज़े-इश्क[4] भी न हो सके; वह अपने प्रीतम की मृत्य पर आँसू बहाते हैं, मगर उनका सारा जीवन अश्रुपात करते रहने में नहीं व्यतीत होता........'ग़ालिब' की कविता में मानव और साहित्य पहली बार बेसहारे के अपने गौरव के बल पर खड़े नज़र आते हैं; उन्हें किसी सहारे की आवश्यकता नहीं। इसलिए 'ग़ालिब' का अध्ययन हमारे अन्दर एक दृष्टि-विस्तार पैदा करता है। वह हमें रीति-रिवाज के बन्धनों के सिर-दर्द से मुक्त करता है। मानव-व्यक्तित्व के टेढ़े-मेढ़े रास्तों में रोशनी दिखाता है; अतीत की उपासना करने से रोकता है, वैयक्तिता दिखाता है, जिन्दगी की तकलीफों पर कुढ़ने और कराहने के बदले

एक साहस प्रदान करता है। जीवन की कठिनाइयाँ भी 'ग़ालिब' को बन्दी और उनकी बुद्धि की प्रखरता को मद्धिम न कर सकीं।

........अब प्रश्न यह उठता है कि 'ग़ालिब' की कला का महत्त्व क्या है। हर एक विचारक अपने साथ एक फ़ार्म[1] और कला लाता है। 'ज़ौक़' की भाषा में 'ग़ालिब' की वैयक्तिकता अपने-आप को खो नहीं सकती थी। 'ज़ौक़' की भाषा उर्दू-भाषा की प्रगति के प्राकृतिक स्वरूप को प्रकट करती है। यह भाषा की स्निग्धता और माधुर्य का समय है। 'अनीस' और 'ज़ौक़' दोनों के यहाँ विचार से बढ़कर शैली का महत्त्व है; विशेषतः 'ज़ौक़' विचारों की उष्णता नहीं रखते। 'ग़ालिब' को उर्दू की इस परम्परा के विरुद्ध फ़ारसी का सहारा लेना पड़ा। उन्होंने 'बेदिल', 'नज़ीरी', 'उर्फ़ी' और 'ज़हूरी' की शैलियों से लाभ उठाया; और अन्त में 'मीर' की ओर आये....''ग़ालिब' की रचना-पद्धतियों, उपमाओं और रूपकों पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि 'ग़ालिब' ने एक ढंग से एक दूसरे कवि-सुलभ साँचे का आविष्कार किया। उर्दू-भाषा में रवानी[2] और सलासत[3] पहले ही आ चुकी थी, वह जज़बात की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त हो चुकी थी; मगर बड़े-से-बड़े दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने के योग्य उसे 'ग़ालिब' ने बनाया। यदि 'ग़ालिब' न होते तो 'इक़बाल' कहाँ होते........ कवि की कल्पना जितनी ही उच्चकोटि की तथा सर्जनात्मक होगी, उतनी ही उसकी तस्वीरें रंगीन होंगी। 'ग़ालिब' ने फ़ारसी के शब्द-संगठनों से काम लेकर कम-से-कम शब्दों में बड़ी-से-बड़ी तस्वीरें प्रस्तुत की हैं। 'सी० डी० लेविस' ने अपनी पुस्तक Poetic Image में इस विचार से 'शेक्सपियर', 'मिल्टन' और 'कीट्स' के चित्रों की बड़ी प्रशंसा की है। उर्दू में 'मीर', 'नज़ीर', 'सौदा' और 'अनीस'—सभी के यहाँ ऐसी तस्वीरें मिलती हैं; मगर 'ग़ालिब' की तस्वीरें सुन्दर होने के अतिरिक्त विचारोत्पादक भी हैं। उनमें एक साहित्येतर ध्वनि भी रह जाती है........'गालिब' के आर्ट की वजह से गजल माशूक की वार्त्ता से बढ़कर जिन्दगी की कहानी बन जाती है और जीवन के विभिन्न स्थलों, करवटों और क्रान्तियों का साथ देने लगती है। एक हद तक 'मीर' की गजल भी ऐसी है; और 'मीर' जैसे महान् कवि में जो व्यापकता मिलती है, उससे मुझे इनकार नहीं है; मगर 'ग़ालिब' के यहाँ यह समग्र चिन्तन दूसरों से अधिक है। और 'ग़ालिब' की शैली उर्दू-कविता को गूढ़ दार्शनिक, राजनीतिक और शास्त्रीय विचारों की अभिव्यंजना के लिए समर्थ बना देती है।

[आले अहमद 'सरूर']

---

१. साहित्य-रूप, २. प्रवाह, ३. मृदुता, सरलता।

६. अच्छा हो या बुरा, लेकिन गजल की कविता आन्तरिक और व्यक्तिगत हैसियत ग्रहण कर लेती है। आन्तरिक अनुभूतियाँ भी वाह्य माहौल और प्रभावों के फलस्वरूप होती हैं, लेकिन इनमें इतनी साधारणता पैदा कर दी जाती है कि आन्तरिकता जिन बाह्य तथ्यों का परिणाम होती है, उन्हें पहचानना कठिन हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि गजल के शेरों के रूप में प्रस्तुत किये जानेवाले विचार भी वास्तविकताओं के प्रतिविम्व होते हैं, लेकिन उस तथ्य-विशेष को ढूँढ़ निकालना कभी-कभी प्रायः असम्भव हो जाता है, जो उस जज़्बात और विचार का उत्प्रेरक रहा होगा। इसलिए 'ग़ालिब' के सर्वोत्तम विचारों के आधारों का निश्चयात्मक ज्ञान उस समय तक नहीं प्राप्त हो सकता जबतक कि उसके सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से संकेत न पाया जाय। आन्तरिकता और सांकेतिकता के कारण तथ्यों का रूप बदल जाता है। और, ये चीजें कवि के कलात्मक सिद्धान्त का अंग बनकर मूल विचारों को वर्णन-शैली के पदों में छिपा देती हैं। 'ग़ालिब' ने तो इसे खोलकर कह भी दिया है :

हरचंद[1] हो मुशाहिदए[2] हक़[3] की गुफ़्तगू[4]
बनती नहीं है बादः[5] वोसाग़र[6] कहे बग़ैर
मतलब है नाज़[7] वो ग़मज़ः[8] वले[9] गुफ़्तगू में काम
चलता नहीं है दुश्नः[10] वो ख़ंजर[11] कहे बग़ैर

इस प्रकार गजल के शेरों से चेतना के वाह्य उत्प्रेरकों के विषय में राय स्थिर करना सचाई से दूर भी हो सकता है। तो भी कविता के वातावरण और आम हालतों में एकलयता और विचारों में पुनरावृत्ति पाई जाय तो उस पर दृष्टि न डालना भी ठीक न होगा; क्योंकि 'ग़ालिब' के चेतना-निर्माण में जिस प्रकार के तथ्यों ने, जिस तरह के समाज ने, जिस ढंग की व्यक्तिगत उलझनों ने भाग लिया, हम उन्हें कुछ हद तक जानते हैं। और यह एकलयता आकस्मिक नहीं हो सकती। उनके बहुत-से शेर ऐसे हैं कि उनमें किसी विशेष प्रकार की मानसिक गति का वर्णन है। किन्तु उनके लिखे जाने का ठीक समय मालूम नहीं। इसलिए भी शेरों से निष्कर्ष निकालने में गलती हो सकती है। लेकिन, इन शेरों से जो वातावरण तैयार होता है और जिस तरह की मानसिक दशाओं की अभिव्यक्ति होती है उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि हमें उनके लिखे जाने की ठीक तिथि मालूम हो। उदाहरणस्वरूप 'ग़ालिब' का यह मशहूर शेर :

---

१. यद्यपि, २. निरीक्षण, देखना; ३. सत्य, ईश्वर; ४. बातचीत, गोष्ठी; ५. शराब, मदिरा; ६. छोटा प्याला, ७. भावभंगी, ८. सैन-संकेत, ९. लेकिन, १०. छुरा, ११. तलवार, कटार।

दाग़े-फ़िराक़ वो सोहबते-शब की जली हुई
एक शम्मः रह गई है सो भी ख़ामोश है

गदर से पहले बहुत पहले लिखा गया। लेकिन कुछ महानुभावों ने गदर में 'बहादुरशाह' पर जो कुछ बीता, इस शेर को उसी का बयान समझा है। यह बात दुरुस्त नहीं; लेकिन कौन है जो इस तथ्य से इनकार कर सकता है कि परिस्थितियों को तेजी से विनाश की ओर जाते हुए देखकर 'ग़ालिब' ने यह अन्दाज़ा लगा लिया कि अब इस सभ्यता का बुझा हुआ चिराग़ फिर प्रज्वलित न हो सकेगा, और यह शेर उसी प्रकार की अनुभूति की अभिव्यंजना है.......

वैयक्तिक क्षमताएँ रखने के बावजूद वह भविष्य की ओर कोई इशारा करने में असमर्थ हैं। जो दर्शन उन्होंने 'तूसी', 'बूअली सीना', 'ग़ज़ाली' तथा सूफ़ी कवियों और विद्वानों से सीखा था वह इस खिन्नता और सचेष्ट वेदना-संग्रह तक ही पथ-प्रदर्शन कर सकता था। उसके द्वारा बदलते हुए उस हिन्दुस्तान का विश्लेषण नहीं किया जा सकता था, जो एक नये आर्थिक और सांस्कृतिक मोड़ पर आ गया था; उसमें निर्दिष्ट मूल्यों की दुनिया को समझने-समझाने की बातें थीं, लेकिन महान् आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति का ज़िक्र न था। इसलिए 'ग़ालिब' राजतन्त्रात्मक सामन्ती पद्धति को अपनी निगाहों के सामने मिटते देखकर विभिन्न रूपों से प्रभावित अवश्य होते थे, लेकिन न तो उसके कारणों का अन्दाज़ा लगा सकते थे और न उसके परिणामों का। उनकी बुद्धि वातावरण की सारी निराशा और खिन्नता अपने भीतर समेट रही थी। लेकिन वे यह नहीं जानते थे कि इस उदासीनता से बाहर निकलने का भी कोई रास्ता है या नहीं? मानव की महानता और मानव से प्रेम, जीवन का क्रम और जीवन से प्रेम के जज़बात ने, उस विनाशोन्मुख दिल्ली ने उन्हें बड़ी उलझनों में डाल दिया था और उनकी कविता का बड़ा हिस्सा उसी ग़म का विश्लेषण करने, उसे बहलाने, उसका कवि-सुलभ औचित्य प्रस्तुत करने में लग गया, नहीं तो वे जानते कि मंज़िल यही नहीं है :

***दर सुलूक अज़ हरचे पेशामद गुज़श्तन दाश्तम**
काबा दीदम नक़्शे-पाए-रहरवां नामीदमश

और उस वैचारिक तुष्टि की मंज़िल तक पहुँचने के लिए लगातार खोज करते रहते थे :

चलता हूँ थोड़ी दूर हर एक तेज़-रौ[1] के साथ
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर[2] को मैं

---

* अध्यात्म-पथ पर चलते समय रास्ते में जो कुछ सामने आता था उसे मैं छोड़ता ही जाता था, मैंने (राह में) काबा देखा, उसको यात्रियों का पदचिह्न-मात्र समझा।

१. द्रुतगामी, २. पथ-प्रदर्शक।

जिस जीवन-दर्शन और नैतिक पद्धति से वह अवगत थे, उसमें इस बात का साहस करना भी विद्रोह के समतुल्य था कि कोई शख़्स बँधे-टँके रास्ते से असन्तुष्ट होकर नये रास्ते की खोज करे और बुद्धि से काम लेकर अच्छाई-बुराई का निर्णय करे.......

मेरी तामीर[१] में मुज़मर[२] है एक सूरत[३] ख़राबी की
हयूला[४] बर्क़[५]-ख़िरमन[६] का है ख़ूने-गर्म देहक़ां[७] का

सर्जन और विध्वंस की यह अर्ध-द्वन्द्वात्मक कल्पना गहरे निरीक्षण का परिणाम कही जा सकती है। लेकिन यह चीज ग़ौर करने की है कि 'ग़ालिब' की तीव्र बुद्धि सर्जन के बाद विध्वंस को देख लेती थी, उन्नति के बाद ह्रास का अनुमान कर लेती थी; लेकिन विध्वंस के बाद सर्जन और ह्रास के बाद नवोन्नति की कल्पना नहीं कर सकती थी। इसके कारण भी उस युग के लुटते हुए मूल्यों में देखे जा सकते हैं; नहीं तो 'ग़ालिब' तो 'आदम' के बाद नये 'आदम' और प्रलय के बाद नई दुनिया के पैदा होने में विश्वास करते थे :

हैं ज़वाल[८]-आमादः[९] अजज़ा[१०] आफ़रीनिश[११] के तमाम[१२]
मेह्रे[१३]-गरदूं[१४] है चिराग़े-रहगुज़ारे[१५] बाद[१६] यां[१७]

नज़र में है हमारी जादए[१८] राहे-फ़ना[१९] 'ग़ालिब'
कि यह शीराज़ः[२०] है आलम[२१] के अजज़ाए परीशां[२२] का

........'ग़ालिब' का अध्ययन जितना भी किया जाता है उससे यह तथ्य और सुदृढ़ होता जाता है कि वह अपने युग से असन्तुष्ट थे। उसकी तबाही और बरबादी को निश्चित जानते थे। लेकिन इतिहास और आर्थिक ज्ञान लुप्त होने के कारण न तो वह इस ह्रास के कारणों को जानते थे और न आगे की राह को। अतः अतीत का ज़िक्र कभी-कभी उन्हें शान्ति देता था। वह गजल जिसका मतला है :

मुद्दत हुई है यार को मेहमां किए हुए
दाग़े-जिगर से बज़्मे[२३]-चिरागां[२४] किए हुए

न पूरी होनेवाली अभिलाषाओं की अन्तिम हिचकी और बीते दिनों की अन्तिम स्मृति जान पड़ती है। यह बहारें अब देखने में न आयेंगी ! ये तमन्नाएँ अब

---

१. सर्जन, २. निहित, छिपा हुआ; ३. रूप, ढंग; ४. ढाँचा, आकार; ५. बिजली, ६. खलिहान, ७. दिहाती, किसान; ८. ह्रास, ९. विनाशोन्मुख, १०. अंश, टुकड़े; ११. उत्पत्ति, पैदाइश; १२. कुल, १३. सूर्य, १४. आसमान, १५. रास्ते का रुख़, १६. हवा, १७. यहाँ, १८. रास्ता, १९. विनाश-पथ, २०. नत्थी, बन्धन; २१. संसार, २२. बिखरा हुआ, २३. महफ़िल, सभा; २४. दीपावली।

कभी पूरी न होंगी ! हालांकि गालिब उन लोगों में से थे, जो ग़म के सम्बन्ध में कह सकते थे कि

गम नहीं होता है आज़ादों को बेश[१] अज़[२] एक नफ़स[३]
वर्क़[४] से करते हैं रोशन शमए[५]-मातम[६]-ख़ानः[७] हम

लेकिन यह उसी समय सम्भव है जब ग़म के बाद खुशी भी अपना सुन्दर स्वरूप दिखलाये। और जब लगातार ग़म-ही-ग़म हो तो बिजली से चिराग़ नहीं जलते, घर में आग लग जाती है और मनुष्य स्थायी निराशा का शिकार हो जाता है। यही कारण है कि असाधारण दौड़-धूप और मानसिक संघर्ष के बावजूद 'ग़ालिब' को यह कहना पड़ा :

*सद क़यामत दर नवर्द वो हर नफ़स ख़ू गश्तः अस्त
मन ज़े ख़ामी दर फ़ेशारे-बीमे-फ़र्दायम हिनोज़

× × ×

शुद रोज़े रुस्तख़ेज़ वो ब यारे शबे-विसाल
महवे हुमां व लज़्ज़ते-बीमे-सेहर हिनोज़

× × ×

है शिकस्तन[८] से भी दिल नौमीद यारब[९] कब तलक
आबगीना[१०] कोह[११] पर अर्ज़[१२] गिरां जानी[१३] करे

और लगातार असफलताओं के बाद अपनी पराजय इस प्रकार स्वीकार करना :

रात-दिन गर्दिश[१४] में हैं सात आसमां + हो रहेगा कुछ-न-कुछ घबरायें क्या

× × ×

न गुले[१५]नग़मा हूँ न पर्दए साज़[१६] + मैं हूँ अपनी शिकस्त[१७] की आवाज़

'ग़ालिब' का अपनी पराजय स्वीकार करना उस विधान की विच्छिन्नता की भी घोषणा है, जिसके पास सर्जन की कोई कल्पना न थी।

[सैयद एहतेशाम हुसेन]

७. ....उर्दू-आलोचना में सबसे पहले 'डाक्टर अब्दुर्रहमान बिजनौरी' ने 'ग़ालिब' की कविता के ज़ाहिरी ढांचे से हटकर उनकी रचनाओं के बौद्धिक

---

१. अधिक, २. से, ३. साँस, क्षण; ४. बिजली, ५. चिराग़, ६. शोक, ७. घर, आगार; ८. टूटना, नष्ट होना; ९. हे भगवन्, १०. शीशा, ११. पहाड़, १२. निवेदन करना, १३. जान का भारी अर्थात् दुःखी होना, १४. चक्कर, १५. संगीत-पुष्प, १६. बाजा, १७. भग्नता, टूटना।

* प्रलयकाल (का चक्र) सैकड़ों बार घूम गया और (जीवन का) प्रत्येक क्षण नष्ट हो गया, मूर्खतावश मैं अभी तक आनेवाले कल (कयामत, प्रलय) की चपेट के भय से भयभीत हूँ। कयामत (प्रलयकाल) का दिन आ गया और मैं मिलन-रात्रि में नवप्रभात के भय का ही स्वाद ले रहा हूँ।

तत्वों को समझने की कोशिश की और उनकी विषय-वस्तु के महत्त्व पर जोर दिया। आर्थिक खूबियाँ जिनकी ओर मौलाना 'अबुलकलाम आज़ाद' ने इशारा किया था, उनकी ओर ध्यान देना यहीं से आरम्भ होता है। 'बिजनौरी' ने इस विषय में यहाँ तक अत्युक्ति से काम लिया कि अलंकार इत्यादि को भस्मीभूत कर देने योग्य ठहराया। 'ग़ालिब' की रचनाओं की खूबियाँ बयान करने में 'बिजनौरी' ने 'ग़ालिब' को जर्मन कवि 'गेटे' के समकक्ष ठहराया; और उनकी कविता के विभिन्न तत्त्वों को 'बोदलियर', 'पालवरलिन', 'मलारमे', 'अल्फ्रेड माम्बर्ट', 'मजिस्ती', 'मसऊदी', 'ख़ैयाम', 'बर्गसां', 'इब्ने-रुशद', 'सुकरात' 'डारविन', 'शेक्सपियर', 'होरेस', 'बर्कले', 'स्पिनोज़ा', 'फ़िश्ते', 'हीगेल' और पश्चिम-पूर्व के कितने ही महान् विचारकों से टकरा दिया, और उनके शेरों में सूफ़ी-मत और अध्यात्म के अतिरिक्त उद्विकासवाद और विज्ञान के बहुत-से तत्त्व ढूँढ़ निकाले। कुछ लोगों को 'बिजनौरी' की यह आलोचना सद्भावना का उपहार और भ्रमात्मक चेतना की उपज जान पड़ती है। लेकिन ऐसा समझना बड़ा अन्याय होगा। 'बिजनौरी' की बातों को शत-प्रतिशत न स्वीकार करते हुए भी उनकी विचार-पद्धति और साहित्य-काव्य में सुरुचि की प्रशंसा करनी ही पड़ेगी। 'गालिब' के आलोचकों में 'बिजनौरी' का महत्त्व है, कारण कि सबसे पहले उन्होंने ही 'गालिब' की रचनाओं की आर्थिक खूबियों पर जोर दिया, और उनके चिन्तन-वृत्तों का पता लगाने की कोशिश की। मानों 'बिजनौरी' ने इस परम्परा का आरम्भ किया कि 'गालिब' की रचनाओं के अटल गौरव को उसके वाह्य स्वरूप के अलावा उनके ज़ेहन को भी समझना पड़ेगा, और ज़ेहन को समझने के लिए उनकी निजी जिन्दगी और उनकी जीवन-चर्या के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करनी होगी।

[खलीलुर्रहमान अज़मी]

३. देखिए प्रायोगिक आलोचना—अंक १, पृष्ठ १२८-१२९
४. देखिए प्रायोगिक आलोचना—अंक १, पृष्ठ १४५-१४८

५

क़सीदा अपनी कठिनाइयों के कारण सर्वप्रिय न हो सका, और कवियों के बीच भी सर्व-स्वीकृति का प्रमाण-पत्र न प्राप्त कर सका। लेकिन अपनी क्लिष्टताओं की वजह से क़सीदे की इतनी प्रशंसा हुई, जिसके योग्य यह न था। इस काव्य-रूप में बहुत-से दोष हैं। पहली बात तो यह है कि क़सीदे का उद्देश्य व तात्पर्य किसी की प्रशंसा करना होता है और वह भी अत्यन्त अत्युक्तिपूर्ण। इसमें किसी बादशाह या अमीर का गुणगान लक्ष्य होता है। और, यह गुणगान उस बादशाह या उस अमीर की न्यायपरायणता या उदारता व दानशीलता से प्रभावित होकर नहीं किया जाता, बल्कि किसी प्रकार का लाभ पाने की आशा में किया जाता है। और प्रशंसित व्यक्ति प्रायः उस अत्युक्तिपूर्ण तारीफ़ के अंशमात्र के योग्य भी नहीं होता। यद्यपि अधिकांशतः लाभ की आशा ही इस गुणगान का उत्प्रेरक होती है, तो भी कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कवि क़सीदे को अपनी श्रद्धा (किसी के प्रति भक्ति) प्रकट करने का साधन बनाता है। इस प्रकार क़सीदे में धर्म तथा धार्मिक विश्वासों का रंग भरा जाता है। किन्तु, इस प्रकार का रंग भरना भी किसी गहरे व प्रबल धार्मिक आवेश से प्रभावित तथा बाध्य होकर नहीं होता। इस प्रकार क़सीदों में श्रद्धाञ्जलि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

क़सीदे धार्मिक रंग में रँगे हुए हों या सांसारिक गन्दगियों से कलुषित हों, सारांश यह कि वे किसी प्रकार के भी क्यों न हों, उनमें सम्पूर्णतया क्लिष्ट कल्पना होती है; और इसका कारण प्रत्यक्ष है। कवि इच्छापूर्वक किसी राजा की प्रशंसा, किसी महापुरुष की स्तुति के लिए साहस के साथ कमर कसता है और इस प्रशंसा तथा स्तुति करने में अत्युक्ति की चरमसीमा पार कर जाता है। मैं यह नहीं कहता कि अत्युक्ति नितान्त बुरी चीज है। किसी ने कहा है कि अत्युक्ति साहित्य का प्राण है; लेकिन शर्त्त यह है कि अत्युक्ति उचित सीमाओं से आगे न बढ़े। यदि हद से आगे बढ़ गई तो यही सबसे बड़ा दोष हो जाती है। हर चीज अपनी जगह पर, अपनी सीमाओं के भीतर भली मालूम होती है :

है कजी[1] ऐब मगर हुस्न[2] है अब्रू[3] के लिए + सुरमा ज़ेबा[4] है फ़क़त[5] नर्गिसे[6] जादू के लिए
तीरगी[7] बद[8] है मगर नेक है गेसू[9] के लिए + जेब है ख़ाले[10] सिपह-चेहरए गुलरू[11] के लिए

*दानद आंकस कि फ़ेसाहत ब-कलामे दारद
हर सोख़न मौका बहर नुकता मुक़ामे दारद

---

१. वक्रता, २. सुन्दरता, ३. भौं, ४. शोभावर्द्धक, ५. केवल, ६. एक फूल, जिससे आँखों की उपमा दी जाती है, आँख; ७. कालिमा, ८. बुरा, ९. अलकें, १०. तिल, ११. गुलाब के फूल-जैसा चेहरा।

*इस बात को वही जानता है, जिसकी रचना परिष्कृत तथा सरल होती है। हर एक बात अपनी जगह पर होनी चाहिए और सभी प्रकार की बारीकियों का अपना स्थान होता है।

पाश्चात्य कविता का एक रूप है, जिसे 'ओड' कहते हैं। यह कुछ क़सीदे से मिलता-जुलता है। यह काव्य-रूप 'लिरिक' से अधिक भारी-भरकम होता है। इसमें जटिलता अधिक होती है और ठाट-बाट भी ज्यादा होता है। यह कभी किसी ख़ास घटना के सम्बन्ध में होता है या किसी महत्त्वपूर्ण बात अथवा किसी महान् व्यक्ति के विषय में होता है। इस प्रकार की कविताओं में भी जो इच्छापूर्वक लिखी जाती हैं, अधिक-से-अधिक क्लिष्टता होती है, लेकिन इस पाश्चात्य काव्य में उस प्रकार की गलती नहीं मिलती, जो क़सीदे की तुच्छता का कारण है। 'ओड' में सभी तरह के अनुभव समा सकते हैं। इसका क्षेत्र क़सीदे के क्षेत्र की तरह संकीर्ण नहीं, विस्तृत एवं प्रशस्त है। यदि प्राच्य कविगण चाहते तो वे क़सीदे की संकीर्णता को प्रशस्त कर सकते थे। क़सीदे में भी हर प्रकार के अनुभव समा सकते थे। लेकिन, उस ओर किसी का ख़याल भी नहीं गया। ऐसे कहने को तो क़सीदे के प्रथम भाग में कुछ विविधता होती है, और विविधता की काफी गुंजाइश थी; लेकिन इस गुंजाइश से भी काम नहीं लिया गया।

फारसी के प्रभाव ने उर्दू-क़सीदों की भी मिट्टी पलीद की। इसी प्रभाव की वजह से शब्द-गौरव, विचार-मार्मिकता और अर्थ-गर्भता की ओर अधिक-से-अधिक ध्यान दिया गया; और इन चीजों की गणना क़सीदे की अनिवार्य बातों में होने लगी। गजल की तुलना में क़सीदे अधिक लम्बे होते हैं। परन्तु गजल ही की तरह इसके सारे शेर समतुकान्त होते हैं। प्रत्येक भाषा में समतुकान्त शब्दों की खोज और उनके चुनाव में काफी कठिनाई होती है। अतः यह बात स्पष्ट है कि किसी लम्बी कविता में यदि सारे शेरों का समतुकान्त होना आवश्यक हो तो यह कठिनाई बहुत बढ़ जाती है। फिर एक मुश्किल यह भी है कि क़सीदे के औदात्य के विचार से असाधारण और अपरिचित क़ाफ़िए चुने जाते हैं; कुछ शब्द तो ऐसे भी होते हैं, जो किसी साधारण योग्यतावाले आदमी की समझ में नहीं आ सकते। यही कारण है कि क़सीदे प्रायः अजनबी और अपरिचित भाषा में लिखे हुए जान पड़ते हैं। 'सौदा' का एक क़सीदा है, जिसका मतला है :

उठ गया बहमन वो दें का चमनिस्तां से अमल
तेग़े उर्दी ने किया मुल्के ख़िज़ां मुस्तासल

इस क़सीदे में कुछ क़ाफ़िए ये हैं : 'मुस्तासल', 'हवल', 'मकमल', मुनक़ल', 'अहवल', 'कसल', 'अक़ल्ल', 'अचपल', 'ख़र्दल', 'ज़लल', 'पुश्कल', 'लायन्हल'।

क़ाफ़ियों की तरह अक्सर रदीफ भी कठिन होती है, जिसकी सजावट बड़ी कष्टसाध्य होती है। 'सौदा' के एक क़सीदे में रदीफ़ 'चारों एक', दूसरे में 'है बराबर', तीसरे में 'रंग-ढंग' है। 'ज़ौक़' के क़सीदों में 'की शाख़', 'नूरे सेहर रंगे शफ़क़', 'आबमें' जैसी रदीफ़ें मिलती हैं। रदीफ़ों का परिचयन, विशेषतः कठिन रदीफ़ों का परिचयन करना कवि की स्वतन्त्रता को सीमित कर देता है। रदीफ़ उसे इस बात के लिए बाध्य कर देती है कि प्रत्येक शेर में ऐसा विषय पदबद्ध हो, जिसमें रदीफ़ खप जाय। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत-से विषय, जिनका इस प्रकार खप जाना सम्भव नहीं, छूट जाते हैं। अर्थात् विषय और विषयों के पारस्परिक सम्बन्ध दोनों को रदीफ़ पर निछावर कर देना अनिवार्य हो जाता है। हर शेर में वही ख़याल पदबद्ध होता है, जिसे

व्यक्त करने में कोई पहले से चुना हुआ काफ़िया व्यवहार में लाया जा सके। अर्थात् (क़सीदा लिखनेवाले) कवियों के दिमाग़ में क़ाफ़िया खयाल से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। और इस प्रकार क़ाफ़िया और रदीफ़ दोनों मिलकर कवि की संकीर्ण दुनिया को और भी संकीर्ण बना देती हैं। कवि को बस यही फ़िक्र होती है कि किसी-न-किसी तरह क़ाफ़िया और रदीफ़ के मेल का निर्वाह हो सके; और सुननेवाले भी यही देखते हैं कि कवि ने इन मुश्किलों को कैसे आसान कर दिया है, उसने किस प्रकार किसी पथरीली जमीन को हरी-भरी बना दिया है। क़सीदे में कवि-सुलभ सौन्दर्य और वास्तविकता का अस्तित्व है या नहीं, इस बात का न तो कवि को, न सुननेवालों को ही कोई खयाल रहता है। इसलिए क़सीदों की प्रतिष्ठा एक कवि-सुलभ अभ्यास से अधिक नहीं होती।

मैंने कहा है कि क़ाफ़िए अक्सर अप्रिय और अपरिचित होते हैं; उसी तरह अन्यान्य शब्द भी असाधारण और कठिन होते हैं। ठाट-बाट के खयाल से फारसी और अरबी के शब्दों की बहुलता होती है, जिनके द्वारा गौरव तथा औदात्य तो शायद हाथ आ जाता है, लेकिन असर से हाथ धोना पड़ता है। वास्तविक जोश और असली जज़्बे की भाषा सीधी-साधी होती है। क़सीदे में न तो वास्तविक जोश होता है न निजी जज़्बा। फिर सादगी का होना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। कवि की आविष्कार-शक्ति, उसकी बौद्धिकता की प्रखरता का केन्द्र शब्द होते हैं। वह नये-नये शब्द ढूँढ़ निकालता है, नई बन्दिशें और रचना-पद्धति का आविष्कार करता है, दूरस्थ विचारों तथा भावों को इकट्ठा करता है। यह परिश्रम, यह अनुसन्धान प्रशंसनीय अवश्य है, किन्तु क़सीदे के ढाँचे में काव्य की आत्मा मुश्किल ही से मिलती है। गजल की तुलना में क़सीदे के शेरों में लगाव तथा क्रमबद्धता अधिक होती है, लेकिन कुछ तो जन्मजात विशृंखलता के कारण और कुछ क़ाफ़ियों की कठिनाई की वजह से यह लगाव भी सम्पूर्ण नहीं होता। ऐसा जान पड़ता है कि एक ईंट पर दूसरी ईंट रखी चली जा रही है, लेकिन दूसरे के साथ सुदृढ़ रूप से जुटी हुई नहीं है; उनके बीच एक बारीक-सा शून्य स्थान दीख पड़ता है :

सुब्ह[१]-दम दरवाज़ए[२] खावर[३] खुला + मेह्रे[४]-आलमताब[५] का मनज़र[६] खुला
खुसरुए[७]-अन्जुम[८] के आया सर्फ़[९] में + शब[१०] को था गंजीनए[११] गौहर[१२] खुला
वह भी थी एक सीमिया[१३] की-सी नमूद[१४] + सुब्ह को राज़े[१५] महवो[१६] अख्तर[१७] खुला
हैं कवाकिब[१८] कुछ नज़र आते हैं कुछ + देते हैं धोखा यह बाज़ीगर[१९] खुला
सतहे गर्दूं[२०] पर पड़ा था रात को + मोतियों का हर तरफ़ ज़ेवर[२१] खुला
सुब्ह आया जानिबे[२२]-मशरक़[२३] नज़र + एक निगारे[२४] आतशीं[२५],रुख़ सर खुला

१. प्रातःकाल, २. द्वार, ३. पूर्व दिशा, सूर्य; ४. सूर्य, ५. संसार को प्रकाशमान करनेवाला, ६. दृश्य, ७. बादशाह, ८. सितारे, ९. व्यवहार, १०. रात, ११. कोष, खजाना; १२. मोती, १३. जादूगरी, मोहक दृश्य; १४. दिखलावा, दृश्य; १५. रहस्य, १६. चाँद, १७. सितारे, १८. तारे, १९. नटवाज़, २०. आसमां, २१. गहना, २२. ओर; तरफ़; २३. पूर्व दिशा, २४. प्रेयसी, प्रीतम; २५. आग-भभूका, आग के ऐसा चमकता हुआ चेहरावाला।

यह मिसाल सीधी-सादी है। काफ़िए और रदीफ़ कुछ असाधारण और अपरिचित नहीं। प्रभात का चित्र-चित्रण है, और अच्छा चित्रण है। लेकिन 'खुला' की रदीफ़ के कारण कवि मजबूर-सा है। हर शेर में इसका ध्यान रखना अनिवार्य है। इसीलिए विचारों की प्रगति समतल और प्रवाहपूर्ण नहीं। ऐसा जान पड़ता है, विचारों की गति में हचकोले पड़ रहे हैं। बहुत-से रूपक तो मिलते हैं, किन्तु उनसे कोई खास चित्र नहीं बनता। 'कवाकिब' कहीं 'गंजीनए गौहर' हैं, तो कहीं 'सीमिया की-सी नमूद'; कभी 'बाज़ीगर' हैं, तो कभी 'मोतियों का ज़ेवर'। फिर भी यह मिसाल ग़नीमत है। अन्य क़सीदों में इससे बहुत अधिक विश्रृंखलता तथा असमानता होती है। रूपक बुरी तरह गड्ड-मड्ड हो जाते हैं।

क़सीदे में चार टुकड़े होते हैं। पहला हिस्सा प्रारम्भिक होता है। इसमें रचना के मन्तव्य अर्थात् प्रशंसा से बहस नहीं होती। इस भाग में कवि को पूर्ण स्वतन्त्रता होती है; वह जिस प्रकार का विषय चाहे पदबद्ध कर सकता है। इस हिस्से में वह अपनी समस्त मौलिकता से काम ले सकता है, अपनी प्रतिभा व मेधा का प्रमाण प्रस्तुत कर सकता है। इस भाग में प्राकृतिक दृश्यों का चित्ताकर्षक चित्रण भी विहित है और किसी व्यक्तिगत जज़्बा या भावावेश की अभिव्यक्ति भी उचित है। इस भाग में उच्च तथा आदरणीय विचार अथवा शिक्षाप्रद विषय भी समा सकता है। 'ज़ौक़' के एक क़सीदे का आरम्भ इस प्रकार होता है:

है आज जो यों ख़ुशनुमा[१] नूरे[२]-सेहर[३] रंगे-शफ़क़
परतौ[५] है किस ख़ुरशेद[६] का नूरे-सेहर रंगे-शफ़क़
यह जोशे[७]-नसरींन[८]-वो-समन[९] यह लाला[१०] वो गुल[११] का चमन
गुलशन[१२] में गोया[१३] छा गया नूरे-सेहर रंगे-शफ़क़
हर सर्व-क़द[१४] ग़ुंचा[१५]-देहन[१६], ज़ेबे[१७]-चमन शाने[१८]-चमन
हर सीमबर[१९] गुलगूं[२०]-क़िबा[२१] नूरे-सेहर रंगे-शफ़क़
अफ़शां[२२] जबीं[२३] पर सर[२४]-ब-सर महताब[२५] वो अन्जुम[२६] जल्वागर[२७]
और गोरे हाथों में हिना[२८] नूरे-सेहर रंगे शफ़क़
लब[२९] पर तबस्सुम[३०] है कि है जोशे-बहार वो मौजे-गुल[३१]
दंदाने[३२] - पां-ख़ुर्दा[३३] हैं या नूरे-सेहर रंगे-शफ़क़
जामे[३४] - बिलौरीं[३५] में है यों अक्से[३६]-शराबे - लालागूं[३७]
हो जैसे कैफ़ीयत-[३८] फ़ेज़ा नूरे-सेहर रंगे-शफ़क़

---

१. सुन्दर, २. प्रकाश, ३. प्रभात, ४. उषा, ५. झलक, ६. सूर्य, ७. उफ़ान, ८. एक पुष्प, ९. चमेली, १०. एक फूल, ११. गुलाब का फूल, १२. उद्यान, १३. मानों, १४. सर्व वृक्ष की-सी ऊँचाईवाला, १५. कली, १६. मुँह, १७. शोभा, १८ ठाट-बाट, १९. गोरा, २०. गुलाबी रंग का, २१. जामा, २२. चमकी, २३. माथा, २४. पूर्णतया, २५. चन्द्रमा, २६. सितारे, २७. छवि दिखलानेवाले, २८. मेंहदी, २९. ओठ, ३०. मुस्कान, ३१. फूलों की लहरें, ३२. दांत, ३३. पान खाये हुए, ३४. प्याला, ३५. शीशे का, ३६. प्रतिबिम्ब, ३७. लाला के रंग का, ३८. आवेशात्मक।

देख चमन में बर्गे[1]-गुल आलूदए[2]-शबनम जो कल
खिजलत[3] से पानी हो गया नूरे-सेहर रंगे-शफ़क़
है शौक़ को बालीदगी[4], है रब्त[5] को चस्पीदगी[6]
किस रंग हों मिलकर जुदा नूरे-सेहर रंगे शफ़क़

इन शेरों को पढ़कर दिल को उलझन होती है। समझ में नहीं आता कि आखिर कवि का मन्तव्य क्या है—वसन्त ऋतु का दृश्य—उद्यान की शोभा और आभावर्द्धकता? संसार-रूपी वाटिका का आह्लाद?—फिर ख़याल होता है कि 'बहादुरशाह' के जशन का अभिनन्दन उद्दिष्ट है। इसलिए शायद कवि उज्ज्वल प्रभात और उषा की आनन्दवर्द्धकता की छटा दिखाना चाहता है। प्रथम पंक्ति में प्रातःकाल के प्रकाश और उषा की सुन्दरता का वर्णन है। 'गुलशन', 'सीमबर गुलगूं-क़िबा', 'मजमए-नीर-वो-जवां', 'जामे बिलौरीं', 'बर्गे-गुल आलुदए शबनम' का क्रमानुसार ज़िक्र है। लेकिन इनमें कोई भी तस्वीर साफ नजर नहीं आती। प्रत्येक विवरण एक-दूसरे में मिलकर कोई सम्पूर्ण चित्र नहीं बनाता। प्रत्येक ब्योरा अलग-अलग 'नूरे-सेहर रंगे-शफ़क़' का खयाल रखते हुए ढूंढ़कर निकाला गया है और लगाव तथा अनुक्रमण का असफल प्रयास किया गया है। असल ख़राबी यह है कि कहीं भी निजी निरीक्षण का चिह्न नहीं मिलता। प्रायः जहाँ भी क़सीदे के आरम्भ में इस प्रकार के दृश्य का चित्रण होता है, वहाँ अपने निजी निरीक्षण की कमी नजर आती है। यही कारण है कि इस प्रकार के दृश्य अपने ठाट-बाट के बावजूद दिल एवं दिमाग पर असर नहीं करते :

फ़स्ले-गुल आई हुआ गुलज़ारे[7] जन्नत[8] बूस्तां[9]
बढ़ के रिज़्वां[10] से है इन[11] रोज़ों दिमाग़े बाग़बां[12]
हर तरफ़ गुलहाय रंगारंग गुलशन[13] में खिले
जैसे सुब्हे ईद यकजा[14] हों हसीनाने[15]-जहां
ख़म[16] नहीं शाख़े दरख़्तों की हवा से ख़ाक[17] पर
कर रही हैं सिज्दए[18] शुक्रे-ख़ुदाए-उन्स[19] वोजां
क़ुम ब[20] इज़्निल्लाह कहती आई गुलशन में बहार
जी उठे जो हो गए थे मुर्दा दिल वक़्ते ख़िज़ां[21]
झूमकर आया है अब्रे[22]-कोहसारी[23] बाग़ में
रक़्स[24] में है हर रविश[25] ताऊस[26] होकर शादमां[27]

---

१. पंखुड़ी, २. लिपटा हुआ, ३ लज्जा, शर्मिन्दगी; ४. बढ़ोतरी, ५. लगाव, ६. चिपकाव, उपयुक्तता; ७. वाटिका, ८. स्वर्ग, ९. फुलवारी, १०. स्वर्ग का पहरेदार, ११. आजकल, १२. बाग का रखवाला, १३. फुलवारी, १४. एकत्र, १५. संसार के सुन्दर व्यक्ति, १६. टेढ़ी, १७. जमीन, १८. साष्टांग दण्डवत्, १९. मनुष्य तथा पशुपक्षी, २०. खड़े हो जाओ अल्लाह के हुकुम से, २१. पतझड़, २२. बादल, २३. पहाड़ों का, २४. नृत्य, २५. क्यारियों के बीच-बीच के रास्ते, २६. मोर, २७. प्रसन्न।

लाला[1] कहता है कहाँ मूसा[2] हैं आकर देख लें
साफ़ जल्वा[3] है चिराग़े[4]-तूर का मुझसे अयां[5]
झूमना मस्तों की सूरत है दरख़्तों का बजा[6]
निकहते[7] गुल में भी है कैफ़े[8] शराबे अरग़वां[9]
लालए-अह्मर[10] ने याक़ूती[11] की डिबिया की दुरुस्त
नर्गिसे[12]-शहला ने रक्खी मैं[13] फ़रोशी की दुकां
दार[14]-वस्ते ताक[15] में ख़ोशे[16] नज़र आने लगे
जिस तरह झुरमुट सितारों का फ़राज़े[17] आसमां
सेर ग़ुंचा[18] क्यों न बेहद हो ज़रे-गुल[19] बेशुमार[20]
रखती है अक्सीर[21] की बूटी बहारे बूस्तां
हर रविश[22] पर बैठी है बज़्ज़ाज़ बनकर ख़ुर्रमी[23]
जिस तरफ़ देखो खुली है सब्ज़ मख़मल की दुकां

'फ़स्ले-गुल' में वसन्त-ऋतु की प्राणदा शक्ति का ओजपूर्ण वर्णन है। 'गुलहाय रंगारंग', 'शाख़ों' का हवा के ज़ोर से झुक जाना, 'अब्रे कोहसारी' का झूमकर आना, 'लालए अह्मर', 'नर्गिसे शहला', 'दार वस्ते-ताक', 'सब्ज़े की दुकान'—ये सब टुकड़े आम हैं। कहीं भी निजी निरीक्षण का चिह्न नहीं। रूपक और उपमाएँ भी हैं और बहुलता के साथ : 'गुलज़ारे-जन्नत', 'रिज़्वां', 'हर्सानाने-जहाँ', 'सिज्दए-शुक्र', 'जल्वए तूर', 'कैफ़े-शराबे-अरग़वां', 'याक़ूती की डिबिया', 'मैं-फ़रोशी की दुकान', 'सितारों का झुरमुट', 'अक्सीर की बूटी', 'बज़्ज़ाज़', 'मख़मल की दुकान'। इनमें से कुछ तो आम प्रचलित ढंग की हैं और कुछ स्वनिर्मित। लेकिन वे किसी प्रकार की क्यों न हों, सबमें क्लिष्ट कल्पना ही है; कहीं स्वाभाविकता नहीं। और बहुत-सी उपमाएँ तो केवल क़ाफ़िए का विचार करके गढ़ ली गई हैं। शेरों की व्यवस्था भी दोषयुक्त है। विचार-प्रगति प्राकृतिक नहीं, कृत्रिम है। प्रत्येक शेर सम्पूर्ण है और एक-दूसरे से विलग। इन शेरों में से कुछ को छोड़ दिया जा सकता है और मतलब नष्ट न होगा। इसी प्रकार कुछ और शेरों को मिला देना भी सम्भव है, और कोई अन्तर महसूस न होगा। परिणाम स्पष्ट है कि प्रत्येक शेर आवश्यक नहीं, और शेरों में पूरा लगाव भी नहीं। अभिव्यंजना की शैली साफ़, परिष्कृत, ओजपूर्ण और पुष्ट है, लेकिन कहीं भी ताज़गी और प्रफुल्लता नहीं। कहने को वसन्त-ऋतु का वर्णन है, लेकिन हर जगह शुष्कता-ही-शुष्कता दीख पड़ती है, जिससे अप्रिय-सा प्रभाव पड़ता[3] है

---

१. सुर्ख़ रंग का एक फूल, २. यहूदियों के पैग़म्बर, ३. छवि, सुन्दरता; ४. तूर पहाड़ पर जगज्योति, ५. विदित, ज़ाहिर; ६. उचित, ठीक; ७. खुशबू, ८. नशा, ९. लाल रंग का, १०. एक फूल, जिससे आँखों की उपमा दी जाती है; ११. सुर्ख़, १२. एक दवा, १३. शराब बेचना, १४. अंगूर की लत्ती, १५. अंगूर, १६. अंकुर, १७. ऊपर, १८. कली, १९. पुष्प-पराग, २०. अनगिनत, २१. प्राणदा औषध, २२. डगर, २३. खुशी, आनन्द।

अधिकांश प्राकृतिक दृश्यों की तस्वीर अच्छी नहीं उतरती। हाँ, किसी हार्दिक अनुभूति, किसी व्यक्तिगत जज़्बे की अभिव्यक्ति में कभी सफलता की झलक दिखाई देती है :

याद अइयामे[१] - इशरते[२] - फ़ानी[३] + न वः हम हैं न वह तन आसानी[४]
जायं वहशत[५] से सूए[६] सेहरा[७] क्यों + कम नहीं अपने घर की वीरानी[८]
ख़ाक[९] में रश्के[१०] आसमां से मिली + हाय कैसी बुलन्द ऐवानी[११]
ऐसी बहशत-सरा[१२] में आए कौन + बेदरी[१३] कर रही है दरबानी
क्या हुई वह बुलन्द दिए-दोवार + क्या हुए वह ओमादे[१४] तूलानी[१५]
सक़्फ़े[१६] रंगीं व ज़र-[१७]निगार कहाँ + जुज़[१८] सिपहरो[१९] नुजूमे[२०] नूरानी[२१]
जाय[२२] गुल हैं चमन में रेज़ए[२३] संग + काह[२४] करती है नाज़े[२५] रैहानी[२६]
अट गए होज वो नह्र, ग़ैर[२७] अज़ चश्म + एक क़तरा कहीं नहीं पानी
न मिला कुछ निशाने-आबे-रवां[२८] + ख़ाक सारे जहान की छानी

असर प्रत्यक्ष है; किन्तु यह भी स्पष्ट है कि कुछ शेरों को हटा देने या उनके क्रम को बदल देने से कोई ख़राबी नहीं होती; बल्कि प्रभाव कुछ अधिक हो जाता है। जो कुछ भी हो, यह तो अवश्य है कि यहाँ वह शुष्कता और प्रभावहीनता नहीं, जो 'फ़स्ले गुल' के आगमन के समय में थीं। एक दूसरी मिसाल पर ध्यान दिया जाय :

जो पहुँचो कयामत[२९] तो आह-वो-फ़ुग़ां[३०] है + मेरे हाथ में दामने आसमां है
कोई आज से है फ़लक[३१] मुद्दई[३२] क्या + हमेशा मेरे हाल[३३] पर मेहरबां है
जो रोता भी हूँ मैं ग़ुबारे[३४]-दिली से + तो आँसू का सैलाब[३५] रेगे[३६] रवां[३७] है
जो दिल में है आता है कहने में भी यह + ज़बां मेरी दिल की मगर तरजुमां[३८] है
अजब मख़मसे[३९] में हूँ जौरे[४०]फ़लक[४१] से + हवादिस[४२] के तीरों का सीना निशां है
रमक़[४३] एक जी है सो एकाध दम का + इसे क़स्द[४४]अबतक मेरा इम्तहां है
इस अहवाल[४५] का रंगे[४६]-रू बस है शाहिद[४७] + जो दिल में है मेरे सो लब पर अयां[४८] है

यह 'मीर' हैं। यहाँ वह शाब्दिक ठाट-बाट नहीं, जो क़सीदे का आवश्यक अंग समझा जाता है। कल्पना की ऊँची उड़ान और प्रचलित अर्थ-गर्भिता भी कहीं नहीं। विषय अर्थात् "आसमान की शिकायत" भी नया नहीं। लेकिन फिर भी जो असर इस प्रस्तावना में है वह

---

१. दिन, समय; २. सुख, ३. नश्वर, ४. आराम, ५. घबराहट, ६. ओर, ७. जंगल, ८. सुनसान स्थान, ९. जमीन, १०. स्पर्धा, डाह; ११. ऊँचा महल, १२. घर, स्थान; १३. बिना द्वार का होना, १४. खम्भे, १५. लम्बे, बड़े; १६. छत, १७. सुनहले, १८. सिवा, १९. आसमान, २०. सितारे, २१. चमकते हुए, २२. स्थान पर, २३. कंकड़, २४. घास, २५. गर्व, २६ रेहां घास की तरह का, २७. सिवाय, २८. बहता पानी, २९. प्रलयकाल, ३०. आह, ३१. आसमान, ३२. दुश्मन, ३३. दशा, ३४. मैल, दुःख; ३५. बाढ़, ३६. बालू, ३७. उड़ता हुआ, ३८. अभिव्यंजक, ३९. झंझट, बखेड़ा, ४०. जुल्म, ४१. आसमान, ४२. दुर्घटनाएँ, ४३. कमजोर, ४४. उद्दिष्ट, ४५. दशाएँ, अवस्था; ४६. चेहरे का रंग, ४७. गवाह, ४८. प्रकट।

'अमीर मीनाई' की बहार में नहीं। 'मीर' के शेरों में चिरन्तन ख़िज़ाँ[1] का निवास है। लेकिन प्रत्येक शेर सजीव है, हर शब्द में असलियत देदीप्यमान है :

जो दिल में है आता है कहने में भी वह
ज़बाँ मेरी दिल की मगर तरजुमां है

इस तथ्य को कविगण प्रायः भूल जाते हैं। उनकी भाषा उनकी पंचज्ञानेन्द्रियों, उनके हृदय, उनके दिमाग़ की सही अभिव्यक्ति नहीं करती।

'ग़ालिब' के एक क़सीदे की तशबीब (प्रस्तावना) है :

हाँ महे नौ,[2] सुनें हम उसका नाम + जिसको तू झुकके कर रहा है सलाम
दो दिन आया है तू नज़र दमे[3] सुब्ह + यही अन्दाज़[4] और यही अन्दाम[5]
बारे दो दिन कहाँ रहा ग़ायब + बन्दा आजिज़[6] है गर्दिशे[7]-ऐयाम[8]
उड़के जाता कहाँ कि तारों का + आसमाँ ने बिछा रखा था दाम[9]
मरहबा[10] ऐ ! सरूर[11]-ख़ासे ख़वास[12] + हब्बज़ा[13] ! ऐ निशाते[14] आमे अवाम[15]
उज्र[16] में तीन दिन न आने के + लेके आया है ईद का पैग़ाम[17]
उसको भूला न चाहिए कहना + सुब्ह जो जाय और आए शाम
एक मैं क्या कि सबने जान लिया + तेरा आग़ाज़[18] और तेरा अन्जाम[19]
राज़े-दिल[20] मुझ से क्यों छिपाता है + मुझको समझा है क्या कहीं नुम्माम[21]
मानता हूँ कि आज दुनिया में + एक ही है उमीदगाहे[22]-अनाम[23]
मैंने माना कि तू है हल्क़ा[24] बगोश +'ग़ालिब' उसका नहीं मगर[25] है ग़ुलाम ?
जानता हूँ कि जानता है तू + तब कहा है बतर्ज़[26] इस्तिफ़हाम[27]
मेह्रे[28]-ताबां को हो तो हो ऐ माह[29] + क़ुर्बे[30] हर रोज़ा बर सबीले[31] दवाम[32]
तुझको क्या पाया[33] रूशनासी[34] का + जुज़[35] ब तक़रीबे[36]-ईदे-माहे[37]-सियाम[38]
जानता हूँ कि उसके फ़ैज़[39] से तू + फिर बना चाहता है माहे तमाम[40]
माह[41] बन, माहताब[42] बन मैं कौन ? + मुझको क्या बाँट देगा तू इनआम
मेरा अपना जुदा मुआमला[43] है + और के लेन-देन से क्या काम

---

१. पतझड़, २. दूज का चाँद, ३. प्रातःकाल, ४. ढंग, ५. बदन, शरीर; ६. लाचार, ७. चक्र, ८. समय, ९. जाल, १०. शाबाश, मुबारक; ११. नशा, आनन्द; १२. ख़ास लोग, १३. प्रशंसा, मुबारक; १४. ख़ुशी, १५. सर्वसाधारण, १६. क्षमा-याचना, १७. सन्देश, १८. शुरू, १९. अन्त, २०. गुप्त बात, रहस्य; २१. चुग़लख़ोर, २२. आशा-स्थान, वह जिससे आशा की जाय; २३. लोग, जन-समूह; २४. ग़ुलाम, २५. शायद, २६. ढंग, २७. प्रश्नोक्ति, २८. चमकता हुआ सूर्य, २९. चन्द्रमा, ३०. सामीप्य, ३१. तरीक़ा, ३२. स्थायी रूप से, ३३. पद, स्थान; ३४. जान-पहचान, ३५. सिवाय, ३६. निकटता, अपनत्व; ३७. महीना, ३८. रम्ज़ान का महीना, जिसमें मुसलमान रोजा रखते हैं, ३९. कृपा, ४०. पूर्णिमा का चाँद, पूर्णेन्दु; ४१. चन्द्रमा, ४२. पूर्णचन्द्र, चाँदनी; ४३. व्यवहार।

है मुझे आरज़ूए[1] बख़्शिशे[2] ख़ास[3] + गर तुझे है उमीदे-रहमते[4]-आम
जो कि बख़्शेगा[5] तुझको फ़र्रे[6]-फ़रोग़[7] + क्या न देगा मुझे मए[8]-गुलफ़ाम
जब कि चौदह मनाज़िले[9] फ़लकी[10] + कर चुकी क़तअ़[11] तेरी तेज़िए[12]-गाम
तेरे परतव[13] से हों फ़रोग़[14]-पज़ीर + कूय[15], मश्कूय[16], सेह्न[17] वो मन्ज़र[18] वो बाम[19]
देखना मेरे हाथ में लबरेज़[20] + अपनी सूरत का एक बिलौरीं[21] जाम[22]

यहाँ 'ग़ालिब' ने बिल्कुल नया रास्ता निकाला है। भाषा में क्लिष्टता नहीं, प्रवाह और ओज है। लेकिन वह ठाट-बाट नहीं, वह तड़क-भड़क नहीं, वह उदात्त स्वर नहीं, जिसे क़सीदे का आवश्यक अंग समझा जाता है। 'ग़ालिब' अपरिचित, क्लिष्ट, भद्दी भाषा में शेर नहीं लिखते। वह तो बातें करते हैं; भाषा साफ़-सुथरी है, शब्दों के उच्चारण का ढंग वही है, जो साधारण बात-चीत में प्रयुक्त होता है। समान रूप से फैला हुआ बुलन्द स्वर नहीं है, उनका स्वर ऊँचा होता है, फिर धीमा हो जाता है; और कभी भी वार्तालाप की सीमाओं से आगे नहीं बढ़ता। आम क़सीदों की उदात्तता और एकरसता यहाँ बिल्कुल नहीं—

उठ गया बहमन वो दै का चमनिस्तां से अमल
तेग़े उर्दी ने किया मुल्के ख़िज़ां मुस्तासल

एक ओर यह रंग है, और साधारणतः यही रंग सर्वव्यापी है; और दूसरी ओर यह सादगी है :

हाँ, महे-नौ, सुनें हम उसका नाम
जिसको तू झुकके कर रहा है सलाम

यहाँ वातावरण दूसरा है, नया, स्वाभाविक है; और इसी वजह से इसमें एक ताज़गी है, जानदारी है, एक ड्रामाई शान है, जो मुश्किल से मिलती है। कहीं लहजा बोलचाल का है : "बारे दो दिन कहाँ रहा ग़ायब"। शब्दों के क्रम, स्वरोच्चारण की प्राकृतिक अकृत्रिमता से यही जान पड़ता है कि कोई बातें कर रहा है और फिर कथोपकथन की शान पैदा हो जाती है : "बन्दा आजिज़ है गर्दिशे-ऐयाम"। हाँ, तो कहीं आवाज़ बोलचाल की सतह पर है तो कहीं कुछ ऊँची हो जाती है :

मरहबा ! ऐ सरूरे ख़ासे-ख़वास
हब्बज़ा ऐ निशाते आमे अवाम

दूज का चाँद दिखाई पड़ने पर साधु-साधु कहा जाता है और खुशी में उच्चारण का स्वर कुछ ऊँचा और तीव्र हो जाता है। और फिर कहीं पर उसमें तनाव आ जाता है। आवाज़ तीव्र

१. अभिलाषा, २. दान, ३. विशिष्ट, ४. कृपा, ५. देगा, ६. शान, शक्ति, वैभव; ७. चमक-दमक, प्रकाश; ८. लाल रंग की शराब, ९. मंज़िलें, स्थान; १०. आसमानी, आकाश पर की; ११. काट चुका, तय कर चुका; १२. क़दम, चाल; १३. झलक, १४. प्रकाश ग्रहण करनेवाले, देदीप्यमान; १५. गली, १६. महल, बालारेज़, बाग़; १७. खुली जगह, आँगन; १८. देखने की जगह, दृश्य; १९. कोठा, २०. छलकता हुआ, २१. शीशे का, २२. प्याला।

होने के बदले कुछ खिची-खिची हो जाती है, तेवर बदल जाते हैं :

माह बन, माहताब बन, मैं कौन? + मुझको क्या बांट देगा तू इनआम

यह तो कुछ मिसालें थीं। सभी जगह इसी तरह का उलट-पलट, चढ़ाव-उतार होता रहता है, जिससे काफ़ी जटिलता, सुखकर जटिलता, पैदा हो जाती है। वज़न (छन्द की मात्रा) तो बदलता नहीं, लेकिन स्वरोच्चारण और मात्रा के चढ़ाव-उतार से लय का रूप बदलता रहता है। उदाहरण-स्वरूप अन्तिम छह शेरों को लीजिए। पहले शेर में बातचीत का रंग है :

मेरा अपना जुदा मुआमला है + और के लेन-देन से क्या काम

यह गद्य की सतह से बहुत समीप है, लेकिन इसके बादवाले दो शेरों में यह रंग बदल जाता है। इनका स्तर गद्य की सतह से ऊँचा हो जाता है। इन शेरों में एक ज़ोर है, एक उदात्तता है, जो पहले शेर में नहीं :

है मुझे आरज़ूए बख़्शिशे-ख़ास + गर तुझे है उमीदे रहमते आम
जो कि बख़्शेगा तुझको फ़र्रे फ़रोग़ + क्या न देगा मुझे मये-गुल्फ़ाम

इन शेरों के दोनों मिसरे जँचे-तुले हैं, बराबर के हैं। ऐसा जान पड़ता है कि दोनों मिसरों में शब्द नाप-तोलकर रखे गये हैं—"आरज़ूए बख़्शिशे ख़ास" एक पल्ले में तो "उमीद रहमते आम" दूसरे पल्ले में। फिर 'ख़ास' व 'आम' का विरोधाभास। इसी प्रकार 'फ़र्रे-फ़रोग़' के मुक़ाबिले में 'मए-गुल्फ़ाम', 'बख़्शेगा'—'देगा', 'तुझको-मुझे'। इसके बाद फिर रंग बदलता है और शेष तीन शेर एक लम्बे वाक्य में शृंखलाबद्ध हैं, और इन तीनों शेरों को एक साथ पढ़ना होता है, मानों एक ही सांस में :

जबकि चौदह मनाज़िले-फ़लकी + कर चुकी क़तअ तेरी तेज़िए-गाम
तेरे परतव से हों फ़रोग़-पज़ीर + कू व मश्कूय व सेह्न वो मन्ज़र वो बाम
देखना मेरे हाथ में लबरेज़ + अपनी सूरत का एक बिलोरीं जाम

इसका परिणाम यह होता है कि एक तरफ़ तो दूज के चांद की द्रुतगामिता का नक़्शा नज़रों में घूमने लगता है और ऐसा जान पड़ता है कि दूज का चांद आसमान की चौदह मंज़िलों को शीघ्रातिशीघ्र तय कर रहा है और तय कर लेता है; और फिर इस शब्द-योजना की वजह से अन्तिम शेर एक ख़ास ज़ोर, असर और ड्रामाई शान लिये हुए काव्याकाश पर उभरता है, मानों पूर्णिमा का चांद आसमान पर चमक रहा है।

देखना मेरे हाथ में लबरेज़
अपनी सूरत का एक बिलोरीं जाम

और इन सब खूबियों के साथ खुले हुए वायुमण्डल में बिखरी हुई चांदनी का समां भी दिखाई देता है :

तेरे परतौ से हों फ़रोग़-पज़ीर
कू व मश्कू व सेह्न वो मंज़र वो बाम

सारांश यह कि इस प्रकार की बहुत-सी खूबियाँ हैं। मुश्किल यह है कि लिखने में इस सूक्ष्म-सुकुमार सौन्दर्य को स्पष्ट करना बहुत कठिन है; बातचीत में इस सुन्दरता का सफल विवेचन हो सकता है। यह मिसाल अपने रंग की एक ही चीज है। लेकिन चूँकि क़सीदे की आम डगर से हटकर है, इसलिए इसकी ओर कुछ ध्यान न दिया गया, और किसी ने इसके महत्त्व को न समझा, और लोग इस नई राह पर अग्रसर न हुए। क़सीदे की रस्मी खूबियाँ कुछ इस तरह जम गई थीं कि किसी नये रास्ते की ओर ध्यान जाता भी न था। मैंने 'मोमिन', 'मीर' और 'ग़ालिब' से जो मिसालें प्रस्तुत की हैं, वे सब-की-सब आम डगर से हटकर हैं; और इसीलिए उन्हें सराहा नहीं गया। किसी ने यह न सोचा कि यहाँ क़सीदे के गुण न सही, कविता की खूबियाँ तो हैं, जिनसे क़सीदे प्रायः ख़ाली होते हैं। इन्हें तो बस यह समझकर छोड़ दिया गया कि इन्हें क़सीदा कहना भूल है। इसी से विदित होता है कि लोगों का मन विडम्बना का इतना अभ्यस्त हो गया था कि नई चीजें सामने आती थीं तो भी उनकी ओर आँखें न उठती थीं।

हाँ, तो प्रस्तावना के बाद क़सीदे में अभिप्राय-कथन की ओर उन्मुख हुआ जाता है। इस प्रयत्न में संक्षेप से काम लिया जाता है। इसका कोई ख़ास महत्त्व भी नहीं है। हाँ, दिलचस्पी इतनी ही है कि कवि सुन्दरता एवं पटुता के साथ किसी प्रेम-सम्बन्धी विषय का वर्णन या किसी दृश्य का चित्रण करने के बाद प्रशंसा आरम्भ करता है, और यह गुणानुवाद ही क़सीदे का असली और सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। इसी भाग में कवि स्तुति-पात्र की प्रशंसा में अपनी सारी शक्ति ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाने में लगा देता है :

तुझ से ममनूँ[१] न फ़क़त[२] रूए[३]-ज़मीं पर हर एक
बारे[४] एहसान[५] से तेरे है दुता[६] पुश्ते[७] फ़लक[८]
हो गुहर[९]बार तुझ आगे जो सहाबे[१०] नैसाँ[११]
बर्क़[१२] होकर मुतबस्सिम[१३] उसे मारे चश्मक[१४]
आगे तुझ बहरे[१५]-करम[१६] के सदफ़[१७]-पुर[१८]-गौहर[१९]
मुट्ठी उसकी है, जिसे निकले बशिद्दत[२०] चेंचक
चल सके है न किसी अम्र[२१] में तद्बीरे[२२]-हकीम
मेह्र[२३] से राय[२४] के तेरे व: न लेता दस्तक[२५]
हिल्म[२६] तेरे के जो हम-वज़्न[२७] फ़लक[२८] से कुछ शै[२९]
डाल देवे ज़[३०] रहे सेह्व[३१] वो ख़ता कोई मलक[३२]
बार[३३] तुझ हिल्म में है यह कि तेरे वक्ते ख़िराम[३४]

---

१. कृतज्ञ, २. केवल, ३ धरती की सतह, ४. बोझ, ५. कृतज्ञता, ६ झुकी हुई, ७. पीठ, ८. आसमान, ९. मोती बरसानेवाला. १०. मेघ, बदली; ११. स्वाती-नक्षत्र, १२. बिजली, १३. मुसकाता हुआ, १४. अवहेलना-सूचक कनखी, १५. समुद्र, १६. दानशीलता, १७, सीप, १८. भरा हुआ, १९. मोती, २०. ज़ोर से, २१. बात, २२. ईश्वर का विधान, २३. सूर्य, कृपा; २४. विचार, २५. स्वीकृति, परवाना; २६. सहनशीलता, २७. बराबर, २८. आसमान, २९. चीज़, ३०. तौर पर, ३१. भूल, ३२. फ़रिश्ता, ३३ बोझ, भार; ३४. लचककर चलना।

होवे ज़र्रा[1] भी अगर मरकज़े[2]ख़ाकी को धमक
सदमा[3] ऐसा कमरे गावे-ज़मीं[4] को पहुंचे
शाख़[5] हरचन्द[6] वः खिचवाए तो निकले न कसक
तुझको ललकार के मैदां में सफ़े[7] मरदां[8] के
सामने आए तेरे कौन है ऐसा मरदक[9]
वह जवां तू है कि आगे से तेरे रुस्तम भी
गाव सर मार बग़ल जाए दबे पांव खिसक
और ठहरे भी कोई आन[10] तो हक़[11] ने दी है
दस्त[12] वो बाज़ू[13] में तेरे क़ूवते[14] क़ुदरत[15] यां तक
उसके मरकब[16] से मिलाकर वोहीं मरकब अपना
हाथ पटके में दे और ज़ीन के ख़ाने से उचक
मोर जब ज़ोर से दे चर्ख़[17] ज़मीं पर तो उसे
कमरे-दायरए[18]-ख़ाक में आवे यः लचक
कोह[19] पर एक उछलकर जो ज़मीं पर बैठे
तोड़कर रूए-समा[20] चूर करे पुश्ते समक[21]

स्तुति-पात्र की दानशीलता, जिसके भार से धरती का चेहरा और आसमान की पीठ हैरान है, जिसकी धन-सम्पत्ति की बहुलता से स्वाती का बादल लज्जित है, जिसकी सहनशीलता के बोझ से धरती के केन्द्र को धमक और शेषनाग को आघात पहुँचे, जिसका अपूर्व साहस, जिसकी भुजाओं में ऐसी शक्ति है कि एक हल्के-से झटके में धरती के वृत्त की कमर में लचक पैदा हो जाय और पहाड़ तथा घाटियाँ अपनी जगहों से उछल पड़ें, अत्युक्ति की चरमसीमा है। इसी अतिशयोक्ति का परिणाम है कि कोई समझदार व्यक्ति इस प्रशंसा को सही नहीं मान सकता और उसे महज़ रस्मी चोज़ ख़याल करके केवल कवि की मौलिकता और उसके परिश्रम पर नज़र डालता है :

स्तुति किसी राजा-महाराजा, मन्त्री, सचिव की हो या धार्मिक महापुरुषों की, उसमें एक ही पद्धति का अनुसरण किया जाता है। यदि किसी महापुरुष की प्रशंसा होती है तो सांसारिक लाभ तो नहीं, धार्मिक लाभ अवश्य उद्दिष्ट होता है। और, इसमें किसी निजी धार्मिक अनुभव से कोई सरोकार नहीं होता। वही बातें कही जाती हैं, जो रीत्यनुसार उचित तथा उपयुक्त समझी जाती हैं। जो कुछ भी हो, कवि-सुलभ मानक की दृष्टि से दोनों प्रकार के क़सीदों की एक ही दशा होती है; यानी यह कि वे प्रमापक पर पूरे नहीं उतरते।

---

१. तनिक-भर, २. केन्द्र, ३. आघात, चोट; ४. वह गाय, जिसके सींग पर धरती टिकी है, ५. सींग, ६. जितना भी, ७. पंक्ति, ८. वीरों, ६. तुच्छ व्यक्ति, १०. क्षण, समय; ११. ईश्वर, १२. हाथ, १३. मोढ़ा, १४. शक्ति, १५ बल, योग्यता; १६. सवारी, घोड़ा; १७. चक्कर, घुमाव; १८ वृत्त, १९. पहाड़, २०. आसमान का चेहरा, २१. वह मछली, जिस पर धरती टिकी हुई है (ऐसी कहावत है)।

अब रहा अन्तिम भाग। यह आशीर्वादात्मक होता है, और इसमें प्रायः संक्षेप से काम लिया जाता है। इसका महत्त्व भी कम होता है :

करता है यों सना[१] को दुआ[२] पर अब इख़्तेसार[३]
यारब[४] दुआए-'ज़ौक़' हो मक़बूल[५] वो मुस्त[६] जाब
ता ईद[७] वो ईदगाह[८] हो और ख़ुत्बा[९] वो निमाज़
ता ख़ुत्बा वो निमाज़ से मन्ज़ूर[१०] हो सवाब[११]
हर साल तुझको ईद हो फ़र्रुख़[१२] व इज़्ज़[१३] वो जाह[१४]
नाकाम[१५] हों उदू[१६] तेरे और दोस्त कामयाब[१७]

यह भी महज़ रस्मी है। इसमें प्रचलित विचारों को ही लिखा जाता है। इसमें विविधता की अधिक गुंजाइश भी नहीं, और न तो विविधता पैदा करने के लिए कुछ विशेष प्रयास ही किया जाता है।

स्पष्ट है कि क़सीदे में दो हिस्से महत्त्वपूर्ण हैं—प्रस्तावना और प्रशंसा। जैसाकि मैंने कहा है, प्रशंसा में ऐसी अनुचित अत्युक्ति होती है कि उसमें काव्य का होना ही असम्भव है। 'हाली' ने बहुत ठीक कहा है :

"मदह (प्रशंसा) में प्रायः एक नाम के सिवा किसी ऐसी विशेषता का ज़िक्र नहीं होता, जो प्रशंसित व्यक्ति के व्यक्तित्व से विशिष्ट लगाव रखती हो, बल्कि ऐसे सम्यक् शब्दों में प्रशंसा की जाती है कि यदि प्रशंसा करनेवाला इस अभियोग में पकड़कर न्यायालय में लाया जाय कि तूने अमुक व्यक्ति की प्रशंसा क्यों की, तो क़सीदे-भर में कोई ऐसा शब्द न मिले, जिससे उसका जुर्म साबित हो सके। प्रशंसा में अधिकतर वही साधारण ढंग का स्तवन होता है जैसा प्राचीन कविगण कहते चले आये हैं। और, प्रत्येक सद्गुण को इतना बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है कि वास्तविक रूप में क़सीदे में वर्णित बातों के योग्य कोई मनुष्य तो हो ही नहीं सकता। प्रशंसित व्यक्ति में जो सच्ची ख़ूबियाँ होती हैं, उनका लेश-मात्र भी वर्णन नहीं होता, बल्कि उनके बदले ऐसी असम्भव बातें कही जाती हैं, जो किसी जीवित प्राणी पर सच्ची नहीं उतर सकतीं। प्रायः ऐसा होता है कि जिस व्यक्ति की प्रशंसा की जाती है उसमें ऐसी ख़ूबियाँ बताई जाती हैं, जिनके विपर्याय उसके व्यक्तित्व में मौजूद हैं। उदाहरण-स्वरूप एक अनपढ़ को विद्वान्, एक अत्याचारी को न्यायपरायण, एक मूर्ख व अनभिज्ञ व्यक्ति को बुद्धिमान् तथा मेधावी, एक लाचार पंगु को बलशाली, ओजस्वी कहना, और एक ऐसे शख़्स को, जिसकी रान से कभी घोड़े की पीठ छू भी नहीं गई हो, घुड़सवारी में दक्ष और वीर-श्रेष्ठ घोषित करना। कोई ऐसी बात नहीं कही जाती

---

१. प्रशंसा, २. आशीर्वाद, ३. संक्षेप, ४. ऐ ख़ुदा, हे भगवन्, ५. स्वीकृत, ६. माना हुआ, ७. रम्ज़ान महीना ख़त्म होने पर मनाया जानेवाला पर्व, ८. वह स्थान, जहाँ ईद की निमाज़ पढ़ी जाती है, ९. निमाज़ शुरू होने के पहले दिया जानेवाला धार्मिक प्रवचन, १०. उद्दिष्ट, ११. पुण्य, १२. मुबारक, १३. बड़ाई, १४. शान-शौकत, १५. असफल, १६. शत्रु, १७. सफल।

जिसपर वह प्रशंशित व्यक्ति गर्व कर सके या जिससे लोगों के हृदय में उसके प्रति सम्मान और प्रेम का भाव पैदा हो, और उसके सद्‌गुण तथा उसके सहचारी स्मरणीय हो सकें।"

इस अत्युक्ति में भी फ़ारसी का अनुकरण किया गया है। यदि अरबी क़सीदों का अनुकरण किया गया होता तो ऐसा भद्दापन न होता। अरब-निवासी अतिरंजित तथा निरर्थक स्तवन से भागते थे। इस तरह की बातों को वे निन्दनीय समझते थे। वह किसी की प्रशंसा करते भी थे तो भेंट-पुरस्कार के लिए नहीं, बल्कि अपनी हार्दिक अनुभूतियों से बाध्य होकर करते थे। कहा जाता है, किसी रईस ने एक अरब से कहा कि मेरी प्रशंसा करो तो उसने उत्तर दिया कि पहले कुछ करो तो मैं कहूँ। अरबी क़सीदों में वही बात है, जो फ़ारसी और उर्दू क़सीदों में नहीं है। अर्थात् स्तवन होता है तो उसका, जो वास्तव में प्रशंसा के योग्य है, और बातें भी वही कही जाती हैं, जो वास्तविकता पर आधारित हैं। फ़ारसी के क़सीदों में अधिकतर ऐसे लोगों की स्तुतियाँ हैं, जो प्रशंसा के पात्र न थे, और यदि थे भी तो उनके सद्‌गुणों के वर्णन में अत्युक्ति की सारी शक्ति लगा दी गई।

क़सीदे में यदि सच्ची कविता की गुंजाइश थी तो भूमिका में थी। इसमें संसार-निरीक्षण, आन्तरिक अनुभूतियाँ, उच्च कोटि के नैतिक तथा दार्शनिक विषय—सभी चीज़ें समा सकती थीं। इस भाग में एक स्वतन्त्र व सम्पूर्ण कविता लिखी जा सकती थी। लेकिन उर्दू-कवियों ने यहाँ भी फ़ारसी का अनुसरण किया। प्रचलित विषयों के प्रयोग के साथ-साथ आवश्यकता से अधिक शब्दों की आलंकारिकता, क्लिष्ट कल्पना, और खयालबन्दी पर ज़ोर दिया गया, किसी विशिष्ट निजी अनुभव को पदबद्ध करने का कभी प्रयास नहीं किया गया, और पूर्णता की खोज की ओर भी ध्यान न गया। असल उद्देश्य दिल व दिमाग़ को आतंकित कर देना रहा। इसलिए प्रांजलता और अर्थ-गर्भता के प्रमापकों को सामने रखा। इस उद्देश्य में सफलता मिली, किन्तु काव्यगत सौन्दर्य हाथ न आया।

उर्दू के कवि अरबी के क़सीदों से कुछ नहीं सीखते हैं। एक 'सौदा' को लीजिए, वह 'खाक़ानी', 'उर्फ़ी', 'अनवरी' से प्रभावित होते हैं, उनके क़सीदों पर क़सीदे लिखते हैं। 'खाक़ानी' के मशहूर क़सीदे : "कि हिम्मतरा जनाशुईस्त बाज़ानू व पेशानी" पर नातिया क़सीदा लिखते हैं :

हुआ जब कुफ़्र[1] साबित है वः तमग़ाए[2]-मुसलमानी
न टूटी शेख से तस्बीहे[3] ज़ुन्नारे[4]-सुलेमानी[5]।

इनका दूसरा मशहूर क़सीदा :

उठ गया बहमन[6] वो दै[7] का चमनिस्ताँ[8] से अमल[9]
तेग़े उर्दी[10]ने किया मुल्के खिज़ाँ[11] मुस्तासल[12]।

'उर्फ़ी' के क़सीदे पर है और गुरेज़[13] के अवसर पर 'उर्फ़ी' का एक मिसरा ले लिया है :

---

१. नास्तिकता, २. पदक, ३. माला, ४. जनेऊ, ५. सुलेमान बादशाह से सम्बन्धित, ६. मध्य जाड़ा, जो जनवरी में पड़ता है; ७. दिसम्बर का महीना, ८. बाग़, ९. कार्य-कलाप, प्रभाव; १०. जनवरी का महीना, ११. पतझड़, १२. नष्ट किया हुआ, १३. पलायन, वह स्थान जहाँ से भूमिका के बाद प्रशंसा आरम्भ होती है।

[मैं कहाँ तक व्याख्या करूँ; क्योंकि 'उर्फ़ी' के कथनानुसार वायु की कृपा से भिनकल में चिनगारी सफ़ेद हो गई ।]

ता-कुजा[1] शरह[2] करूँ मैं कि बक़ौले[3] उर्फ़ी
अख़गर[4] अज़[5] फ़ैज़[6] हवा सब्ज़ शवद दर मिन्क़ल

इसी प्रकार 'अनवरी' के मशहूर क़सीदे :

गर[7] दिल वो दस्त बह्रवो काँ बाशद + दिल वो दस्ते ख़ुदायगाँ बाशद

[यदि हृदय और हाथ समुद्र एवं खान हों (यदि हृदय और हाथों की उपमा समुद्र तथा खानों से दी जाय) तो बादशाह का हाथ और हृदय ऐसे हाथ और हृदय हैं ।]

पर भी क़सीदा लिखा :

गर फ़लक अब यः मेहरबाँ होवे
जों तगर्ग[8] अब्र[9] दुर-फ़ेशाँ[10] होवे

एक क़सीदे में वह 'अनवरी', 'सादी' व 'ख़ाक़ानी' के समकक्ष होने पर गर्व करते हैं :

एक डंका है अब एक़लीमे[11]-सख़न[12] में उनका
रखते हैं ज़ेरे[13] फ़लक[14] तब्ल[15] वो अलम[16] चारों एक

सारांश यह कि फ़ारसी का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु अरबी कविता का असर बिलकुल नहीं । अरबी क़सीदों में आवेगों व अनुभूतियों की नवीनता व प्रफुल्लता अधिक है । इनमें प्रेम-सम्बन्धी विषय अधिकतर पाये जाते हैं । यही कारण है कि ये क़सीदे जज़्बात से भरे हुए हैं । छवि, सुन्दरता, रंगीनी, तरुणाई और लालित्य के कवि-सुलभ प्रभाव की मिसालें हर जगह मिलती हैं । तश्बीब[17] मानों ग़ज़ल है । जज़्बात अधिक स्वाभाविक तथा कविसुलभ हैं । फ़ारसी क़सीदों में भाव-मार्मिकता, शब्द-गौरव और कलाकारिता पर ध्यान अधिक रहता है, और उर्दू में यही चीज़ें खिंच आईं । इसलिए तश्बीब में भी जितनी अच्छी कविता सम्भव थी, न हो सकी । विचार और शैली कृत्रिम हैं, क्लिष्टता का आधिपत्य है :

शब[18] को मैं अपने सरे बिस्तरे ख़्वाबे[19]-राहत[20]
नश्शए-इल्म[21] में सरमस्ते[22]-ग़रूर वो नख़वत[23]
मज़े लेता था पड़ा इल्म[24] वो अमल[25] के अपने
था तसौवर[26] मेरा हर उम्र[27] में तस्दीक़[28]-सिफ़त
हो गया इल्म हुसूली[29] या हुज़ूरी[30] मुझको

---

१. कहाँ तक, २ व्याख्या, ३. कथनानुसार, ४. जलता हुआ कोयला, ५. से, ६. कृपा, ७. यदि दिल और हाथ समुद्र और खान हों तो ऐसे हृदय और हाथ हमारे मालिक ही के हैं; ८. ओला, ९. बादल, १०. मोती बिखेरनेवाला, ११. मुल्क, देश; १२. साहित्य, १३. नीचे, १४ आसमान, १५. डंका, नगाड़ा; १६. झण्डा, १७. प्रस्तावना, भूमिका; १८. रात को, १९-२०. सुखद निद्रा, २१. ज्ञान-मदान्धता, २२. गर्वोन्मत्त, २३. घमण्ड, २४. विद्या, २५. क्रियाशीलता, २६. विचार, भावना; २७. बात, विषय; २८. प्रामाणिक, २९. तर्क, अनुमान द्वारा प्राप्त होनेवाला, ३०. प्रत्यक्ष ।

था मेरा ज़ेह्न[१] न मोहताज हुसूले[२] सूरत
जो मसायल[३] नज़री[४] थे वः बदी[५] ही थे तमाम
अक़्ल को तजरुबा[६] की इतनी हुई थी कसरत[७]
कभी हिकमत थी मेरी क़ायदए[८] सर्फ़[९] में सर्फ़[१०]
कभी थी नह्व[११] में हर नह्व[१२] मुझे महवीअत[१३]
कभी मनातक़[१४] को तफ़ौवुक़[१५] थः मेरे नातक़ासे[१६]
फ़ौक़[१७] हिकमत हो यह फ़न[१८] गर्चे[१९] है तहते[२०] हिकमत[२१]
कभी करता था मजिस्ती[२२] प हवाशी[२३] तहरीर[२४]
कभी करता था इशारात[२५] वो शफ़ा[२६] की सेहत[२७]
कभी मश्शाइयों[२८] से करता था मैं पेशरवी[२९]
कभी ले जाता था अशराक़ियों[३०] पर मैं सबक़त[३१]
कभी मैं नफ़िए[३२]-हक़ायक़[३३] में था सूफ़िस्ताई[३४]
कभी मैं मोतज़ली[३५] बायसे[३६] रद्दे[३७]-रोयत[३८]
जो मुहन्दिस[३९] कभी मालूफ़[४०] व शक्लो[४१] वो मिक़्दार[४२]
जो मुहासिब[४३] कभी मसरूफ़[४४] व ज़र्ब[४५] वो क़िस्मत[४६]
ख़ानए[४७]-काबा से ख़ारिज[४८] कभी शक्ले[४९] दाख़िल[५०]
शक्ले ख़ारिज थी कभी दाख़िले-बैते[५१]-ग़ुरबत[५२]

क्लिष्टता ! क्लिष्टता !! क्लिष्टता !!!

(२) स्तुति एक ओर, तो निन्दा दूसरी ओर अपना रंग दिखाती है। हजो (निन्दा) साहित्य का एक स्वतन्त्र रूप है, लेकिन उर्दू में इसका स्थान अन्य साहित्यिक रूपों के बराबर नहीं। बहुत कम कवियों ने इसकी ओर ध्यान दिया, और उनमें से केवल 'सौदा' को सफलता प्राप्त हुई। किन्तु 'हजो' गाली नहीं; हजो नैतिकता की शिक्षा दे सकती है, और देती है। मैंने कहा है :

---

१. मेधाशक्ति, बुद्धि; २. प्राप्त, सुलभ; ३. समस्याएँ, ४. सैद्धान्तिक, ५. प्रत्यक्ष, ६. अनुभव, ७ अधिकता, ८. नियम, ९. शब्दबोध, १०. व्यय, ११. पदबोध, १२. प्रकार, ढंग; १३. तल्लीनता, १४. तर्कशास्त्र, १५. श्रेष्ठता, १६. वाणी, १७. ऊपर, श्रेष्ठ, १८. कला, १९. यद्यपि, २०. नीचे, अधीनस्थ, २१. दर्शन, २२. गणित, ज्योतिष; २३. भाष्य, २४. लिपिबद्ध, २५-२६. अलीसीना (Alicinna, रचित पुस्तकें; २७. शुद्धता, सत्यता; २८. ऐसे विद्वान् जो दूसरों के पास जाकर सीखते थे, २९. आगे बढ़ जाना, ३०. प्राचीन दार्शनिकों का एक सम्प्रदाय, ३१. आगे बढ़ जाना, ३२. खण्डन, ३३. सत्यसिद्धान्त, ३४. मिथ्या धर्म में विश्वास करनेवाला, ३५. मुसलमानों का एक धार्मिक सम्प्रदाय, ३६. कारण, ३७. खण्डन करना, ३८. साक्षात् भगवद्दर्शन का खण्डन, ३९. गणितज्ञ, ४०. प्रेमी, ४१. रूप, चित्र; ४२. मात्रा, ४३. हिसाब करनेवाला, ४४. कार्यरत, ४५. गुणा, ४६. भाग, ४७. काबे की मस्जिद, ४८. निष्कासित, निकाला हुआ; ४९. समान, सदृश; ५०. प्रवेश करनेवाला, प्रविष्ट; ५१. घर, ५२. यात्रा, पर्यटन।

"हजो लिखनेवाला बेढंगे, दोषयुक्त, बीभत्स दृश्यों को देखकर अधीर हो जाता है। अन्याय, क्रूरता, दम्भ की मिसालें देखकर उसके हृदय में घृणा, क्रोध, तुच्छता और इसी प्रकार के जज़्बात उभरने लगते हैं। उसकी निन्दा-विषयक कविताएँ इन्हीं जज़्बात की अभिव्यक्ति करती हैं। वह भी कलाकार है। इसलिए वह अपने जज़्बात महज़ सीधे-सादे ढंग से बयान नहीं करता। वह अपने आवेगों से, उनकी प्रचण्डता के बावजूद, पृथक्ता ग्रहण करता है, और उनसे अलग-अलग होकर, उन्हें अपने काबू में लाकर, उनकी कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति करता है। और, इस कलात्मक अभिव्यंजना के कारण आवेगों की प्रखरता में कमी नहीं, वृद्धि हो जाती है। हजो लिखनेवाले व्यक्ति में उच्च कोटि की नैतिकता होती है, और वह अपने ऊँचे स्थान से मानवीय कमजोरियों, खामियों तथा धूर्त्तता को अपनी व्यंग्योक्तियों का लक्ष्य बनाता है। लेकिन हजो लिखनेवाला मनुष्य है और मानवीय सीमाओं में घिरा हुआ है। इसलिए हमेशा नहीं तो अक्सर उसकी व्यंग्यपूर्ण कविताओं का आरम्भ किसी निजी जज़्बे से होता है। लेकिन यदि वह अपनी कला के महत्त्व और उसकी आवश्यकताओं से अवगत है तो अपने व्यक्तिगत जज़्बे से पृथक्ता ग्रहण करता है और उसे (हजो को) एक प्रकार की व्यापकता प्रदान करता है। जो कुछ भी हो, हजो-लेखक अपने समस्त आवेगों पर अधिकार रखता है; वह हँसता भी है और रोता भी है। वह सहानुभूति, दया, उदारता, न्याय के जज़्बात को उभारता है और साथ-साथ द्वेष, क्रोध और घृणा के जज़्बात को भी भड़काता है........

"हजो की दो सूरतें हो सकती हैं : पद्य और गद्य। साधारणतः यह समझा जाता है कि इन दो सूरतों में कोई मूलभूत भेद नहीं; और जो अन्तर है भी, उसका एक शब्द में बयान किया जा सकता है; अर्थात् 'वजन'[1] (छन्द) यदि वज़न न हो तो निन्दास्पद कविता और गद्य में भेद करना सम्भव नहीं। अर्थात् हजो के क्षेत्र में कवि और गद्य-लेखक दोनों एक उद्देश्य लेकर अग्रसर होते हैं। दोनों के रास्ते और मंज़िलें एक हैं। भेद केवल यह है कि एक वज़न (छन्द) के घोड़े पर सवार है और दूसरा पैदल जा रहा है। यह विचारधारा ग़लतफ़हमी पर आधारित है। पद्य और गद्य में महत्त्वपूर्ण तथा सैद्धान्तिक अन्तर है। वज़न शेर में होता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं............शेर हमारे अनुभवों, सुन्दर और मूल्यवान् अनुभवों, की सुन्दर, सम्पूर्ण और छन्दोबद्ध अभिव्यंजना है। गद्य में हमारे विचार साफ, संक्षिप्त रूप में बिना घटाये-बढ़ाये प्रकट किये जाते हैं। दोनों के रास्ते अलग-अलग हैं। दोनों के रास्ते विभिन्न हैं और मंज़िलें पृथक्-पृथक्। जिस प्रकार गज़ल या नज़्म और निबन्ध में रूपगत तथा आधारभूत अन्तर है, ठीक उसी प्रकार व्यंग्यात्मक पद्य और व्यंग्यात्मक गद्य में भी रूपगत एवं आधारभूत भेद है।

"इस जगह पर एक दूसरी ग़लतफ़हमी को भी दूर कर देना आवश्यक है। प्रायः यह समझा जाता है कि निन्दात्मक कविता में काव्य, उच्च कोटि के काव्य, का अस्तित्व सम्भव नहीं। साधारण बोलचाल में कविता जज़्बात की अभिव्यंजना का दूसरा नाम है। निन्दात्मक कविता में किसी शख़्स के दुर्गुणों या किसी मानवीय त्रुटि का व्यंग्यपूर्ण ढंग से उद्घाटन होता है। इसलिए

१. भार, बोझ, संतुलित मात्रा, छन्द।

इन कविताओं में प्रत्यक्ष रूप से जज़्बात का (और जज़्बात का मतलब विशेष प्रकार के जज़्बात से होता है) अस्तित्व नहीं होता : इस परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार जज़्बात केवल वही हैं, जिनसे ग़ज़लें भरी-पड़ी हैं। उन्हीं अनुभूतियों, विशिष्ट तथा सीमित अनभूतियों को, काव्य का वाहक समझा जाता है, जो सौन्दर्य तथा प्रेम के सम्बन्ध में होते हैं, जो इस संसार की निस्सारता, मौत, या अधिक-से-अधिक स्वदेश-प्रेम, स्वतन्त्रता की लगन से सरोकार रखते हैं। लेकिन यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होगा कि निन्दात्मक कविता जज़्बात के बिना सम्भव ही नहीं। हजो लिखनेवाला कवि अन्याय, निर्दयता, अत्याचार, और इसी प्रकार की अन्य मानवीय त्रुटियों को देखकर प्रभावित होता है; और इसी निरीक्षण से प्रभावित होने पर उसकी अन्तरात्मा में घृणा, क्रोध, हिक़ारत का जज़्बा जोश में आता है। इन्हीं जज़्बात की अभिव्यंजना वह अपनी कविता में करता है। यदि प्रेमावेग एक प्रबल शक्ति है तो घृणा का जज़्बात भी एक शक्तिशाली बल है; यदि कोई सुन्दर प्राकृतिक दृश्य हमारी काव्याभिरुचि को उत्तेजित करता है तो कोई बीभत्स मानवीय दृश्य हमारी क्रोधानुभूति को भड़काता है। अगर माशूक़ की शारीरिक सुषमा की प्रशंसा में हम वाग्विलास कर सकते हैं तो किसी शख़्स के निबन्ध आचरण का घृणायुक्त उद्घाटन भी कर सकते हैं। इससे स्पष्टतया विदित होता है कि निन्दात्मक कविता में भी जज़्बात की अभिव्यक्ति होती है और शेर के पैमाने में हर प्रकार के जज़्बात समा सकते हैं। केवल यही नहीं, जिस तरह ग़ज़ल के शेरों या किसी रूमानी नज़्म में प्रबल आवेग वर्त्तमान हो सकते हैं उसी तरह निन्दात्मक कविता में भी जज़्बात की प्रचण्डता हो सकती है; और अगर किसी शेर या नज़्म में उच्च कोटि की कविता हो सकती है तो फिर निन्दात्मक कविता में भी उच्च कोटि के काव्य का होना सम्भव है।

"रशीद अहमद साहेब लिखते हैं: 'सर्वोत्तम व्यंग्य का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि वह व्यक्तिगत शत्रुता तथा पक्षपात से विमुक्त और बुद्धि एवं चिन्तन की निर्लिप्त क्षुब्धता एवं प्रफुल्लता का परिणाम हो। इस प्रमाणक पर 'सौदा' की लिखी हुई हज्वें सर्वांग पूरी नहीं उतरतीं।' यह बात सही नहीं। हजो लिखनेवाला कवि यदि हमेशा नहीं तो अक्सर तथा अधिकांश किसी प्रकार के निजी शत्रु-भाव, द्वेष तथा पक्षपात से प्रभावित होकर निन्दा करने के लिए उद्यत होता है। इसलिए निन्दासूचक कविताओं में व्यक्तिगत तत्त्व का होना अनिवार्य है; सैद्धान्तिक आवश्यकता यह है कि कवि अपने निजी आवेग को व्यापकता प्रदान कर सके। अर्थात् वह अपने व्यक्तित्व को अलहदा करके अपने क्रोध एवं घृणायुक्त हृदयावेग को आम मानवीय त्रुटियों के विरुद्ध भड़का सके। उदाहरण-स्वरूप मोहन, सोहन, उद्धव यानी किसी व्यक्ति या समाज ने कवि के साथ अन्याय किया। इस अन्याय के कारण उसके दिल में ग़म वो ग़ुस्से ने उथल-पुथल मचाई। एक सफल हजो-लेखक कवि अपने जज़्बात की हलचल को क़ाबू में लाता है, और उस घटना-विशेष से दृष्टि हटाकर अन्याय, सार्वभौमिक अन्याय, को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है। बुद्धि और चिन्तन की निर्लिप्तता के नमूने कम मिलते हैं। कवि मनुष्य है और उसके जज़्बात निजी होते हैं: अधिक-से-अधिक वह अपने जज़्बात को व्यापक बना सकता है। लेकिन जबतक वह फरिश्ता या भगवान् न हो जाय

उस समय तक वह बुद्धि और चिन्तन से निर्लिप्त नहीं हो सकता। हजो लिखनेवाला कवि एक क्रुद्ध मानव है और उसका रोष निर्लिप्त नहीं, कलुषित होता है। सम्भव है कि इस रोष का कारण स्पष्ट रूप से दिखाई न पड़े और वह उसके अवचेतन की गहराइयों में छिपा हुआ हो। इसलिए सर्वोत्कृष्ट व्यंग्य की बुनियादी शर्त यह नहीं कि वह निजी वैमनस्य एवं पक्षपात से विमुक्त हो। सर्वोत्कृष्ट व्यंग्य की बुनियादी शर्त यह है कि व्यक्तिगत आवेग महज़ निजी न रहे, बल्कि व्यापक हो जाय। यदि 'सौदा' की हज्वें दोषयुक्त हैं तो इसका कारण यह है कि वह अपनी अनुभूतियों को काबू में नहीं लाते, उनसे पृथक्ता ग्रहण नहीं करते, और उन्हें कल्पना की ज्वाला में तपाकर अपनी निजी गन्दगियों से पाक नहीं करते :"

अस्तु, वही कवि उच्च कोटि की हजो लिख सकता है, जिसकी नैतिकता का प्रमाणक ऊँचा हो, जो प्रत्येक मानवीय क्रिया को बुद्धि और सत्य की तुला पर तौले, जिसका हृदय सद्भावनाओं से परिपूर्ण हो, जो अत्याचार, निर्दयता, अपकार, मूर्खता, आन्तरिक तथा बहिर्गत खोट के देखने से प्रभावित होकर उनके निराकरण के लिए कमर कसकर खड़ा हो जाय, जिसमें घृणा, क्रोध और तुच्छता के जज़्बात मौजूद हों, जो व्यंग्य तथा हास्य पर प्रभुत्व रखता हो, जिसका हृदय निर्भीक तथा निर्द्वन्द्व हो, जिसे किसी पुरस्कार का लालच अथवा परिशोध का भय न हो और जो उच्च कोटि का कलाकार हो।

'सौदा' को न किसी इनाम का लालच था, न इन्तिक़ाम का डर। उनमें बहुत-सी ऐसी विशेषताएँ मौजूद थीं, जो एक उच्च कोटि के हजो-लेखक के लिए आवश्यक हैं। वह सहृदय तथा प्रफुल्ल चित्तवाले व्यक्ति थे। 'आजाद' के कथनानुसार उनके हृदय का कमल सदा खिला रहता था। प्रकृति ने उन्हें हास्य और व्यंग्य दोनों की क्षमता प्रदान की थी—ऐसा हास्य, जिससे हठात् हँसी आ जाय, ऐसा व्यंग्य जो अपनी काट और तेजी के कारण दिल में उतर जाय। वे स्वयं हँसते थे और दूसरों को हँसाते थे, लेकिन इस जिन्दादिली के बावजूद जब वे रुष्ट होते तो उनके रोष का अन्त न था। उनके रोष से उनके समकालीन परिचित थे और इसलिए भयभीत रहते थे, कारण कि उनके तरकश में व्यंग्य के हजारों तीर थे, जिनका हृदय-भेदन निराश्रय था। लोग उनसे भयभीत रहते थे, लेकिन वह किसीसे न डरते। उनकी कल्पना द्रुतगामी और ऊँची उड़नेवाली थी। वह क्षणमात्र में रंग-बिरंगी तस्वीरें तैयार कर सकते थे, एक-से-एक रंगीन तथा हास्यास्पद।

'सौदा' ने प्रायः खास-खास लोगों की हज्वें लिखी हैं। 'मीर ज़ाहिक', 'फिदवी', 'मौलवी नुदरत', 'मीर तक़ी' 'मीर', 'मौलवी साजिद', 'हकीम ग़ौस', 'मिरजा फ़ैज़', 'मिया फ़ौक़ी'—सब उनके तीरों का लक्ष्य बने। इन सब नज़्मों में उनका निजी भाव बहुत प्रत्यक्ष है, और फिर अत्युक्ति की भी प्रचुरता है। 'सौदा' की हज्वों में भी उतनी ही अत्युक्ति होती है जितनी उनके क़सीदों में होती है, और वह अक्सर एक ही बात को कई बार भिन्न-भिन्न रूपों में दुहराते हैं। "मसनवी दर-हज्वे-मीर ज़ाहिक" में बस एक बात है, यानी 'मीर ज़ाहिक' की लोलुपता। इसी का नक्शा खींचा गया है। आश्चर्य इस बात पर होता है कि 'सौदा' ने किस तरह एक ही बात को विभिन्न रूपों से बयान किया है। लेकिन, विविधता के बावजूद पुनरावृत्ति स्पष्ट है, जिसके कारण मन

कुछ क्षुब्ध हो जाता है। फिर भी कहीं-कहीं पर वर्णन-शैली बड़ी ही आनन्दप्रद है। मानों शब्दों के द्वारा उन्होंने जीती-जागती तस्वीरें खींच दी हैं। 'मीर ज़ाहिक' को किसी ने भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। एक दिलचस्प घटना के बाद, जिसको दुहराना आवश्यक नहीं, उन्होंने पूछा : बारे क्या-क्या कहो तो पकवाया। उनके ने कहा : क़लिया, पुलाव, बिरियानी। यह सुनते ही 'मीर ज़ाहिक' पर अजब असर हुआ :

यह सुख़न[1] सुनके मिस्ले[2] तीरे-शहाब[3] + दौड़ा मतबख़[4] की सिम्त[5] हो बेताब
जाके मतबख़ प यह पड़ा इस तरह + मैं बयाँ उसका अब करूँ किस तरह
लाठियाँ ले ले हाथ पीर-वो जवाँ[6] + करते ही रह गये सभी हाँ-हाँ
गोश्त, चावल, मसालः तरकारी + सब समेट उसने एक ही बारी
मुतलक़[8] उसने न मानी डाँट-डपट + रखके कल्ले में कर गया सब चट
खर्च कर यह सलूक[9] दोस्त के साथ + माँगे फिर यह दुआ उठाके हाथ
यारब[10] इतनी तू अब मेरी सुन ले + मुझको एक आसमाँ-सा कल्ला दे
वह भी यों ही चला करे दिन-रात + जो वहन[11] पहुँचे वो जमाद[12]वो नबात[13]
चाटकर उसको अपना पेट भरूँ + तुफ़[14] न जाकर किसी के दर[15] प करूँ

'मीर ज़ाहिक' की अधीरता, उनका उल्कापात की तरह रसोई-घर की ओर दौड़ना, लोगों का हाँ-हाँ करते रह जाना, 'मीर ज़ाहिक' का सब गोश्त, चावल, मसाला, तरकारी चट कर जाना, उसके बाद भगवान् से आसमान-सा कल्ला माँगना—यह सब जीती-जागती तस्वीरें हैं। पहले हिस्से में एक रवानी है, जिससे 'मीर ज़ाहिक' की अधीरता और उतावलेपन का पता चलता है। रसना-परितृप्ति के बाद रवानी रुक जाती है और शान्तिपूर्वक हाथ उठाकर प्रार्थना की जाती है। जो ख़ूबी इन शेरों में है वह अत्युक्ति की अधिकता के कारण नष्ट हो जाती है : अनुचित अत्युक्ति के साथ-साथ 'सौदा' कभी-कभी बेहूदा गालियों का भी प्रयोग करते हैं जो सही साहित्यिक अभिरुचिवालों को अप्रिय जान पड़ती हैं, तरजीअबन्द दर-हज्वे 'मीर ज़ाहिक' का पहला बन्द अथवा 'हज्वे-फ़िदवी' का यह बन्द "इस ख़ामी का प्रत्यक्ष प्रमाण है।"

सुन बे उल्लू पहुँच तू बंगाले + मादा[16]-सग आपको तू बनवा ले
मेरे तईं गो[17]है बस्के[18]ज़ौक़[19]बसग[20] + सग बहुत ख़ूब मैंने हैं पाले
इतने शागिर्द ढूँढता है अबस[21] + सग से एक आके तू गिरह खा ले
ऐसे शागिर्दों से कई बेहतर + निकल आवेंगे भूँकनेवाले
सूरतों में पड़ेंगे[22] रंगारंग[23] + लाल, तूसी, सफ़ेद और काले
चाहे उल्लू ही तू रहे बनकर + ख़ल्क़[24] शागिर्द अपने कर डाले

१. बात, २. सदृश, ३. उल्कापात, ४. रसोईघर, ५. ओर, ६. अधीर, ७. बूढ़ा. ८. तनिक भी, ९. बर्ताव, १०. हे भगवान्, ११. साथ, प्राप्त होना; १२. जड़ पदार्थ, १३. वनस्पति, १४. थूक, १५. दरवाजा, १६. कुतिया, १७. यद्यपि, १८. चूँकि, १९. शौक़, व्यसन, चाह; २०. कुत्ता, २१. निरर्थक, बेकार; २१. होंगे, घटित होंगे; २३. रंग-बिरंगे, २४. जनता, लोगों का।

(बादशाह बनने के लिए) कोई उल्लू की छाया के नीचे नहीं आवेगा, यदि हुमा (जिसकी छाया के प्रभाव से मनुष्य बादशाह बन जाता है) संसार से लुप्त ही क्यों न हो जाय।

कस[१] न आयद[२] ब[३] जेरे[४] सायद बूम[५]
अर[६] हुमा[७] अज़[८] जहाँ शवद[९] मादूम[१०]

इस प्रकार के उदाहरण अक्सर मिलते हैं : 'सौदा' अपनी प्रतिभा की उफान को तनिक भी नहीं रोकते। विचारों को जाँचते-परखते भी कम हैं और ऐसे घृणित विचारों तथा चित्रों का प्रयोग कर डालते हैं, जिनसे उनकी कलाकारिता पर धब्बा लगता है।

'सौदा' में एक कमी यह भी है वह अपनी हास्य-रसज्ञता की शक्ति से किसी नवीन, दिलचस्प पात्र का निर्माण नहीं करते। अपने विषय को व्यंग्यपूर्ण ढंग से घटा या बढ़ाकर वह किसी नये व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते थे। यदि कहीं पर इस प्रकार के नये व्यक्तित्व का निर्माण किया है तो वह "मसनवी दर-हज्वे अमीर दौलतमन्द बखील" में है। यहाँ भी रीत्यनुसार अत्युक्ति की अधिकता है। और, एक दूसरा दोष अनुचित विस्तार है, जो 'सौदा' की बहुत-सी कविताओं में मौजूद है। लेकिन इन त्रुटियों के होते हुए भी उन्होंने इस कृपण धनाढ्य की बड़ी सुन्दर तस्वीर कुशलतापूर्वक खींची है।

'सौदा' के मित्र के आगमन पर उनकी बेचैनी—विशेषतः यह देखकर कि चारों ओर से काले बादल उठ रहे हैं और वर्षा के कारण वह लौटकर न जा सकेगा। वर्षा आरम्भ होने पर उनकी घबराहट, आकाश की ओर बार-बार घबराकर देखना कि पानी खुलने की सम्भावना है कि नहीं, अन्ततः निराश होकर बहाना करके यह कहते हुए खिसक जाना कि बकावल[११] से भोजन मँगा लेना, उसके नौकरों से परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करना, और उसके व्यक्तित्व का सही अनुमान होना। तस्वीर का हर रुख वास्तविकता पर आधारित है; विशेषतः यह घटना उसके व्यक्तित्व की कैसी अच्छी अभिव्यंजना है : उस धनी आदमी को एक ही पुत्र था: दुर्भाग्यवश उसने अपने किसी मित्र को अपने यहाँ भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया। कोई तड़क-भड़कवाली दावत नहीं—एक रिकाबी "तआम[१२] व दीगर[१३] बस"। इसपर उस कृपण को यह दशा हुई :

तिस प यों पेश[१४] आया यह मरदूद[१५] + याद आया उसे छठी का दूध
चाहता था करे यह उसको आक़[१६] + और माँ को भी उसकी दे दे तिलाक़
बारे लोगों ने आके समझाया + तब यः ओरू के हक़[१७] में फरमाया
पत्थर इसके एवज़[१८] तू क्यों न जनी[१९] + काश फंस मरता वो यह नाशुदनी[२०]
यारो मुझसे तो लावलद[२१] बेहतर + मेरा बेटा और इस कदर अबतर[२२]

---

१. कोई, २. आता है, ३. वो; ४. नीचे, ५. उल्लू, ६. यदि, अगर; ७. एक मुबारक चिड़िया; उसकी छाया किसी व्यक्ति पर पड़ जाने से वह राजा हो जाता है, ८. से; ९. हो जाता है, १०. अदृश्य, अलभ्य, ११. खानसामां, बावरचियों का सरदार, १२. भोजन,, १३. फिर, १४. सामने आया, घटित हुआ; १५. निकृष्ट व्यक्ति, १६. वंचित, १७. विषय में, १८. बदले में, १९. प्रसवक्रिया, २०. न होनेवाला, अनहोनी; २१. निस्सन्तान; २२. रद्दी, चौपट।

मैं तो आपी को जानता था फ़ज़ूल[1] + पर य: मुझसे भी निकला नामाकूल[2]
गड़े पैसे यह सब उठावेगा + ईंटों तक बेंच बेंच खावेगा

'सौदा' की चार हज्वें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : "मसनवी दर हज्वे 'शैदी फ़ौलाद ख़ाँ' कोतवाल", क़सीदा दर हज्वे अस्प अलमुसम्मा ब तज़हीके रोज़गार", "क़सीदा शहर आशोब" और "मख़म्मस-शहर आशोब"। यह नज़्में काफ़ी उच्चकोटि की हैं। पहली नज़्म में मज़ाक़ और फक्कड़पन है, और अपने विशिष्ट रंग में लाजवाब है। और हास्य-विनोद व फक्कड़पन की तह में गम्भीरता तथा गहराई है :

क्या हुआ यारो वह नसक़[3] हैहात + लेमूं के चोर का कटे था हात
शहर में क्या रहे था अम्न[4] वो अमां + कैसी करती थी ख़ल्क़[5] ख़ुश गुज़रां
न था रिश्वत से कोतवाल को काम + शहर में था न चोट्टे का नाम
अब जहाँ देखो वां झमक्का है + चोर है, ठग है और उचक्का है
ख़ास बाज़ार का जो सुनिए बयां + उनने खुर्दक के काट डाले कान
दमड़ी के सौदे को जो वां जावे + पगड़ी खो सिर को पीटता आवे
किस तरह शहर का न हो यह हाल + 'शैदी फ़ौलाद' अब जो है कुतवाल
उनसे रिश्वत लिये यह बैठा है + इसके दिल में यह चोर बैठा है
अपने दरवाजे आगे रख नटखट + किये हैं इनने घर के घर चौपट
ठग न तनहा चढ़े हैं इसकी आँट + मिल रहो है उचक्कों से भी साँट
सिर प देखें य: जिसके अच्छी शाल + गोया वह इसके बाप का है माल

यह उस समय की स्मृति है जब शहर में शान्ति एवं सुख-चैन का साम्राज्य था, जब लोग सुख से स्वतन्त्रतापूर्वक निर्द्वन्द्व होकर जीवन व्यतीत करते थे, जब कोतवाल ईमानदार था और उपद्रवियों की कहीं पहुँच न थी। एक वे दिन थे और अब ऐसी रात्रि है कि हर जगह झगड़ा-फसाद, चारों ओर चोरी का हंगामा है। कोतवाल जिसका कर्त्तव्य था कि जनसाधारण की सुरक्षा का ख़याल रखे, अब चोरों से मिल बैठा है तो फिर चोरी-चमारी का अधिक प्रचार क्यों न हो :

अब जहाँ देखो वां झमक्का है + चोर है ठग है और उचक्का है

जब इस परिस्थिति से ऊबकर लोग कोतवाल के सामने दुहाई देते हैं तो वह इस प्रकार अपनी असमर्थता प्रकट करता है :

ख़ल्क़[6] जब देख करके यह बेदाद[7] + करते हैं कोतवाल से फरियाद
बोलें है वह कि मैं भी हूं नाचार + गर्म है चोट्टों का अब बाजार
करते हैं मुझसे अब बजाकर ढोल + मेरी पगड़ी का मेरे सिर पर मोल
यारो कुछ चल सके है मेरा ज़ोर ? + देखो तो टुक कहाँ कहाँ है चोर ?

१. अधिक खर्च करनेवाला, २. अयोग्य, ३. प्रबन्ध, व्यवस्था; ४. अफ़सोस, ५. सुख-शान्ति, ६. जनता; ७. सुखी जीवन।

मिट सके मुझ गरीब से यः खलल[१] ? + है अमीरों के घर में चोर महल
देखिए गर बुतां[२] को भी बखुदा[३] + हाथ में है उन्हीं के दुज़्दे-हिना[४]
किसको मारूँ मैं किसको दूँ गाली + चोरी करने से कौन है खाली

यह व्यंग्य का अच्छा उदाहरण है, और यहाँ व्यंग्य हास्य के साथ काँधे से काँधा मिला रहा है :

देखिए गर बुतां को भी बख़ुदा + हाथ में है उन्हीं के दुज़्दे-हिना

"क़सीदा दर हज्वे-अस्प अलमुसम्मा ब तज़्हीके रोज़गार" में 'सौदा' ईरान के कवि 'अनवरी' से लाभान्वित हुए हैं। 'अनवरी' कहता है :

बर आदत अज़ वेसाक़ बसेहरा बरुं शुदम + बा यक दो आशना हम अज इब्नाय रोज़गार
अस्पे चुनां कि दानी ज़ेर अज़मियाना ज़ेर + वज़ काहिली कि बूद न सुक सुक न राहवार
दर खुफ्त बखेज़ मांद हमां राहे-ईदगाह + मन गाह अज़् पेयादा वगाहे बरू सवार
न (अ)ज़ गुबारे-खास्ता बेरूं शुदे बज़ोर + न (अ)ज़ ज़मीने खस्ता बर अंगेख़ते गुबार
गह ताानए अज़ीं कि रिकाबश दराज़ कुन + गह बज़्लए अजां कि एनानश फ़रोगुज़ार
मन बाल: वो खजिल मुतहैयर फ़रोशुदा + चश्मे सुए यमीनम वो गोशे सुए यसार

[आदत के मुताबिक मैं घर से जंगल की ओर जाने के लिए बाहर निकला; दो-एक मित्र भी हमारे साथ थे। मेरा घोड़ा, जैसा कि तुम्हें मालूम है, मेरी रान के नीचे परीशान था। आलस्य के कारण उसकी ऐसी दशा थी; वह कोई बहुत तेज कोतल घोड़ा न था। ईदगाह तक के रास्ते-भर मे वह ऊँघता चिहुंकता जाता था; मैं कभी उसपर सवार हो जाता था, कभी नीचे उतर जाता था। न तो वह रास्ते की गर्द से ही बाहर निकल पाता था, न नर्म ज़मीन पर उसकी टाप से गर्द ही उड़ती थी। कभी कोई ताना देता था कि उसकी पीठ पर से रिकाब उतार लो; कभी कोई हँसी करता था कि उसकी लगाम ढीली करो। मैं परीशान, घबराया हुआ, शर्मिन्दा होकर नीचे उतर आया; कभी दाहिनी ओर ताकता था तो कभी बायीं ओर कान लगाकर सुनता था।]

'सौदा' के कुछ शेरों पर ध्यान दिया जाय :

ना[५]-ताक़ती का उसके कहाँ तक करूँ बयाँ
फ़ाक़ों[६] का उसके अब मैं कहाँ तक करूँ शुमार[७]
मानिन्दे[८] नक़्शे-नाल[९] ज़मीं से बजुज़[१०] फ़ना[११]
हरगिज न उठ सके वह अगर बैठे एक बार
हर रात अख़्तरों[१२] के तईं दाना बूझकर
देखे है आसमां को तरफ़ होके बेकरार[१३]

---

१. गड़बड़, २. मूर्त्तियाँ, प्रेयसियाँ; ३. खुदा की क़सम ४. मेंहदी का चोर (अर्थात् मेंहदी लगाने में जो स्थान खाली रह जाते हैं और जिनके कारण हाथ पर छींट की छाप-सी दिखाई पड़ती है), ५. कमजोरी, ६. उपवासों, ७. गणना, गिनती; ८. सदृश, ९. जूते का चिह्न, १०. सिवाय, ११. विनाश, १२. सितारों, १३. बेचैन, अधीर।

है इस क़दर ज़ईफ़[1] कि उड़ जाय बाद[2] से
मेखें[3] गर उसकी थान की होवें न उस्तवार[4]
है पीर[5] इस क़दर कि जो बतलावे उसका सिन[6]
पहले वः लेके रेगे[7]-बयाबां[8] करे शुमार[9]
लेकिन मुझे ज़ रुए[10]-तवारीख़[11] याद है
शैतां इसी प निकला था जन्नत से हो सवार
मानिन्दे-अस्पे[12]-ख़ानए[13]-शतरंज अपने पाँव
जुज़[14]दस्ते[15]-ग़ैर के नहीं चलता है ज़ीनहार[16]

देखा ! 'सौदा' को भी कैसी सूझती है, और जो सूझती है खूब सूझती है। लेकिन वह अपनी कल्पना के घोड़े को नहीं रोकते। यही कारण है कि उनकी हज्वें सूखे-गीले विचारों से भरी-पड़ी हैं और सन्तुलन एवं अनुपात की कमी नज़र आती है। अगर इनकी सूझ में बूझ का कुछ अधिक दख़ल होता तो ये हज्वें अधिक उच्चकोटि की हो जातीं। नज़्मों में ब्यवरों की सुन्दरता, उनकी विविधता तथा उपयुक्तता से नज़्म के सौन्दर्य में वृद्धि होती है। लेकिन यदि ब्यवरों की इतनी अधिकता हो कि नज़्म का रूप-सौन्दर्य ढक उठे या दूषित हो जाय तो इन्हीं ब्यवरों की गणना उसकी त्रुटियों में हो जाती है। यही दोष 'सौदा' की नज़्मों का एक सबसे बड़ा दोष है। उनकी नज़्मों में ब्यवरों का ऐसा विस्तार है, मानों वृक्षों की अधिकता के कारण जंगल दिखाई नहीं पड़ता।

'क़सीदए शहरआशोब' और 'मुखम्मसे-शहरआशोब' में दुनिया की दयनीय दशा, ज़माने की दुःखमय हालत, मनःशान्ति का अभाव, घबराहट व बेचैनी, दिल्ली के अमीरों की तबाही एवं बरबादी, इन्हीं बातों का ओजपूर्ण तथा शानदार चित्रण मिलता है। आश्चर्य होता है कि वे कितनी आसानी से दर्द व असर, हास्य और व्यंग्य को इकट्ठा कर देते हैं, जिन्हें पढ़कर हँसी भी आती है और रोना भी। कहीं-कहीं पर भिन्न-भिन्न पेशेवालों की तस्वीर खींचते हैं और कितनी पीड़ाजनक ! हर शख़्स का एक हाल है, हर जगह दुःख और चिन्ता है, किसी के हृदय में शान्ति नहीं है, किसी को सुख-आनन्द की छाया तक भी दीख नहीं पड़ती। और कवि की दशा ऐसी है :

शायर[17] जो सुने जाते हैं मुस्तगनी[18]-उल-अहवाल
देखे जो कोई फ़िक्र वो तरद्दुद को तो यां है
मुश्ताक़[19]-मुलाक़ात उन्हों का कस वो ना कस
मिलना इन्हें उनसे जो फ़लां[20] इब्ने[21]-फलां है।
गर ईद का मस्जिद में पढ़े जाके दोगाना[22]

१. बूढ़ा, कमज़ोर; २. हवा, ३. खूटे, ४. मजबूत, दृढ़; ५. बुड्ढा, ६. वयस, उम्र; ७. बालू, ८. मरुस्थल, ९. गिनती, गणना; १०. अनुसार, ११. इतिहास, १२. घोड़ा, १३. घर, १४. सिवाय, १५. हाथ, १६. हरगिज़, कदापि; १७. कवि, १८. सभी दशाओं से चिन्तामुक्त, १९. इच्छुक, लालायित; २०. अमुक. २१. पुत्र, २२. नमाज।

नीयत[1] क़ितए[2]-तहनियते[3]-ख़ाने[4]-जमां है
तारीख़े[5]-तवल्लुद[6] की रहे आठ पहर फ़िक्र
गर रेल[7] में बेगम के सुने नुत्फ़ए-ख़ां[8] है
इस्क़ाते[9]-हमल हो तो कहे मरसिया[10] ऐसा
फिर कोई न पूछे मियां मिसकीन[11] कहां है

सारांश यह कि कवि, नौकर-पेशा, मुल्ला, लिपिक, शेख—सभी अपनी दुर्दशा में व्यस्त हैं :

दुनिया में तो आसूदगी[12] रखती है फ़क़त[13] नाम
ओक़बा[14] में यः कहता है कोई इसका निशां है
सो इस प तयक़ुन[15] किसी के दिल को नहीं है
यह बात भी गोइन्दा[16] ही का महज़ गुमां[17] है
यां फ़िक्रे मईशत[18] है तो वां दग़दग़ए[19]-हश्र[20]
आसूदगी[21] हर्फ़ेस्त न यां है न वहां है

कितनी निराशाजनक हैं ये पंक्तियां ! सौदा कहते हैं कि जो इस दुनिया में आये वह सुख-चैन की आशा, परितुष्टि की तमन्ना से हाथ खींच ले :

'मुखम्मसे-शहर-आशोब' के अन्त में कितने करुणाजनक ढंग से वह संसार की उजड़ी हुई विनष्ट दशा को प्रतिबिम्बित करते हैं; ऐसा नक़शा खींचते हैं, जो दिल पर पत्थर की लकीर हो जाय :

सोख़न[22] जो शहर की वीरानी[23] का करूं आग़ाज़[24]
तो उसको सुनके करें होश चोग़द[25] के परवाज़[26]
नहीं वः घर न हो जिसमें शग़ाल[27] की आवाज़
कोई जो शाम को मस्जिद में जाय बहरे[28] निमाज़
तोवां चिराग़ नहीं है बजुज़[29] चिराग़े-ग़ूल[30]
ख़राब हैं वः इमारत[31] क्या कहूं तुझ पास
कि जिसके देखे से जाती रही थी भूख और प्यास
और अब जो देखो तो दिल होवे ज़िन्दगी से उदास
बजाय[32] गुल चमनों में कमर-कमर है घास
कहीं सुतून[33] पड़ा है कहीं पड़े मरग़ूल[34]

---

१. आन्तरिक इच्छा, २. उर्दू-फ़ारसी कविता का एक रूप, ३. मुबारकवाद, अभिनन्दन; ४. समय के सरदार, एक उपाधि; ५. तिथि, ६. जन्म, ७. गर्भाशय, ८. वीर्य, ९. गर्भपात, १०. शोक-संगीत, ११. गरीब, दरिद्र, बेचारा; १२. परितृप्ति, १३. केवल, १४. परलोक, १५. विश्वास, १६. कहनेवाला, १७. भ्रम, १८. रोज़ी-रोटी, १९. खटका, २०. प्रलयकाल, २१. अक्षर, बात; २२. बात, २३. उजड़ी हुई दशा, २४. आरम्भ, २५. उल्लू, २६. उड़ना, २७. शृगाल, २८. वास्ते, २९. सिवाय, ३०. राक्षस, राकस (गंवारी बोली में), ३१. भव्य भवन, ३२. स्थान पर, ३३. खम्भा. ३४. मुंडेरे का जाल।

यह बाग़ खा गई किसकी नज़र नहीं मालूम
न जाने किन ने रखा यां क़दम वः कौन थे शूम[1]
जहां थे सर्वो[2]-सनोबर[3] वहां उगे है ज़क़ूम[4]
मचे है ज़ाग़[5] वो ज़ग़न[6] से अब इस चमन में धूम
गुलों के साथ जहां बुलबुलें करे थीं किलोल
जहानाबाद[7] तो कब इस सितम[8] के क़ाबिल[9] था
मगर कभी किसी आशिक़ का यह नगर दिल था
कि यों मिटा दिया गोया[10] कि नक़्शे[11] बातिल[12] था
अजब तरह का यः बहरे[13] जहां में शाहिल[14] था
कि जिसकी ख़ाक[15] से लेती थी ख़ल्क़[16] मोती रोल

जहानाबाद की निर्जनता, इमारतों की खराबी, घरों की तबाही, चमन में फूल के स्थान पर घासों का आधिपत्य, सरो व सनोबर की जगह थूहर के वृक्षों की बहुलता, बुलबुलों के बदले कौवों की धूम, प्रत्येक विवरण दर्द से भरा हुआ है। वही नगर जिसकी मिट्टी से जनता मोती रोल लेती थी, जो कभी किसी प्रेमी का हृदय था, जो इस संसार-सागर में एक शान्तिप्रद किनारा था, ऐसा मिटा, मानों उसकी हस्ती एक नश्वर चित्र से अधिक न थी। असर क्यों न हो, जब इन पंक्तियों में किसी के दुखे हुए दिल की आवाज़ है। यह आवाज़ हृदय के मर्मस्थल को छू देती है।

इन निन्दासूचक कविताओं में 'सौदा' के क़सीदों से अधिक विविधता है, बाह्य और आन्तरिक दोनों ही। विषय भी एक-दूसरे से भिन्न हैं और बाह्य रूप भी; कहीं मुखम्मस[17] है तो कहीं मसनवी[18]। कहीं पर वह क़सीदे[19] का व्यवहार करते हैं तो कहीं तरजीअबन्द[20] व क़िते का। हर जगह एक नया रंग, हर बार एक जुदा फूल खिलता हुआ नज़र आता है। क़सीदे का ठाट-बाट यहां नहीं, किन्तु एक आकर्षक सादगी है। शब्द सीधे-सादे, साफ़ और परिचित हैं। पूर्णतया स्वाभाविक भाव तथा अकृत्रिमता है। ज़ोर-शोर वही है, जो क़सीदों में है; वही प्रवाह, वह विचारों तथा चित्रों की बहुलता है। विविधता और असर अत्यधिक है। ये नज़्में भी परिश्रम से लिखी गई हैं; वह परिश्रम तो नहीं जो क़सीदों में दृष्टिगोचर होता है; किन्तु फिर भी विषयवस्तु की ओर से असावधानी नहीं और उसे उपेक्षित नहीं किया गया है। इस काव्यरूप में 'सौदा' को उर्दू-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यदि वह उन त्रुटियों से मुक्त होते, जिनका ज़िक्र हुआ तो उनका पद बहुत ऊंचा होता। फिर भी ये कविताएं आदरणीय हैं, और उर्दू में ये अपने विशिष्ट रंग में अपना जवाब नहीं रखतीं।

---

१. मनहूस, २-३. वृक्ष-विशेष जो सुन्दरता के लिए बाग़ों में लगाये जाते हैं. ४. मदार के वृक्ष, ५-६. कौवे, ७. दिल्ली शहर, ८ जुल्म, अत्याचार; ९. योग्य, १०. मानों, ११ चित्र, १२. मिथ्या, झूठा; १३. सागर, १४. किनारा, १५. मिट्टी, १६. जनसाधारण, १७, १८, १९. एवं २०. उर्दू-फ़ारसी कविता के विभिन्न रूप।

सन्दर्भ-संकेत

१. *Ode*—In ancient usage, a lyric poem intended to be sung or chanted, in modern usage, any lyric of lofty tone dealing progressively with one dignified theme.

२. 'निकोलसन' ने फ़ारसी क़सीदों के सम्बन्ध में लिखा है :

The Qasida is the consummate type of Persian court poetry and in accordance with that definition its primary motive is praise, which might more accurately be termed flattery of the great. Since no bard who knew his business could afford to economise in compliment, the Qasida is generally a long poem, ranging from twenty or thirty to well over a hundred couplets.

If they (the Qasidas) had contained nothing else than flattery of kings and nobles, they would have been insufferably tedious to us, and purhaps even to those eminent persons whose munificence they were designed to stimulate. Sadi in the Gulistan tells a story about some dervishes with whom he consorted. They enjoyed a regular allowance from a certain grandee, but in consequence of an act committed by one of them he withdrew his patronage. Sadi resolved to intercede on his friend's behalf. He paid a visit to the great man, who received him with marks of honour andesteem. "I sat down" he says, "and conversed on every topic until the subject of my friend's offence come up"; and he goes on to relate how he gained his end. The structure of the Qasida exemplifies this rule of courtly etiquette. Instead of coming straight to the point (which is, in plain terms, to give praise in the hope of getting a reward), the poet being his ode with an elaborate description of a handsome youth or a beautiful garden or some equally irrelevant topic, and having thus won the ear of his prospective patron he

glides as dexterously as he can from the exordium (nasib : प्रस्तावना) into the encomium (madih : प्रशंसा, स्तवन). Although the two have no real connection with each other, so that the Qasida lacks organic unity, the whole poem is endowed with unity of purpose, in as much as the prelude contributes to the success of the panegyric and aims indirectly at bringing about the same result........

Whereas in the encomium the poet is a slave to his profession, the Nasib gives him an opportunity of displaying his power on a subject that does not constrain him to use fine rhetoric or fulsome adulation. In this part of the Qasida we sometimes chance on passages of fresh and opulent beauty or tinged with a maturer charm of melancholy, which bid us pause when we are tempted to cry out that these oriental Pindars are unreadable.......

In the encomium the claims of art are secondary : the poet cannot write to please himself, he must sing to his patron's tune. The more extravagant his laudation, the more tinged his rhetoric, and the more ingenious his flattery the better chance he has of competing successfully with his rivals and securing a rich reward. Therefore, extravagance, turgidity and ingenuity are qualities belonging to the typical Qasida.

३. कभी-कभी इच्छापूर्वक नई राह निकाली जाती है। निम्नलिखित दो उदाहरणों पर ध्यान दिया जाय :

(i) बग्घियाँ नूर[१] की तैयार कर ऐ बूए-समन[२]
कि हवा खाने को निकलेंगे जवानाने चमन
आलम[३] अतफ़ाले[४]-नबातात[५] प होगा कुछ और
गोरे-काले सभी बैठेंगे नए कपड़े पहन
कोई शबनम से छिड़क बालों प अपने पौडर
बैठकर जल्वए[६]-कुरसी प दिखावेगा फबन
नस्तरन[७] भी नई सूरत[८] का दिखावेगा रंग

१. प्रकाश, रोशनी; २. चमेली की ख़ुशबू, ३. दशा, परिस्थिति; ४. बच्चे, ५. वनस्पति, ६ छवि, सुन्दरता; ७. एक फूल, ८. ढंग।

कोच पर नाज़[1] की जब पांव रखेगा बन-ठन
अपने गीलास शगूफ़े[2] भी करेंगे हाज़िर
गुंचए-गुल सभी वां खोलेंगे बोतल के देहन
सभी मिल-मिलके बजावेंगे फ़िरंगी तंबूर[3]
लाला लावेगा सलामी को बनाकर पल्टन
खींचकर तार रगे[4] अब्र[5]-बहारी[6] से फ़ई
ख़ूब नसीमे[7]-सेहर[8] आवेंगी बजाने अरगन
अपनी संगीनें चमकती हुई दिखलावेंगे
आ पड़ेगी जो कहीं नहर प सूरज की किरण
नै[9]-नवाज़ी[10] के लिए खोलके अपनी मिन्क़ार[11]
आके दिखलावेगी बुलबुल भी जो है उसका फ़न[12]
निकहत[13] आवेगी निकल खोल कली का कमरा
साथ हो लेगी नज़ाकत[14] भी जो है उसकी बहन
जब हवा खाके घर आवेंगे तो देखेंगे नाच
वज़अ[15] पर हिन्द के है बाग़ में जिसका मसकन[16]
क्या तअज्जुब है जो फ़ौवारों की हो सारंगी
राअ्द[17] के तब्ल बजें ऐसे कि हों मस्त हिरन

['इन्शा']

(ii) सिम्ते[18]-काशी से चला जानिबे[19] मथुरा बादल
बर्क़[20] के कांधे प लाती है सबा[21] गंगा-जल
घर में अश्नान करें सर्व-क़दाने[22]-गोकुल
जाके यमना प नहाना भी है एक तूले-[23]अमल[24]
ख़बर उड़ती हुई आई है महावन में अभी
कि चले आते हैं तीरथ को हवा पर बादल
काले कोसों नज़र आती हैं घटाएं काली
हिन्द क्या सारी ख़ुदाई में बुतों[25] का है अमल[26]
जानिबे क़िब्ला[27] हुई है युरिशे[28]-अब्रे-सियाह
फिर कहीं काबा प क़ब्ज़ा[29] न करें लात[30] वो हुबल[31]

---

१. भावभंगी, २. फूल, ३. एक बाजा, ४. नस, शिरा; ५. बादल, ६. वसन्तकालीन, ७. समीर, ८. प्रभात, ९ बांसुरी, १०. बजाना, ११. चोंच, १२. कला, १३. ख़ुशबू, १४. सुकुमारता, १५. ढंग, १६. निवास-स्थान, १७. मेघ-गर्जन, १८. ओर, १९. दिशा, २०. बिजली, २१. समीर, २२. सर्ववृक्ष की तरह सीधे और सजीले शरीरवाले, २३. लम्बा, विस्तृत; २४. काम, २५. मूर्त्तियों, सुन्दरियों; २६ अधिकार, आधिपत्य; २७. वह स्थान, जिसकी ओर मुंह करके प्रार्थना या पूजा की जाती है। भारतीय मुसलमानों के लिए पश्चिम की दिशा। २८ आक्रमण, २९. अधिकार, ३०-३१. प्राचीन अरबों की मूर्त्तियाँ, जो इस्लाम से पूर्व काबा के मन्दिर में थीं।

ढर[1] का तरसा[2]-बच्चा है बर्क़[3] लिये जल में आग
अब्र[4] चोटी का बरहमन है लिये आग में जल
अब्रे-पंजाब तलातुम[5] में है आला[6] नाज़िम[7]
बर्क़ हंगामए ज़ुलमत[8] में गवर्नर-जनरल
न खुला आठ पहर में कभी दो-चार घड़ी
पन्द्रह रोज़ हुए पानी को मंगल-मंगल
देखिए होगा सिरी कृष्ण का क्यों कर दर्शन
सीनए तंग में दिल गोपियों का है बेकल
राखियाँ लेके सलोनो की बरहमन निकले
तार बारिश का तो टूटे कोई साअत[9], कोई पल
अबके मेला था हिंडोले का भी गिर्दाबे[10]-बला[11]
न बचा कोई महाफ़ा[12] न कोई रथ न बहल
डूबने जाते हैं गंगा में बनारसवाले
नौजवानों का सनीचर है यह बुढ़वा मंगल
तह वो बाला[13] किये देते हैं हवा के झोंके
बेड़े भादों के निकलते हैं भरे गंगा-जल
योगिया भेस किए चर्ख़[14] लगाये है भभूत
या कि बैरागी है परवत प बिछाए कम्बल
आज यह नश्वो[15]-नुमा का है सितारा चमका
शाख़[16] में काहकशां[17] की निकल आई कोंपल
जिस तरफ देखिए बेले की खिली हैं कलियाँ
लोग कहते हैं कि करते हैं फ़िरंगी[18] कौन्सल
सबज़ए[19]-ख़त[20] से हवा होने लगी सुर्ख़ीए-लब[21]
चमने हुस्न[22] से लाल उड़ गये बनकर हरियल
साफ़ आमादए[23]-परवाज़[24] है शामा की तरह
पर लगाये हुए मिज़गाने[25] सनम[26] से काजल

['मोहसिन' काकोरवी]

---

१. झुण्ड, समूह; २. क्रिस्तान का लड़का, ३. बिजली, ४. बादल, ५. हलचल, उथल-पुथल, समुद्र या नदी की तरंग, ६. बड़ा, ७. प्रबन्धक, राज्यपाल; ८. अन्धकार, ९. घड़ी, १०. भँवर, चकोह; ११. आपत्ति, १२. पालकी तक, १३. नीचे-ऊपर, १४. आकाश, १५. उगने, बढ़ने; १६. डाली, १७. छायापथ, १८. अँगरेज, १९-२०. श्याम-हरित मूँछ-दाढ़ी के नये निकलते हुए बाल, २१. ओठ, २२. सौन्दर्य, २३. तत्पर, २४. उड़ना, उड़ान; २५. पलकों पर के बाल, बरौनी; २६. मूर्त्ति, प्रेमपात्र ।

४. यह 'सौदा' थे और यह ज़ौक़ हैं :

मुसहफ़[१] रुख़ तेरा ऐ सायए रब्बुल[२] -इज्ज़त
खोल दे मानीए 'ऐतमम्तो अलेकुम[३] नेमत'
तेरा दरवाज़ए-दौलत है मुक़ामे उम्मीद
तेरा दीवाने[४] अदालत है महल्ले[५] -इबरत[६]
तेरा एहसान बहारे चमने-सद-रौनक़
तेरी नीअत[७] चमन[८]-आराए-हज़ारों नीयत
तेरे इशरतकदे[९] में बार[१०] किसे ग़ैरे निशात[११]
तेरे ख़िलवतकदे[१२] में दख़ल किसे जुज़[१३] ताअत[१४]
सफ़हए-इल्म प बिरजेस[१५] से तू हमज़ानू[१६]
हुजलए[१७] ऐश में नाहीद[१८] से तू हम-सोहबत
माहे[१९] नौ एक फ़लक पर तेरे नौ पर्दों में
नौ फ़लक नौकरों में तेरे क़दीमुल्ख़िलक़त[२०]
कीसए[२१]-गौहरे[२२] अनजुम[२३] तेरा सर्फ़[२४] इनआम
ताक़ए[२५]-अतलसे-गर्दूं[२६] तेरा वक़्फ़[२७] ख़िलअत[२८]
नीअते-नेक तेरी आइनए-हुस्ने अमल[२९]
अमले-ख़ैर[३०] तेरा जल्वए-हुस्ने-नीअत[३१]
ज़ेहने-आली[३२] है तेरा तायरे शाख़े-सदरा[३३]
तवए-रंगीन तेरी गुलचीने[३४] रेयाज़े[३५] जन्नत
तेरे अफ़ज़ाल[३६] जहाँ के लिए बुर्हाने[३७] करम
तेरे अकराम[३८] ज़माने को दलीले रहमत
इल्मे-ज़ाहिर[३९] से है यकसां[४०] तुझे दूर वो नज़दीक
नूरे बातिन[४१] से बराबर है हुज़ूर[४२] वो ग़ैबत[४३]
ज़ेहने-आली है तेरा पर्दा[४४]-दरे मानीए-ग़ैब
मूशिगाफ़ी[४५] है तेरी कोह-शिगाफ़े दिक़्क़त[४६]

---

१. पृष्ठ, कुरान (मुसलमानों का धर्मग्रन्थ), २. सर्वसम्मानित भगवान्, ३. मैंने तुम्हें सारी नेऽमतें दे दीं, ४. न्यायालय, ५. स्थान, ६. स्थान, ७. इच्छा, नीयत; ८. बाग को सजानेवाला, ९. सुखधाम, १०. पहुँच, ११. खुशी के अतिरिक्त, १२. एकान्तवास, १३. सिवा, १४. पूजा-पाठ, १५. एक शुभ ग्रह, १६. साथ बैठनेवाला, १७. आराम का कमरा, १८. एक शुभ ग्रह, १९. दुज का चाँद, २०. आदिकाल के बनाये हुए, २१. थैली, २२. मोती, २३. सितारे, २४. व्यय, लगा हुआ; २५. रेशमी कपड़ा, २६. आसमान, २७. समर्पित, २८. सम्मान के लिए दिया हुआ वस्त्र, २९-३०. अच्छा काम, ३१. अच्छी मनोवृत्ति की शोभा, ३२. उदात्त बुद्धि, ३३. स्वर्ग का एक वृक्ष, ३४. फूल तोड़नेवाला, ३५. बगीचा, ३६ दान, उदारता; ३७. प्रमाण, ३८, कृपा, दान; ३९. बाह्य ज्ञान, ४०. समान, ४१. अन्तर, आन्तरिक; ४२. प्रत्यक्ष, ४३. परोक्ष, ४४. पर्दा फाड़नेवाला, ४५. सूक्ष्म विचार, ४६. कठिनाई।

अक्ल में शम्स[1] है तू इल्म में काने[2] गौहर
फ़ज़्ल[3] में काबा है तू हिल्म[4] में कोहे-रहमत[5]
तेरी तदबीर पुर-अज़[6] दफ़्तरे होश वो फ़रहंग[7]
तेरी शमशीर[8] पुर-अज़ जौहर फ़त्ह वो नुसरत[9]
दावते सिद्क़[10] प लाए तेरी ईमां तस्दीक़
दस्ते हिम्मत प करे तेरी सख़ावत[11] बेहजत[12]
तुझसे राज़ी है ख़ुदा और ख़ुदा का महबूब[13]
तेरा हामी है नबी और नबी की इतरत[14]
अज़्म[15] को है तेरे हर अज़्म में अज़्मे-बिल्जज़्म[16]
क़स्द[17] को तेरे है हर क़स्द में क़स्दे सबक़त[18]
क़ूवते-रूहे-मलायक[19] चमने-क़ुद्स[20] में हो
जाते क़ुद्सी[21] का तेरी इत्रे-क़बाए[22] इफ्फ़त[23]

५. देखिए, सुखनहाय गुफ़तनी, पृष्ठ १९३—१९८

६. मीर ज़ाहिक ने भी 'सौदा' की हज्वें लिखी थीं। एक हजो है, जिसका शीर्षक अरबी भाषा में है और उसका अर्थ इस प्रकार है :

"यह एक सबका मुँह बन्द कर देनेवाला प्रवचन है 'मुभविए-गप्पा' की निन्दा में जो संसार के सभी लोगों में सबसे बढ़कर मूर्ख है। वह मूर्खों को उत्पन्न करनेवालों का सरदार है, लोगों को प्रसन्न करनेवालों में प्रमुख और गवैयों का ओस्ताद है। सुननेवालों में अच्छा और हँसनेवालों में बहुत हँसोड़; आदि-अन्त के नबियों (धर्म-प्रवर्त्तकों) का सरदार है (उसपर भगवान् की कृपा हो)। वह अपनी जाति के लोगों की ओर उन्मुख है। उसका पीला पित्त जलकर काला पित्त हो गया है (अर्थात् वह पागल हो गया है), उसका रक्त दूषित है। वह मिर्ज़ा रफ़ीअ के नाम से प्रसिद्ध है।"

"मीर ज़ाहिक की हज्वें बीभत्स प्रकार की होती हैं। इस मसनवी के कुछ शेर उद्धृत किये जाते हैं :

जिन्स[24] को जिन्स की तरफ़ है मैल[25] + घोड़ा घोड़ों में दौड़े बैल में बैल
ऊँट ऊँटों में खुश है फ़ीलों में फ़ील + कौवा कौवों में रीझा चीलों में चील
ज़ाग़[26] बा ज़ाग़ बाज़हा[27] बा बाज़ + जिन्स बा जिन्स मीकुनद[28] परवाज़

१. सूर्य, २. खान, ३. उदारता, ४. सहनशीलता, ५. कृपा का पहाड़, ६. भरा हुआ, ७. कोष, ८. तलवार, ९. विजय, १०. सचाई, सत्यता; ११. दानशीलता, १२. खुशी, १३. मित्र, १४. परिवार, १५. इरादा, १६. दृढ़ निश्चय, १७. इरादा, १८. प्राथमिकता, १९. फ़रिश्ते, २०. पवित्रता, २१. पवित्रात्मा, २२. जामा, पोशाक; २३. इज़्ज़, पातिव्रत; २४. जाति, २५. झुकाव, २६. कौवा, २७. बाज़ एक शिकारी चिड़िया है, २८. एक जाति के पक्षी अपनी जातिवालों के साथ उड़ते हैं।

मर्द बा मर्द हेजहा[1] बा हेज़ + जिन्स बा जिन्स मिफ़ुनव तज्वीज़
उसका सारे सगों[2] से नाता है + एक सुफ़रे[3] प साथ खाता है
कलुआ और झबरा लेंडी और ताज़ी[4] + सब शरीके तआम वो हमबाज़ी[5]
कलुआ कल्ले को चाटे जाता है + ओझड़ी झबरा साथ खाता है
कन-सगों का सगा कहाता है + कलुआ दीवाना[6] काटे खाता है
सग[7] चु तर शुद पलीदतर बाशद + अक़्ल गर नीस्तगाव खर बाशद
कलब[8] बा कलब गुर्बा[9] बा गुर्बा + जिन्स बा जिन्स मीकुन्द क़ुर्बा[10]
सारे जोह्हाल[11] में पड़ा है शोर + ओलमा[12] आगे उसको क्या है शऊर[13]
अफ़रस[14]-उन्नास का अबस[15] जीना + फ़रस[16] दरकोह 'बूअली सीना'
सैयदुश्शायरीं[17] की बात नबात + अज़्हकु[18] उज़्ज़ाहिकीं बड़ा जगजात
'नाल' का क़ाफ़िया 'हलाल' करे + सीधी तकरार क्या बलाल करे
बह्[19]वो तक़्तीअ की नहीं है ख़बर + जेह्ल[20] की बहर[21] का है सौंस मगर
इल्म के फ़ज़्ल क्या करूँ इर्शाद + अज़्हल-उन्नास किन किया ओस्ताद
सारे जुह्हाल कर जी जाने है + ललुआ और कलुआ दिल से माने है।

७. हजो (Satire) के सम्बन्ध में 'हम्बर्ट उलफ़' ने कुछ बातें लिखी हैं, जो दिलचस्पी से खाली नहीं। निम्नलिखित उद्धरण पर ध्यान दिया जाय :

The satirist holds a place half-way between the preacher and the wit. He has the purpose of the first and uses the weapons of the second. He must both hate and love. For what impels him to write is not less the hatred of wrong and injustice than a love of the right and just. So much he shares with the prophet. But he seeks to affect the minds of men, not by the congruities of virtue, but by the incongruities of vice, and in that he partakes of the wit. For, as laughter dispels care by showing that as one thing is, so all may be, absurd; so it attacks wickedness by robbing it of its pretensions. Let wrong be purely serious, and Don Quixote with lantern jaws will

---

१. हिजड़ा, २. कुत्तों, ३. दस्तरख़्वान, ४. अरबी, अच्छे प्रकार के कुत्तों की एक जाति-विशेष; ५. साथ खेलना, ६. पागल, ७. कुत्ता जब भींग जाता है तो और भी गन्दा हो जाता है; अगर अक्ल न हो तो बैल गदहा बन जाता है। ८. कुत्ता, ९. बिल्ली, १०. सामीप्य, निकटता; ११. मूर्ख-मण्डली, १२. विद्वान्, १३. ज्ञान, १४. मनुष्यों में बड़े घोड़े-जैसा व्यक्ति, १५. बेकार, १६. पहाड़ के ऊपर घोड़ा बूअली सीना (एक दार्शनिक) बना रहता है, १७. कवियों का सरदार, १८. बहुत अधिक हँसोड़, १९. छन्द, २०. मूर्खता, २१. समुद्र।

find it impregnable as the windmill. But let Falstaff ride at it; and he will lead home captive a dozen giants in Lincoln green. This much then is certain, that the satirist shakes the foundations of the kingdom of Hell by showing it to be a kingdom of non-sense. He will allow nothing to be serious except the right, and that will always be able to afford a smile.

The task of the satirist, therefore, is ascetic. He is not to give life, but rather to kill the causes of spiritual death....Conscious in himself of not a few of the follies that he denounces, he must forcibly abstract himself, and, however human, must find most of what goes by that name as *ae alienum*.......The satirist is, therefore in spirit anchorite. He many turn an eye of longing on such as Laurence Sterne, who never exposed a weakness but he claimed it as his own. It is urged, indeed, that the satirist is the creature of malice, a sour fellow venting his undigested gall on his fellow. Such a one sees all yellow because of his own streak. Disappointed he will have all share his sting. If satirists are few, the fewer of such marplots and lovers of the misfortunes of others the better.

But this is to turn his own weapon on the Satirit, and to make him the butt of laughter, not because he is ture, but because he is false, to his Vocation. It is to treat him as a Lampoonist who sends his anonymous scrawl against a lady's Virtue to her husband, because she has refused his solicitation. Such a writer condemns himself more than his object and time will make it apparent. Satire springing from personal malice may amuse a large circle for a short while, a small for a longer, but in the end it must abate. For as it is the satririst's misfortune to be withdrawn from the ordinary humanities, so it is his business to be general.......

It may, however, be questioned whether any man sets out to be a satirist, except he has some personal cause for distasting life. Either he threw away his shield, like Horace; could not be suited with his Stella, like Swift; went crippled like Pope,

was beat by a noble man's flunkey's, like Voltaire; or was outcast, like my Lord Byron. That would have weight if Horace had abused soldiers, Swift happy lovers, Pope the straight-backed, Voltaire the nobly born, or Byron those that banished him. At most it argues that a man's mind may receive a satirist cast from his personal circumstance, as he might abstain from being exposed to the sun. But the substance of his mind in the first, as the line of his face in the second, remains unmodified. Satirists, like all artists, are born. They can only be unmade by spite.

Yet there is in this argument matter not wholly to be put on the one side. The satirit may have as his aim the amenment of mankind. But he has at his hand only that small fragment offered by time and place to his immediate observation. Juvenal cannot Impeach the Inquisition, not Rabelais celebrate Christian priests blessing the cannon that are to discharge gas-shells. The satirist indeed is divided between two difficulties. Let him attack the particular, even in the name of individuals as did Pope in the Dunciad, and a dictionary will be needed to help subsequent generations to share his indignation. Let him attack the Seven Deadly Sins with capital letters, as was, the habit of the fifteenth century, and they will take to themselves one other devil, worse than the seven, dullness. But here is the province of that extreme sensibility to general truth, which goes by the name of genius. The fool called by his own name will lend it to all similar folly, and continue to illuminate it till the end of time. Thus Churchill had only a conception of Dr. Johnson before him (and probably false at that) when he attacked him in the Cock Lane Ghost. But you will meet with such a Doctor anywhere between Chancery Lane and Ludgate Hill. The material of the Satirist is the creature of the cerebellum, thrusting its featureless bulk through the thin veil of the higher cortical centres. That is as general and as stubborn as the nightingale of Keats or Shelley's moon "with white fire laden."

Some hold that Art can have no object outside itself, and must either deny the satirist the name of artist, or reject

the definition of his function. But in this lies a confusion. All art has an object, but one consistent with itself. The satirist's object, which is to reprobate weakness and folly, is not contrary to but the essential factor of his craft, as to provide room is that of the builder. But no impeachment, however lively, unless it has the general quality of art, will have succeeded. The quality here is not that of the novelist which is to find in one man or woman some emotion common to many or all, but to find some failing. The first exhibits, the second condemns, but both alike snatch from time a reality that no longer is in its power. Nor, to develop this further, is it the business of the satirist to make his creature men and women, but rather types of their failures.

It is not enough, however, for a satirist to hate. Else satire were the universal possession of every tap-room gossip. The black must have a white back-cloth, or a steady candle must throw the shadows against the screen. Satire condemns, and a libertine, sitting in judgment on vice, is a monster not merely in life but in art. This, indeed, is no more than to demand that the satirist, like any other artist, must be sincere. If Keats, who held that "beauty is truth, truth beauty" had in fact occupied himself with speculation on the Stock Exchange, his poetry would have given him the lie. In the same way Pope's Dunciad, if it had not been inspired by a belief in such a poet as Dryden, but only by malicious hatred of rivals, might have succeeded as a pasquinade, but never as a satire. Self-interest in men like patriotism in nations is not enough. The satirist must have love in his heart for all that is threatened by the objects of his satire. Thus the difference between a great Satirist like Swift and a lesser like Charles Churchill consists in part in the vision of that which evil endangers. Bad actors may imperil the drama, but not the soul of man. But the habits of the Yahoo deny the Holy Ghost. It is the mousing owl by the side of the eagle gripping his prey in his "crooked hands."

[*Humbert Wolfe* : *Notes on English Verse Satire*]

६

उर्दू में 'सौदा' सबसे अच्छे क़सीदा-लेखक हैं। शब्दों का ठाट-बाट, बन्दिशों का आकर्षण एवं अनोखापन, विचारों की बुलन्दी एवं कोमलता—इन सारी खूबियों में वह आप ही अपनी मिसाल हैं। उनके वर्णनों में ऐसा मानों ओज है, अथाह समुद्र लहरें मार रहा हो। श्रवण-शक्ति आतंकित, मस्तिष्क आश्चर्यचकित होता है। मैंने कहा है कि क़सीदे में दो अंश महत्त्वपूर्ण होते हैं—तश्बीब (प्रस्तावना) और मद्ह (स्तवन, प्रशंसा)। मद्ह में इतनी अत्युक्ति होती है कि सही अभिरुचि रखनेवाले व्यक्ति को उससे आनन्द नहीं मिल सकता। हाँ, तश्बीब (प्रस्तावना) में कविता, अच्छी कविता की गुंजाइश है। और चूँकि क़सीदों को क़सीदे की हैसियत से नहीं, बल्कि कविता के प्रमापक से जाँचना है, इसलिए क़सीदों के पहले हिस्से पर प्रकाश डालना विशेष रूप से उचित है।

'सौदा' के क़सीदों में बड़ी विविधता है। वह एक ही विषय को बार-बार नहीं दुहराते। लेकिन यदि काव्य-सौष्ठव मौजूद नहीं तो फिर केवल विविधता कोई प्रशसनीय बात नहीं। 'सौदा' क़सीदे के प्रचलित सिद्धान्तों से बंधे हुए थे और अत्युक्ति, अनुचित अत्युक्ति पर उनका आग्रह था। वह अपनी मौलिकता, अपनी कल्पना-शक्ति की प्रबलता प्रदर्शित करते थे, लेकिन उसे क़ाबू में नहीं रखते थे। वह इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे कि उनके वर्णन से कोई पूरा-पूरा नक़्शा बनता है कि नहीं। अधिक विस्तार उनकी रचनाओं का प्रमुख दोष है। यदि कुछ शेर चुन लिये जायें तो तस्वीर अधिक साफ दिखाई देती है :

उठ गया बहमन[1] व दै[2] का चमनिस्ताँ[3] से अमल[4]
तेगे[5] उर्दी[6] ने किया मुल्के खिज़ाँ[7] मुस्तासल[8]
सिज्दए[9]-शुक्र में है शाखे समरवार[10] हर एक
देखकर बाग़े-जहाँ में कर[11]म अज़्ज़[12] व जल
क़ूवते[13]-नामिया[14] लेती है नबातात[15] का अर्ज़[16]
डाल से पात तलक फूल से लेकर ता फल
आ-वेज़ू[17]गिर्दे-चमन[18] लम्मए[19] खुर्शेद[20] से है
खते[21]-गुल्ज़ार[22] के सफ़्ह[23] प तिलाई[24] जदवल[25]
सायए-बर्ग[26] है इस लुत्फ़[27] से हर एक गुल[28] पर
सागरे[29] लाल[30] में जों[31] की जे जमुर्रद[32] को हल[33]

---

१ एवं २. फ़ारसी महीनों के नाम, ३. उद्यान, ४. क्रियाशीलता, ५. तलवार, ६. एक फ़ारसी महीने का नाम, ७. पतझड़, ८. पराजित, विजय; ९. कृतज्ञता प्रदर्शनार्थ साष्टांग दण्डवत्, १०. फलवती, ११. कृपा, उदारता; १२. महान्, १३. शक्ति, १४. उगने को, १५. वनस्पति, १६. आँकड़ा, १७. नदी का पानी, १८. बाग के चारों ओर, १९. किरण, प्रकाश; २. सूर्य, २१. लकीर, २२. उद्यान, २३. पृष्ठ, २४. सुनहरा, २५. दायरा, २६. पत्ता, ७७. आनन्द से, सुन्दर ढंग से; २८. फूल, २९. प्याला, ३०. माणिक, ३१. जिस प्रकार, जैसे; ३२. पन्ना, ३३. चूर्ण करना।

संग[1] ने रुतबए[2] आईना किया है पैदा
तेगे-कोहसार[3] हुई बस्की[4] हवाए-सैक़ल[5]
बर्ग[6]-बर्गे-चमन ऐसी ही सफ़ा[7] रखता है
गुल[8] को देखो तो निगह जा रहे सुम्बुल[9] प फिसल
लड़खड़ाती हुई फिरती है ख़याबाँ[10] में नसीम[11]
पाँव रखती है सबा सेह्न में गुलशन के सम्भल
फ़ैज़[12]-तासीर[13] हुआ यह है कि अब हंज़ल[14] से
शहद टपके जो लगे नश्तरे ज़म्बूरे[15]-असल[16]

इन संकलित शेरों से वसन्त ऋतु की सुषमा और सभी चीजों की प्रचुरता का अनुमान होता है। किन्तु 'सौदा' के सभी शेरों को पढ़ने से यह चित्र धुँधला हो जाता है। हाँ, प्रचुरता का एक स्पष्ट-सा ख़ाका मन में बैठता है। बात यह है कि उर्दू के कवि जब ग़ज़ल की परिधि से निकलकर किसी दृश्य या क्रमागत आवेगों का वर्णन करते हैं तो कुछ खोये-खोये-से फिरने लगते हैं; रास्ता, सीमा, मंज़िल—सभी का उन्हें धुँधला-धुँधला-सा ख़याल होता है। इसलिए अनुपात, सफ़ाई, बाह्य स्वरूप का उन्हें ध्यान नहीं रहता। फिर यह भी प्रत्यक्ष है कि 'सौदा' का रंग आम है, ख़ास नहीं। प्रत्येक विवरण से प्रकट होता है कि वह देखी हुई चीज़ों का वर्णन नहीं करते हैं, बल्कि ऐसे ब्यौरे प्रस्तुत करते हैं, जो आम और प्रचलित हैं: "शाख़े समरदार", "नवातात", "आबे-जू", "गुल"; "बर्गे-गुल", "आइन-ए-संग"-"नसीम"-सारे शब्द रस्मी हैं। ऐसी तस्वीर तो प्रत्येक कवि घर बैठे तैयार कर सकता है, पर जो कुछ भी हो, ये पंक्तियाँ निरर्थक नहीं। यदि यहाँ पर किसी ख़ास देखी हुई बहार का चित्र नहीं तो आम वसन्त ऋतु की झलक अवश्य है। वर्णन-शैली से पता चलता है कि कवि का हृदय भिन्न-भिन्न बहारों की ताज़गी, रंगीनी, वैविध्य और प्रचुरता से अवश्य प्रभावित हुआ है। कुछ पंक्तियाँ बरबस ध्यान आकर्षित करती हैं :

लड़खड़ाती हुई फिरती है ख़याबाँ[17] में नसीम
पाँव रखती है सबा सेह्न में गुलशन[18] के सम्भल

नसीम का लड़खड़ाना नजर के सामने घूमने लगता है। हर शेर में नवीनता और प्रफुल्लता है; मानों इनमें वसन्त की आत्मा देदीप्यमान है। क़सीदे की प्रस्तावना में 'सौदा' कभी बासन्ती सुषमा का वर्णन करते हैं तो कभी नैतिक विषयों को शेर के पेमाने में ढालते हैं :

---

१. पत्थर, २. सम्मानित स्थान, ३. पहाड़ी प्रदेश, ४. चूँकि, ५. गिला करनेवाली, ६. पत्तः-पत्ता, ७. सफ़ाई, चमक; ८. फूल, गुलाब का फूल; ९. एक प्रकार की ख़ुशबूदार घास, १०. उद्यान, ११. प्रातःकालीन समीर, १२. कृपा, प्रभाव; १३. असर, प्रभाव; १४. विष-वृक्ष, १५. भौंरा, मक्खी; १६. मधुमक्खी, १७. उद्यान, १८. बाग।

हुआ जब कुफ़्र[1] साबित है वः तमग़ाए[2]-मुसलमानी
न टूटी शेख़ से तस्बीहे[3] ज़ुन्नारे[4] सुलेमानी
हुनर पैदाकर औवल तर्क[5] कियो तब लिबास[6] अपना
न हो जो तेग़[7]-बेजोहर[8] वगेरना[9] नंगे[10] उरियानी[11]
फ़राहम[12] ज़र[13] का करना बाइसे[14] अन्दोहे दिल होवे
नहीं कुछ जम्मा सं गुंचे[16] को हासिल जुज़[17] परीशानी
ख़ुशामद कब करे आली[18] तबीयत अहले[19] दौलत की
न झाड़े आस्तिने-कहकशां[20] शाहों की पेशानी[21]
करे है कुल्फ़ते[22] अइआम[23] ज़ाया[24] कद्र मरदों की
हुई जब तेग़ ज़ंग[25]-आलूदा कम जाती है पहचानी
मोवक्क़र[26] जान अरबाबे[27]-हुनर को बे-लिबासी[28] में
कि जो हो तेगे - बा-जोहर उसे इज़्ज़त है उरियानी
बरंगे कोह[29] रह ख़ामोश[30] हर्फ़े[31] ना-सज़ा[32] सुनकर
कि ता[33] बदगो[34] सदाए[35]-ग़ैब[36] से खींचे पशीमानी[37]

इन शेरों में कुछ नैतिक विचारों का वर्णन है। इनमें कोई अनिवार्य सम्बन्ध तथा क्रम नहीं, कोई विशिष्ट विचार-प्रगति नहीं, इनका बयान गद्य में भी सम्भव था। लेकिन 'सौदा' ने उन्हें शेर के सांचे में ढाला है। गद्य में ये बातें सीधे-सादे ढंग से होतीं, कविता में इन्हें चित्र के रूप में परिणत किया गया है। प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे में कोई उपमा या रूपक है, और यह उपमा या रूपक मात्र अलंकार नहीं, बल्कि उनके विचार का एक अंश है। इसकी वजह से विचारों का मतलब प्रशस्त और प्रभाव-वर्द्धक हो जाता है। प्रत्येक विचार मानों एक सुन्दर चित्र है। आवेगों की तीव्रता, कल्पना की अनुरंजकता हर शेर में मौजूद है। 'ज़ौक़' में भी नैतिक विषय अक्सर मिलते हैं, लेकिन उनका बयान वे गद्य के ढंग पर करते हैं; उन्हें कविता के सांचे में नहीं ढाला जाता।

कभी-कभी 'सौदा' अपनी कल्पना के जोर से एक सुन्दर जीती-जागती मूर्त्ति का सर्जन करते हैं। यह काल्पनिक चित्र कितना सुन्दर और सजीव है :

फ़जिर[38] होत जो गई आज मेरी आंख झपक
दी वोहीं आके ख़ुशा ने दरे[39] - दिल पर दस्तक[40]
पूछा मैं कौन है? बोली कि वः मैं हूं ग़ाफ़िल[41]
न लगे शोक़ में जिसके कभू शायक़[42] की पलक

---

१. नास्तिकता, २. पदक, ३. माला, ४. जनेऊ, ५. छोड़ना, ६. कपड़ा, पोशाक; ७. तलवार, ८. बिना धार का, ९. नहीं तो, १०. शर्म, बेइज़्ज़ती, ११. नग्नता, १२. एकत्र करना, १३. सोना, १४. कारण, १५. शोक, १६. कली, १७. सिवाय, १८. उदात्त प्रकृति, १९. वाले, २०. छायापथ, २१. ललाट, २२. दुख-द्वन्द्व, २३. दिनों, समय; २४. नष्ट, २५. मुर्चा खाये हुए, २६. सम्मानित, २७. वाले, २८. नग्नता, २९. पहाड़; ३०. चुप, ३१. अक्षर, बात; ३२. अनुचित, ३३. तक, ३४. निन्दक, ३५. आवाज, ३६. परोक्ष, ३७. लज्जा, पश्चात्ताप, ३८. प्रभात, ३९. दरवाजा, ४०. खटखटाहट, ४१. अनभिज्ञ, ४२. चाहनेवाला, प्रेमी।

है ख़ुशी नाम मेरा मैं हूँ अजीज़[१] - दिलहा[२]
जिन्दगानी की हलावत है[३] जहाँ में मुझ तक
खोल आग़ोशे[४] - दिल और ले मुझे जल्दी नादां[५]
फिर ख़ुदा जाने यह दिन कब तुझे दिखलाए फ़लक[६]
सुनके यह मुज़दए[७]-जां-बख़्श[८] जो मैं खोलो आँख
अशअए[९]- नूर की - सी मुझको नज़र आई झलक
आँखें मल करके जो देखूँ हूँ तो एक बादला[१०] -पोश
सिर से ले ग़र्क़[११]जवाहिर में है वह पाँव तलक
हुस्न[१२] ऐसा कि जिसे माहे-शबे[१३] चारदहुम
यक-ब-यक देख तो यक चन्द[१४] ही रह जाय भुचक
जुल्फ़ें[१५] यों बिखरी हुई चेहरे प मांगें थीं दिल
जिस तरह एक खिलौने प हठें दो बालक
क़त्ल करने का यह जोहर[१६] न हो शम्शीर[१७] के बीच
इनके अब्रू[१८] से 'मुशाबिह[१९] न बनावें जबतक
सिल्के[२०]-गौहर[२१] की सफ़ा[२२] वाम[२३] ले उन दाँतों से
बर्क़[२४] दय़ुज़ा[२५] करे मौजे-तबस्सुम[२६] की चमक
वक़्ते[२७] नज़ारा[२८] मेरी जब निगहे दीदए[२९]-गीर
सिर से ले इस क़दे-राडना[३०] के गई पाँव तलक
फ़न्दुके[३१]-पा लगी कहने की न देखा होगा
सर्व[३२] की बेख़[३३] से फूला गुले-ग्रौरग[३४] अबतक
ज़र्क़[३५]बर्क़-ऐसी है पोशाक में उसके कि जिसे
कौंद बिजली की कहूँ या कहूँ शोले की चमक
बात इस लुत्फ़ से बहके थी देहन[३६] से उसके
बादा[३७] जों साग़रे[३८] लब-रेज़[३९] से जाता है छलक
ग़रज़[४०] इस शक्ल से आई जो नज़र वह काफ़िर[४१]
कहा मैं दिल की तरफ़ देखके अल्लाहो-मअक[४२]

---

१. प्यारा, २. दिल, हृदय; ३. मिठास, ४. गोद, ५. मूर्ख, ६. आसमान, ७. आँख की पलकों पर के बाल, बरौना; ८. प्राणदा, ९. ज्योति - किरण; १०. जरी का कपड़ा पहने हुए, ११. डूबा हुआ, १२. सौन्दर्य, १३. चौदहवीं का चाँद, १४. थोड़ी देर के लिए, १५. अलकें, १६. सत्त्व, असलियत, धार; १७. तलवार, १८. भौं, १९. समान, २०. लड़ी, २१. मोती, २२, चमन, सफाई; २३. कर्ज, वाम; २४. बिजली, २५. भीख माँगना, २६. मुस्कुराहट की लहर, २७. समय, २८. दर्शन, देखना; २९. ध्यान, चक्षु; ३०. सुन्दर शरीर, ३१. पैर की महावर, ३२. सरो का वृक्ष, ३३. जड़, ३४. एक प्रकार का गेन्दा, ३५, ठाट-बाटवाला, ३६. मुँह, ३७. शराब, ३८. प्याला, ३९. छलकता हुआ, ४०. सारांश यह कि, ४१. नास्तिक, ४२. तेरे साथ अल्लाह।

'सौदा' ने शायद इस स्वप्न का वर्णन इच्छापूर्वक करना चाहा था, लेकिन लिखते समय इस काल्पनिक चित्र ने उनके आवेगों को भड़काया, और उनकी सौन्दर्य-सुहृद कल्पना में हलचल मचा दी। 'सौदा' उन्हीं प्रचलित शब्दों, उन्हीं उपमाओं का प्रयोग करते हैं, जो किसी रूपवती स्त्री की प्रशंसा में व्यवहार किये जाते हैं। वह ज़रबफ़्त का कपड़ा पहने जवाहिरात से लदी हुई है। उसका सौन्दर्य ऐसा है कि उसे देखकर पूर्णिमा का चाँद भी आश्चर्यचकित हो जाय; अलकें चेहरे पर बिखरी हुई, भवें तलवार-सी तेज, चमकीले दाँत मोती की तरह जगमग, मुस्कराहट है कि बिजली की चमक, पैर की महावर गुले-औरंग की तरह, सीधे तने हुए कद पर सरो का धोखा—ये सारी चीजें नई नहीं, फिर भी यह चित्र परम्परागत तथा रस्मी नहीं। इसकी रचना कवि की कल्पना ने की है। इसमें जिन्दगी की आत्मा वर्त्तमान है :

बात इस लुत्फ़ से बहके थी देहन से उसके
बादा जों साग़रे लबरेज से जाता है छलक

कितना अनूठा है यह शेर ! विशेषतः यह 'बहके थी' का टुकड़ा कितना रोचक है। 'सौदा' ने स्वप्न में न सही, कल्पना में अवश्य आनन्द की छवि देखी थी। और, उसके आकर्षक एवं नायाब सौन्दर्य से प्रमुदित हुए थे।[1]

मैंने केवल तीन उदाहरणों पर सन्तोष किया है; और भी मिसालें दी जा सकती हैं। इन उदाहरणों से 'सौदा' की कविता की विविधता और उसके मूल्य-महत्त्व का अन्दाज़ा मिलता है। जो कठिनाई और संकीर्णता ग़ज़ल में थी, वह क़सीदे में रंचमात्र भी नहीं पाई जाती। इसलिए इसमें विचार व अनुभूतियाँ जल-प्रवाह की तरह चल पड़ती हैं। और बहुधा इस प्रवाह को काबू में लाना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता है। 'सौदा' बड़े विस्तार और सहृदयता के साथ भावनाओं तथा कल्पनाओं का वर्णन करते हैं। बहुत बार तो बस-बस कहने की नौबत आ जाती है।

१२ 'ज़ौक़' ने भी बड़े प्रबन्ध और परिश्रम से क़सीदे लिखे हैं। हर क़सीदे का रंग जुदा है, हर क़सीदे में एक नई बात पैदा करने की कोशिश की है। विविधता में भी 'सौदा' का अनुसरण करते हैं, लेकिन वह जोश, वह रंगीनी, वह गर्मी, वह वास्तविकता उन्हें प्राप्त नहीं। 'सौदा' ने ख़ुशी का जो चित्र खींचा है, 'ज़ौक़' भी उसी विषय को लेते हैं और उसमें नयापन पैदा करने की कोशिश करते हैं :

सेहर[1] जो घर में ब-शक्ले[2]-आईना[3] था मैं तनहा[4] नज़र[5] व हैराँ[6]
तो एक परी-चेहरा, हूर[7] तलअत[8], बशक्ले-बिल्क़ीस[9] व माहे[10] कनआं
परी की सूरत, चमन की रंगत, गर[11] उसका शेवा[12] तो उसका जलवा[13]
ज़बान शीरीं[14], बयान[15] रंगीं, कलामे[16]-रिन्दां[17], ख़िरामे[18]-मस्तां[19]

---

१. प्रातःकाल, २-३. आईने की तरह, ४. अकेला, ५. दृष्टि, ६. आश्चर्यचकित, ७. अप्सरा, ८. चेहरा, ९. हज़रत सुलेमान की स्त्री, १०. कनआं के चाँद, हज़रते युसुफ; ११. यदि, १२. कार्य, धंधा; १३. छवि, सौन्दर्य; १४. मीठी, १५. बोलचाल, १६. बातचीत; १७. स्वच्छन्द, मनमौजी लोग; १८. ठुमुक-ठुमुक चाल, १९. उन्मत्त व्यक्तियों।

अनीसे[१] - खिल्वत,[२], जलीसे[३] -जल्वत[४], हरीफ़े[५]-हिकमत[६], जरीफ़े[७]-सोहबत[८]
व[९] बज़्मे[१०]-यारां,[११] बदिल-बहारां[१२] व अहले[१३]-इज़्ज़त[१४] गुले[१५]बदामा[१६]
जबीं[१७]बशक्ले[१८]- महे[१९]-मुनौवर[२०], अरक़[२१]के क़तरे[२२] हैं सीमीं[२३]अख़्तर[२४]
हलाल[२५] अब्रू[२६], निगाह जादू, ख़दंग[२७] मिज़्गां[२८] व चश्मे[२९] - फ़त्तां[३०]
व रूये[३१]-रंगीं, निगारे[३२]-बुस्तां[३३], शगूफ़ा[३४] ख़न्दां[३५] मगर न ख़न्दां
व मूये[३६] - पेचां[३७] से इश्क[३८]-पेचां जो हैं परीशां[३९] तो दिल परीशां
चः गोश[४०] पर ज़ेबे[४१] कज-कुलाही[४२] जो देखो बीनी[४३] तो या इलाही[४४]
देहन[४५] में ग़ुंचा[४६] लबों[४७]में गुल्बर्ग[४८] व रूये रोशन[४९] में मेह्रे[५०]-ताबां[५१]
निगाह[५२] सागर[५३] - कशे - तमाशा, बेयाज़े[५४] - गर्दन सुराही आसा[५५]
वह गोल बाज़ू[५६], वह गोरे साअद[५७], वह पंजरा रंगीं बख़्ने - मर्जा[५८]
कमर नज़ाकत से लचकी जाए कि है निज़ाकत का बार[५९] उठाए
और उस प सी नूर लहर खाए, फिर उस प हैं दो क़मर[६०] फ़रोजा[६१]
वह रान रोशन वः साक़े[६२] सीमीं वह पाय[६३] नाज़ुक हेना[६४] में रंगीं
वह क़द क़यामत[६५], वह फ़ित्ना[६६] क़ामत[६७] दिलों प शामत जो हो ख़िरामां[६८]
जो नाम पूछा कहा ख़ुशी हूं, जो वस्फ़[६९] पूछा तो दिल्बरी[७०] हूं
बहुत जो पूछा तो हंसके बोली कि 'ज़ौक़' तू भी अजब है नादां[७१]

यहां शब्दों की भरमार अधिक है। चुस्त पद-योजना और आकर्षक बन्दिशें भी हैं। लेकिन इन सबके बावजूद इस तस्वीर में वह आनन्द, वह सौन्दर्य नहीं, जो 'सौदा' की तस्वीर में है। एक सूक्ष्म तत्त्व यह भी है कि 'सौदा' ख़ुशी को सुपुप्तावस्था में देखते और 'ज़ौक़' जाग्रत् अवस्था में। फ़जिर होते ही 'सौदा' की आंख झपक जाती है तो खुशी आकर उनके हृदय-पट को खटखटाती है और वह आंखें मलकर देखते हैं तो उन्हें यह बादले का परिधान धारण किये जवाहिरात में डूबी नज़र आती है। इसके खिलाफ़ 'ज़ौक़' प्रातःकाल घर में आईने की तरह अकेले खिन्न तथा विक्षिप्त

---

१. मित्र, २. एकान्तवास, ३. साथ बैठनेवाला, ४. सामने, ५. मित्र, ६. बुद्धि, ७. हास्य-विनोद करनेवाला, ८. सहवास, ९. में, १०. सभा, मंडली; ११. मित्रगण, १२. प्रफुल्ल हृदय, १३. वाले, १४. मान-प्रतिष्ठा, १५. फूल, १६. अँगरखे या कुर्त्ते का लटकता भाग, १७. ललाट, १९. समान, २०. चन्द्रमा, २१. चमकीला, प्रकाशमान; २२ पसीना, २३. बूंद, २४ रुपहला, २५ सितारा, २६. द्वितीया का चांद, २७. भौं, २८. तीर, २९. बरौनी, आंख, ३०. मोहक, आकर्षक; ३१. चेहरा, ३२. माशूक, ३३. फुलवारी, ३४. फूल, ३५. हँसता हुआ, ३६. बालों से, ३७. उलझे हुए, ३८. एक पुष्पलता, ३९. बिखरे हुए, ४०. कान, ४१. शोभा, ४२. टेढ़ी टोपी का होना, ४३. नाक, ४४. भगवान्, ४५. मुंह, ४६. कली, ४७. ओठों, ४८. फूल की पंखुड़ी, ४९. चमकता हुआ, ५०. सूर्य, ५१. चमकता हुआ, ५२. दृष्टि, ५३. प्याला, ५४. उजला, गोरा; ५५. समान, ५६. बांहें, ५७. कलाई, ५८. मूंगा, ५९. बोझ, ६०. चन्द्रमा, ६१. देदीप्यमान, चमकता हुआ; ६२. पैर की पिल्ली, ६३. पैर, ६४. मेंहदी, ६५ प्रलयकाल; ६६. झंझट खड़ा करनेवाला, ६७. ऊंचाई, डील-डौल; ६८. ठुमुककर चलता हुआ, ६९. गुण, ७०. चित्ताकर्षण, ७१. मूर्ख, अनभिज्ञ।

अस्वथा में बैठे हुए थे कि अप्सरारूपिणी चन्द्रवदनी दीख पड़ती है। स्वप्न में ख़ुशी का साकार दीख पड़ना अधिक सौन्दर्य रखता है। इसके अतिरिक्त 'सौदा' की सादगी में अधिक कलाकारी है। 'ज़ौक़' की तस्वीर आद्योपान्त कृत्रिम जान पड़ती है। एक शेर को लीजिए :

ब रूए रंगीं निगोर-बुस्तां शगूफ़ा ख़न्दां मगर न ख़न्दां
ब मूए पेचां से इश्क़ - पेचां जो हैं परीशां तो दिल परीशां

'शगूफा ख़न्दां मगर न ख़न्दां', 'ब मूए पेचां से इश्क़ पेचां' में अस्वाभाविकता और कृत्रिमता स्पष्ट रूप से दीख पड़ती है। इसकी तुलना में 'सौदा' का यह शेर अधिक सरल और स्वाभाविक जान पड़ता है :

ज़ुल्फें यों चेहरे प बिखरी हुई माँगें थीं दिल। जिस तरह एक खिलौने प हठें दो बालक

यही अन्तर सब जगह है। 'ज़ौक़' आंशिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। जीवन्त चित्र नहीं खींचते—ऐसा चित्र, जो बोलने लगे। उदाहरणस्वरूप वे कहते हैं : 'व: पाये नाजुक हेना में रंगीं'। यह एक घटना का वर्णन-मात्र है और बस। इसमें कुछ जान नहीं, नाटकोचित गरिमा नहीं, काव्य-सुलभ सौन्दर्य नहीं। सौदा कहते हैं :

फुन्दुक़े[१]-पा[२] लगी कहने कि न देखा होगा
सर्व[३] की बेख़[४] से फूला गुले - औरंग[५] अबतक

और फिर 'सौदा' के इस शेर का तो जवाब ही नहीं :

बात इस लुत्फ़[६] से बहके थी देहन[७] से उसके
बादा[८] जों साग़रे[९] लबरेज़[१०] से जाता है छलक

सारांश यह कि 'ज़ौक़' के सारे प्रबन्ध एवं कृत्रिमता के बावजूद, शायद इस प्रबन्ध एवं कृत्रिमता ही के कारण, 'ख़ुशी' एक सुन्दर, किन्तु निष्प्राण मूर्त्ति-सी जान पड़ती है, 'सौदा' ने इस मूर्त्ति में जान फूँक दी है।

इसी प्रकार 'सौदा' के अनुकरण में 'ज़ौक़' भी वसन्त और वासन्ती छटा का शाब्दिक चित्र खींचते हैं :

ज़हे[११] निशात[१२] अगर कीजिए इसे तहरीर[१३] + अयां[१४] हो ख़ामा[१५] से तहरीरे नग़मा[१६] जाय सरीर[१७]
हवा प बाग़े-जहाँ में शिगुफ़्तगी[१८] का जोश + कलीदे[१९] - क़ुफ़्ले - दिले तंग व ख़ातिरे[२१] दिलगीर[२०]
करे है वा[२३] लबे-ग़ुंचा[२४] दरे[२५] हज़ार सोख़न[२६] + चमन में मौजे[२७] तबस्सुम[२८] की खोलकर ज़ंजीर

---

१. महावर, २. पैर, ३. एक सीधा वृक्ष, जो माशूक़ के क़द का उपमान है, ४. जड़, ५. एक तरह का गेंदे का फूल, ६. मज़ा, आनन्द; ७. मुँह, ८. शराब, ९. प्याला, १०. छलकता हुआ, ११. वाह रे सौभाग्य, १२. ख़ुशी, १३. वर्णन (लिखित), १४. प्रकट, १५. कलम, १६. राग, १७. लिखते समय कलम से निकलनेवाली आवाज, १८. प्रफुल्लता, १९. कुंजी, २०. ताला, २१. मन, २२. सम्पुटित हृदय, २३. खुला हुआ, २४. कली का मुँह, २५. दरवाजा, २६. बात, २७. लहर, २८. मुस्कराहट।

असर[1] से बादे[2]-बहारी के लहलहाते हैं + ज़मीं पहमसरे[3]-सुंबुल है मोजे न क़शे हसीर[4]
हवा प दौड़ता है इस तरह से अब्रे[5] सियाह + कि जैसे जाए कोई पीले-मस्त बे ज़ंजीर
न ख़ारे[6]-दश्त है नर्मी में ख़्वाबे[7] मख़मल है + हर एक तारे-रगे-संग भी है तारे हरीर[8]
हर एक ख़ार है गुल हर गुल एक साग़रे[9]-ऐश + हर एकदश्त[10] चमन हर चमन बहिश्त[11]-नज़ीर
हरएक क़तर ए-शबनम गोहर[12] की तरह ख़ुशाब[13] + हर एक गोहर गोहरे-शब चिराग़[14] पुर-तन्वीर[15]
चमन में है यह दरख़्ताने[16]-सब्ज़ पर जोबन + कि ज़हर खाते हैं सब्ज़ाने[17]-ख़ित्तए[18] कश्मीर

'सौदा' से तुलना करने पर जान पड़ता है कि 'ज़ौक़' में वह प्रफुल्लता नहीं, कल्पना एवं आवेगों का वह जोश भी नहीं, जो 'सौदा' को प्राप्त है। कहने को तो ज़ौक़ भी नये रूपक और नये चित्र गढ़ते हैं, किन्तु इनमें वह असर भी नहीं। 'सौदा' की कल्पना एक अविरल धारा की तरह प्रवहमाण है, जिसे रोकना कठिन है। 'ज़ौक़' की कल्पना में भी प्रवाह है, परन्तु उसकी चाल में कुछ रुकावट-सी जान पड़ती है। ओज इसमें भी है, लेकिन यह ओज रुक-रुककर अपना जोश दिखाता है, जैसे इसकी राह में कोई चीज़ रोड़े अटकाती हो। 'ज़ौक़' भी अक्सर दुर्लभ उपमाओं का आविष्कार करते हैं, जिनसे सारा नक़्शा आँखों के सामने घूमने लगता है :

"हवा प दौड़ता है इस तरह से अब्रे-सियाह + कि जैसे जाय कोई पीले-मस्त बे-ज़ंजीर"

किन्तु 'ज़ौक़' अपनी कृत्रिमता को सतत स्वाभाविक भाव के ढाँचे में नहीं ढाल सकते हैं। इसी बात की क्षमता 'सौदा' को प्राप्त थी। 'ज़ौक़' की कृत्रिमता सदा अस्वाभाविक ही जान पड़ती है। उनके शेरों में अधिकतर बाहरी बनावट है, जो अस्वाभाविक है और कृत्रिमता का द्योतक है, जैसे :

"हर एक तारे-रगे-संग भी है तारे हरीर"। या इन दोनों शेरों को लीजिए :

हर एक ख़ार[19] है गुल हर गुल एक साग़रे[20] ऐश
हर एक दश्त चमन, हर चमन बहिश्त[21]-नज़ीर
हर एक क़तरए शबनम गुहर[22] की तरह ख़ुशाब[23]
हर एक गुहर, गुहरे शब चिराग़[24] पुर-तन्वीर[25]

विषयाभिव्यक्ति में ज़ोर तो हाथ आ जाता है, लेकिन कृत्रिमता स्पष्ट रूप से प्रकट है।

---

१. प्रभाव, २. वसंत-ऋतु की हवा, ३. सुंबुल के बराबर, ४. चटाई, ५. बदली, ६. मरुस्थल के काँटे, ७. नींद, ८. पत्थर की नस की धारी, ९. प्याला (भोग-विलास का), १०. मरुस्थल, ११. स्वर्ग के ऐसा, १२. मोती, १३ अच्छे पानीवाला, अच्छी चमकवाला; १४. चिराग के ऐसा चमकनेवाला मोती, १५. प्रकाशमान, १६. हरे-भरे वृक्ष, १७. नवयुवक, १८. क्षेत्र, १९. काँटा, २०. प्याला. २१. स्वर्ग के ऐसा, २२. मोती, २३. अच्छे पानी का, २४. रात के समय चिराग के ऐसा प्रकाशमान; २५. प्रकाशपूर्ण।

'ज़ौक़' में वह माधुर्य और लयदारी भी नहीं, जो 'सौदा' के शेरों की प्रमुख विशेषता है; और उनमें वह स्वाभाविक ओप भी नहीं। उनका ओप भी अस्वाभाविक जान पड़ता है :

वाह वा क्या मोतदिल[१] है बाग़े-आलम की हवा
मिस्ले - नब्ज़े[२] - साहेबे - सेहत है हर मौज़े[३] - सबा
भरती है क्या-क्या मसीहाई[४] का दम बादे[५] - बहार
बन गया गुलज़ारे[६] - आलम रश्के - सद - दारुश्शफ़ा[७]
है गुलों के हक़ में शबनम मरहमे - ज़ख़्मे - जिगर[८]
शाख़े-बिशिकस्ता[९] को है बारां[१०] का क़तरा मोमिया[११]
हो गया मौक़ूफ़[१२] यह सौदा[१३] का बिल्कुल एहतेराक़[१४]
लाला बेदाग़े[१५] - सियह पाने लगा नश्वो - नुमा[१६]
हो गया ज़ायल[१७] मिज़ाजे-देह्र[१८] से यां तक जुनूं
बेदे-मजनूं[१९] का भी सेहरा[२०] में नहीं बाक़ी पता
होता है लुत्फ़े हवा से इस क़दर पैदा लहू
बर्ग[२१] में हर नख़्ल[२२] की सुर्ख़ी है ज्यों बर्गे-हिना[२३]
पाई यह इसलाह[२४] सफ़रा[२५] ने कि दुनिया में कहीं
ज़र्द-चश्म[२६] अब देखने को भी नहीं है कहरुबा[२७]

'ज़ौक़' जिस प्रबन्ध और कृत्रिमता से काम लेते हैं, वह दिनमणि की तरह प्रकाशमान है। एक अलंकार-रूपक, जिसका उन्होंने विस्तारपूर्वक प्रयाग किया है। यह बात प्रशंसनीय है। उर्दू-कवियों में रूपक का सविस्तर प्रयोग कम मिलता है। इस रूपक का आरम्भ पहली पंक्ति में 'मोतदिल' शब्द से होता है। सारे शब्द और चित्र इसी रूपक के अन्तर्गत आते हैं—नब्ज़[२८] सेहत[२९], मसीहाई[३०], दम[३१], दारुश्शफ़ा[३२], मरहमे[३३] - जिगर, मोमिया[३४], सौदा[३५], एहतेराक़[३६], जुनूं[३७], इसलाह[३८], सफ़रा[३९], ज़र्द-चश्म[४०]। लेकिन यहां रूपक की स्वाभाविक प्रगति नहीं होती। वह स्वाभाविक रूप से फैलता तथा विकसित नहीं होता। रूपक ने शाब्दिक

---

१. समशीतोष्ण, बराबर दर्जे का, २. स्वस्थ व्यक्ति की नाड़ी, ३. समीर-लहरी, ४. मसीहा का काम करना, ५. हवा, ६. दुनिया का बगीचा, ७. चिकित्सालय से स्पर्द्धा करने वाला ८. कलेजे के घाव की दवा, ९. टूटी हुई डाली, १०. वर्षा, ११. एक औषधि-विशेष, १२. बन्द, नष्ट, ख़तम; १३. पित्त, १४. गर्मी, जलाना; १५. बिना काले धब्बे के, १६. उगना, बढ़ना; १७. नष्ट, १८. संसार की प्रकृति, १९. एक प्रकार का बेंत का पौधा, २०. मरुस्थल, जंगल; २१. पत्ता, २२. हरा पेड़, २३. मेंहदी की पत्ती, २४. दुरुस्ती, परिष्कार; २५. पीला पित्त, २६. पीली आँखवाला, २७. एक पीले रंग का पत्थर, जो सूखी घास को चुम्बक की तरह आकर्षित करता है; २८. नाड़ी, २९. स्वास्थ्य, ३०. मसीहा का सद्‌गुण (ईसामसीह में यह शक्ति थी कि जिस रोगी का स्पर्श कर देते थे वह अच्छा हो जाता था), ३१. साँस, ३२. चिकित्सालय, ३३. औषधि, मलहम; ३४. एक औषधि-विशेष, ३५. पित्त, ३६. भस्मीकरण, शक्ति, जलाना; ३७. उन्माद, पागलपन; ३८. दुरुस्त करना साफ़ करना, ३९. पीला पित्त, ४०. पीली आँखवाला।

श्लेष का रूप धारण कर लिया है। इसलिए रूपक की प्रगति स्वाभाविक नहीं, स्पष्टतया कृत्रिम जान पड़ती है। इस शेर से कृत्रिमता का भेद खुल जाता है :

हो गया ज़ायल[1] मिज़ाजे[2] देह्र[3] से यां तक जुनूं
बेदे-मजनूं[4] का भी सेहरा[5] में नहीं बाक़ी पता

संसार की प्रकृति से उन्माद के नष्ट हो जाने के प्रमाण में यह कहना कि बेदे-मजनूं का भी जंगल में चिह्न-मात्र नहीं रह गया, केवल शब्दों का गोरख-धंधा है। यहां पर जनून (उन्माद) और बेदे-मजनूं में शाब्दिक श्लेष के सिवा और कुछ भी नहीं। यही कृत्रिमता अन्तिम शेर में भी है :

पाई यह इस्लाह सफ़राने कि दुनिया में कहीं
ज़र्द-चश्म अब देखने को भी नहीं है कहरुवा[6]

सफ़रा और ज़र्द-चश्म में श्लेष स्पष्ट है।

इस उदाहरण में परिश्रम, खोज, अर्थगर्भता, पाण्डित्य, विद्वत्ता—सब कुछ है, लेकिन काव्य की आत्मा मौजूद नहीं। जिस भाव को 'ज़ौक़' इस टीम-टाम के साथ बयान करते हैं उसी भाव को 'ग़ालिब' चार शेरों में आसानी से दिखा सकते हैं। 'ज़ौक़' के 'क़सीदे' कवि-सुलभ अभ्यास से अधिक महत्त्व नहीं रखते। अभिव्यक्ति-कुशलता, दीर्घ साधना, प्रौढ़ता, भाषा की प्रांजलता, मुहावरों की सफ़ाई, पदयोजना की मौलिकता—ये सारी चीजें पाई जाती हैं। कुछ ऐसे शेर भी हैं, जो अच्छे हैं, लेकिन 'ज़ौक़' प्रस्तावना (तश्बीब) को स्वतन्त्र कविता नहीं बना सकते। उनकी कविता में कुछ अच्छे टुकड़े निकल आते हैं, बस इतना ही और कुछ नहीं है।

१. नष्ट, २. प्रकृति, ३. दुनिया, संसार; ४. एक प्रकार का बेंत, ५. मरुस्थल, ६. एक प्रकार का पत्थर, जो सूखी घास को इस तरह आकर्षित करता है जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है।

सन्दर्भ-संकेत

१. मैंने केवल पन्द्रह शेरों को ही पर्याप्त समझा है। 'सौदा' ने ४७ शेर लिखे हैं और शेरों की अधिकता से इस काल्पनिक चित्र के सौन्दर्य में वृद्धि नहीं होती, उसमें एक भद्दा दाग़ लग जाता है। उर्दू के कवियों की रचनाओं में यह एक खास कमज़ोरी है। उन्हें रूप-सौन्दर्य का ज्ञान कम है। वे अच्छी चीजों को भी रचनात्मक शक्ति की न्यूनता, कल्पना की बेलगामी या बदलगामी, ब्यवरों की अधिकता से बिगाड़ देते हैं। देखिए :

फ़जिर होते जो गई आज मेरी आँख झपक
दी वोहीं आके ख़ुशी ने दरे[१] दिल पर दस्तक[२]
पूछा मैं कौन है बोली कि वह मैं हूँ ग़ाफ़िल[३]
न लगे शौक़[४] में जिसके कभू शायक़[५] की पलक
है ख़ुशी नाम मेरा मैं हूँ अज़ीज़[६] - दिलहां
ज़िन्दगानी की हलावत[७] है जहां[८] में मुझ तक
खोल आग़ोशे[९] - दिल और ले मुझे जल्दी नादां[१०]
फिर ख़ुदा जाने यः दिन कब तुझे दिखलाएँ फ़लक[११]
सुनके यह मुज़दए[१२]-जां-बख़्श जो मैं खोली आँख
अशअए[१३]-नूर[१४] की-सी मुझको नज़र आयी झलक
आँख मल करके जो देखूँ हूँ तो एक बादला[१५]-पोश
सिरे से ले ग़र्क़[१६] जवाहिर[१७] में है वह पाँव तलक
हुस्न[१८] ऐसा कि जिसे माहे[१९]-शबे[२०]-चार[२१]दहुम
यक-ब-यक देखे तो यकचन्द[२२] ही रह जाय भुचक
चेहरे में ऐसी है गर्मी कि शब-बो-रोग़ जिसे
याद करती ही रहे दामने मिज़गां[२३] की झपक
ज़ुल्फ़ें यों चेहरे प बिखरी हुई मांगें थीं दिल
जिस तरह एक खिलौने प हठें दो बालक
जाऽब[२४] वह क़हर[२५] कि घटने में हों जिसके हर लहर

---

१. दरवाज़ा, २. ठोकर, खटखटाहट; ३. लापरवाह, ४. अभिलाषा, ५. अभिलाषा करने-वाला, ६. प्यारा, सबका प्रेमपात्र; ७. मिठास, ८. दुनिया, ९. हृदयांक, १०. मूर्ख; ११. आसमान, १२. प्राणवर्द्धक सुख-सम्वाद, १३. किरणें, १४. प्रकाश, १५. गोटा; १६. डूबा हुआ, निमग्न; १७. रत्न, १८. सौन्दर्य, १९. चन्द्रमा, २०. रात, २१. चौदहवीं; २२. बिल्कुल, २३. बरौनी, २४. अलकें, २५. बला, आफ़त, ज़ुल्म।

घर डुबा देने को उश्शाक़[1] के दरियाय-अटक
नागिनी पेच में आ उनके न मांगे पानी
खेल जावे वहीं काला जो उसे उसकी लटक
जबीं ऐसी कि जिगर माह का हो जावे दाग़
उसकी तस्बीह[2] से जब उसको तज़ावज़[3] दे फ़लक
क़त्ल करने का यः जौहर[4] न हो शमशेर[5] के बीच
उसके अब्रू[6] से मुशाबेह[7] न बनावें जब तक
ढीठ वह तेज़ कि आलम[8] में नहीं जिसकी पनाह
चश्म[9] वह तुर्क कि हो क़ौम[10] जिन्हों का उज़्बक[11]
फ़ितना[12] उस चश्म का ऐसा कि मिज़ा[13] से खूँख़्वार[14]
मुत्तासल[15] चौंकते दा कर दिया करते हैं थपक
हुस्न से कान के आवेज़े[16] में यह लुत्फ़[17] कि ज्यों
मुस्तअद[18] क़तरए[19]-शबनम कि पड़े गुल[20] से टपक
बह्रे-ख़ूबी[21] कि गोया मछली है कुल्लाब[22] के बीच
नथ के हल्क़े में जो देखे कोई नथने की फड़क
नज़र आया न देहन[23] बीनी[24] की तंगी के सबब[25]
मुनहर्जी[26] अपनी से गो उनने तराशी ऐनक[27]
मिस्सी[28]-आलूद लब अख़गर[29] थे तहे[30] ख़ाक स्तर[31]
कि हवा से वह सोख़न[32] कहने को जाते थे दहक
सिल्के[33]-गौहर की सफ़ा[34] वाम[35] ले उन दांतों से
बर्क़[36] दरयूज़ा[37] करे मौजे[38] तबस्सुम[39] की चमक
दोनों आरिज़[40] गोया शीशे हैं मये[41] गुलगूं[42] के
ज़नख़[43] इन दोनों में हैं जैसे नमकदां[44] में गज़क[45]
वस्फ़[46] में उसकी मलाहत[47] के पढ़ूं एक मतला[48]
जिसके आगे न रखे मतलए[49] अनवार नमक

१. आशिकों, २. रूप, उपमा; ३. बढ़ा देना, ४. सारतत्त्व, ५. तलवार, ६. भौं, ७. समान, सदृश, समरूप; ८. दुनिया, ९. आँख, १०. जाति, ११. मोगलों के एक कबीले का नाम, १२. झगड़ा, फसाद, दुष्टता; १३. बरौनी, १४. रक्त-पिपासु, १५. लगातार, सटा हुआ; १६. लटकन, १७. आनन्द, १८. तैयार, तत्पर; १९. ओस-कण; २०. फूल; २१. छवि-समुद्र; २२. मछली मारने की बंसी, २३. मुंह, २४. नाक, २५. कारण, २६. नाक के नथने, २७. चश्मा, २८. लिपटे हुए, २९. चिनगारी, ३०. नीचे, ३१. राख, ३२. बात; ३३. मोती की लड़ी, ३४. चमक, ३५. उधार, ३६. बिजली, ३७. भीख मांगे, ३८. लहर, ३९. मुस्कान, ४०. कपोल, ४१ शराब, ४२. सुर्ख़, ४३. चिबुक, ४४. नमक रखने का बरतन, ४५. चिखना, जो शराब पीते समय खाया जाता है; ४६. सद्गुण, ४७. नमकीनी, सौन्दर्य; ४८. ग़ज़ल क़सीदे की पहली पंक्ति, ४९. सूर्य निकलने की जगह।

मतला

रंगे रुख़सार[१] से शर्मिन्दा हो कुन्दन की दमक
आगे ग़बग़ब[२] के ख़िजालत[३] ज़दा सोने की उलक
ढीले पेच उसके ने गर्दन का बढ़ाया यह हुस्न[४]
जल्वागर शम्म: हो जैसे तहे दामाने[५] शबक[६]
साअद[७] वो दस्ते हेना[८]-बस्ता की ऐसी हरकात
शाख़ में गुल के पवन बहने से जों आए लचक
देखे जो उसके कुचों को य: तयक्कुन[९] हो उसे
तम्बू यह तान के यों काम का उतरा है कटक
या व: माजूने[१०] मुवह्‌ही[११] की हैं डिबियाँ ऐसी
आवे हेजान[१२] में छिड़के से जिन्हें रूहे[१३]-मलक
प्यारी-प्यारी वह लगें नज़रों में ऐसी कि निगाह
यही चाहे कि कभू पास से इसके न सरक
लुंज यह क़स्द[१४] रखे डाल दे तू हाथ इन पर
लंग के दिल में भी आ जाय कि ले भाग उचक
नाफ़[१५] के हुस्न को उसके जो किया मैंने क़यास[१६]
दिलनशीं[१७] यों हुआ मेरे कि वेला शुबह: व शक
नर्गिसी[१८]-चश्म कोई होगा कि जिसकी यह आँख
लगके छाती से सफा के सबब आई है ढलक
कमर उसकी मैं न देखी कि करूँ उसका वस्फ़
थी वह एक आहुए[१९] - दिल के लिए चीते की लपक
आगे तो मैं नहीं कह सकता कुछ उसकी तारीफ़
यों सबा[२०] कहती है मुझसे कि बस अब ज्यादा न बक
पस मैं रानों को कहूँ क्या कि व(ह) हैं आईना
उनसे भी छूटे न आँख उनसे अगर जाय अटक
आवे जिस बज़्म[२१] में उस साक़[२२] बिलौरीं[२३] का ज़िक्र
जल्वए[२४]-शम्मा का पामाले[२५] हसद[२६] होवे चमक

---

१. कपोल, मुखमण्डल; २. गले के ऊपर और ठोड़ी के नीचे का लटकता हुआ मांसल भाग, ३. लज्जित, ४. सौन्दर्य, ५. कुर्ते का लटकता हुआ भाग, ६. कंघी की खाल; ७. कलाई, ८. मेंहदी लगी हुई, ९. विश्वास, १०. अवलेह, ११. धातुवर्द्धक, १२. उफान, १३. फ़रिश्ता, १४. इच्छा, १५. नाभि, १६. अनुमान; १७. हृदयंगम, १८. एक पुष्प-विशेष जो आँखों का उपमान है, १९. हिरन, २०. समीर, २१. सभा, महफ़िल; २२. पैर की फिल्ली, २३. शीशे के समान, २४. छवि, २५. पददलित, २६. ईर्ष्या।

पुश्ते[1]-पा छीने रूए[2] 'लैला' से 'मजनूँ' का दिल
    ख़ूने 'फ़रहाद'[3] सिवा 'शीरीं'[4] से चाहे वह फनक
वक़्ते - नज़्ज़ारा[5] मेरी जब निगहे-दीदए - ग़ौर[6]
    सिर से ले उस क़दे[7] रअ़ना[8] के गई पांव तलक
फ़ुन्दुक़े[9] पा लगी कहने कि न देखा होगा
    सर्व की बेख़ से फूला गुले[10] - औरंग अब तक
क़ामत[11] ऐसा है कि हंगामें[12]-ख़िराम[13] उसके अगर
    आगे आ जाय क़यामत[14] तो य(ह) बोले कि सरक
क़दम इस धज से रखे है कि सिर आलम[15] का
    मूजिबे[16] शोर हो ख़लख़ाल[17] की पांवों की झनक
कज[18]-अदा[19] कज चले जिस तरह वह अठखेली से
    मौजे[20] दरिया भी उसे देखे तो रह जाय ठिठक
ज़र्क़[21]-बर्क़ ऐसी है पोशाक में उसकी कि जिसे
    कौंद बिजली की कहूँ या कहूँ शोले[22] की चमक
जैसी सज से थी डाले बीच हमायल[23] गुल की
    वैसी ही इत्र की बू वैसी ही सोंधी की महक
कैफ़ी[24] यां तक कि य(ह) अन्दाज़े[25] सोख़न[26] में उसके
    किसी को हश्त कह उठना किसी को दूत्त दबक
बात इस लुत्फ़ से बहके थी देहन[27] से उसके
    बादा[28] जो साग़रे[29] लबरेज़[30] से जाता है छलक
ग़रज़[31] इस शक्ल से आई जो नज़र वह काफ़िर[32]
    मैं कहा दिल की तरफ देख के अल्लाहो-मअक[33]

यह बात सर्वविदित है कि अटक-सागर प्रेमियों का घर न डुबाये, काला न खेले, उज़्बक जाति का ज़िक्र न हो, कुल्लाब के बीच सुषमा-सिन्धु की मछली न हो, लुंज और लंग कुचों पर हाथ डालने या उन्हें ले भागने का संकल्प न करें और इसी तरह की कुछ और बातें न होतीं तो कोई विशेष हानि न होती।

---

१. पैर का ऊपरी भाग, २. चेहरा, ३. ईरान का विख्यात प्रेमी, जो 'शीरीं' पर आसक्त था, ४. 'फ़रहाद' की प्रेमिका, ५. दृश्य, नज़र; ६. ध्यान से देखनेवाली दृष्टि, ७. लम्बाई, ८. सुन्दर, सुडौल; ९. महावर, आलता; १०. एक प्रकार का गेन्दा, ११. डील-डौल, १२. समय, १३. चलना, १४. प्रलय, १५ दुनिया, १६. कारण, १७. घुँघरू, १८. टेढ़ा, १९. भावभंगी, २०. लहर, २१. चमक-दमक, २२. आग की लौ, २३. हैकल, माला; २४. मदमत्त, २५. ढंग, २६. बात, २७. मुँह, २८. शराब, २९. प्याला, ३०. छलकता हुआ, ३१. सारांश यह कि, ३२. नास्तिक, माशूक; ३३. भगवान् तेरे साथ रहें (भला करें)।

ऐसी जीती-जागती तस्वीर परम्परागत नखशिख-वर्णन बन जाती है। जिन शेरों को मैंने चुना है उनमें जान है, कविता है, शेष भरती के शेर हैं अथवा परम्परागत ढंग के हैं। 'सौदा' यह नहीं समझते थे कि सब बातें नहीं कही जातीं; कम-से-कम सब बातें बार-बार नहीं कही जातीं।

(२) 'ज़ौक़' ने एक दूसरा चित्र भी प्रस्तुत किया है। वह यह है, और इसमें भी कृत्रिमता है, बनावट है :

लग गई आँख मेरी देखता क्या ख़्वाब में हूँ
कि मुजस्सम[1] नज़र आई है नवेदे[2] बेहजत[3]
अल्लह-अल्लाह रे हुस्न उसका कि सर-ता[4]-ब-क़दम
था वह ख़ालिक़[5] का तमाशाए- नवेदे कुदरत[6]
याद करता क़दे रअना[7] को है उसके ज़ाहिद[8]
दमे[9] तकबीर[10] जो कहता है सदा क़द[11] क़ामत
चश्मे वहशी[12] को अगर अपनी वः दिखलाए तो हो
चश्मे आहू से हिरन तिश्नए[13]-जामे[14]-वहशत[15]
दिले शामत[16]-ज़दा के दर-पए[17] तदबीरे-हलाक[18]
ज़ुल्फ़े बाज़ूं[19] थी वह रुख़सार[20] प बाज़ू-तिब्बत
आतिशे[21]-हुस्न से एक शोलए सरकश[22] बीनी[23]
मौजए[24] दौरे-लतीफ़[25] उसकी भवों की हालत
फ़ौजे[26] मिज़गां[27] वह बला[28] होवे सफ़[29] आरा तो करे
दस्ते[30] बेदाद[31] से यकदस्त दो आलम[32] गारत[33]
चाहे[34]-बाबुल वः ज़क़न[35] और धुआँ ज़ुल्फ का अबस
दिल गिरफ़्तारे अज़ाब उसमें हो हारत[36] सिफ़त
लाले[37] शीरीं कि हलावत[38] प जो दे जान आशिक़[39]
तो दमे-नज़अ[40] भी उन्नाब[41] का चाहे शरबत

---

१. मूर्तिमान्, २. सुसम्वाद, ३. ख़ुशी, आनन्द; ४. सिर से पाँव तक, ५. स्रष्टा, परमात्मा; ६. ईश्वरीय शक्ति, ७. तरुण, ८. पुजारी, धर्मपरायण व्यक्ति; ९. समय, १०. अल्लाह-अकबर का नारा लगाना, ११. वह खड़ा है, १२. उन्मादग्रस्त, पागल, विक्षिप्त; १३. प्यासा, १४. प्याला, १५. उन्माद, १६. दुर्भाग्य-पीड़ित, १७. पीछे लगा हुआ, १८. हत्या, १९. उल्टा लटकता हुआ, २०. कपोल, गाल; २१. आग (रूपाग्नि), २२. ढीठ, उद्दण्ड; २३. नाक, २४. लहर, २५. बारीक वृत्त, हल्की लहर; २६. सेना, दल; २७, बरौनी, २८. आफ़त, २९. युद्ध के लिए पंक्ति बाँधकर तत्पर, ३०. हाथ, ३१. अन्याय, अत्याचार; ३२. इहलोक एवं परलोक, ३३. नष्ट, ३४. बाबुल (बैबिलोनिया) का कुआँ, ३५. चिबुक, ३६. एक राक्षस, जो कुएँ में उल्टा लटकाया हुआ समझा जाता है; ३७. मीठा माणिक अर्थात् ओठ, ३८. मिठास, ३९. प्रेमी, ४०. मरने के समय, ४१. एक सूर्ख़ रंग का फल, जो औषधि के काम में आता है।

न दमे[१] - शर्म तबस्सुम[२] से लब उसके ख़ूगर[३]
    न तग़ाफ़ुल[४] से उन आँखों को निगह की आदत
खोल दे मानिए मादूम[५] कमर की जुंबिश[६]
    वा[७] करे ओक़दए[८] मौहूम[९] लबों[१०] की हरकत
शोख़ी वो नाज़ की तारीफ़ में उसकी मतला
    वह पढ़ूँ मैं कि जिसे सुनके हो दिल को फ़रहत[११]

मतला

शोख़ी उस चेहरे में यों गुल में हो जैसे हुमरत[१२]
    नाज़ यों चश्म में नर्गिस[१३] में हो जैसे निकहत[१४]
लबे पां[१५]-ख़ुर्दा की शोख़ी के है आगे एक बात
    गर लगावे व: मसीहा[१६] प भी ख़ूँ की तोहमत[१७]
नाज़ुक अन्दाम[१८] वह और संग[१९]-दिल उनसे भी सिवा
    आया उन संगदिलों[२०] के लिए सुन्मा क़ुस्सत
सेली[२१] सीने प न थी जाऽद[२२] पसे[२३] पुश्त का अक्स[२४]
    नज़र आता था सफ़ाई से अलिफ़[२५] की सूरत
चंपई रंग का अपने व: दिखाकर आलम[२६]
    एक आलम[२७] का हो दिल लेके बग़ल में चंपत
अल्लह-अल्लह रे तेरी तमकनत[२८] उफ़रे तमईज़[२९]
    वाह रे तेरा तबख़्तर[३०] तेरी वल[३१] वे नख़वत[३२]
क़ह्र[३३] अन्दाज़े-बला[३४] नाज़ क़यामत[३५] तन्नाज़[३६]
    सेह्र-चश्मक[३७] सितम[३८]-ईमां व करिश्मा[३९] आफ़त[४०]
जाबजा आलमे मस्ती में क़दम को लग़ज़िश[४१]
    दम-ब-दम[४२] नश्शए-सहबा[४३] से ज़बां को लुकनत[४४]

---

१. लज्जा करते समय, २. मुस्कान, ३. अभ्यस्त, ४. अन्यमनस्कता, लापरवाही; ५. जिसका अस्तित्व न हो, ६. गति, हिलना; ७. खोल दे, ८. ग्रन्थि, गिरह, ९. भ्रान्तिपूर्ण, १०. ओठों, ११. प्रफुल्लता, १२. लालिमा, १३. एक पुष्प-विशेष, जो आँखों का उपमान है, १४. सुगन्ध, १५. पान खाये हुए, १६. इसाई धर्म के प्रवर्त्तक जिनमें यह शक्ति थी कि मुर्दों को भी स्पर्शमात्र से जीवित कर देते थे; १७. आक्षेप, आरोप; १८. शरीर, १९. पाषाण - हृदय, २०. कठोर हृदयवालों, २१. छोटी चादर, २२. अलकें, २३. पीठ के पीछे, २४. प्रतिबिम्ब, झलक, छाया; २५. अरबी, फ़ारसी, उर्दू वर्णमाला का पहला अक्षर जो प्राय: सीधा लम्ब रूप में लिखा जाता है, २६. दशा, २७. दुनिया, संसार; २८. इज़्ज़त, गौरव; २९. समझ - बूझ, बुद्धिमानी; ३०. अकड़कर चलना, शानदारी, ३१. नकारात्मक शब्द, ३२. घमण्ड, ३३. भयंकर, ३४. आपत्ति मचाने वाला, ३५. प्रलय, ३६. ताना मारनेवाला, ३७. जादू भरे, कटाक्ष करनेवाला; ३८. अत्याचार-सूचक, ३९. चमत्कारपूर्ण, ४०. आपत्ति, ४१. लड़खड़ाहट, ४२. क्षण-प्रतिक्षण, ४३. शराब, ४४. ज़बान की लड़खड़ाहट, तुतलाना।

आके उस रश्के[१] मसीहा ने कहा बालीं[२] पर
लातनुम[३] कुम[४] कि यह ग़ाफ़िल नहीं वक़्ते ग़फ़लत

न जाने इस मतला से मन को कैसी प्रसन्नता होती है :

शोख़ी उस चेहरे में यों गुल में हो जैसे हमरत[५]
नाज़ यों चश्म में नर्गिस में हो जैसे निकहत[६]

सारा चित्र कृत्रिम है और उसके चम्पई रंग से किसी का भी दिल बग़ल से चम्पत नहीं होता :

इस प्रकार का चित्रण भी एक परम्परागत बात हो गई थी। यह 'इन्शा' हैं :

सुब्ह-दम मैंने जो ली बिस्तरे गुल पर करवट
जुंबिशे - बादे - बहारी से गई आंख उचट
देखता क्या हूं सिरहाने है खड़ी एक परी
जिसके जोबन से टपकती है निरी गदराहट
आफ़ताब[७] उसकी जबीं[८] के जो मुक़ाबिल होवे
सदक़े[९]-सदक़े हो कहे उफ़ री तेरी चमकाहट
मोतियों से जो भरी मांग वः देखे उसकी
सैर से तारों भरी रात की जी जाए हट
हरकत उसकी थी यों ग़मज़ए[१०] चालाक के साथ
रिन्द[११] जों ऐंड के मैख़ाने[१२] में लेवें करवट
शोख़ी इस रूप से उस तारे-नज़र में खेले
आता-जाता हो रसन[१३] पर कोई जिस तरह से नट
क़ामत ऐसी कि क़यामत भी करे जिसको सलाम
उसको अठलाते हुए चलने की सुनकर आहट
शोरे महशर[१५] को यह कह बैठे ख़िराम[१६] उसका साफ़
वालः की ऐन अबे दूर परे हो चल, हट
नश्शा में क़ुलक़ुले[१७] मीनासे[१८] यः फ़र्मा[१९] उट्ठे
क्या ख़ुश[२०] आती है सदा मुझको यह तेरी ग़टग़ट

---

१. ईसामसीह जिससे स्पर्द्धा करें, २. सिरहाना, ३. मत सोओ, ४. तुम, ५. सुर्ख़ी, ६. सुगन्ध, ७. सूर्य, ८. ललाट, ९. न्योछावर होना, १०. कटाक्ष, भ्रुकुटी-विलास; ११. आवारा, बांका-छैला; १२. शराब का घर, मदिरालय; १३. रस्सी, १४. ऊंचाई, क़द; १५. प्रलयकाल के समय का मैदान, १६. ठुमुक कर चलना, सुन्दर चाल; १७. सुराही से पानी या शराब उंडेलने के समय भक-भक की आवाज़, १८. शीशा, सुराही; १९. आदेश दिया, २०. अच्छी लगती है।

सर्वो शमशाद[1] व सनोबर[2] से कहे चलते हो
खेलने जाते हैं हम आज चमन में झुमुंट
कुछ न गहना न जवाहिर न तकल्लुफ[3] न बनाव
सादगी अपनी से मसरूर[4] ख़ुशी से गट-पट
अलग़रज़[5] थी जो इन औसाफ़[6] से मौसूफ़[7] उसने
अपने मुखड़े से दुपट्टे के मुसलसल[8] को उलट
मुझसे सरखुश[9] हो कहा दौलते बेदार[10] हूँ मैं
ख्वाबे ग़फ़लत से बस अब चौंक गले मेरे लिपट

१. वृक्ष-विशेष, जो सीधा होता है और व्याधा तथा वधिक का उपमान समझा जाता है, २. एक वृक्ष जिससे माशूक के क़द की उपमा दी जाती है ३. बनावट, दिखावा; ४. प्रसन्न, ५. संक्षेपतः, सारांशतः; ६. गुण, खूबियाँ; ७. प्रशंसित व्यक्ति, ८. लगातार, वारम्वार; ९. प्रसन्न, १०. जाग्रत्, दीप्तिमान ।

ग़ज़ल और क़सीदे की अपेक्षा मसनवी में अधिक विस्तार और वैविध्य की गुंजाइश है। मसनवी में युद्ध-वर्णन भी काव्य का विषय हो सकता है, और नये-नये कथानकों का आविष्कार भी हो सकता है; संसार के नाना प्रकार के परिवर्तनशील दृश्यों की जीती-जागती तस्वीरें खींची जा सकती हैं और ज़िन्दगी के विभिन्न पहलुओं, सारे मानसिक व्यापारों का वर्णन हो सकता है। लेकिन उर्दू के कवियों की कल्पना तो विस्तार से परेशान होती है। उनका हृदय फैलाव के नाम से धड़कने लगता है। उनका दिमाग संकीर्णता में ही प्रसन्न रहता है। उर्दू में किसी को 'ईलियड', 'इएण्ड', 'डिवाइन कोमेडी', 'ओरलैण्डो फ़्युरिओज़ो', 'फ़ेयरी क्वीन', 'पैराडाइज़ लोस्ट' इत्यादि के ढंग की कविता लिखने का खयाल भी न हुआ। 'स्कौट' और 'बाइरेन' ने जिस प्रकार की छोटी वर्णनात्मक कविताएँ लिखी हैं उस प्रकार की चीज भी लिखने की हिम्मत न हुई। मसनवी में भी फ़ारसी के छन्दों का अनुसरण किया। आश्चर्य इसपर होता है कि जानकारी न होने के कारण वे पाश्चात्य कविता से लाभान्वित न हुए तो न सही, 'शाहनामा या मसनवी मौलाना रूम' के ढंग की भी कोई चीज़ नहीं लिखी।

मसनवी की विषयवस्तु का आधार कुछ सीमित ढंग की कहानियों पर है। पहली कमी तो यही महसूस होती है। उर्दू-कवियों की कल्पना में इतनी भी क्षमता न थी कि नई-नई कहानियाँ गढ़ सकें। जो कहानियाँ मिलती हैं, वे प्रेम और प्रेमजन्य व्यापारों से सम्बद्ध हैं। कोई रूपवान् राजकुमार किसी रूपवती राजकुमारी पर आसक्त होता है और असंख्य कठिनाइयों एवं परेशानियों के बाद सफल एवं लब्धकाम होता है। यदि राजकुमार नहीं तो कोई निम्नकोटि का आदमी, जैसे कोई दरवेश, होता है। इससे वास्तविक वैविध्य तो सम्भव नहीं, बल्कि नुक़सान यह होता है कि शान एवं शौकत जाती रहती है। कभी-कभी कहानी सफलता के बदले असफलता के साथ समाप्त होती है। इससे भी कहानी की आत्मा में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। यह केवल कवि के स्वभाव पर निर्भर है। यदि वह शोक में रुचि रखता है तो हँसी के बदले रोने पर कहानी ख़तम होती है।

हाँ, तो नायक का रूपवान् होना आवश्यक है, और उसके रूप का वर्णन इस अत्युक्ति के साथ होता है कि संसार-भर के सारे हसीन शरमा जायँ। इस दृष्टि से नायक और नायिका में कोई भेद नहीं होता। कभी ऐसा भी होता है कि नायक ही अधिक सुन्दर होता है, और रूप-छवि के अतिरिक्त यदि उसके अन्य सद्गुणों पर दृष्टिपात किया जाय तो फिर वह अत्युक्ति है कि क्या कहने !

'मीर' "मसनवी शोलए-इश्क़" में 'परसराम' का परिचय इस प्रकार है :

कि वां एक जवां था 'परसराम' नाम + खुश[1]-अन्दाम वो खुश क़ामत[2] वो खुश[3]खराम
जिधर निकले रंगीं[4]-अदाई के साथ + चले जायें जी खुश[5]-नुमाई के साथ
खले बाल चलता था वह सर्व-नाज़[6] + कदम्बोस[7] को आती उम्रे-दराज़[8]
निगह गर्म[9] उसकी जिधर जा लड़ी + कहे तू कि ऊधर को बिजली गिरी
वह काफ़िर भौंवें होवें मायल[10] जहां + करें सिज्दा[11] उस जा पर इसलामियां[12]
रुख[13] उसका कहां और मह[14] वो खुर[15] कहां + तफ़ावत[16] जमीं आसमां का है यां
व: लब[17] लाल को जिनसे शर्मिन्दगी[18] + दमे[19]-हर्फ़ सरमायये[20] ज़िन्दगी
देहन[21] की जो तंगी[22] नजर कीजिए + तो आगे सोख़न[23] मुख़्तसर[24] कीजिए
सरापा[25] में उसके जहां देखिए + वहीं रूए-मक़सूदे[26]-जां देखिए
खेरामां निकलता व: जिस राह से + क़यामत[27] थी वांनाला[28] वो आह से
फ़िदा[29] उस प जी जान हर एक का + कि मक़सूदे दिल था बद[30] वो नेक[31] का

प्रत्येक स्थान पर माशूक़नुमा आशिक़ का वर्णन इसी ढंग से होता है। उसकी मोहक भाव-भंगी, उसकी लम्बी जुल्फ़ों, जादू-भरी निगाहों, काफ़िर भौंवों, उसके दिव्य स्वरूप, लाल ओठों, छोटे मुँह का जिक्र हर जगह मिलता है। सुन्दरता में तो ख़ैर वह सारे रूपवान् लोगों से बढ़कर होता ही है, उसमें सभी सद्‌गुण भी एकत्र हो जाते हैं। राजकुमार बेनज़ीर की विशिष्ट योग्यताओं पर ध्यान दिया जाय :

दिया था ज़[32]-बस हक़[33] ने ज़ह्न[34]-रसा + कई साल में इल्म सब पढ़ चुका
मआनी[35] व मन्तिक़[36], बयान व अदब[37] + पढ़ा उसने मन्क़ूल[38] व माक़ूल[39] सब
खबरदार हिकमत[40] के मज़मून[41] से + ग़रज़[32] जो पढ़ा उसने क़ानून[43] से
लगा हैयत[44] वो हिन्दसा[45] ता नजूम[46] + जमीं आसमां में पड़ी उसकी धूम
किये इल्म नोके[47]-ज़बां हर्फ़ हर्फ़[48] + इसी नह्व[49] से उसने की उम्र सर्फ़[50]

सुलेखन-कला में वह दक्ष धनुर्विद्या में जगद्विख्यात, संगीत में पटु और चित्रकारी में भी कमाल रखता था। इनके अतिरिक्त :

सिवा इन कमालों के कितने कमाल + मुरौवत[51] की ख़ू[52], आदमीयत की चाल
रज़ालों[53] से नफ़रों[54] से नफ़रत[55] उसे + सदा क़ाबिलों[56] से थी सोहबत[57] उसे

१. अच्छे बदनवाला, २. अच्छी ऊँचाईवाला, ३. अच्छी चाल-ढालवाला, ४. आकर्षक भाव-भंगी, ५. सुन्दर रूप-प्रदर्शन, ६. सुन्दर सजीले क़दवाला, ७. पैर चूमना, ८. दीर्घायु, ९. तेज़, १०. उन्मुख, ११. साष्टाङ्ग, १२. मुसलमान, १३. चेहरा, १४. चाँद, १५. सूर्य, १६. अन्तर, १७. ओठ, १८. लज्जा, १९. बातें करने के समय, २०. पूँजी, निधि; २१. मुँह, २२. संकीर्णता, २३. बात, २४. संक्षेप, २५. नख-शिख, २६. हृदय की अभिलाषा का रूप, २७. प्रलय, २८. चीख-चीत्कार, २९. निछावर, ३०. बुरा, ३१. अच्छा, ३२. चूँकि, ३३, परमात्मा, ३४. कुशाग्र बुद्धि, ३५. अर्थबोध ३६. तर्कशास्त्र, ३७. साहित्य, ३८. नकल किया हुआ, प्रतिलिपित, ३९. तर्क और बुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाली विद्याएँ, ४०. दर्शन, ४१. विषय, ४२. सारांश यह कि, ४३. क़ायदे से, ४४. रेखागणित, ४५. गणित, ४६. ज्योतिषी, ४७. कंठस्थ, ४८. अक्षरशः ४९. ढंग, ५०. व्यतीत, ५१. शील, ५२. आदत, ५३. कमीनों, ५४. नौकरों-चाकरों, ५५. घृणा, ५६. योग्य व्यक्तियों, ५७. सहवास।

इसे देखकर हर एक समझदार आदमी यही कहेगा कि ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न जानवर दुनिया में दीख नहीं पड़ते ।

जहाँ नायक में इतने आन्तरिक तथा बहिर्गत सद्‌गुण हों वहाँ नायिका का तो फिर पूछना ही क्या है ! नख-शिख-वर्णन में ऐसी कृत्रिमता और बनावट होती है, जिसकी हद नहीं । सिर से पाँव तक हर एक चीज़ की प्रशंसा होती है, जिससे मन क्षुब्ध हो जाता है । कहीं पर वास्तविकता का पता नहीं । 'राशिख़' अपनी 'मसनवी गंजीनए-हुस्न' में बाँकी अदावाली प्रेयसी के नख-शिख की प्रशंसा करते हैं तो तरतीबवार ललाट, आँख-भौं, भौं-आँख, निगाह एवं कटाक्ष, नाक-कान, होंठ, वार्त्ता, मुसुकान, मुँह, चेहरा, मुखमण्डल की सफ़ाई, कपोल, जुल्फ़ें, बाल, माँग, मेहँदी लगे हुए हाथ, अनुरंजित हथेली, कलाई, वक्षःस्थल, कन्धा, कुच, पेट, नाभि, कमर, नितम्ब, घुटने और फिलियाँ, महावरयुक्त पैर, तलवा, क़द की ऊँचाई तथा चाल का वर्णन करते हैं, और उसी प्रचलित ढंग से । 'असर' अपनी मसनवी ख़्वाब एवं ख़्याल में जब अपनी सौन्दर्यशालिनी प्रियतमा के नख-शिख की प्रशंसा तथा गुणगान पर आते हैं तो निम्नलिखित बातों का जिक्र करते हैं :

सिर के बाल, माँग एवं चोटी, जुल्फ़, ललाट, कान एवं कान की लटकन, भौंहें, आँख एवं निगाह, सुरमा एवं काजल, बरौनी, नाक, सुचिक्कण कपोल, सुन्दर रंग, ओठ, मुँह दाँत एवं मिस्सी एवं पान, ठुड्डी एवं उसके गड्ढे, गर्दन, कलाई एवं मोढ़े, हाथ एव बन्धन, उँगलियाँ, मेहँदी, चूड़ी, छाती व कुच, क़द एवं ऊँचाई, कमर, नाभि, नितम्ब, घुटने और फिल्ली, पैर एवं एँड़ी, तलवा एवं मेहँदी ।

अन्य मसनवियों में भी प्रायः इसी प्रकार के ब्यवरों के साथ सिर से लेकर पैर तक सभी अंगों का वर्णन होता है, जो हास्यास्पद जान पड़ता है । उपमाएँ अधिकांश फ़ारसी से ली जाती हैं । विषय और विषयाभिव्यक्ति दोनों का ढंग घिसा-पिटा है । किसी अंग को भी नहीं छोड़ा जाता । 'असर' तो इस धुन में सबसे आगे निकल जाते हैं :

कुछ न कह ज़ेरे[1] नाफ़[2] कैसा है + रुफ़्ता[3] वो शुस्ता[4] नाफ़ कैसा है
देखते वां निगाह फैले है + बेतरह आगे राह फैले है
अब सोख़न[5] की परं समाई नहीं + बात निज तज कस ने पाई नहीं
तंग यों तो निपट है तेरा दहां[6] + नहीं तंगी में कम प यह भी मकां
इसी अन्दाज़[7] पर देहाना है + दोनों का एक शामियाना[8] है
फ़र्क़[9] छोटे न कुछ बड़े का है + यही बस आड़े और खड़े का है

इस नग्नता से कुछ लाभ नहीं । यदि कवि किसी आवेग, किसी विचार, किसी सिद्धान्त से बाध्य होकर इस नग्नता से काम लेता तो कोई बात न थी, लेकिन यहाँ पर कवि का कोई ख़ास उद्देश्य नहीं; केवल कल्पना को किसी छिपी-ढँकी चीज़ के तसोवुर से भड़काना है और कुछ नहीं । नग्नता अपने स्थान पर कोई दोष नहीं, लेकिन उसका निरर्थक प्रयोग एक भद्दा धब्बा है । जो कुछ

१. नोचे, २. नाभि, ३. साफ़ किया हुआ, ४. धुला हुआ, ५. बात, ६. मुँह, ७. ढंग, प्रमाण; ८. मध्यस्थल, ९. अन्तर, भेद ।

भी हो, नायक और नायिका की प्रशंसा में इस अत्युक्तिपूर्ण पद्धति का परिणाम यह होता है कि व्यक्तित्व का सर्जन नहीं होता। ये हीरो और हीरोइन मानवीय प्रमापक से इतने बुलन्द होते हैं कि न उनकी खुशी से कोई खुश, न उनके दुःख से कोई दुःखी होता है।

प्रायः हीरो और हिरोइन और उनके साथ होनेवाली जो घटनाएँ होती हैं, वे इस प्रकार की होती हैं कि उनका अस्तित्व और उनका घटित होना मानवीय संसार में सम्भव ही नहीं; वे किसी दूसरी दुनिया के निवासी जान पड़ते हैं और उनके अनुभव भी अजनबी और अपरिचित होते हैं। असाधारण व्यक्तियों, वस्तुओं और घटनाओं का बेधड़क ज़िक्र होता है। जिन, परी, देव, तिलिस्म और तिलिस्मी चीज़ें हर जगह हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मानवीय संसार की सीमाएँ इस दूसरी दुनिया की सीमाओं से मिली हुई हैं, और दोनों के बीच एक राजपथ है, जिस पर लोग बेखटक आवागमन कर सकते हैं। किसी परी का मनुष्य पर आसक्त होना, देव का परी को ले जाना और मनुष्य की सहायता से उस परी का मुक्ति पाना, मनुष्य का किसी तिलिस्मी चीज़ की खोज में निकलना; जिन, परी, देव आदि पर टूट पड़ना, तिलिस्म में फँस कर छुटकारा पाना इत्यादि इस प्रकार की घटनाएँ आम हैं।

यह दुनिया जो मसनवियों में मिलती है, मानवीय संसार से बिल्कुल भिन्न है। दिवा-निशि के फेरे तो अवश्य होते हैं, लेकिन ऋतु-सम्बन्धी और किसी प्रकार के परिवर्त्तन नहीं होते। और, यदि होते भी हैं तो जादू के प्रभाव से होते हैं, स्वाभाविक नहीं होते। जीवन की उपलब्धि प्रेम है, धार्मिकता और नैतिकता का पता नहीं। आपत्तियाँ आती हैं तो इसी प्रेम के हाथों; अन्य प्रकार की अनुभूतियाँ नितान्त अलभ्य हैं और यदि हैं भी तो उनका महत्त्व नहीं। माता-पिता का अपनी सन्तान की ख़ुशी से प्रमुदित होना और उनके वियोग में पीड़ित होना इत्यादि इस प्रकार के जज़्बात की अभिव्यक्ति होती है और देखने में बड़े प्रबन्ध के साथ होती है, लेकिन साधारणतः ये हृदय पर तीर-वो-नश्तर का असर नहीं करते; जिन देशों का ज़िक्र होता है वे भूगोल में नहीं मिलते। इन देशों की सभी वस्तुओं में प्रचण्ड रूप से विरोधाभास है। हास-विलास का अन्त नहीं, शोक-सन्ताप है तो असीम। एकाएक सुख दुःख में और दुःख सुख में बदल जाता है। उद्यान और राजमहल ऐसे, जिनकी सौन्दर्य-सुषमा का अनुमान कल्पनातीत है। वन-कानन इतने भयावह और विस्तृत कि उनकी शक्ल ही देखकर मनुष्य ज़िन्दगी से हाथ धो बैठे। मित्र ऐसे, जो मित्रता में अपने प्राण बेखटक अर्पित कर दें; शत्रु ऐसे, जिनके वैमनस्य की कोई हद नहीं। भाग्य-चक्र अलग ही आश्चर्यजनक हैं। आज जहाँ हास-विलास की मण्डलियाँ हैं, कल वहाँ पर निर्गेह निस्सहायों की क़ब्रगाह अपना करुणाजनक रूप दिखलाती है। आज जहाँ बेपनाह मरुस्थल हैं, कल वहाँ पर भव्य भवन अपने ठाट-बाट से निगाहों को प्रमुदित करता है। इस जगत् में काल-ज्ञान नितान्त है ही नहीं। यदि है तो उसकी गति का अनुमान सम्भव नहीं। कभी उसकी चाल इतनी तेज कि अभी जो बच्चा था वह जवान हो जाता है; कभी उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। कितने ही वर्ष बीत जाते हैं, लेकिन मनुष्य पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और कभी घड़ियाँ हैं कि कटती ही नहीं, कभी चौदह वर्ष पल-भर में बीत जाते हैं।

कहानी अत्यन्त क्षीण होती है। घटनाओं का ज़िक्र तो होता है, किन्तु वे सब-की-सब रस्मी घटनाएँ होती हैं। उनसे कथानक के रचनात्मक सौन्दर्य में कोई वृद्धि नहीं होती। उर्दू-कवियों को शायद इसका ज्ञान नहीं कि कथानक-निर्माण किसको कहते हैं; किस प्रकार विभिन्न वारदात एवं घटनाएँ आपस में मिलकर एक सुडौल-सन्तुलित कहानी का रूप ग्रहण कर लेती हैं। सभी अफसानों का संक्षिप्त खाका यह है :

कहीं पर एक बाँका जवान था। वह किसी रंगीन अदावाली प्रेमिका के प्रेम-पाश में फँस जाता है और कुछ कठिनाइयों एवं मुश्किलों के बाद वह प्रेमिका से मिलने के बाद उल्लसित होता है या प्रेमी और प्रेमिका अपनी जान से जाते हैं। कहानियाँ विभिन्न मानवीय मनोभावों से सम्बद्ध हो सकती हैं, किन्तु उर्दू के कविगण मानों अन्य प्रकार के सभी जज़्बात से अनभिज्ञ थे और प्रेम का चित्र भी महज़ रस्मी ढंग का होता है। जहाँ सर्जन न हो वहाँ शील-निरूपण का भी चिह्न नहीं पाया जाता। हीरो और हीरोइन तो मानवीय प्रमापक से इतने उच्च स्तर पर होते हैं कि मनुष्य बाकी नहीं रहते—'परसराम', 'बेनजीर', 'ताजुल-मुलूक किसी के भी व्यक्तित्व का निर्माण नहीं होता। इसी प्रकार उनसे कम महत्त्व रखनेवाले लोगों का व्यक्तित्व भी स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई पड़ता। इनका चित्र तो और धुँधला तथा गोल-मटोल-सा होता है। हाँ, हृदयावेगों और प्रेम के व्यापारों का वर्णन प्रायः प्रशंसनीय होता है : प्रेमोद्गार, उसकी विचित्रताएँ और उसमें घुल-घुलकर मरने का चित्र मिलता है, और कभी-कभी प्रभावशाली होता है। प्रेयसी की मृत्यु के बाद 'परसराम' की जो दशा होती है, उसका वर्णन 'मीर' इस प्रकार करते हैं :

यः सरगर्मे[1] फ़रियाद[2] वो ज़ारी[3] हुआ + लहू उसकी आँखों से जारी[4] हुआ
जिगर[5] ग़म[6] में यक़लख़्त[7] ख़ूं हो गया + रुका दिल कि आख़िर[8] जुनूं[9] हो गया
गए होश वो शब्र उसके यकबारगी[10] + तबीअत[11] में आई एक आवारगी[12]
सरासी[13] भगी से बगूला[14] हुआ + फिरे इस तरह जैसे भूला हुआ
न जी को तसल्ली न दिल को क़रार[15] + कफ़े[16]-ग़म में सर्गशितए[17] अख़्तियार[18]
कभू याद कर उसको नाला[19] रहे + कभू टुक जो भूले तो हैरां[20] रहे
कभू यां कभू वां ब-हाले[21]-ख़राब + वही बेक़रारी[22] वही इज़्तराब[23]
कभू मुत्तसल[24] होंठ पर आहे-सर्द + कभू दस्त[25] बर[26] दिल कि दिल में है दर्द

यहाँ व्यग्रता-विह्वलता का सम्पूर्ण चित्र है। फिर असर क्यों न हो; और असर भी वह जो 'मीर' की विशेषता है। इसी प्रकार प्रेमालिंगन की भी तस्वीरें मिलती हैं और इन तस्वीरों में

---

१. संलग्न, २. हाय मारना, दुहाई देना; ३. रोना, ४. प्रसरित, ५. कलेजा, ६. शोक, ७. पूर्णतया, ८. अन्ततः, ९. उन्माद, १०. एक ही समय, ११. स्वभाव, मन; १२. घुमक्कड़ होना, १३. विक्षिप्तता, घबराहट; १४. बवण्डर, १५. शान्ति, १६. हाथ, हथेली; १७. तागा, डोर; १८. अधिकार, १९ रोता-कलपता हुआ, २० घबराया हुआ, विक्षिप्त; २१. दुर्दशा, २२. २३. अधीरता, २४. लगातार, २५. हाथ, २६. पर।

प्रायः नग्नता प्रदर्शित होती है। 'असर' और 'शौक' इस विषय में विशेष रूप से स्मरणीय हैं। 'असर' प्रेमालिंगन की दशा का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

हाथा-पाई में हाँफते जाना + खलते जाने में ढाँपते जाना
हाथ पाओं कफ़्ल[1] कर लेना + फिर कभू जी को सख़्त कर लेना
वह सरापा[2] अरक़[3] अरक़ होना + और बे-अख़्तियार[4] हो रोना
वह तेरा मुँह से मुँह भिड़ा देना + वह तेरा जीव का लड़ा देना
वह तेरा प्यार से लिपट जाना + और दिल खोलकर चिमट जाना
वहीं घबराके फिर जुदा होना + मिलते-जुलते में एक[5] ख़फ़ा[6] होना

इसमें सन्देह नहीं कि वर्णन बहुत साफ़ है, मानों चित्र खींच दिया है।

कथा-योजना और शील-निरूपण का हाल मालूम हुआ। यही दशा प्राकृतिक दृश्यों की भी है। यह नहीं कि प्रकृति के चित्र नहीं मिलते; मिलते अवश्य हैं, परन्तु देखी हुई चीजों का जिक्र नहीं मिलता। वर्षाऋतु की शोभा, नदी की प्रशान्त स्थिरता और उसका प्रवाह भारत के गगन-चुम्बी गिरि-कँगूरे और झरने, अन्धकारमय भयानक घाटियाँ, इस प्रकार की चीजों का चित्र बिलकुल नहीं मिलता। यदि कहीं पर है भी तो महज़ रस्मी। प्रायः बागों का चित्रण होता है; लेकिन बाग भी ऐसा, जिसे प्रकृति ने नहीं लगाया है। प्रत्येक स्थान पर कृत्रिमता है, सभी जगह बनावटी, अस्वाभाविक चीजें दिखाई देती हैं :

दिया शह[7] ने तरतीब[8] एक ख़ाना[9] बाग़ + हुआ रश्क़[10] से जिसके लाला[11] को दाग़
बनी संगे-मरमर की चौरड की नह्र + गई चार[12] सू उसके पानी की लहर
करीने[13] से गिर्द[14] उसके सर्वो[15] सही[16] + कुछ एक दूर-दूर उससे सेब[17] वो बिही[18]
ज़मुर्रद[19] के मानिन्द[20] सबज़े[21] का रंग + रविश[22] पर जवाहिर लगे जैसे संग[23]
चमन से भरा बाग़ गुल से चमन + कहीं नर्गिस[24] वो गुल[25] कहीं यासमन[26]
चम्बेली कहीं और कहीं मोतिया + कहीं रायबेल और कहीं मूमरा
खड़े शाख़े[27] शब्बू[28] से हरजा निशाँ[29] + मदन बान की और ही आन-बान
कहीं अरगवाँ[30] और कहीं लालाजार[31] + जुदी अपने मौसिम में सब की बहार
कहीं जाफ़री[32] और गेंदा कहीं + समाँ[33] शब[34] को दाऊदियों[35] का कहीं
खड़े सर्व की तरह चम्पे की झाड़ + कहे तू कि ख़ुशबूइयों के पहाड़
कहीं जर्द[36] नसरीं[37] कहीं नस्तरन[38] + अजब रंग के ज़फ़रानी[39] चमन

---

१ कड़ा, २.नख-शिख, ३. पसीना, ४. अधीर, ५. कुछ, ६. रुष्ट, रंज; ७. बादशाह, ८. व्यवस्था की, ९. मकान से संलग्न फुलवारी, १०. स्पर्द्धा, ११. एक फूल, जो लाल होता है, किन्तु उसके बीच में एक काला धब्बा रहता है, १२. चारों ओर, १३. सुव्यवस्थित रूप से, १४. अग़ल-बग़ल, १५ एवं १६. वृक्ष-विशेष, १७. एवं १८. प्रसिद्ध फल, १९. पत्र', २०. समान, २१. घास लगी हुई क्यारियाँ, २२. रास्ता, २३. पत्थर, २४. एवं २५. पुष्प विशेष, २६. चमेली, २७. डाली, टहनी; २८. एक फूल, २९. चिह्न, ३०. लाल रंग का फूल, ३१. एक फूल का समूह, ३२. प्रसिद्ध फूल, ३३. दृश्य, ३४. रात, ३५. एक फूल, ३६. पीला, ३७ एवं ३८. फूलों के नाम, ३९. केसरिया रंग का।

वर्णन सजा हुआ है, मानों फूलों का एक सुगन्धित गुलदस्ता है, जिससे दिल वो दिमाग को सरूर होता है। किन्तु, फिर भी ये फूल बनावटी हैं। जो सुन्दरता किसी दिहाती फूल की सादगी में होती है वह सारे उद्यान को प्राप्त नहीं।

उर्दू के कवि अपनी मसनवी का आरम्भ ईश-वन्दना एवं रसूल की स्तुति से करते हैं। बहुधा प्रार्थनाएँ भी शामिल रहती हैं। इन हिस्सों मे सच्चे जज़बात की बू बहुत कम आती है। ये चीजें रस्मी हैं। इन विषयों को शामिल करना आवश्यक समझा जाता था। उनका वर्णन कवि सुलभ ढंग से नहीं होता। कविगण भावावेश के कारण इन चीजों को शीघ्र समाप्त करके विषय-वस्तु की ओर ध्यान नहीं देते। इसलिए मसनवी के आरम्भ मे कुछ अधिक आनन्द नहीं मिलता। 'नसीम' इस रस्म को सर्वोत्तम ढंग से अदा करते हैं, अत्यन्त संक्षेप के साथ अदा करते हैं:

हर शाख़[१] में है शगूफ़ा[२] - कारी + समरा[३] है कमल का हम्दे[४] बारी[५]
करता है यः दो ज़बां से यकसर[६] + हम्दे - हक़[७] वो मदहते[८] पयम्बर[९]
पांच उँगलियों में यः हर्फ़ज़न[१०] है + यानी कि मुतीय[११] पंजतन[१२] है
ख़त्म उस प हुई सोख़न[१३] - परस्ती + करता है ज़बां की पेश[१४] - दस्ती

काश, और कविगण भी इसी प्रकार के संक्षेपण पर सन्तोष करते?

बहुधा-ईश वन्दना एवं रसूल की स्तुति के बदले प्रेम की प्रशंसा के साथ मसनवी का आरम्भ होता है और विषयवस्तु के तत्त्व पर प्रकाश डाला जाता है। यदि कवि निजी ढंग पर प्रेम और साहित्य के तत्त्व से अवगत हो और साधारण शैली में स्वगत आवेगों और निरीक्षणों को प्रतिबिम्बित करे तो अच्छा परिणाम हो सकता है। 'मीर' प्रेम और उसके करिश्मों का प्रभावशाली वर्णन करते हैं:

इश्क़[१५] है ताज़:कार[१६] ताज़.ख़याल[१७] + हर जगह उसकी एक नयी है चाल
दिल में जाकर कहीं तो दर्द हुआ + कहीं सीने में आहे[१८] - सर्द हुआ
कहीं आँखों से ख़ून होके बहा + कहीं सिर में जनून[१९] होके रहा
कहीं रोना हुआ नदामत[२०] का + कहीं हँसना हुआ जराहत[२१] का
कहीं आंसू की यह सरायत[२२] है + कहीं यह ख़ूं चकां[२३] हिकायत[२४] है
या किसी दिल में नालए[२५]-जांकाह[२६] + है किस लब[२७] प नातवां[२८] एक आह
कहीं बाएस[२९] है दिल की तंगी का + कहीं मूजिब[३०] शिकस्ता[३१] रंगी का
ख़ार[३२] - ख़ारे दिल गरीबां[३३] है + इन्तज़ारे[३४] बला[३५] - नसीबां है

---

१. डाली, २. अनोखा काम, ३. फल, ४. प्रशंसा, ५. भगवान्, ६. आद्योपान्त, अकेला; ७. ईश्वर, ८. प्रशंसा, ९. पैग़म्बर, १०. बातें करनेवाला, ११. अधीन, १२. महम्मद, फातिमा, अली, हसन, हुसैन; १३. साहित्य-सेवा, १४. आगे बढ़ जाना, १५. प्रेम, १६. नये-नये काम करनेवाला, १७. नई-नई बातें सोचनेवाला, १८. ठण्डी साँस, १९. उन्माद, २०. शर्मिन्दगी, लज्जा; २१. घाव, २२. फैलाव, प्रवेश; २३ खून टपकाती हुई, २४. कहानी, २५. चीत्कार, २६. प्राणघातक, २७. ओठ, २८. कमजोर, क्षीण; २९. एवं ३०. कारण, ३१. फीका रंग होना, उदासीनता; ३२. कांटा, ३३. कुरते, अँगरखे का कालर; ३४. प्रतीक्षा, ३५.. दुर्भाग्य।

वर्णन-शैली आम है। लेकिन साधारण ढंग से प्रेम के विभिन्न प्रभावों का अतिविशिष्ट चित्रण है। हर शेर, प्रायः हर मिसरा, प्रेम के किसी रंगीन पहलू की सुन्दर अभिव्यक्ति करता है। 'रासिख़' भी इसी सुन्दरता एवं पटुता के साथ प्रेम की प्रशंसा (परिभाषा) करते हैं। वह विषय-तत्व पर इस प्रकार रोशनी डालते हैं :

है सोख़न[१] गौहरे[२] गंजीनए[३] - जां + मुन अ़क्स[४] इससे है आईनए जां
औवल[५] नामुतना[६] ही है यह + कुछ अजब सिर्रे[७] इलाही है यह
मुन्तज़म[८] कारे[९] सिफ़ारत[१०] इससे + सेहर[११] अफ़सूं[१२] है इबारत[१३] इससे
गर्मिए[१४] - मारकए[१५] - सुल्ह व जंग + हमों[१६] तासीर[१७] है यः पुर-नैरंग[१८]
इसकी तरकीब[१९] कहीं मेह्र[२०] अंगेज़[२१] + नज़्म[२२] इसका है कहीं वज्हे-सतेज़[२३]
कहीं एजाज़[२४] कहीं इस्तिदराज[२५] + वाह क्या शै है यह अजुबा[२६] मिजाज

बार-बार पढ़ने से इसका आनन्द बढ़ता जाता है। लेकिन साधारणतः प्रेम और साहित्य की प्रशंसा रस्मी होती है। इसी प्रकार आसमान की शिकायत में भी प्रचलित नियमों का पालन किया जाता है। किन्तु 'रासिख़' इस घिसे-पिटे विषय में भी नया प्राण भर देते हैं। अत्याचारी आसमान की निन्दा कभी न भूलनेवाले ढंग पर करते हैं :

पहुँची है कारद[२६] उस्तख़्वां[२८] तक + बेमेह्र[२९] है आसमां कहां तक
जीना दुश्वार[३०] हो गया है + मेरा तो छुरी तले गला है

इन शेरों में वास्तविकता स्पष्ट रूप से झलकती है। आगे चलकर कहते हैं :

क्या कहिए ख़मीदा[३१] आसमां को + गर हाथ चले तो इस कमां[३२] को
यां तक खींचूं कि टूट जावे + फिर तक सदमे[३३] कोई उठावे

कैसी सशक्त कल्पना है और कैसा दुष्प्राप्य रूपक। इस ओज, इस मौलिकता का कारण जज़बात की वास्तविकता है; ये कृत्रिम नहीं असली हैं। और, यदि कृत्रिम थे भी तो कवि की कल्पना ने इनमें असलियत भर दी है।

मसनवी में भी उर्दू-कवियों ने अपनी प्रतिभा और मौलिकता शब्द-योजना में ही लगा दी। इससे इनकार नहीं हो सकता कि यदि शब्द-सौष्ठव और अर्थगर्भता को वास्तविक कविता समझा जाय तो उर्दू की कुछ मसनवियां उच्च कोटि की ठहरेंगी। इस विषय में सम्भवतः किसी ने 'नसीम' की तरह कृत्रिमता का प्रयोग नहीं किया। 'बकावली' प्रातःकाल उठती है तो फूल को नहीं पाती :

---

१. बात, २, मोती, ३. खज़ाना, ४. उल्टा, प्रतिविम्बित; ५. आरम्भ, आदि; ६. अनन्त, ७. भेद, रहस्य; ८. भगवान्, ९. व्यवस्थित, १०. काम, ११. राजदूत का काम, १२. जादू, १३. टोना, मन्त्र; १४. अर्थ, पर्याय; १५. धूमधाम, १६. युद्ध, १७. पूर्णरूप से, १८. प्रभाव, १९. विचित्रता से भरा हुआ, २०. रचना, बनावट; २१. प्रेमोत्पादक, २२. व्यवस्था, २३. लड़ाई, झगड़ा; २४. चमत्कार, २५. खींचना, हट जाना; २६. विचित्र स्वभाव का, २७. छुरी, २८. हड्डी, २९. निष्ठुर, ३० कठिन, ३१. आसमां, ३२. धनुष, ३३. आतंक, आघात।

घबराई कि हैं किधर गया गुल + झुंझलाई कि कौन दे गया जुल
है-है मेरा फूल ले गया कौन + हैं-हैं मुझे खार[१] दे गया कौन
हाय उस प अगर पड़ा नहीं है + बू होके तो गुल[२] उड़ा नहीं है
नर्गिस[३] तू दिखा किधर गया गुल + सौसन[४] तू बता किधर गया गुल
सुम्बुल[५] मेरा ताज़ियाना[६] लाना + शम्शाद[७] इसे दार[८] पर चढ़ाना
थर्राई ख़वासें[९] सूरतें[१०] बेद[११] + एक-एक से पूछने लगीं भेद
नर्गिस ने निगाह बाज़ियाँ कीं + सौसन[१२] ने ज़बाँ-दराज़ियाँ कीं
पत्ता भी पत्ते को जब न पाया + कहने लगीं क्या हुआ ख़ुदाया
अपनों में से फूल ले गया कौन + बेगाना[१३] था सब्ज़[१४] के सिवा कौन
शबनम के सिवा चुरानेवाला + था ऊपरी कौन आनेवाला

भाषा की प्रांजलता, मुहावरों की चुस्ती, शाब्दिक श्लेष से इनकार की मजाल नहीं। लेकिन यहाँ 'बकावली' की उद्विग्नता का वर्णन करना था, परन्तु उसके मन की उद्विग्नता का असर बिल्कुल नहीं होता। बात यह है कि 'बकावली' और उसका मनःविक्षेप पाठक के सामने नहीं रहता। अगर कोई चीज नजर के सामने रहती है तो वह है—कवि की मेधाविता, उसकी बौद्धिकता, उसका मुहावरों और शब्दों पर पूर्ण अधिकार। कवि की कृत्रिमता के कारण असली मतलब नष्ट हो जाता है, और किसी मानवीय आवेग का चित्र सामने नहीं आता। शाब्दिक श्लेष, जैसे : "नर्गिस—दिखा", "सौसन—बता" "सुंबुल ताज़ियाना", "शमशाद—दार", "बेद—थर्राना", "नर्गिस—निगाहबाज़ी", "सौसन—ज़बांदराज़ी", "पत्ता—पता", "अपना—बेगाना" इत्यादि इतना है कि इसकी अधिकता के कारण किसी और गुण-दोष की ओर दृष्टि जा ही नहीं सकती। इसी प्रकार मुहावरे : 'जुल देना', 'ख़ार देना', 'हाथ पड़ना', 'बू होके उड़ना'—इतने चुस्त और भाषा इतनी प्रांजल है कि हृदय पर हठात् प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार की खूबी 'असर', 'मीर हसन' और 'शौक़' सबमें पाई जाती है। अन्तर केवल इतना है कि 'नसीम' में कृत्रिमता हद से ज्यादा है। 'असर', 'मीर हसन' और 'शौक़' में बनावट कम और प्राकृतिक तत्त्व अधिक है। प्रांजलता में कोई कमी नहीं, चलते हुए मुहावरे हर जगह दिखाई पड़ते हैं, किन्तु भाषा किसी सुन्दर सिजिल आभूषण की तरह नहीं, बल्कि वह सुन्दर प्राकृतिक फूल जान पड़ती है। इन कवियों ने भाषा की बड़ी सेवा की है; उसको प्रांजल, प्रवाहपूर्ण, मधुर और परिष्कृत करके सौन्दर्य प्रदान किया है और उसे वर्णनात्मक कविता में भावाभिव्यक्ति का उत्तम साधन बनाया है। किन्तु भाषा के विकास के साथ वर्णनात्मक कविता के अन्य तत्त्वों की ओर ध्यान कम दिया है। 'मीर हसन' और 'नसीम' तो इन खूबियों के लिए विख्यात

१. कांटा, २. फूल, ३. एक पुष्प-विशेष, जो आँखों का उपमान माना जाता है, ४. एक पुष्प-विशेष, जिसकी पंखुड़ियाँ जिह्वा की उपमान हैं, ५. एक खुशबूदार घास, जिससे बालों की उपमा दी जाती है, ६. यह लम्बी लता के समान होती है, ७. सर्व का वृक्ष, जो सीधा लम्बा होता है, ८. फाँसी, ९. लौण्डिया, १०. तरह, समान; ११. बेंत, जिसकी छड़ी इत्यादि बनती है, १२. वाक्पटुता, बढ़-चढ़कर बातें करना, १३. दूसरा कोई, १४. हरी घास के तख़्ते।

हैं, लेकिन ये चीजें दूसरे कवियों में भी पाई जाती हैं। 'असर' अपनी "मसनवी-ख़्वाब वो ख़याल" में ऐसी भी भाषा का व्यवहार करते हैं, जो अपनी प्रांजलता, प्रवाह, माधुर्य, सरलता और स्वाभाविकता से दिल वो दिमाग को मुग्ध कर देती है। हर प्रकार के मुहावरे भी सहज-स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं :

अब न दिन ही कटे न रात कटे + किस तरह अर्सए[1] हयात[2] कटे
गर[3] गुज़र सूए[4] बाग होता है + सीन[5] जल-जल के दाग़ होता है
आग दिल में लगाए-आतिशे[6]-गुल[7] + सांप की तरह काटे है सुंबुल[8]
फूल लगते हैं जैसे अंगारे + गुर्जे[9] -आतिश नेहाल[10] हैं सारे
राह तकती हैं आँखें नर्गिस की + क्या कहूं आह और किस किस की
यह दरख़्तों के पात हिलते हैं + या ब[11] - अफ़सोस हाथ मलते हैं

जिन ख़ूबियों का जिक्र हो चुका है, यहाँ सभी वर्त्तमान हैं। क़ाफ़ियों[12] की बैठक अटल है। सहज स्वाभाविकता ऐसी कि शेर मानस-पटल पर अंकित होकर ज़बान पर चढ़ जाते हैं।

(२) मसनवी से कहानियाँ लिखने के अतिरिक्त और भी काम लिये गये हैं। एक 'मीर' ही को लीजिए, एक मसनवी में आसफ़ुद्दौला के शिकार के लिए जाने का ज़िक्र करते हैं :

चला आसफ़ुद्दौला बहरे[13] शिकार
निहादे[14] 'बेआबाँ[15] से उट्ठा ग़ुबार[16]

तो दूसरी में आसफ़ुद्दौला के विवाह का वर्णन करते है :

है जहाने[17] - कोहन[18] तमाशा-गाह
आसफ़ुद्दौला का रचा है ब्याह

और फिर मुर्ग़बाज़ों, होली, बकरी, झू , बरसात, बिल्ली :

एक बिल्ली सोहनी था उसका नाम
आन मेरे घर किया आकर मुक़ाम[19]

अपने घर का हाल, इस तरह की चीजों पर भी मसनवियाँ लिखी हैं। अन्य कवियों ने भी मसनवी में इस प्रकार के विषय पद-बद्ध किये हैं, किन्तु इस प्रकार की मसनवियों का मूल्य-महत्त्व काव्य-जगत् में कुछ अधिक नहीं। कुछ मसनवियाँ ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं अथवा तात्कालिक ढंग की हैं। हाँ, वे मसनवियाँ जिनमें प्राकृतिक दृश्यों, मानसिक भावों या व्यक्तिगत भावों का चित्रण किया गया है, उनमें कुछ अच्छी कविता के उदाहरण मिल जाते हैं। इस प्रकार की कविताएँ कम हैं, लेकिन इन कविताओं से पता चलता है कि यदि इनकी ओर कुछ अधिक ध्यान दिया जाता तो परिणाम सुखदायक होता। 'सौदा' शिशिर और ग्रीष्म ऋतुओं का वर्णन ओजपूर्ण ढंग से करते हैं।

---

१. क्षेत्र, २. जीवन, ३. यदि, ४. ओर, ५.छाती, ६. आग, ७. फूल गुलाब का फूल; ८. एक प्रकार की लच्छेदार घास, ९. आग की गद , १०. वृक्ष, ११. साथ, १२. तुक, समतुकान्त शब्द; १३. वास्ते, १४. जड़, अन्तःकरण; १५. मरुस्थल, १६.गर्द, १७. संसार, १८. प्राचीन, पुराना; १९. स्थान।

अत्युक्ति और अर्थ-गर्भता पर इन दोनों कविताओं में भी काफी ध्यान दिया गया है, लेकिन बाह्य कृत्रिमता व्यक्तिगत अन्वेषण को छिपा नहीं सकती। सर्दी का चित्र कितना सही खींचा गया है :

सर्दी अबकी बरस है कितनी शदीद[1] + सुब्ह निकले है कांपता खुर्शीद[2]
सरसरे[3] - सुब्ह जान खोती है + तीर-सी दिल के पार होती है
कांपते हैं दरख़्त वो कोह[4] वो जबाल[5] + मौसिमे[6] दै है यारो या भौंचाल
आग भी ठंड से ठिठुरती है + गोदों के बीच छिपती फिरती है
बेहरारत[7] हैं सरदी के मारे + तरह याक़ूत[8] के अब अंगारे

प्रत्येक शेर से वास्तविकता झलकती है, प्रत्येक ब्यौरे से अपने अनुभव की स्मृति फिर जग जाती है और शीत की प्रचण्डता नजर के सामने आ जाती है, ऐसी प्रचण्डता जिससे सूर्य भी कांपता है, जिससे वृक्ष और गिरि-शिखर थरथराते हैं। तो फिर आग क्यों न सर्दी के भय से पलायन करने का रास्ता ढूंढे। अब चित्र के दूसरे मुखपृष्ठ की ओर ध्यान दिया जाय :

शफ़क़े[9] आफ़ताब[10] शामो - सेहर[11] + आग दे है जहान[12] को यकसर[13]
मह के परतो[14] की क्या करूं तक़रीर[15] + जोश[16] खा जों उबल चले हैं शीर[17]
पंखे हाथों में और झौंके हैं + रात दिन कोयले से धौंके हैं
पंखे से तो तसल्ली[18] अब मालूम + दमे[19]-ईसा भी हो तो होवे सुमूम[20]

'मीर' भी कभी इस ओर ध्यान देते हैं तो वर्षाऋतु का अच्छा चित्र प्रस्तुत करते हैं :

बूंद थमती नहीं है अब की साल + चर्ख़[21] गोया[22] है आब[23]-दर[24]- ग़िरबाल[25]
माह[26] वो ख़ुर्शेद[27] अब निकलते नहीं + तारे डूबे हुए उछलते नहीं
ले जमीं से है ता फ़लक[28] ग़र्क़ाब[29] + चश्मए[30] - आफ़ताब हैं गिर्दाब[31]
अब्र[32]-रहमत[33] है या कि ज़हमत[34] है + एक आलम[35] ग़रीके[36] रहमत[37] है
ले गये हैं जहान को सैलाब[38] + नक़्शा आलम[39] का नक़्शा[40] था बर[41] आब[42]

'मीर' में वह जोर नहीं, जो 'सौदा' का विशिष्ट गुण है, लेकिन 'मीर' भी अपनी सादगी और सफ़ाई के द्वारा बरसात की कृपा का सफल वर्णन करते हैं। बरसात क्या है तूफ़ाने-नूह का प्रतिरूप है। प्राकृतिक दृश्यों के साथ-साथ निजी अनुभवों का भी ज़िक्र मिलता है। "मसनवी-ख़्वाब वो ख़्याल" में 'मीर' सम्भवतः अपनी कहानी अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से बयान करते हैं।

---

१. कड़ा, सख़्त; २ सूर्य, ३. तेज़ हवा, ४. पहाड़, ५. घाटी, ६. शिशिर ऋतु, ७. गर्मी, ८. लालमणि, ९. सन्ध्या-प्रातः आकाश की लालिमा, १०. सूर्य, ११. सुबह, १२. संसार, १३. आद्योपान्त, १४. झलक, १५. वर्णन, १६. उफान, १७. दूध, १८. शान्ति, १९. सांस, २०. एक प्रकार की बहुत गर्म हवा, लू; २१. आसमान, २२. मानो, २३. पानी, २४. में, २५. छलनी, २६. चन्द्रमा, २७. सूर्य, २८. आसमान, २९. पानी में डूबा हुआ, ३०. झरना, ३१. चकह, २३. बादल, ३३. कृपा, दया; ३४. तकलीफ, झंझट; ३५. दुनिया, संसार; ३६. डूबा हुआ, ३७. कृपा, ३८. पानी की बाढ़, ३९. दुनिया, ४०. चित्र, ४१. पर, ४२. पानी।

अक्षर-अक्षर से वास्तविकता की बू आती है। हृदय की उद्विग्नता, उन्माद, स्वदेश और मित्रों से वियोग, यात्रा की कठिनाइयाँ और कष्ट; सारांश यह कि एक सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं, जिससे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है :

जिगर[१] जौरे[२]-गर्दूं[३] से खूँ हो गया + मुझे रुकते-रुकते जुनूँ[४] हो गया
हुआ ख़ब्त[५] से मुझको रब्ते[६] तमाम[७] + लगी रहने वहशत[८] मुझे सुब्ह शाम
कभू कफ़[९]-व-लब मस्त रहने लगा + कभू[१०] संग-दर[११]-दस्त रहने लगा
कभू[१२] ग़र्क़[१३]-बहरे[१४]-तहैयुर[१५] रहा + कभू सर ब[१६] जेबे[१७] तफ़क्कुर[१८] रहा
य: वह्मे[१९]-ग़लत-कार यां तक खिंचा + कि कारे[२०]-जुनूं[२१] आसमां[२२] तक खिंचा

काश ! उर्दू के कविगण ग़ज़ल की अपेक्षा इस प्रकार की कविताओं की ओर अधिक ध्यान देते ! ये नज़्में उनके सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयास नहीं। ये मानों उनकी हाशिए की रचनाएँ हैं, जिनसे उनकी मानसिक शक्तियों, उनकी कल्पना और आविष्कार की क्षमताओं पर विशेष रोशनी पड़ती है। लेकिन ये नज़्में उनकी रचनाओं का महत्त्वपूर्ण अंश नहीं बन सकतीं।

---

१. कलेजा, २. अत्याचार, ३. आसमान, ४. उन्माद, ५. पागलपन, ६. सम्बन्ध, ७. पूर्णरूप से, ८. विक्षिप्तता, ९. फेन, १०. पत्थर, ११. हाथ, १२. कभी, १३. डूबा हुआ, निमग्न, १४. समुद्र, १५. अचम्भा, विस्मय; १६. में, १७. थैली, पॉकेट; १८. चिन्ता, १९. भ्रामक विचार, २०. व्यापार, २१. उन्माद, २२. आकाश, बहुत ऊँचा।

सन्दर्भ-संकेत

१. Homer's Iliad;

२. Virgil's Aeneid;

३. Dante's Divine Comedy;

४. Ariosto's Orlando Furioso;

५. Spencer's Faerie Queene;

६. Milton's Paradise Lost;

७. Walter Scott's Mermion, The Lady of the Lake;

८. Byron's The Gior, The Bride of Abydos.

९. इस शाब्दिक श्लेष, इस दिलचस्प और दुष्कर खेल ने अन्य कवियों को भी इस प्रकार का साहस करने के लिए बाध्य किया। निम्नलिखित उदाहरणों पर ध्यान दिया जाय :

(क) सर धुनती थी गह[1] उदास होकर + कहती थी कभू हरास[2] होकर
बुलबुल तू चहक अगर खबर है + गुल तू ही महक बता किधर है
सुम्बुल[3] ज़ुल्फ़ों[4] की बू सुँघा दे + शमशाद[5] व: क़द[6] तू ही दिखा दे
ओ बादे[7]-सबा ज़रा[8] तरस खा + वह तख़्त इधर उड़ा के ले आ
फ़ाख़्मरी[9] तू ही ढूँढ़ करके कू-कू + परतौ[10] ही दिखा दे ऐ[11]! लबे-जू
गुंचे[12], तू चटक के बोल लिल्लाह[13] + सोसन[14], तू ज़बान खोल लिल्लाह
किस सिम्त[15], किधर गया मेरा गुल[16] + सूरत दिखलाके दे गया जुल
ओ ख़ार[17], न तूने रोका दामन[18] + तूने भी ज़रा न टोका सोसन
करती थी जो वह फ़ुग़ान[19] वो शेवन[20] + बेरंग हुआ था सारा गुलशन[21]
क्या कहिए कि रंगे-बाग क्या था + कुछ और ही गुल खिला हुआ था
हर नख़्ल[22] बना था नख़्ले-मातम[23] + हर सर्व[24] पआह का था आलम[25]
हर बर्गे[26] दरख़्त मलता था हाथ + नालां[27] बुलबुल भी उसके थी साथ

[बाजिद अली शाह, 'अख़्तर : दरियायत्त अश्शुक़']

---

१. कभी, २. भयभीत होकर, ३. एक सुगन्धित घास, जिससे अलकों की उपमा दी जाती है, ४. अलकों, ५. एक लम्बा सुन्दर वृक्ष है, जो नायिका के क़दका उपमान है, ६. डील-डौल, ऊँचाई; ७. प्रातःकालीन समीर, ८. रंचक-मात्र, थोड़ा, ९. पण्डुक की जाति की एक चिड़िया, १०. झलक, ११. नदी का किनारा, १२. कली, १३. खुदा के वास्ते, १४. एक फूल, जिसकी पंखुड़ी जिह्वा का उपमान है, १५. ओर, दिशा; १६. फूल, विशेषतः गुलाब का, १७. काँटा, १८. अंगरखे या कुरते का लटकता हुआ भाग, १९ आह भरना, २०. रोना, २१. बगीचा, २२. पेड़, २३. शोक-संताप, २४. एक वृक्ष, जो माशूक के क़द का उपमान है, २५. दशा, परिस्थिति; २६. पत्ता, २७. रोती हुई।

(ख) सौसन[1] की जबान गंग थी बे-हिस[2] + क्या फट गई थी चश्मे[3] नर्गिस[4]
शाखों[5] ने न बछियां लगाईं + पत्तों ने न तालियां बजाईं
फैलाये हुए थीं जाल बेलें + चलने देतीं न चाल बेलें
गुंचों[6] को हेजाब[7] की पड़ी थी + सब्जे[8] को ख्वाब[9] की पड़ी थी
ख़ाक[10] पाया न मेरे काम सुम्बुल[11] + मिट जाय बला से नामे-सुम्बुल
पकड़ा किसी ख़ार[12] ने न दामां[13] + जंजीर बना न इश्के[14]-पेचां
ताका न उदू[15] को तूने ओ ताक[16] + आंखों में पड़ी न उड़के ओ ख़ाक[17]
तूने न दिया नसीम झटका[18] + कांटा भी तो पांव में न खटका
लब खोल के हौज़ क्यों न बोला + फौवारे ने क्यों देहन[19] न खोला
मौजें दौड़ीं न होके बेताब[20] + तौके़[21]-गर्दन न हुआ न गिर्दाब[22]
साया ही न पड़के काश सोता + बेला ही गले का हार होता
मेहंदी ही जकड़ती हाथ पावों + रंगत ही पकड़ती हाथ पावों

• ['शौक़' क़दुवाई : 'तरानए-शौक़']

मसनवी 'ख़्वाब वो ख़याल' बिल्कुल नये ढंग की चीज है। 'बहारे बेखिजां' में है कि 'मीर' अपने शहर में एक अप्सरारूपिणी सम्बन्धिनी के साथ गुप्त रूप से प्रेम तथा मित्रता रखते थे। यह बात सही हो या गलत, 'मसनवी-ख्वाब व ख़याल' से बात प्रकट होती है कि 'मीर' ने अपनी यौन-वासनाओं को दबाया था। ये वासनाएं उस अप्सरारूपिणी सम्बन्धिनी के विषय में हों या किसी और के। यदि 'मीर' की जिन्दगी के सभी अंधेरे कोने प्रकाशित हो जायें तो शायद इस बात पर भी रोशनी पड़े कि ये यौन-वासनाएँ क्या थीं और इन्हें दबाने का क्या कारण हुआ ? किन्तु इस आलोक की झलक की कोई आशा नहीं और न इसकी आवश्यकता ही है। यह सत्य है कि इस नज़्म में यौन-अभिकर्त्ताओं का स्पष्ट प्रतिबिम्बन है।

रहीं जाने ग़मनाक को ख़्वाहिशें + गईं दिल से नौमीद सो ख़्वाहिशें
ज़माने ने रक्खा मुझे मुत्तसल + परागंदा-रोज़ो परागंदा-दिल

न जानें वे कौन-सी ख़्वाहिशें थीं, जिनसे दिल निराश हो गया, न जानें वे कौन-सी आशाएं थीं, जो पूरी न हो सकीं, जिन्हें मीर को चेतन या अवचेतन रूप से दबाना पड़ा। इसका असर यह हुआ कि ज़ेहन में उलझाव

१. एक फूल-विशेष जिसकी पंखुड़ियां जिह्वा की उपमान हैं, २. शून्य, निष्प्राण; ३. आंख, ४. एक पुष्प-विशेष, जो आंखों का उपमान है, ५. डालियों, टहनियों; ६. कलियों, ७. पर्दा, शर्म; ८. ऐसे क्षेत्र जिन पर हरी घास उगी हुई हो, ९. निद्रा, १०. मिट्टी, ११. एक प्रकार की खुशबूदार घास, १२. कांटा, १३. दामन, १४. एक लता-विशेष, १५. शत्रु, दुश्मन; १६. अंगूर, १७. धूल, मिट्टी; १८. समीर, १९. मुंह, २०. अधीर, २१. गर्दन की पट्टी, माला; २२. पानी का चकोह।

पैदा हुआ और बढ़ते-बढ़ते उन्माद (जनून) की नौबत आई।

यः वह्मे गलतकार यां तक खिचा + कि कारे जुनूं आसमां तक खिचा

फ्रायड और उसके अनुयायियों का कहना है कि यौन-वासनाओं को दबाने से ज़ेहन में उलझाव पैदा हो जाता है; मनुष्य 'नार्मल' नहीं रह जाता। इसका परिणाम उन्माद हो सकता है। मानसिकसन्तुलन सदाके लिए नष्ट हो जासकता है। किन्तु ऐसा होता नहीं; क्योंकि अधिक-से-अधिक आदमी एक वहम का संसार (World of Phantasy)बना लेते हैं। जो इच्छाएँ इस निष्ठुर संसार में पूरी नहीं हो पातीं, वे उस वहम की दुनिया में पूरी हो जाती हैं। इस प्रकार से उसे मानसिक उलझावसे छुटकारा मिल जाता है और उसका संतुलन नष्ट नहीं हो जाता। कवि को यह छुटकारा उसकी कला में मिलता है। 'मीर' वहम के शिकार होते हैं :

तवहहुम[१] का बैठा जो नक्शे[२] दुरुस्त + लगी होने उसवास[३] से जान सुस्त
नज़र आई एक शक्ल महताब[४] में + कमी आई जिससे खुर[५] वोख्वाब[६] में

और कैसी शक्ल :

गुले[७] - ताज़ा शर्मिन्दा उस रू[८] से हो + खजिल[९] मुश्केनाब[१०] उसके गेसू[११] से हो
सरापा[१२] में जिस जा[१३] नज़र कीजिए + वहीं उम्र अपनी बसर[१४] कीजिए

और यह वहमी शक्ल हड्डी-मांसवाली शक्ल से अधिक वास्तविक बन गई :

कभू सूरते-दिलकश[१५] अपनी दिखाए + कभू अपने बालों में मुँह को छिपाये
कभू गर्मे[१६] - कीना[१७] कभू मेहरबां + कभू दोस्त निकले कभू ख़स्मे[१८] जां[१९]
गले में मेरे हाथ डाले कभू + तरह[२०] दुश्मनी की निकाले कभू
कभू चीं[२१] ब अब्रू[२२] कभू हंसके बात + कभू बेवफाई[२३] कभू इलतफ़ात[२४]

लेकिन,

जो मैं हाथ डालूं तो वां कुछ नहीं + बजुज़[२५] शक्ले वह्मी[२६] अयां[२७] कुछ नहीं

लोग 'मीर' के रोग की चिकित्सा करते हैं। कोई यन्त्र लाता है, कोई ओझा बुलाता है कि 'मन्त्र पढ़े', फिर वैद्य को दिखाया जाता है :

---

१. भ्रान्ति, २. चित्र, ३. शुबहा, दुविधा; ४. चन्द्रमा, ५. खाना, ६. सोना, ७. नवविकसित गुलाब का फूल, ८ चेहरा, ९. लज्जित, १०. स्वच्छ कस्तूरी, ११. अलकें, १२. नख-शिख, १३. जगह, १४. समाप्त १५. आकर्षक, १६-१७. शत्रुता में व्यस्त, १८. दुश्मन, १९. प्राण, २०. ढंग, तरीका; २१. शिकन, सिकुड़न, त्योरी, २२. भौं, २३. विश्वासघात, २४. प्रेम, २५. सिवाय, २६. भ्रामक, २७. प्रकट।

तबीबों[1] को आखिर[2] दिखाया मुझे + न पीना जो कुछ था पिलाया मुझे
दवा जो लिखी सो खिलाफ़े[3] मिजाज[4] + खिचा इस ख़राबी[5] से कारे[6]-इलाज
कि सररिश्ता[7] तदबीर[8] का गुम हुआ + दिल ऊपर जुहूमे[9]-तवह्हुम[10] हुआ

उन्माद प्राणों के ऊपर आघात करता है। उन्हें एक कोठरी में बन्द कर दिया जाता है कि 'आतिश जुनूँ की मगर वाँ बुझे'। अन्त में पाछ देनेवाले बुलाये जाते हैं, नश्तर लगते हैं, कमजोरी बढ़ती है, मृत्यु निकट आ जाती है, प्राणवत्ता आड़े आती है, वहम के चलते होनेवाली गलती कुछ कम होती है; कुछ दिनों के बाद वही सूरत फिर आँखों में आने लगी और अन्त में :

गरज[11] नाउमीदाना[12] कर एक निगाह + व:नक़्शे[13] तवह्हुम गया सूये[14] माह[15]
न आया कभू फिर नज़र उस तरह + न देखा उसे जल्वागर[16] उस तरह
मगर गाह[17] साया[18] सा महताब[19] में + कभी वह्म सा आलमे[20] ख़्वाब में

और फिर वह रूप सदा के लिए 'मीर' की नजरों से अन्तरर्धान हो जाता है :

न देखा कभू 'मीर' फिर वह जमाल + सोहबत थी गोया कि ख़्वाबो खयाल

अर्थात् वह मानसिक उलझन दूर हो जाती है और 'मीर' फिर 'नॉर्मल' हो जाते हैं।

,मीर' को 'साइको-एनालिसिस, का कोई ज्ञान नहीं था। वह 'फ्रायड', 'एडलर', 'युंग' की बातों से अवगत न थे। किन्तु उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ था, जिसकी प्रकृति की जानकारी उन्हें न थी, लेकिन वह कवि थे। उन्होंने इस अनुभव को पूरा-पूरा बिना काट-छाँट किये वर्णन कर दिया है और हम उसकी प्रकृति को समझ लेते हैं।

इसीलिए मैंने कहा है कि यह मसनवी बिल्कुल नये ढंग की चीज है। इससे 'मीर' के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है और साथ-ही-साथ :यह एक निजी दस्तावेज़ नहीं; इसमें काव्य-तत्त्व भी है, रचनात्मक सौन्दर्य भी है, एक असाधारण अनुभव का सुन्दर वर्णन भी है।

---

१. चिकित्सकों, २. अन्तत:, ३. विरुद्ध, ४. स्वभाव, प्रकृति; ५. कुव्यवस्था, ६. चिकित्सा का काम, ७. मूलसूत्र, ८. उपाय, ९. भीड़, १०. भ्रमात्मक विचारों, ११. सारांश यह कि, १२. निराशापूर्ण ढंग से, १३. चित्र, १४. ओर, १५. चन्द्रमा; १६. दर्शन देता हुआ, १७. कभी, १८. छाया, १९. चन्द्रमा, २०. स्वप्न की दशा में।

८

१. 'मीर हसन' मसनवी के क्षेत्र के योद्धा हैं। 'मसनवी-ए-सेहरुल बयान' उर्दू की सर्वोत्तम मसनवी समझी जाती है। 'हाली' कहते हैं :

"मीर हसन' ने कथा-लेखन के सारे कर्त्तव्य पूरे-पूरे पालन कर दिये हैं—राजसी ठाट-बाट, राजधानी की शोभा और चहल-पहल, सन्तानहीनता की दशा में उदासीनता एवं निराशा और संसार से मन का उचाट, ज्योतिषियों की बातचीत, राजकुमार का जन्म और छट्ठी का उत्सव, नाच-रंग और गाने-बजाने के ठाट, बागों और सभी प्रकार की महफ़िलों के समय, सवारियों के जुलूस, हमाम में नहाने का भाव, मकानों की सजावट, राजकीय वस्त्र-भूषण और मणि-माणिक का बयान, शयनागार का चित्र, जवानी की नींद की दशा—सारांश यह कि जो कुछ इस मसनवी में बयान किया है, उसका आंखों के सामने चित्र खींच दिया है। और, मुसलमानों के अन्तिम युग में बादशाहों और अमीरों के यहां जो दशाएं ऐसे अवसरों पर होती थीं और जो मामले सामने आते थे, उनका हू-ब-हू चर्चा उतार दिया है।'

मालूम नहीं, कथा-लेखन के कर्त्तव्यों से हाली का क्या मतलब है। मैंने उर्दू मसनवी की जो आम खामियां बयान की हैं वे सारी त्रुटियां 'मसनवी सेहरुल बयान' में वर्त्तमान हैं। इसलिए उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं। एक कथावस्तु ही को लीजिए। यह बहुत ही संक्षिप्त और पतली है : किसी शहर में कोई बादशाह था। घोर निराशा के बाद भगवान् ने उसे पुत्र दिया। चौदह वर्ष की अवस्था में कोई परी उस राजकुमार 'बेनज़ीर' पर आसक्त होकर उसे परिस्तान में उठा ले जाती है। सैर करने के लिए वह परी उसे तिलिस्मी घोड़ा देती है। राजकुमार भ्रमण करते-करते 'बद्रे-मुनीर' के बाग़ में पहुंच जाता है। दोनों एक-दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। 'माह-रुख' परी को इसकी ख़बर मिलती है तो वह 'बेनज़ीर' को एक संकीर्ण एवं अन्धकारमय कुएं में डालकर बन्दी कर देती है। बद्रेमुनीर विरह-यातना से अधीर होती है। एक रात को स्वप्न में वह 'बेनज़ीर' के बन्दी होने का हाल जान पाती है। उसकी सहेली 'नज्मुन्निसा' जो वज़ीर की बेटी थी, जोगिन बनकर उसकी खोज में निकलती है। जिनों (प्रेतों) के बादशाह का बेटा 'फ़ीरोज़शाह' जोगिन पर आसक्त हो जाता है। जोगिन उससे सारी कहानी कहती है। 'बेनज़ीर' क़ैद से छूटकर 'बद्रेमुनीर' से जा मिलता है 'बद्रेमुनीर' का बेनज़ीर से और 'नज्मुन्निसा' का उस परीज़ाद (यक्ष) से विवाह हो जाता है; और 'बद्रेमुनीर' एवं 'बेनज़ीर' अपने देश को लौट जाते हैं। यही कहानी है और इसका तत्त्व भी विदित है, और इसी का एक सौ इक्कीस पृष्ठों में विस्तारपूर्वक वर्णन है।

कहानी के प्रत्येक अंश के आरम्भ में पहले मदिरा से शक्ति प्राप्त की जाती है। इस परम्परागत (रस्मी, पुनरावृत्ति का असर बड़ा ही हास्यास्पद होता है।

खुशी से पिला मुझको साक़ी[1] शराब + कोई दिन में बजता है चंग[2] वो रुबाब[3]
मये[4] - अरग़वानी पिला साक़िया + कि तामीर[5] को बाग़ की दिल चला
पिला साक़िया मुझको एक जामे[6] -मुल[7] + जवानी में आया है ऐयामे[8] - गुल[9]
पिला आतशीं[10] आब[11] पीरे[12] - मुग़ां + कि भूले मुझे गर्म[13] वो सर्द जहां
शिताबी[14] मुझे साक़िया दे शराब + कि यह हाल सुनकर हुआ दिल कबाब

देखा आपने ! यदि 'मीर हसन' बात-बात में साक़ी को पुकारते हैं तो 'नसीम' अपनी कलम को खींच लाते हैं :

करता है जो तै सवाद[15] - नामा + यों हर्फ़[16] हैं नक़्शे[17]-पाय[18]-ख़ामा[19]
गुल का जो अलम[20] चमन[21] -चमन है + यों बुलबुले - ख़ामा[22] नाराज़न[23] है
फिरना जो वतन को मद्दआ[24] है + अब सफ़हे[25] पर यों कलम फिरा है
है बस्कि[26] यः चर्ख़[27] जौर[28] - पेशा + यों ख़ार[29] - देहे - क़लम है रेशा[30]
गुलचीं[31] का जो अब पता मिला है + यों शाख़े[32] - कलम से गुल खिला है

मैं मानता हूँ कि यह प्रचलित पद्धति के प्रतिबन्ध का फल है, किन्तु इससे रचना की सुन्दरता में वृद्धि नहीं होती और विचाराभिव्यक्ति में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। फिर ऐसा प्रतिबन्ध आवश्यक भी न था।

'मीर हसन' कहानी आरम्भ करने के पहले कुछ और प्रतिबन्धों का पालन करते हैं। ईश-वन्दना, रसूल की स्तुति, ऋषि-मुनियों तथा पवित्रात्माओं की प्रार्थना, विनय, साहित्य की प्रशंसा, 'आसफ़ुद्दौला' की प्रशंसा, उदारता का वर्णन, वीरता का विवरण, अपनी नम्रता—ये सारे स्थल पार करने के बाद वह कथावस्तु की ओर ध्यान देते हैं और इन चीजों में सफाई तथा सहज भाव के अतिरिक्त और कोई बात प्रशंसनीय नहीं।

'हाली' ने कहा है : 'मुसलमानों के अन्तिम युग में बादशाहों और अमीरों के यहाँ ऐसे अवसरों पर जो हालतें गुज़रती थीं और जो-जो बातें होती थीं, उनका हू-ब-हू चर्चा उतार दिया है।" यह बात ठीक है। लेकिन 'हाली' यह नहीं समझते कि इस विशेषता के कारण इस मसनवी के काव्यगत महत्त्व में कोई वृद्धि नहीं होती। हाँ, यह बात जरूर है कि इसका कुछ ऐतिहासिक महत्त्व हो जाता है। इससे बस यही पता चलता है कि बादशाहों और अमीरों के यहाँ ऐसे अवसरों

---

१. मधुबाला, शराब पिलानेवाली; २-३. वाद्य-विशेष के नाम हैं, ४. सुर्ख़ शराब, ५. रचना, निर्माण; ६. प्याला, ७. शराब, ८. दिन, ऋतु; ९. फूल, १०. आग के समान, ११. पानी (यहाँ शराब), १२. अग्निपूजकों के बूढ़े सरदार, शराब बेचनेवाला कलाल; १३. तकलीफ, आराम; १४. जल्दी, १५. दिहात या मरुस्थल का वर्णन, १६. अक्षर, शब्द, १७. चिह्न, १८. पैर, पाँव; १९. कलम, २०. दुःख, शोक; २१. बगीचे-भर में, २२. कलम, २३. नारा लगानेवाला, चिल्लानेवाला; २४. उद्देश्य, २५. पृष्ठ, २६. चूँकि, २७. आसमान, २८. जुल्म का व्यापार करनेवाला, २९. :काँटा (दुःख देनेवाला), ३०. सूत; ३१. फूल तोड़नेवाला, ३२ डाली, टहनी।

पर क्या हालतें गुजरती थीं और कौन-कौन-सी बातें होती थीं। अर्थात् यदि कोई यह जानना चाहे कि उस समय में छट्टी का उत्सव, हमाम में नहाने की दशा, मकानों की सजावट, राजकीय वस्त्राभूषण इत्यादि—ये सारी चीज़ें क्या और कैसी थीं तो उसे इन बातों की जानकारी इस मसनवी से हो सकती है। जैसे 'मीर हसन' उस समय के वस्त्राभूषणों का काफ़ी दिलचस्प वर्णन करते हैं। राजकुमारी बद्रेमुनीर के वस्त्रों और जेवरों का वर्णन देखिए :

और एक ओढनी ख़ाली मुक़्क़ैश[१] की + पड़ी चांदनी - सी महे[२] ऐश[३] की
जो देखे वः अंगिया जवाहिर[४] - निगार + फ़रिश्ता[५] मले हाथ बे - अख़्तिआर[६]
वः बारीक कुर्ती मिसाले हवा[७] + अयां[८] मू-बमू[९] जिससे तन[१०] की सफ़ा[११]
उलक[१२] सुर्ख़ नेफ़े[१३] की उभरी हुई + गुलाबी सी गर्द एक तह दी हुई
मुग़र्रक[१४] ज़री का वः शिलवार[१५] बन्द + सुरैया[१६] से ताबिन्दगी[१७] में दो चन्द[१८]
पड़ी पांव में कफ़्शे[१९] - ज़र्री[२०] - निगार + सितारों की जिसके ज़मीं पर बहार

यह तो वस्त्रों की शोभा थी; और फिर इस पर सिर से पांव तक गहनों में डूबी हुई :

भरी मांग मोती से जल्वा[२१] - फ़ुनां + नुमायां[२२] शबे[२३] - तीरा[२४] में कहकशां[२५]
वः माथे प टीके की उसके झलक + सेहर[२६] चांद तारों की जैसे चमक
वः बालों की ताबिन्दगी[२७] ज़ेरे[२८] - गोश[२९] + जिसे देख उड़ जायें बिजली के होश
वः हीरे का तुकमा[३०] वसद[३१] आब वो ताब[३२] + वः सुब्हे गुलू[३३] मतलए[३४] आफ़ताब
वः तुक्मे प चम्पा कली की फबन + कि सूरज के आगे हो जैसे किरन
वः छाती प अल्मास[३५] की धुकधुकी + रहे आंख सूरज की जिस पर झुकी
वः मोती के माले लटकते हुए + रहें दिल जहां सिर पटकते हुए
वः अल्मास की हैकल एक ख़ुशनुमा[३६] + तसौवुर[३७] रहे जिसका दिल से लगा
वः भुजबन्द बाज़ू[३८] के और नौ रतन + कि ज्यों गुल से हो शाख़[३९] ज़ेरे[४०] - चमन
वः पहुंची ज़मुर्रद[४१] की और दस्तबन्द[४२] + नज़ाकत[४३] में थी शाख़े गुल से दोचन्द[४४]

१. काढ़ी हुई, रेशम या तागे के बेल-बूटे बने हुए, २. महीना, ३. भोग-विलास; ४. रत्न-जटित, ५. देवदूत, ६. अधीर होकर, ७. समान, ८. प्रकट, ९. बाल-बाल, पूर्णतया; १०. शरीर, ११. गोराई, स्वच्छता; १२. लटकन, ऊपरी भाग; १३. पाजामे या लहंगे का वह ऊपरी भाग, जिसमें इज़ारबन्द पिरोया जाता है, १४. सुनहला काम किया हुआ, १५. शिलवार बांधनेवाला फीता इत्यादि, १६. वृष राशि में रहनेवाले सात नक्षत्रों का समुदाय, १७. चमक, १८. दुगुना, १९. जूती या जूता, २०. स्वर्णजटित, २१ छवि दिखलाता हुआ; २२. प्रकट, प्रमुख; २३. रात, २४. अंधेरी, २५. छायापथ, २६. प्रातःकाल, २७. चमक, २८. नीचे, २९. कान, ३०. घुण्डी, बटन; ३१. बहुत अधिक, ३२. चमक, दमक, ३३. प्रभात का-सा गोर वर्णवाला, ३४. सूर्योदय का स्थान, ३५. हीरा, ३६. सुन्दर, भव्य; ३७. रूप का ध्यान, ३८. बांह, ३९. डाली, टहनी; ४०. नीचे, ४१. पन्ना, एक हरे रंग का रत्न, ४२. अलकार-विशेष, जिसे स्त्रियां हाथ में पहनती हैं। यह मोतियों-जवाहरात का लच्छा होता है, ४३. सुकुमारता, ४४. दुगुना।

वः लालों की पाजेब आवेज़ादार[१] + सदा अश्क[२] ख़ूनीं[३] हो जिसपर निसार[४]
वः मीने के पांवों में छल्ले थे कुल + कि आँखों से दिल उन प खाते थे गुल

मोती, टीका, बाला, तुक्मा, चम्पाकली, धुकधुकी, हैकल, भुजबन्द, नौरतन, पहुँची, दस्तबन्द, पाज़ेब, छल्ले—क़ीमत में एक से एक बढ़कर। पहले मिसरे में जेवर का वर्णन है, फिर दूसरे मिसरे में उसकी प्रशंसा है। इस प्रकार की पुनरावृत्ति से मन बहुत ही क्षुब्ध हो जाता है। न तो अलग हर जेवर का चित्र आँखों के सामने आता है और न सभी गहने मिलकर राजकुमारी के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं।

वस्त्रों और आभूषणों की तरह 'मीर हसन' विवाह के रीति-रस्म, बरात के सामान के वर्णन में भी विस्तार वो बनावट से काम लेते हैं। ब्यवरों का ज़िक्र सभी जगह स्पष्ट रूप से है। कहीं कोई कठिनाई नहीं, सभी जगह सफ़ाई और मँजावट है। लेकिन जिस तरह पूर्वीय स्त्रियाँ इतने अधिक गहनों से अपने शरीर को सजाती हैं कि न तो हर जेवर की शोभा अलग-अलग दिखाई देती है और न उनके द्वारा किसी स्त्री के प्राकृतिक सौन्दर्य में वृद्धि होती है, उसी तरह पूर्वीय कविगण भी अनुपात से सरोकार नहीं रखते। यह नहीं करते कि गिने-चुने गहनों के वर्णन से अपनी रचना की शोभा बढ़ायें। जेवर प्राकृतिक सौन्दर्य की वृद्धि का साधन है। यह स्वयं अपने में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। यदि गहनों की इतनी भरमार हो कि उनके कारण शरीर की शोभा छिप जाय तो फिर ये किसी काम के नहीं। उर्दू के कवियों में प्रायः इसी प्रकार की त्रुटि मिलती है और 'मीर हसन' भी इससे वंचित नहीं हैं। किन्तु, फिर भी ये चीजें एक आकर्षण रखती हैं और इनका ऐतिहासिक एवं सामाजिक महत्त्व है।

'मीर हसन' भीड़-भाड़ का चित्र बहुत सुन्दर ढंग से खींचते हैं, जिससे सामूहिकता का प्रभाव दिमाग़ पर जम जाता है। राजकुमार 'बेनज़ीर' के स्नान करके लौटने और उसके विवाह के प्रसंग विशेष रूप से वर्णनीय हैं। सवारी की भीड़-भाड़, सुनहरी-रूपहली अमारियाँ, झलाबोरनी जगमगी नालकी, माही मरातिब, सवार और पियादा, बड़े-छोटे-सारांश यह कि एक बहुत बड़े जन-समूह का दृश्य सामने आ जाता है। बात यह है कि 'मीर हसन' की हैसियत एक दर्शक की है। वह जो कुछ देखते हैं उसे साफ़-साफ़ बयान कर देते हैं। इसलिए जब वह ऊपरी चीजों का नक़्शा खींचते हैं तो उनके वर्णन में कविता हो या न हो, सफ़ाई अवश्य होती है। उनमें कमी यह है कि वह आन्तरिक भावों तथा अनुभूतियों का चित्र भी एक दर्शक की तरह उपस्थित करते हैं। उन भावों एवं अनुभूतियों को तात्कालिक रूप से अपने हृदय में महसूस नहीं करते, उन्हें अपनाते नहीं; इसीलिए असर नहीं होता, काव्यत्व हाथ नहीं लगता। एक दृष्टान्त पर ध्यान दिया जाय :

ख़फ़ा[५] जिन्दगानी से होने लगी + बहाने से जा-जा के रोने लगी
ठहरने लगा जान में इज़्तराब[६] + लगी देखने वहशत[७]-आलूदा ख़्वाब[८]

१. लटकनेवाला, २. आँसू, ३. रक्त-रंजित, ४. निछावर, अर्पित, ५. रुष्ट, असन्तुष्ट; ६. बेचैनी, ७. विक्षिप्तता, घबराहट; ८. स्वप्न।

न अगला - सा हँसना न वह बोलना + न खाना न पीना न लब[1] खोलना
जहाँ बैठना फिर न उठना उसे + मुहब्बत में दिन रात घुटना उसे
कहा गर[2] किसी ने कि बीबी चलो + तो उठना उसे कहके हाँ जी चलो
किसी ने जो कुछ बात की बात की + प दिन की जो पूछो कहो रात की
अगर सिर खुला है तो कुछ ग़म नहीं + जो कुर्ती है मैली तो महरम[3] नहीं
जो मिस्सी है दो दिन की तो है वहो + जा कची नहीं है तो यों ही सही
न मंज़ूर सुर्मा, न काजल से काम + नज़र में वही तीरः बख़्ती[4] की शाम

'मीर हसन' दर्शक की हैसियत से जानते हैं कि विरह में क्या-क्या दशाएँ होती हैं। जीवन से रुष्ट होना, बहाने से जा-जाकर सोना, उद्विग्नतापूर्ण स्वप्न देखना, जहाँ बैठना फिर न उठना, हाँ, अगर किसी ने कहा कि चलो तो फिर 'हाँ जी चलो, कहकर उठना, यदि किसी ने बातें कीं तो बातें करना, लेकिन भूली-भूली, न सिर खुले होने की फ़िक्र, न कुर्त्ती और अँगिया का ध्यान, मिस्सी, कंघी, सुरमा, काजल इत्यादि किसी चीज़ का ख़याल नहीं :

न अगला - सा हंसना न वह बोलना + न खाना न पीना न लब खोलना

सारे ब्योरे ठीक हैं, तस्वीर साफ़ है, लेकिन वह असर नहीं, जो 'मीर' के शेरों में है, कारण कि 'मीर हसन' तात्कालिक रूप से 'बद्रेमुनीर' के ढांचे में नहीं समा सकते। 'बद्रेमुनीर' के दिल पर जो गुजरी है उसे वह अपने हृदय-तन्तुओं में महसूस नहीं कर सकते। एक क्षण के लिए भी वह 'बद्रेमुनीर' नहीं हो जाते। इसी कमी के कारण ब्योरों की तथ्यता, उनकी सुन्दरता और खूबी के बावजूद गहरा असर नहीं होता।

'मसनवी-सेहरुलबयान' में लेखन-शैली सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है। रचना-पद्धति साफ, परिष्कृत और मुहावरेदार है। बयान शोख़ और हृदयग्राही है। माधुर्य और लयदारी की भी कमी नहीं। कोमल, मुलायम शब्दों का व्यवहार किया गया है। कटुता और भद्दापन नाम को भी नहीं; प्रत्येक शब्द बड़ी सुगमता से अपनी जगह पर जा पहुँचता है और सुदृढ़ रूप से बैठ जाता है। प्रायः ऐसा जान पड़ता है कि कोई बातें कर रहा है। 'मीर हसन' ने प्रांजल रोज़मर्रे का निचोड़ इस मसनवी में रख दिया है। वार्त्तालाप और कथोपकथन के अत्यन्त सुन्दर फूल खिलाये हैं। इन सारी खूबियों के साथ कहीं पर आवश्यकता से अधिक बनावट का पता नहीं। आद्योपान्त हृदयग्राही प्रवाह है। विचाराभिव्यक्ति पर इतना अधिकार है कि कहीं पर भी कोई कठिनाई या रुकावट नहीं मालूम होती। लेखन-शैली में विविधता भी है; कहीं साफ़ वो स्वाभाविक है तो कहीं चमत्कारपूर्ण वो सजी हुई। कहीं इतनी चमक कि आँखें चकाचौंध होती हैं, तो कहीं पर रचना नितान्त अलंकारमुक्त एवं नग्न है। लेखन-शैली ही इस मसनवी की सजीवता का कारण है, अन्यथा इसके दूसरे अंशों में कोई खास बात नहीं।

(२) 'नसीम' ने अपनी सारी प्रतिभा भाषा पर लगा दी। लेकिन उनकी भाषा आवश्यकता से कुछ अधिक सजी हुई तथा बनावटी है। वर्णन-शैली दिलचस्प और शोख़ है। अधिकांश विचारों

१. ओठ, २. अगर, यदि; ३. चोली, अँगिया; ४. दुर्भाग्य।

की अभिव्यक्ति में बड़ी स्वाभाविकता है। उपमा वो रूपक की खूबी और मुहावरों की सुन्दरता स्पष्ट है, किन्तु सभी जगहों पर शाब्दिक श्लेष पर आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया गया है। 'मीर हसन' की भाषा, हरा-भरा, विकसित, सुगन्धित गुलाब है; 'नसीम' की भाषा गुलाब का सत्त्व है। इसलिए सुगन्ध तो बढ़ गई है, लेकिन आँखों को गुलाब की प्रफुल्लता नहीं मिलती, स्पर्श-शक्ति को उसकी नर्मी और कोमलता का आनन्द नहीं मिलता। 'नसीम' की भाषा में आद्योपान्त कृत्रिमता है। किन्तु यह जानकर भी चित्त प्रसन्न होता है : आदि से अन्त तक यह नज़्म एक रंग में डूबी हुई है। इस कारण से बनावट बनावट नहीं रह जाती।

दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना। दोष दोष न रहा, उसने गुण का रूप धारण कर लिया है।

बात यह है कि कुछ कवि ऐसे भी होते हैं, जिनकी अनुभव-शक्ति बहुत सीमित होती है, जो संसार-निरीक्षण से प्रभावित नहीं होते और जिन्हें मनोभावों का कोई ज्ञान नहीं होता। यदि उन्हें कभी जज़्बात का अनुभव होता है तो शब्दों के द्वारा। उन्हें शब्दों के उलट-फेर, शब्दों की खोज और उनकी योजना में एक खास तरह का आनन्द मिलता है। इस प्रकार का कवि गुलाब की सुषमा से तो प्रभावित नहीं होता, लेकिन कोई सुन्दर शब्द उसपर गज़ब का असर करता है। वह हृद्‌गत अनुभूतियों से तो अवगत नहीं होता; किन्तु वह किसी सुन्दर मुहावरे को तीव्र रूप से महसूस करता है। उसे किसी लावण्यमय कल्पना से आनन्द नहीं होता, किन्तु शाब्दिक श्लेष का ध्यान करके अधीर हो जाता है। अँगरेजी में 'स्विन्बर्न' कुछ इसी प्रकार का कवि है। वह शब्दों और लयदारी को अर्थ और अनुभवों पर प्रधानता देता है। 'नसीम' भी इसी तरह के कवि हैं। उनके शेरों में जज़्बे की झलक है, किन्तु वही जज़्बा, जिसे वह शब्दों के रूप में महसूस करते हैं। इस प्रकार की कविता का प्रभाव बहुत सीमित होता है, लेकिन अपनी सीमाओं के भीतर यह प्रभाव काफी प्रबल होता है। इसी तरह का असर 'गुल्ज़ार नसीम' में मौजूद है।

इस नज़्म की कल्पना और विशेषतः इसकी रचना से 'नसीम' प्रभावित हुए थे। इसलिए वह औरों के दिलों को भी प्रभावित करते हैं। उनका हृदय सुन्दर, सुघड़ शब्दों और उपमाओं को देखकर विह्वल हुआ था, इसलिए वह पढ़नेवालों को भी विह्वल कर देते हैं। किन्तु यदि इस शाब्दिक सुषमा के अतिरिक्त किसी और चीज़ की खोज की जाय तो फिर निराशा-ही-निराशा है। यह सुन्दर मूर्त्ति सर्द और बेजान है :

जब मेह्‌र[1] तहे[2] ज़मीं समाया + उस नक़्ब की[3] रह वह[4] आदमी[5] आया
सेहने[6] - चमने-अरम[7] में एक जा + बूटा सा तहे ज़मीं से निकला
खटका जो निगाहबानों[8] का था + धड़का यही दिल का कह रहा था
गोशे[9] में कोई लगा न होवे + ख़ोशा[10] कोई ताकता न होवे

१. सूर्य, २. नीचे, ३. सेंध, ४. राह, रास्ता, ५. मानव, ६. आँगन, अहाता, परिधि; ७. स्वर्ग, ८. पहरेदारों, ९. कोने, १०. अंकुर।

गो[१] बाग़ के पासवां[२] ग़ज़ब[३] थे + ख़्वाबीदा[४] ब-रगे[५] सब्जा[६] सब थे
नर्गिस[७] की खुली न आँख यकचंद[८] + सौसन[९] की जबां खुदा ने की बन्द
ख़ुशक़द[१०] ब: चला गुल[११] वो समन[१२] में + शम्शाद[१३] खां[१४] हुआ चमन में

यह नमूना है 'नसीम' की भाषा का। हस्व मामूली, शाब्दिक श्लेष और मुहावरों की चुस्ती और रवानी यहाँ भी है; लेकिन वह वैविध्य नहीं, जो साधारणतः मिलती है। स्पष्टतया विदित है कि इस शैली का क्षेत्र सीमित है, बहुत सीमित है। इस रंग में सभी तरह की कहानियाँ नहीं लिखी जा सकतीं। यहाँ पर वह वैविध्य भी नहीं, जो 'मीर हसन' की भाषा को प्राप्त है। अगर यह मसनवी लम्बी होती, जैसी 'नसीम' ने पहले लिखी थी, तो यह कमी और भी स्पष्ट हो जाती। सच्ची बात तो यह है कि यह मसनवी संसार की एक विचित्र वस्तु है और अपनी विचित्रता के कारण प्रशंसा के योग्य है; किन्तु इसके कमाल की परिधि बहुत सीमित है।

(३) 'शौक़' की मसनवियों के विषय मे 'हाली' लिखते है :

एक खा़स हद तक इनको 'बद्रेमुनीर' पर प्रधानता प्राप्त है। वे प्राचीन शब्दों और मुहावरों से जो इस समय व्यवहार-च्युत हो गये हैं, और निरर्थक तथा भरती के शब्दों से मुक्त हैं। इनमें एक सपाट वर्णन-शैली है; भाषा की घुलावट, रोज़मर्रे की सफ़ाई, का़फ़ियों की उपयुक्त बैठक और मिसरों की स्वाभाविकता की दृष्टि से यह 'बद्रेमुनीर की तुलना में बढ़ा हुआ है। इनमें ज़नाने और मर्दाने मुहावरों का प्रयोग इस तरह किया गया है कि किसी ने आज तक उन्हें ऐसे स्वाभाविक रूप से गद्य में भी व्यवहार नहीं किया। यद्यपि इन मसनवियों में 'बद्रेमुनीर' की तरह हर अवसर का सीन नहीं दिखाया गया, जिससे कवि की वर्णन-शक्ति का पूरा अन्दाज़ा हो सके, किन्तु जो कुछ उसने बयान किया है, चाहे वह 'मॉरल' हो या 'अनमॉरल' उसमें सुन्दर वर्णन-शैली का पूरा-पूरा हक़ अदा कर दिया है। उसने लखनऊ के आम कवियों के नीति-विरुद्ध शाब्दिक श्लेषों की तनिक भी व्यवस्था नहीं की है, और उर्दू के साधारण रोज़मर्रे को शब्दों की शुद्धता पर, जिसका लखनऊ-निवासी कड़ाई से पालन करते हैं, अक्सर प्रधानता दी है।

हाली ने बहुत ठीक कहा है कि 'शौक़' ने जो कुछ बयान किया है वह चाहे 'मॉरल' हो या 'अनमॉरल' उसमें वर्णन-शैली की सुन्दरता का हक़ पूरा-पूरा अदा कर दिया है। सच्ची बात तो यह है कि शौक़' ने एक नई राह निकाली है। लेकिन इस तत्त्व के कारण जिसे 'हाली' 'अनमॉरल' कहते हैं, 'शौक़' की साहित्यिक मौलिकता का वह सम्मान न हुआ, जिसके वे अधिकारी थे। उनकी मसनवियाँ असभ्य समझी जाने लगीं। कुछ समय के लिए उनका छपना भी कानूनन बन्द हो गया था, और लोग चोरी-छिपी उनकी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त करके पढ़ते थे। सभ्य और असभ्य

---

१. यद्यपि, २. रक्षक, रखवाले; ३. विचित्र, विकट; ४. सोये हुए; ५. की तरह, समान; ६. घास, ७. एक फूल, जिससे आँखों की उपमा दी जाती है, ८. तनिक भी, नितान्त; ९. एक फूल, जिसकी पंखुड़ियाँ जिह्वा के समान होती हैं, १०. अच्छे डील-डौलवाला, ११. गुलाब, १२. चमेली, १३. सर्व वृक्ष, १४. चलता हुआ।

की बहस तो आगे आयगी, 'शौक़' का यह कमाल है कि उन्होंने मसनवी को ज़िन्दगी से निकट कर दिया।

मैंने कहा है कि उर्दू-मसनवियों की दुनिया ख़याली है। इस दुनिया के निवासी, इस दुनिया में होनेवाली घटनाएँ अजनवी और अपरिचित-सी हैं, जिनका हमारी जानी हुई चौबीस घण्टेवाली दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं। 'शौक़' ख़याली दुनिया से अलग हो जाते हैं और जानी हुई दुनिया होनेवाली घटनाओं की जीती-जागती तस्वीर खींचते हैं। उनमें साहस है, स्वतन्त्रता है, बिल्कुल नया आर्ट है। वह ज़िन्दगी के एक ऐसे रुख से पर्दा हटाते हैं, जिसे बराबर पर्दे ही में रखा गया है। और, इस प्रकार वे अपनी यथार्थवादी वर्णन-शैली का प्रमाण देते हैं। सम्भव है कि 'शौक़' का ध्यान इस ओर 'असर' की मसनवी, 'ख़्वाब वो ख़याल' की वजह से गया हो। 'बहारे इश्क़' में जो शेर 'शौक़' ने सम्भोग के अवसर पर लिखे हैं उनमें और 'असर' के इस प्रकार के शेरों में तो इतना सादृश्य है कि स्पष्ट रूप से विदित होता है कि 'शौक़' ने 'असर' का अनुकरण किया है। किन्तु 'शौक़' 'असर' से बहुत आगे बढ़ गये हैं, और उन्होंने एक नये ढंग की मसनवी की बुनियाद डाली है। 'फ़रेबे-इश्क़' को लीजिए। इसमें छोटी-सी घटना है। 'शौक़' पहले बताते हैं कि किस तरह वे दर्शकों के गुरु बन जाते हैं। फिर एक दिन सैर को उठते हैं और दरगाह होते हुए कर्बला पहुँचते हैं तो

ख़ीमा इस्तादा[1] एक नज़र आया + मैं टहलता हुआ उधर आया
देखा उसमें एक मह[2] पारा[3] + ख़ीमा रौशन[4] है हुस्न से सारा[5]
बैठी है वह करीब चिलमन[6] के + बाहर आता है नूर[7] छन - छन के
नूरे[8] हुस्न[9] वो जमाल[10] से उसके + लौ निकलती है गाल से उसके
हंस के जिस सिम्त[11] आंख फिरती है + जाने - आशिक़ प बिजली गिरती है

'शौक़' के प्राण व्याकुल हो जाते हैं। उसकी कहारी को बुलवाते हैं :

कहा उससे य(ह) काम है हमको + लाके मिलवा दो अपनी बेगम को

कहारी उसकी सवारी शौक़ के बाग़ में ला रखवाती है। वह पहले बहुत परेशान होती है :

रह गई राह में कहारी क्यों + यां उतारी मेरी सवारी क्यों
क्या मुओं पर क़यामत[12] आई है + मूड़ी काटों की शामत[13] आई है
यहां लाकर जो मुझको डाला है + दाल में कुछ-न-कुछ तो काला है
कैसी ओफ़्ताद[14] यह एलाही[15] है + आज जी जान का ख़ुदा ही है

जब 'शौक़' अपना नाम उसे बताते हैं तो वह ठठाकर कहती है :

एलो अब मैं कहूँ सबब[16] क्या है + अरे तू ही 'नवाब मिर्ज़ा' है
बे-वफ़ाई[17] में दिल जलाने में + तू तो मशहूर है ज़माने में

---

१. खड़ा, २. चन्द्रमा, ३. टुकड़ा, ४ प्रकाशमान, ५. सौन्दर्य, ६. पर्दा, जो बाँस की तीलियों का बना होता है, चिक; ७. एवं ८. प्रकाश, रोशनी; ९. सौन्दर्य, १०. छवि, ११. ओर, १२. प्रलयकाल, १३. दुर्भाग्य, १४. घटना, १५. हे भगवन्, १६. कारण, १७. निष्ठुरता, कृतघ्नता।

नवाब मिर्ज़ा उसे वश में करना चाहते हैं, लेकिन वह एक नहीं सुनती। ठठेरे-ठठेरे बदलाई है; 'नवाब मिर्ज़ा' सोचते हैं :

आती नो चन्दी[1] में न यह जिन्हार[2] + गर हकीकत[3] में होती इस्मतदार[4]
रंडियाँ गो[5] कि सारी आफ़त हैं + बेग में और भी क़यामत हैं
ज़हर इनमें भरा है सर[6]-ता-सर + नहीं काटे का इनके है मन्तर
खुलता हर एक प इनका हाल नहीं + कौन इसमें है जो छिनाल नहीं
ढूँढ़ती फिरती ख़ुद हँसीं हैं यह + हमसे दूनो तमाशबीं[7] हैं यह

तब वह जाल फैलाते हैं। चीत्कार करके रोना शुरू करते हैं; रोते-रोते मूर्च्छा आ जाती है तो उसे दया आती है।

गिरे आँखों से आँसू ढल-ढलकर + बोली यह दोनों हाथ मल-मलकर
अरे मैं क्या समझती थी यह बात + ऐसी उल्फ़त[8] थी तुझको मेरे भात
हाल कुछ दिल का कह ज़बाँ से बोल + तेरे सदके[9] ज़रा तू आँखें खोल
लौंडी हूँ जब तलक जिऊँगी मैं + जो कहेगा वही करूँगी मैं
घर न जाऊँगी किब्रिया[10] की क़सम + यहीं रह जाऊँगी ख़ुदा की क़सम

सारांश यह कि बहुत अनुनय-विनय सुनने के बाद वह अँगड़ाई लेकर चेतना-युक्त होते हैं। वह फिर पहली-सी बातें करने लगती है, लेकिन क़ौल-क़रार के बाद : 'रंडी आख़िर थी आ गई दम में।' तत्पश्चात् :

कुछ दिनों तक मज़े उड़ाए ख़ूब + लुत्फ़[11] उस शोख़[12] से उठाए ख़ूब
फिर गया दिल फिर उनकी सोहबत से + हो गई नफ़रत उनकी सूरत से
न मज़ा जी ने उनसे जब पाया + और माशूक़ से दिल उलझाया

इस संक्षिप्त वर्णन से इस मसनवी का अन्दाज़ा करना सम्भव है। यहाँ वातावरण बिल्कुल नया है, अब इसे अच्छी कहिए या बुरी, और ज़िन्दगी से निकट। यहाँ रस्मी इश्क़ (प्रेम) नहीं, इश्क़बाज़ी है, तमाशबीनी है। सम्भव है कि ज़िन्दगी का जो सिद्धान्त इस कविता में है, उसे हम नापसन्द करें, ज़िन्दगी के जिस रुख का ज़िक्र है, उसे हम अच्छा न समझें, लेकिन यह तो मानना ही पड़ता है कि यह सिद्धान्त कल्पित नहीं, ज़िन्दगी का यह रुख कल्पित-मनगढन्त नहीं और सुन्दर वर्णन-शैली का तो पूरा-पूरा हक़ अदा किया है।

मैंने कहा है कि नख-शिख-वर्णन में उर्दू के कवि बहुत बनावट और कृत्रिमता से काम लेते हैं; 'शौक़' इस बनावट और कृत्रिमता से भागते हैं। उनके वर्णनों में चमक-दमक और अनुरंजकता तो कम है, किन्तु सहज स्वाभाविक सरलता और जीवन से सामीप्य अधिक है; इसलिए असर भी अधिक है :

---

१. चाँद से शुरू होनेवाले महीने की पहली जुमा, २. हर्गिज़, कदापि; ३. वास्तव में, ४. इज्ज़तवाली, पतिव्रता; ५. यद्यपि, ६. पूर्णरूप से, ७. तमाशा देखनेवाला, ८. प्रेम, ९. निछावर, खैरात; १०. भगवान्।

गुल से रुख़सार[1] गोल-गोल बदन + गात जिस तरह क़ुम्क़ुमे रोशन
रुख़[2] प वह बिखरे-बिखरे ज़ुल्फ़[3] के बाल + रगे-गुल से व: होंट पान से लाल
बे-मिसी के व: दाँत रश्के[4]-क़मर + जाने आशिक़ निसार[5] हो जिस पर
नाक में नीम का फ़क़त[6] तिनका + शोख़ो चालाकी मुक़्तज़ा[7] सिन[8] का
आस्तीनों[9] की वह फँसी कुर्ती + जिस्म[10] में वह शबाब[11] की फुर्ती
क़द[12] में आसार[13] सब क़यामत के + गोरी गर्दन मे तौक़[14] मन्नित के
अक्से[15]-रुख़ मोतियों के दाने में + बिजलियाँ छोटी-छोटी कानों में
आड़ी हैकल गले में डाले हुए + प्यारी-प्यारी कुचें निकाले हुए
रगे[16]-गुल-सी कमर लचकती हुई + चोटी एँड़ी तलक लटकती हुई
क्या ख़ुदा[17]-दाद हुस्न पाया था + आप अल्लाह ने बनाया था

कम-से-कम यह तो स्पष्टतया विदित है कि यहाँ वह बनावट और कृत्रिमता नहीं, जो नख-शिख-वर्णन का आम दोष है। यदि सौन्दर्य है तो सादा और प्राकृतिक :

नाक में नीम का फ़क़त तिनका + शोख़ो चालाकी मोक़्तज़ा सिन का

देखते ही बर्छी जिगर के पार होती है :

मुँह से मुश्किल-कुशा का नाम लिया + या 'अली' कहके दिल को थाम लिया

सारांश यह कि 'शौक़' प्रेम-पाश में बन्दी हो जाते हैं। 'मीर' का अनुकरण करते हुए वे प्रेम की व्याख्या करते हैं :

इश्क़ आफ़ाते[18] आसमानी है + बरसों लोगों ने ख़ाक[19] छानी है
शम्मा[20] होके कहीं पिघलता है + कहीं परवाना[21] बनके जलता है
कहीं सुर्मा है चश्मे तर है कहीं + कहीं संदल है दर्दे-सर है कहीं
कहीं है कुफ़्र[22] और कहीं इस्लाम + कहीं दोनों को करते हैं य(ह) सलाम
कहीं मय[23] है कहीं सरूर है यह + कहीं शीशे की तरह चूर है यह
कहीं ज़ख़्मे[24]-जिगर का फाहा है + दर्द बनकर कहीं कराहा है
पासे[25] नामूस[26] इसमें जाता है + आफ़त आती है जब यह आता है
रात कटनी मुहाल[27] होती है + ज़िन्दगी तक वबाल[28] होती है
जिगर वो दिल का ख़ून होता है + रफ़्ता-रफ़्ता[29] जनून[30] होता है
पहले रातों की नींद जाती है + आख़िरेकार[31] मौत आती है

---

१. गाल, २. चेहरा, ३. अलकें, ४. चन्द्रमा से स्पर्द्धा, ५. न्योछावर, ६. केवल, ७. माँग, ८. वयस, उम्र; ९. कुर्त्ते या कोट इत्यादि की बाँह, १०. शरीर, ११. जवानी, १२. शरीर की ऊँचाई, डील-डौल; १३. चिह्न, १४. पट्टी, १५. प्रतिबिम्ब, झलक, परछाईं; १६. फूल की नसें, १७. ईश्वर-प्रदत्त, १८. विपत्तियाँ १९. मिट्टी, परिश्रम किया; २०. शीशे के गिलास में जलती हुई मोमबत्ती, २१. नास्तिकता, २२. शराब, २३. नशा, आनन्द; २४. घाव, २५. ध्यान, २६. मान-प्रतिष्ठा, २७. कठिन, असम्भव; २८. कष्टमय, बोझ, अभिशाप; २९. क्रमशः, धीरे-धीरे; ३०. उन्माद, ३१. अन्ततोगत्वा।

बातें तो वही या उसी प्रकार की हैं, जो 'मीर' के शेरों में मिलती हैं। किन्तु वह हृदय-विदग्धता नहीं, वह असर नहीं। कारण यह है कि शौक़ प्रेम से अवगत न थे। उस प्रेम का तो कहना ही क्या है, जिसकी प्रशंसा 'मीर' करते हैं :

मुहब्बत ने ज़ुल्मत[1] से काढ़ा है नूर[2] + न होती मुहब्बत न होता ज़हूर[3]
मुहब्बत मुसब्बब[4] मुहब्बत सबब[5] + मुहब्बत से आते हैं कारे[6] - अजब
मुहब्बत बिन इस जां[7] न आया कोई + मुहब्बत से खाली न पाया कोई
मुहब्बत ही इस कारखाने में है + महब्बत से सब कुछ ज़माने में है
मुहब्बत से है इन्तज़ामे जहां + मुहब्बत से गर्दिश[8] में है आसमां
मुहब्बत से आता है जो कुछ कहो + मुहब्बत से वह हो जो हर्गिज़[9] न हो

इस प्रेम की रूप-छवि तक 'शौक़' की कल्पना की पहुँच नहीं। जिस प्रेम का वह ज़िक्र करते हैं वह प्रेम नहीं, कुछ और वस्तु है। इसे इश्कबाज़ी कहिए; हवसपरस्ती कहिए, तमाशबीनी कहिए, परन्तु प्रेम नहीं कह सकते। आध्यात्मिक प्रेम तो बड़ी चीज़ है. 'शौक़' इश्के - बुतां से भी अवगत नहीं, जिसने 'मीर' के हृदय को व्यग्र कर डाला था और उसे पका हुआ फोड़ा बना दिया था। इनके प्रेम में लिप्सा ही प्रधान तत्त्व है और यह कोई नई चीज़ नहीं। बात यह है कि बहुत-से कवि हवसपरस्ती को अपना व्यापार बना लेते हैं, लेकिन वे इसे स्वीकार नहीं करते, इस सत्य को छिपाते हैं। कामुकता को प्रेम के भेष में प्रस्तुत करते हैं। 'दाग़' ने तो साफ़ कह दिया : 'मिट्टी की भी मिले तो रवा है शबाब में।' लेकिन कहें या न कहें, अधिकतर इसी हवसपरस्ती को प्रेम कहा जाता है। हाँ, तो 'शौक़' के यहाँ भी यही हवसपरस्ती है। इसीलिए वह 'इश्क, (प्रेम) के एक खास रुख पर अधिक जोर देते हैं, अर्थात् 'आलिंगन' पर उनके विचार में यही चीज़ मानों प्रेम की उपलब्धि है; और इस ओर से उर्दू के कवियों ने उपेक्षा की है। और सबकी ओर से वे इसकी क्षतिपूर्त्ति कर देते हैं।

हाँ, तो 'बहारे-इश्क' में आलिंगन का चित्र बहुत विस्तार और हार्दिक मनोयोग के साथ खींचा गया है। और, इसमें 'शौक़' 'असर' से बहुत आगे निकल गये हैं। प्रतिलिपि प्रथम चित्र से बहुत उत्तम है; दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है :

हाथापाई में हाँफते जाना + छोटे कपड़े को ढांपते जाना
बाल रुख़ के सँवारते जाना + ऊँची कुर्ती उतारते जाना
जोर करना कभी कि छूटें हाथ + कभी कहना एलाही टूटें हाथ
कभी बातों में होश खो देना + कभी खिसियानी होके रो देना
कभी त्योरी चढ़ाके चुप रहना + और कभी मुस्कराके यह कहना
आँखें फूटें जो भर नज़र देखे + हमको पीटे अगर इधर देखे
गह[10] झिझकना कभी चिमट जाना + कभी शर्मा के पीछे हट जाना

---

१. अन्धकार, २. प्रकाश, ३. प्रकट होना, ४. कार्य, परिणाम; ५. कारण, ६ विचित्र ढंग के काम, ७. जगह, ८. परिक्रमा, चक्कर; ९. कदापि, १०. कभी।

प्रत्येक शब्द चित्रकारी है। फिर आगे कहते हैं :

जब न मानी किसी तरह मिन्नत[1] + हाथा-पाई को आ गई नौबत[2]
तब तो मैं और ढंग पर लाया + हाथ पकड़ा पलंग पर लाया
डर से रुख़सार[3] दोनों ज़र्द[4] हुए + दफ़अतन[5] हाथ-पांव सर्द हुए
ज़ुल्फ़ें चेहरे प पेच खाने लगीं + पिंडलियां दोनों थरथराने लगीं
सिसकी लेकर कभी बिफरती थी + और कभी ठंडी सांस भरती थी
आह उफ़ करके बिलबिलाती थी + गह दुलाई से मुँह छिपाती थी
चुपके-चुपके पुकारती थी कभी + ढीले हाथों से मारती थी कभी
भेंचकर दाँत सिसकी भरती थी + नाज़[6] वो अन्दाज़ ताज़ा[7] करती थी

फिर तस्वीर का रंग बदलता है। हाव-भाव, सारे नख़रे ख़तम हो जाते हैं। वह युवावस्था की लज्जाशीलता भूल जाती है। कुछ 'प्रेम', कुछ तरुणाई का जोश ऐसा होता है कि फिर उसको तन-बदन की सुधि नहीं रहती और तब 'शौक़' के 'प्रेम' की परिणति हो जाती है :

चिमटी बेताब हो व: मह[8]पारा + सीने से सीना मिल गया सारा
खोलकर दिल चिमट-चिमटके मिला + कैसा-कैसा लिपट-लिपटके मिला
दोनों जानिब[9] से प्यार होने लगे + ख़ूब बोस[10]-वो किनार होने लगे
हुए फिर इर्तबात[11] उनके साथ + टाँगों में टाँगें गर्दनों में हाथ
कभी मुँह से दिया चबाकर पान + कभी मिलकर लड़ी ज़बाँ से ज़बान
लब[12] कभी चूसी गुदगुदाया कभी + होंट को दाँतो से दबाया कभी
हाथ गर्दन तले निकाल दिया + प्यारी बग़लों में हाथ डाल दिया
हो गए हुस्न[13] वो इश्क़[14] के झगड़े + गाल से गाल लब से लब रगड़े
रान पर रख के हाथ सहलाया + बातों-बातों में उनको बहलाया
वह कहा कि बहुत नहीं रे नहीं + दिले-बेताब[15] मानता था कहीं
दम-दिलासे में पहले मान गई + फिर य: चिल्लाके बोली जान गई
मेरी मामा किधर गई लोगो + हाय अल्लाह मर गई लोगो
वह कहा कि बहुत मुई रे मुई + पर जो कुछ जी में थी व: बात हुई

उर्दू-कविता में यह बिलकुल नयी चीज है। हर-हर हरकत, हर-हर पहलू, हाव-भाव सभी चीजों का सम्पूर्ण चित्र है। किन्तु, इसी के कारण इसकी ओर से उपेक्षा की गई है। 'हाली' के कथनानुसार इसे 'अनमॉरल' ख़याल किया जाता है और समझा जाता है कि इस प्रकार की चीज़ नैतिकता को नष्ट कर देती है, सभ्यता और शिष्टता के विरुद्ध है और साहित्य की दृष्टि से भी

---

१. प्रार्थना, अनुनय-विनय; २. बारी, ३. गाल, ४. पीले, ५. चकाचक, ६. हाव-भाव, ७. नये, ८. चांद का टुकड़ा, ९. ओर, १०. चुम्बन-आलिंगन, ११. मेल-जोल, १२. ओठ, १३. माशूक़, सौन्दर्य, १४. प्रेमी, आशिक़, प्रेम; १५. अधीर।

निम्नस्तर की तथा अश्लील है। साहित्य में नग्नता कोई नई चीज नहीं, और कोई बुरी चीज भी नहीं। इसकी अच्छाई या बुराई इस बात पर निर्भर है कि आर्टिस्ट इससे क्या काम लेता है। यह अवश्य है कि 'शौक़' नग्नता को जिन्दगी को पूर्णतया प्रतिबिम्बित करने का साधन नहीं बनाते; ऐसा जान पड़ता है कि नग्नता ही उनका असल उद्देश्य है। इसी वजह से ये तस्वीरें इतनी उच्च कोटि की नहीं जितनी अपनी सुन्दर वर्णन - शैली के कारण उन्हें होना चाहिए था। 'शौक़' का उद्देश्य अपने कामासक्त जज़्बे की पूर्णता है, या उसको प्रज्वलित करना है। वे इसे कल्पना की लौ से परिष्कृत तथा पवित्र नहीं करते। कहीं पर यह नहीं जान पड़ता कि 'शौक़' किसी प्रबल आवेग या किसी महत्त्वपूर्ण और स्थायी उद्देश्य की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उद्यत हैं और यही जज़्बा या उद्देश्य उस नग्नता का कारण है। यदि ऐसा होता तो उन्हीं चित्रों में अथाह जोश और चिरन्तन असर होता।

मैंने कहा है कि नग्नता कोई नई चीज़ नहीं और कोई बुरी चीज़ भी नहीं। एक 'डी० एच० लॉरेन्स' ही को लीजिए। इसके उपन्यासों में बहुत अधिक नग्नता पायी जाती है, किन्तु कामुकता नहीं है। उसका एक सिद्धान्त है, एक दर्शन है, एक धर्म है। और, यह नग्नता उस सिद्धान्त, दर्शन और धार्मिकता को व्यक्त करने में उसकी सहायता करती है और उसे प्रभावशाली बनाती है। उदाहरणस्वरूप 'शौक़' को इस प्रकार की शक्ति का नितान्त अनुभव नहीं, जिसका अनुभव 'सन्ज़ ऐण्ड लवर्ज़' में 'पोल' और 'क्लारा' को रतिक्रिया के बाद होता है। इसी वजह से 'शौक़' के चित्रों का प्रभाव सीमित-सा हो जाता है। उसमें वह ओज और वह व्यापकता नहीं, जो 'डी० एच० लॉरेन्स' में है। लेकिन यह समझना भी ठीक नहीं कि 'बहारे-इश्क़' महज़ एक कोकशास्त्र की-सी चीज़ है। इसमें आर्ट है, वह सीमित ढंग का ही सही, और अपनी सीमाओं में अच्छा आर्ट है; और अपने उद्देश्य में सफल है। जिन्दगी के जिस पहलू को वे लेते हैं उसका वर्णन पूरी सफलता के साथ करते हैं। उनके बयान में कोई कमी नहीं, कोई झोल नहीं, कोई बेढंगापन नहीं। हर जगह सफ़ाई है, रवानी है, एक नाटकीय गौरव है। सारा सीन (दृश्य) आँखों के सामने आ जाता है, और यही 'शौक़' की महान् कृति है।

'हाली कहते हैं कि 'शौक़' ने मर्दाने और जनाने मुहावरों को इस तरह बरता है कि इतने स्वाभाविक ढंग से किसी ने गद्य में भी नहीं बरता। और, यह बहुत ठीक है। और यदि 'शौक़' की मसनवियों में और खूबियाँ न भी होतीं तो यही एक खूबी उन्हें जीवित रखने के लिए पर्याप्त होती :

कुछ समझता है और न कुछ बूझता है + फूटी आँखों से कुछ भी सूझता है
चरबी आँखों प तेरी छाई है + कुछ निगोड़े की शामत आई है
जान हल्कान हो गई ब खुदा + छोड़ गारत गए मेरा पीछा
क्या धमाचौकड़ी मचाई है + तेरी बख़्तावरी कुछ आई है
जानकर डाली सब मेरी हल्कान + फट पड़े सोना जिससे टूटे कान
देखो - देखो बहुत न इतराओ + ठंडी - ठंडी चलो हवा खाओ

और वह होतियाँ हैं अलबेली + मैं नहीं कच्ची गोलियाँ खेलीं
मैं समझती हूँ जो इरादा है + एक नटखट हरामज़ादा है
कौन समझे तुझे अधूरा है + अरे तू सब गुनों का पूरा है
एक बदज़ात तू निगोड़ा है + तुझसे जो कुछ न हो वः थोड़ा है

हर मुहावरे से स्वाभाविकता टपकती है। और केवल मुहावरों का प्रयोग ही प्रशंसनीय नहीं, बल्कि 'शौक़' बेगमों के उच्चारण तथा स्वराघात का भी सही चित्र खींचते हैं। जनानापन स्पष्ट रूप से प्रकट है। इस विशिष्ट शैली में 'शौक़' लाजवाब हैं। और अपने उद्देश्य को व्यक्त करने के लिए वे सर्वोत्तम साधन का प्रयोग करते हैं।

सन्दर्भ-संकेत

१. Language in a healthy state presents the object, is so close to the object that the two are identified. They are identified in the verse of Swinburne solely because the object has ceased to exist, because the meaning is merely a hallucination of meaning, because language uprooted, has adapted itself to an independent life of atmospheric nourishment............ The bad poet dwells partly in a world of words and he never can get them to fit. Only a man of genius could dwell so exclusively and consistently among words a Swinburne. His Languase is not, like the language of bad poetry, dead. It is very much alive with this singular life of its own. But the language which is more important to us is that which is struggling to digest and express new objects, new group of objects, new feelings, new aspects, as for instance, the prose of Mr. James Joyce or the earlier Conrad.

[T. S. Eliot]

२. यह बात नहीं है कि उर्दू-कवियों को व्यक्तिगत अनुभव नहीं थे। और, यह भी नहीं कि उन्होंने अपने निजी अनुभवों को अपनी मसनवियों में बयान नहीं किया है। लेकिन, यह कुछ विचित्र-सी बात है कि वही मसनवियाँ प्रसिद्ध हैं, जिनकी दुनिया ख़याली है, जहाँ हमारी जानी हुई चौबीस घण्टोवाली दुनिया नहीं मिलती। हाँ, तो यदा-कदा निजी अनुभवों पर भी मसनवी आधारित होती है। 'शौक़' से बहुत पहले 'मीर' ने 'मुआमलाते इश्क़' लिखी—'क़िस्सा मेरा भी सानेहा है अजीब'—इस मसनवी में 'मीर' ने एक ऐसी औरत के साथ, जो किसी और के अधिकार में थी, अपनी 'मुहब्बत' का हाल लिखा है। इस मसनवी के कुछ अंशों पर ध्यान दिया जाय :

एक साहेब से जो लगा मेरा + उनके उशवो[1] ने दिल ठगा मेरा
इब्तदा[2] में तो यह रही सोहबत + नाम से उनके थी मुझ उल्फ़त[3]
ख़ूबी उनकी जो सब कहा करते + गोश[4] मेरे उधर रहा करते
बख़्ते[5] - बरगश्ता फ़िर जो यार हुए + एक तरह मुझसे वे दो - चार हुए

---

१. हाव-भाव, चोंचला; २. आरम्भ, ३. प्रेम, ४. कान, ५. उल्टा भाग्य, दुर्भाग्य।

क्या कहूँ तर्ज़[1] देखने को आह + दिल जिगर से गुज़र गई बः निगाह
चुपके मुँह उनका देख रहता हूँ + जो मैं क्या-क्या न कुछ न कहता हूँ
वे तो हर[2] चंद अपने तौर के थे + पर तसर्रुफ़[3] में एक और के थे
करते ज़ाहिर में एहतियात[4] बहुत + मुझसे भी रखते एख़्तेलात[5] बहुत
बात की तर्ज़ मेरी ही भाती + मेरी आजुर्दगी[6] न ख़ुश[7] आती
देखे अज़बस[8] बरामदा[9] सीने + ऐसा मालूम दिल जो यों छीने
सद्र[10] के नाहिए[11] से लेता साफ़[12] + चुप की जागह है, क्योंकि कहिए साफ़
उससे आगे गुंचए[13] गुल है + यां सोख़न[14] बाबते[15] तअम्मुल[16] है
पर्दे में भी जो कुछ कहा जावे + आपमें तो न टक रहा जावे
दोस्ती, रब्ता[17] वफ़ा[18], एख़्लास[19] + साथ मेरे था उनको रब्ते[20] -ख़ास
मैं तक़ाज़ाई[21] मिलने का रहता + मुख़्तलत[22] होने को सदा कहता
मेरी तरफ़ों थी हर ज़मां[23] मंज़ूर + आपही करते मिलने का मज़कूर[24]
वस्ल[25] के वादे भी रहा करते + आज-कल रात-दिन कहा करते
दिल तो था रहम[26]-आशना अज़बस + कुढ़ते थे जानकर मझे बेकस[27]
सूरत उनकी ख़याल में हरदम + ख़्वाब में हो जो वह मिज़ा[28] बाहम
हमतो बिस्तर प दिलशिकस्ता[29] उदास + चांद-सा मुँह उन्हों का तकिए पास
मैं बिछौने प बेख़ुद[30] वो बेख़्वाब[31] + एक पैकर[32] परी का सा हम-ख़्वाब[33]
शब[34] कटे सूरते ख़याली से + दिन को हूँ मैं शिकस्ता[35] हाली से
बारे कुछ बढ़ गया हमारा रब्त[36] + हो सका फिर न दो तरफ़ से ज़ब्त[37]
तब हुआ बीच से यह रफ़्तए[38] हेजाब + जब बदन में रही न मुतलक़[39] ताब[40]
एक दिन हम वे मुत्तसल[41] बैठे + अपने दिल[42] -ख़्वाह दोनों मिल बैठे
शौक़ का सब कहा क़बूल हुआ + यानी मक़सूदे[43] दिल हसूल[44] हुआ
वास्ते जिसके था मैं आवारा + हाथ आई मेरे बः मह-पारा[45]
गह[46] गहे दस्त[47] दी हम आगोशी[48] + हमसरी[49] हम-किनारी[50] हमदोशी[51]
चंद रोज इस तरह रही सोहबत + प्यार एख़्लास राबतः सोहबत

---

१. ढंग, २. यद्यपि, ३. अधिकार, ४. संयम, ५. मेल-जोल, ६. दुःखी होना, ७. अच्छा, ८. बहुत, ९. उभरे हुए, १०. बीच छाती, ११. कोर, किनारा; १२. निाभ, १३. कली, १४. बात, १५. सम्बन्ध में, १६. रुकना, आगे-पीछे सोच विचार करना; १७. सम्बन्ध, मेलजोल, १८. प्रेम, १९. निष्कपट व्यवहार, २० विशेष सम्बन्ध, २१, माँगनेवाला, चाहनेवाला; २२. समागम, २३. सदा, हरवक्त; २४. चर्चा, २५. मिलन, २६. दयालु, २७. निस्सहाय, २८. बरौनी, २९. चिन्तित, ३०. अधीर, ३१. निद्राविहीन, ३२. रूप, शरीर; ३३. साथ सोनेवाला, ३४. रात, ३५. दुरवस्था, ३६. प्रेम, ३७. रोक-थाम, अवरोध; ३८. पर्दा उठाना, ३९. तनिक भी, ४०. ताक़त, बल; ४१. निकट, सटकर, ४२. मित्र, एक-दूसरे को चाहनेवाले, ४३. अभीष्ट, वांछा; ४४. प्राप्त, ४५. चाँद का टुकड़ा, ४६. सुन्दरी, ४७. कभी-कभी, ४८. प्राप्त हुई, ४९. आलिंगन, ५०. बराबरी, ५१. गोद में लेना, ५२. कन्धे से कन्धा मिलाना।

प्रत्यक्ष रूप से विदित है कि यह उसी तरह की चीज़ है, जो 'शौक़' की मसनवियों में मिलती है। 'शौक़' की मसनवियों का उद्गम-स्थान यही 'मआमिलाते-इश्क़' है। यह कह सकते हैं कि 'शौक़' की मसनवियाँ भी मआमिलाते-इश्क़ हैं—कुछ अधिक विस्तार के साथ, और इनमें जीवन से सामीप्य भी कुछ अधिक है और वर्णन-शैली भी कुछ अधिक सुन्दर है।

'मोमिन' की मसनवियों में भी आपबीती है। जिन जज़्बात वो अनुभूतियों का वर्णन 'मोमिन' ने किया है, उनकी शुद्धता और वास्तविकता में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मोमिन की एक मसनवी है, जिसका नाम है 'क़ौले-ग़मी'। 'शेफ़्ता' 'साहेब' का जिक्र करते समय लिखते हैं :

" 'साहेब' तख़ल्लुस, उनका नाम 'उम्मतुल फ़ात्मा बेगम' था। वे 'साहब जी' के नाम से प्रसिद्ध थीं; सुन्दरता के आकाश का चन्द्रमा थीं। सूर्य की भांति पूर्व से पश्चिम आईं। दवा-दारू के सिलसिले में उनको 'मोमिन खाँ' से काम पड़ा। कुछ महीनों तक उनका सम्बन्ध रोग तथा औषधि से था। कई वर्ष हुए कि लखनऊ लौट गयीं। 'क़ौले-ग़मी' नामक मसनवी जो उपर्युक्त खाँ साहब की रचना है, उसी सुडौल शरीरवाली की रूप-छवि का विवरण है।" अर्थात् यह मसनवी 'मोमिन' की आपबीती है। वे स्वय कहते हैं :

यह कहानी न यः है अफ़साना[1] + दादे[2] बेदाद[3] है मज़्लूमाना[4]
नहीं अशआर[5] यः नाले[6] हैं कई + शोरिशे दिल के हैं तबख़ाले[8] कई

अर्थात् वह एक शोख़ पर मरते हैं, दिल निछावर करते हैं, जान देते हैं। किन्तु वह अत्याचारियों का सरदार जिसमें प्रेम है, न दया, न मुरौवत, निर्दोष 'मोमिन' को सताता है। जब 'मोमिन' समझते हैं कि 'शौक' संतप्त प्राण अब चला-जब वे अनुभव करते हैं कि 'अब जीवन का अन्तिम क्षण आ गया है' तो वह वसीअत[9] करते हैं और वह वसीअत यह है :

यह वसीअत है कि जब नाश[10] उठाओ
नाश सेहरा[11] की तरफ लेकर जाओ
वह जो कूचा[12] है बहुत रूह[13]-अफ़ज़ा
दिलकुशा[14], तबऽ[15]-कुशा सीना[16]-कुशा
वां सरे-राह[17] है एक बामे[18] बुलन्द[19]
सरफ़राज़ी[20] में फ़लक[21] से दह-चन्द[22]

१. कहानी, गल्प; २. दुहाई, ३. अन्याय, ४. पीड़ितावस्था में, ५. शेर, ६. चीख़, आर्तनाद; ७. बेचैनी, ८. रुग्णावस्था में होठोंपर पड़ी हुई पपड़ियाँ, ९. मरनेवाले के आदेश, जो उसकी मृत्यु के बाद पूरे किये जायँ, १०. लाश, शव; ११ मरुस्थल,१२. गली, १३. प्राणवर्द्धक, १४. हृदय को विकसित करनेवाले, १५. मन प्रसन्न करनेवाला, १६. शरीर को पुलकित करनेवाला, १७. नुक्कड़, १८. कोठा, १९. ऊँचा, २०. ऊँचाई, २१. आसमान, २२. दस गुना।

उसमें एक ग़ुरफ़ा[१] है बा-सद[२]-तज़ईन + एक महवश[३] है वहाँ ग़ुरफ़ा-[४]नशीन
हाय उस कू[५] में न जा सकता था + वर्ना[६] मैं आप ही आ सकता था
है यः मरना उसी काफ़िर[७] के लिए + उसी बेदर्द सितमगर[८] के लिए
उसी के शौक़ में जां निकले है + हर बुने[९]-मूए[१०]फ़ुगां[११] निकले है
उसीके इश्क़[१२] में महरूम[१३] हुआ + वस्ल[१४]यक शब[१५] भी मुअस्सर न हुआ
नाश[१६] पहले मेरी ले जाइयो वां + कि भला कोई तो निकले अरमां
गो[१७] न थक जाओ प वां दम लीज्यो + दम के कम[१८] जानके वक़्फ़ा[१९] कीज्यो
वह भी शायद कहीं आकर देखे + ग़ुर्फ़े की चिलमन उठाकर देखे

इस वसीअत में कोई ख़ास बात नहीं। वह मनोवैज्ञानिक बारीकी तथा जटिलता नहीं, जो 'ज़हरे-इश्क़' में मिलती है। जो कुछ भी हो, शोक-संतप्त आत्मा चल बसती है :

कह के यह खींची एक आहे-जां-सोज़[२०] + जल गया जों[२१] दिले हंगामा[२२]-फ़रोज़
जान सीने से गई दर्द के साथ + हो गया सर्द[१७] दमे सर्द के साथ

परन्तु हमें दुःख नहीं होता। कवि की नैराश्ययुक्त मृत्यु पर उससे कोई सहानुभूति नहीं होती। कारण कि कविता के बदले शाब्दिक श्लेष का आधिपत्य है : 'हो गया सर्द दमे-सर्द के साथ', 'गर्मजोशी नफ़से सर्द ने की।' ये अश्आर नाले नहीं बन पाते। एक शेर है :

यक धुआँ नालः व अफ़ग़ां से उठा + शोला[२४] कैसा दिले-सोख़्तां[२५] से उठा

'मीर' कहते हैं :

छाती जला करे है सोज़े[२६]-दरूं बला है + एक आग-सी लगी है क्या जानिए कि क्या है

'सौदा' कहते हैं :

नहीं मालूम इस सीने में क्या जों शम्मः जलता है
धुआँ नोके-ज़बाँ से बात करने में निकलता है

'मोमिन' के शेरों में आग शोला नहीं उठाती, दौड़ती है। मित्रगण वसीअत के अनुसार नाश उठाकर चलते हैं और वहाँ पहुँचते हैं जिस जगह उस बुते-काफ़िर

---

१. खिड़की, २. खूब सजा हुआ, ३. विधुवदनी, ४. खिड़की में बैठी हुई, ५. गली, ६. और नहीं तो, ७. नास्तिक, माशूक़; ८. ज़ालिम, अत्याचारी; ९. जड़, १०. बाल, रोआँ; ११. आह, १२. प्रेम, १३. विधुवदनी, १४. मिलन, सहवास; १५. रात, १६. लाश, शव; १७. यद्यपि, १८. थोड़ी देर, १९. ठहराव, २०. प्राणघातक, २१. समान, २२. हलचल पैदा करनेवाला, २३. ठण्डा, मुर्दा; २४. ज्वाला, २५. विदग्ध हृदय, २६. अन्तर्ज्वाला।

का मकान था। वह झरोखे पर विराजमान थी। उसने 'मोमिन' की नाश देखी और :

देख इस हाल को अफ़सोस आया + गिर पड़ी दिल जो जरा घबराया
गिरते ही मर गई बस वह दिलगीर[१] + जज़्बे[२]-उल्फ़त ने दिखायी तासीर[३]

हमें तनिक भी विश्वास नहीं होता कि प्रेमाकुलता ने यह प्रभाव दिखाया होगा, और विश्वास इसलिए नहीं होता कि 'मोमिन' की कला सफल नहीं, व्यक्तिगत अनुभव काव्योचित अनुभव नहीं बन पाया है।

'दाग़' ने भी 'फ़रियादे-दाग़' में आपबीती लिखी है। वह अपने 'दर्दे-दिल' का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

मैं ही क्या हूं तेरी जफ़ा[४] के लिए + रह्म[५] कर रह्म कर खुदा के लिए
किसी करवट से कल नहीं आती + नहीं आती अभी नहीं आती
जी बहलता नहीं किसी सूरत + दम निकलता नहीं किसी सूरत
चश्म[६] नमनाक[७] है तो दिल ग़मनाक[८] + सीनः[९] सद[१०] पारा[११] वो जिगर सद चाक[१२]
ज़ोफ़[१३] से क़ल्ब[१४] थरथराता है + दर्द भी उठके बैठ जाता है
चश्मे-पुरखूं[१५] से नद्दियां जारी + रीशे[१६] नाख़ून से तन प गुलकारी[१७]
दिल की हालत बुरी है सीने में + सांस चलती छुरी है सीने में
लग गई किसकी बद्दुआ मुझको + मेरे अल्लाह ? क्या हुआ मुझको
दर्दे-दिल का इलाज मुश्किल है + बच गये कल तो आज मुश्किल है
जान जाती है दिल के आने से + मौत आती है इस बहाने से
दुश्मने-नाम वो नंग[१८] कौन कि मैं + मुबतला-ये[१९] अज़ाब[२०] कौन कि मैं
बिस्मिले[२१] इज़्तराब[२२] कौन कि म + अपने जीने से कौन कि मैं
तीरे-ग़म का निशानः कौन कि मैं + पायमाले[२३] ज़मानः[२४] कौन कि मैं
आशिक़े-बदबकार[२५] कौन कि मैं + सबमें बे-एतबार कौन कि मैं
मुज़्तर[२६] वो नाशकेब[२७] कौन कि मैं + सैदे[२८]-दामे[२९]-फ़रेब[३०] कौन कि मैं
चश्म-बर-राहे[३१]-यार कौन कि मैं + हमः-तन[३२]-इन्तज़ार कौन कि मैं
तेग़े-हसरत[३३] उतर गई दिल में + बेक़रारी[३४] ठहर गई दिल में

---

१. दुखिया, विरह-विधुरा; २. प्रेमाकर्षण, ३. प्रभाव, ४. अत्याचार, ५. कृपा, ६. आँख, ७. भींगी हुई, ८. दुःखी, ९. छाती, १०. सौ, ११. टुकड़े, १२. फटा हुआ, १३. कमजोरी, १४. दिल, १५. खून से भरी हुई, १६. ज़ख़्म, १७. चित्रकारी, १८. मान-प्रतिष्ठा, १९. फँसा हुआ, २०. कष्ट, २१. अधमुआ, २२. बेचैनी, २३. पददलित, २४. समय, युग; २५. अप्रतिष्ठित, २६. बेचैन, २७. अधीर, २८. जाल में फँसा हुआ शिकार, २९. जाल, ३०. धोखा, ३१. प्रीत की प्रतीक्षा में आँख बिछाये हुए, ३२. सर्वांग प्रतीक्षा, ३३. अपूर्ण अभिलाषाएँ, ३४. बेचैनी।

वर्णन में कृत्रिमता है। पढ़नेवाले को 'दाग़' के 'दर्दे-दिल' का अनुभव नहीं होता; उनके शाब्दिक कला-कौशल का प्रभाव अवश्य पड़ता है। 'कौन कि मैं' की पुनरावृत्ति में क्लिष्ट-कल्पना के अतिरिक्त और क्या रखा है। 'मीर', 'मोमिन', 'दाग़' और भी नाम गिनाये जा सकते हैं, उदाहरण दिये जा सकते हैं।

किन्तु उर्दू में वे ही मसनवियाँ मशहूर हुईं, जिनमें 'आपबीती' नहीं, व्यक्तिगत अनुभव नहीं, वास्तविकता नहीं। इसका कारण यह है कि 'आपबीती' और कविता में, जहाँ तक उर्दू-मसनवियों का सम्बन्ध है—कुछ वैर-सा जान पड़ता है। 'मुआमिलाते-इश्क़, में 'मीर' अपनी मानसिक दशा का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

शौक़ से उसके हाल दीगर गूँ[1] + पारा-पारा दिल वो जिगर सब ख़ूँ
रंग हर दम मिज़ाज[2] का कुछ और + कल का कुछ और आज का कुछ और
क्या बयां करिये बेक़रारी का + ज़िक्र क्या हाले-इज़्तरारी[3] का
जी पड़ा तरसे साथ सोने को + दिल परीशान[4] जम्मा[5] होने को
पास उनके रहूँ तो दिल को क़रार[6] + फिर न ठहरे टुक एक करिये हज़ार
क्या कहूँ जो अ-जीअतें[7] देखीं + हर क़दम पर क़यामतें[8] देखीं

यह 'मीर' की 'आपबीती' है। 'परसराम' की मानसिक दशा देखिए :

यः सरगर्मे-फ़रियाद वो जारी हुआ + लहू उसको आँखों से जारी हुआ

दोनों में अन्तर स्पष्ट है। 'मीर' ने 'परसराम' की मानसिक दशा का वर्णन अधिक काव्योचित ढग से किया है। ऐसा जान पड़ता है कि 'लेडी ऑफ़ शैलाट' की तरह उर्दू के कवियों पर भी एक प्रकार का अभिशाप है। 'लेडी ऑफ़ शैलाट' दर्पण में दुनिया के अनुरंजित दृश्यों को देखती है और वह एक रंगीन तिलिस्मी नक़्श बुनती है, लेकिन उसने सुना है कि खिड़की से झाँकना मना है। खिड़की से झाँकना, दुनिया को स्पष्ट रूप से देखना, उसके हक़ में घातक है। वह दुनिया को दर्पण में देखती रही और रंगीन फूल-पत्तियाँ बनाती रही। एक दिन 'लान्सलॉट' गाता हुआ उस राह से गुजरा। अब उससे ज़ब्त नहीं हो सका; उसने खिड़की के पास जाकर 'लान्सलॉट' को देख लिया। परिणाम वही हुआ, जो होना था। उसका दर्पण चूर-चूर हो गया; जो गुल-बूटे वह बुन रही थी वे नष्ट-भ्रष्ट हो गये और उसकी जिन्दगी के दिन पूरे हो गये। उर्दू के कवि जब-तब दर्पण में जिन्दगी की झलक देखा करते हैं और 'परसराम','जवाने राअ्ना', 'बेनज़ीर व बद्रेमुनीर', 'ताजुलमुलूक और बकावली' की कहानियों से अपनी कविता के ताने-बाने बनाते हैं तो वे सुरक्षित रहते हैं। किन्तु जहाँ उन्होंने

---

१. और ही दशा, शोचनीय दशा; २. स्वभाव, प्रकृति; ३. विक्षिप्तावस्था, ४. विक्षिप्त, बेचैन; ५. शान्त, स्थिर; ६. ठहराव, ७. दुःख, कष्ट, पीड़ाएँ; ८. प्रलयकालीन दृश्य।

खिड़की से झांका और जिन्दगी को स्पष्ट रूप से देखा तो उनका कविता-रूपी दर्पण टूट जाता है। लेकिन 'शौक़' का काव्य-दर्पण नहीं टूटता। इस कविता के कुछ बन्दों को ध्यानपूर्वक देखा जाय :

On either side the river lie
Long fields of barley and of rye,
That clothe the world and meet the sky;
And thro' the field the road runs by
To many-tower'd Camelot;

And up and down the people go,
Grazing where the lilies blow
Round an island there below,
The island of Shalott.

Willows whiten, aspens quiver,
Little breezes dusk and shiver,
Thro' the wave that runs for ever
By the island in the river
Flowing down to Camelot.

Four grey walls, and four grey towers,
Overlook a space of flowers,
And the silent isle imbowers
The lady of Shalott.

There she weaves by night and day
A magic web with colours gay.
She has heard a whisper say,
A curse is on her if she stay
To look down to Camelot.

She knows not what the curse may be,
And so she weaveth steadily,
And little other care hath she,
The lady of Shalott.

And moving thro' a mirror clear
That hangs before her all the year,
Shadows of the world appear.
There she sees the highway near
Winding down to Camelot;

There the river eddy whirls,
And there the surly village-churls,
And the red cloaks of market girls,
Pass onward from Shalott.

But in her web she still delights
To weave the mirror's magic sights,
For often thro' the silent nights—
A funeral, with plumes and lights,
And music, went to Camelot :

Or when the moon was overhead,
Came two young lovers lately wed :
'I am half-sick of shadows', said
The lady of Shalott,

A bow-shot from her bower-eaves,
He rode between the barely sheaves,
The sun came dazzling through the leaves,
And flamed upon the brazen greaves
Of bold Sir Lancelot.

A red-cross knight for ever kneel'd
To a lady in his shield,
That sparkled on the yellow field,
Beside remote Shalott.

His broad clear brow in sunlight glowed;
On burnished hooves his war-horse trode;
From underneath his helmet flow'd
His cool-black curls as on he rode,
As he rode down to Camelot

From the bank and from the river
He flash'd into the crystal mirror;
'Tirra lirra' by the river
Sang Sir Lancelot.

She left the web, she left the loom,
She made three paces thro' the room
She saw the water-lily bloom,
She saw the helmet and the plume,
She look'd down to Camelot.

Out flew the web and floated wide;
The mirror cracked from side to side;
'The curse is come upon me', cried
The lady of Shalott.

३. 'दाग़' ने भी कुछ इसी प्रकार का नख-शिख प्रस्तुत करने का प्रयास किया है :

रुख़[१] से ज़ाहिर था नूर का आलम[२] + और उसपर ग़ुरूर[३] का आलम
छुट्टी-छुट्टी भवों की वह तहरीर[४] + क्यों न दिल इस लकीर पर हो फ़क़ीर
चश्मे - ख़ूँ - रेज़[५] वह फ़साद[६] - अंगेज़ + जिसका शागिर्द[७] फ़ितनए[८] चंगेज़
गर्दन उसकी है वह सुराहीदार + हो सुराही भी देखकर सरशार[९]
ऐसे पत्थर वः दोनों कुब्बए[१०] - नूर + शीशए-दिल हो जिनसे चकनाचूर
गात बांकी बदन सुडौल तमाम + फ़ित्ना[११]- क़द, फ़ित्ना[१२] - चश्म, फ़ित्ना-ख़राम
निगहे - मस्त होशियारी से + लड़नेवाली छुरी - कटारी से
लबे-पां-[१३]-ख़ुर्दा पर मिसी की घड़ी + दिले बीमार पर थी रात कड़ी
जोश पर बादए[१४] - जवानी है + यही चाहे ज़क़न[१५] का पानी है
सज-धज आफ़त ग़ज़ब तराश[१६]-ख़राश + किसी अच्छे को बिल ही दिल में तलाश[१७]
वह अटकती हुई नज़र, आहा ! + वह लचकती हुई कमर आहा !
नश्शए - हुस्न की तरंग ग़ज़ब + नौजवानी की थी उमंग ग़ज़ब
शोख़ियाँ हैं हेजाब[१८] में कैसी + 'लनतरानी'[१९] जवाब में कैसी

१. चेहरा, २. दशा, ३. गर्व, घमण्ड; ४. रेखा, लकीर; ५. खून बहानेवाली, ६. झगड़ा खड़ा करनेवाला, ७. शिष्य, ८. बखेड़ा, ९. मतवाला, १०. प्रकाश-कुम्भ; ११. उपद्रवी डील-डौल; १२. दुष्ट आँखें, १३. पान चबाये हुए ओठ, १४. यौवन-मद, १५. चिबुक, १६. काट-छाँट, १७. खोज, १८. पर्दा, १९. डींग, आत्म-प्रशंसा ।

उफ़ रे अहदे - शबाब[1] की मस्ती + बे पिए है शराब की मस्ती
कभी मुँह पर नक़ाबे[2] - काकुल है + कभी मुँह फेरकर तग़ाफ़ुल[3] है
आईने से निगाहें लड़ती हैं + ख़ुद-ब-ख़ुद चितवनें बिगड़ती हैं
हुस्न की आन - बान, हाय ग़ज़ब + बेनेयाज़ी[4] की शान, हाय ग़ज़ब

'दाग़' के नख-शिख-वर्णन में सादगी के बावजूद वाग्विलास है : 'जिसका शागिर्द फ़ित्नए-चंगेज़', 'फ़ित्न-क़द, फ़ित्न-चश्म, फ़ित्न-ख़िराम ।''शौक़' के नख-शिख-वर्णन में प्राकृतिक सादगी अधिक है, जिन्दगी से सामीप्य भी अधिक है ।

४. 'दाग़' भी कुछ इसी तरह की रस्मी प्रशंसा करते हैं :

इश्क़ ताब[5]-वो-तवाने आशिक़ है + शाने[6] - आशिक़ निशाने[7]-आशिक़ है
इश्क़ ही आरज़ूए[8] - आशिक़ है + आरज़ू आबरुए[9] - आशिक़ है
इश्क़ नेमत[10] है आदमी के लिए + इश्क़ जन्नत[11] है आदमी के लिए
दिल इसी से जवान रहता है + मर - मिटों का निशान[12] रहता है
इश्क़ क्या-क्या बहार देता है + यह दिलों को उभार देता है
बुज़दिलों[13] को दिलेर[14] करता है + यह दिलेरों को शेर करता है
इश्क़ का दर्द राहते[15]-जां है + इश्क़ का ज़ह्र आबे[16] - हैवां है
इससे दिल का चिराग़ रौशन है + आंख रौशन, दिमाग़ रौशन है
इश्क़ से रहती है तबीअत गर्म + शोला[17]-रुयों के साथ सोहबत[18] गर्म
इश्क़ के खेल हमने खेले हैं + सौ परीज़ाद[19] हम अकेले हैं
इश्क़ के लुत्फ़[20] हमने पाए हैं + क्या कहें क्या मजे उड़ाए हैं
इश्क़ का लुत्फ़ ज़िन्दगानी है + ज़िन्दगी का मज़ा जवानी है
इश्क़ ईमान है ख़ुदा रक्खे + यह मेरी जान है ख़ुदा रक्खे

'शौक़' की तरह 'दाग़' भी प्रेम से अवगत नहीं । 'दाग़' का प्रेम, प्रेम नहीं, कुछ और चीज है ।

५. यह नग्नता 'कुछ' शौक़ का आविष्कार नहीं । वह तो बस इतना ही कहने पर सन्तोष करते हैं : 'पर जो कुछ जी में थी वः बात हुई ।' 'नसीम इस स्थान से कुछ आगे बढ़ते हैं । अन्तर यह है कि 'नसीम' का शाब्दिक श्लेष इस नग्नता पर पर्दा डाल देता है :

---

१. यौवनावस्था, २. अलकों का पर्दा, ३. लापरवाही, ४. किसी चीज की चाह न होना, ५. शक्ति, बल; ६. गौरव, ७. चिह्न, ८. अभिलाषा, ९. इज़्ज़त, प्रतिष्ठा; १०. ईश्वर की देन, सुख-सम्पत्ति, ११. स्वर्ग, १२, यादगार, १३. डरपोक लोग, १४. साहसी, १५. मन की सुख-शान्ति; १६. अमृत, १७. वह सुन्दरियाँ, जिनका चेहरा आगभभूका हो, १८. सहवास, १९. परी का बच्चा, २०. आनन्द ।

यह कहके लबों[१] से क़न्द[२] घोले + मस्ती ने दिलों के ओक़्दे[3] खोले
काविश[४] प हुआ गोहर[५] से अलमास[६] + ग़ुञ्चे[७] ने बुझाई ओस से प्यास
वां ग़ुञ्चये - यास्मीं[८] था गुलनार[९] + यां दामने[१०]-सर्व अर्ग़वां - जार[११]
वां सुब्हे-सफ़ा[१२] थी गुल[१३]-बदामां + फूली रुख़े-मेह्र[१४] पर शफ़क़[१५] यां
क्या आगे लिखूं कि अब सरे-दस्त[१६] + होता है दवात में क़लम मस्त

हां, तो नग्नता 'शौक़' का अविष्कार नहीं। 'शौक़' में जो नयी चीज है, वह ही उनका आर्ट है :

६. When he came to, he wondered what was near his eyes, curving and strong with life in the dark, and what voice it was speaking. Then he realised it was the grass, and the peewit was calling. 'The warmth was Clara's breathing-heaving. He lifted his head and looked into her eyes. They were dark and shining and strange, life wild at the source staring into his life, stranger to him, yet meeting him, and he put his face down on her throat afraid. What was she ? A strong, strang, wild life, that breathed with his in the darkness through this hour. It was all so much bigger than themselves that he was hushed. They had met, and included in their meeting the thrust of the manifold grass-stems, the cry of the peewit, the wheel of the stars.................. And after such an evening they both were very still, having known the immensity of passion. They felt small, half-afraid, childish and wondering like Adam and Eve when they lost their innocence and realised the magnificence of the power which drove them out of Paradise and across the great night and the great day of humanity. It was for each of them an initiation and a satisfaction. To know their own nothingness, to know the tremendous living flood which carried them always, gave them rest within themselves. If so great a magnificent power could overwhelm them, identify them altogether with itself, so that they knew they were only grains in the tremendous

१. होठों, २. मिश्री घोली, मीठी-मीठी बातें कीं, ३. गिरहें, ४. संघर्ष, प्रयास; ५. मोती, ६. हीरा, ७. कली, ८. चमेली, ९. अनार का फूल, १०. अंगरखे या कुरते का लटकता हुआ भाग, ११. रक्त-रंजित, १२. उज्ज्वल प्रभात, १३. आंचल में गुलाब के फूल भरे, १४. सूर्य, १५. उषा की लालिमा, १६. वर्त्तमान समय में, थोड़ी देर के लिए।

heave that lifted every grass-blade its little height, and every tree and living thing, then why fret about themselves? They could let themselves be carried by life, and they felt a sort of peace each in the other. There was a verification which they had together. Nothing could nullify it, nothing could take it away; it was almost their belief in life.

[*D. H. Lawrence* : Sons and Lovers]

७. मैंने 'शौक़' की मसनवी, 'ज़ह्रे-इश्क़' का ज़िक्र जान-बूझकर नहीं किया है। कारण यह है कि जो नई चीज़ 'शौक़' ने मसनवी को दी वह 'ज़ह्रे-इश्क़' में नहीं है। कहा जाता है कि इस मसनवी में एक विषय तो ऐसा चित्ताकर्षक तथा हृदय-विदारक लिखा है, जिसकी मिसाल आदिकाल से लेकर इस समय तक किसी मसनवी में नहीं मिलती।' (जलालुद्दीन अहमद : तारीख़ मसनवियाते-उर्दू) यह 'चित्ताकर्षक तथा हृदय-विदारक' विषय 'बेसबातीए-दुनिया' (संसार की निस्सारता) और 'आख़िरी वसीअत' के सम्बन्ध में है। संसार की निस्सारता एक ऐसा प्रत्यक्ष विषय है, जिससे उर्दू की ग़ज़लें और क़िते भरे-पड़े हैं। कहा जाता है कि जो तासीर तथा हृदयोत्पीड़न 'शौक़' के वर्णन में है वह कहीं नहीं मिलती है। वह बयान इस प्रकार है :

जाय[१] - इबरत[२] सराय[३] - फ़ानी[४] है + मौरदे[५] - मर्गे - नौजवानी है
ऊँचे - ऊँचे मकान थे जिनके + आज वह तंग गोर[६] में पड़े हैं
कल जहाँ पर शगूफ़ा[७] वो गुल[८] थे + आज देखा तो ख़ार[९] बिल्कुल थे
जिस चमन में था बुलबुलों का हुजूम[१०] + आज उसजा है आशियानए[११]-बूम[१२]
बात कल की है नौजवान थे जो + साहेबे[१३]-नौबत[१४] वो निशान[१५] थे जो
आज ख़ुद हैं न है मकां बाक़ी + नाम को भी नहीं निशां बाक़ी
ग़ैरते[१६] - हूर महजबीं[१७] न-रहे + हैं मकां गर तो वह मकीं[१८] न रहे
जो कि थे बादशाहे - हफ़्त[१९]-एक़लीम + हुए जाजा केज़ेरे[२०]-ख़ाक मोक़ीम[२१]
कोई लेता नहीं अब उसका नाम + कौन - सी गोर में गया 'बहराम'
अब न 'रुस्तम' न 'साम' बाक़ी है + एक फ़क़त[२२] नाम - नाम बाक़ी है
कल जो रखते थे अपने फ़र्क़[२३] प ताज + आज हैं फ़ातिहा[२४] को वह मुहताज

---

१. स्थान, २. शिक्षा, ३. मकान, ४. नश्वर, ५. मरने की जगह, ६. क़ब्र, ७. कली, फूल; ८. फूल, ९. कांटा, १०. भीड़, ११. घोंसला, १२. उल्लू, १३. वाले, स्वामी, १४. समय-समय पर बजनेवाला बाजा; १५. झंडा, १६. दूसरों को लज्जित करनेवाली, १७. चन्द्रमा के-से ललाटवाली, विधु वदनी, १८. मकान में रहनेवाले, १९. संसार के सातों देशों के राजा, २०. मिट्टी के नीचे, २१. ठहरे हुए, २२. केवल, २३. माथा, ललाट; २४. परलोकगत आत्मा की सद्गति के लिए कुरान का प्रथम परिच्छेद पढ़े जाने की रस्म।

थे जो ख़ुदसर[१] जहान में मशहूर + ख़ाक में मिल गया सब उनका गुरूर
इब्र मिट्टी का जो न मलते थे + न कभी धूप में निकलते थे
गर्दिशे[२] - चर्ख़[३] से हेलाक[४] हुए + उस्तुख़्वां[५] तक भी उनके ख़ाक हुए
थे जो मशहूर 'क़ैसर'[६] वो 'फ़ग़फ़ूर'[७] + बाक़ी उनका नहीं निशाने - क़ुबूर[८]
ताज में जिनके टँकते थे गौहर + ठोकरें खाते हैं वः कासए[९] - सर
रश्के[१०] - युसुफ़ थे जो जहां में हसीं + खा गए उनको आसमान वो ज़मीं
हर घड़ी मुन्क़लिब[११] ज़माना है + यही दुनिया का कारख़ाना है
है न 'शीरीं'[१२] न 'कोहकन'[१३] का पता + न किसी जा है नल-दमन[१४] का पता
बूए[१५] - उल्फ़त[१६] तमाम फैली है + बाक़ी अब क़ैस[१७] है न लैली है
सुब्ह को तायराने[१८]-ख़ुश-इल्हान[१९] + पढ़ते हैं 'कुल्लोमिन[२०] अलैहा फ़ान'
मौत से किसको रुस्तगारी[२१] है + आज वह कल हमारी बारी है
ज़िन्दगी बे-सबात[२२] है इसमें + मौत ऐने[२३]-हयात है इसमें

यहाँ बहुत ही साधारण और आम बातों का सीधा-सादा वर्णन है। बयान में एक लयदारी है। शब्दों की सरलता, विचारों का साधारणत्व तथा संगीत की शीघ्र प्रभावकारिता ने बाह्य रूप से इन शेरों में जादू का प्रभाव पैदा कर दिया है। किन्तु, जिसे शेर पढ़ना आता है उसे फ़ौरन महसूस होता है कि इनमें जो असर है, वह नज़र का धोखा है, वास्तविकता नहीं, धोखा है। इन शेरों में वही बात कही गई है, अधिक विस्तार से कही गई है, जो 'मीर' के मशहूर क़िते, 'कल पाँव मेरा कासए-सर पर जो आ गया' में है :

कल जो रखते थे अपने फ़र्क़[२४] प ताज + आज हैं फ़ातिहा[२५] को वह मुहताज
थे जो ख़ुदसर[२६] जहान में मशहूर + ख़ाक में मिल गया सब उनका गुरूर
इब्र मिट्टी का जो न मलते थे + न कभी धूप में निकलते थे
गर्दिशे[२७] - चर्ख़ से हेलाक़ हुए[२८] + उस्तख़्वां[२९] तक भी उनके ख़ाक हुए

समानता स्पष्ट है और यह भी स्पष्ट है कि 'मीर' का क़िता अधिक चित्ताकर्षक है।

इन शेरों से पता चलता है कि 'शौक़' की संवेदना-शक्ति बहुत साधारण ढंग की थी, उनके सोचने का ढंग भी मामूली था। उसमें कोई ताजगी, गहराई, नयापन

---

१. स्वेच्छाचारी, धृष्ट; २. कुचक्र, ३. आसमान, ४. मारे गये, ५. हड्डी, ६. बादशाहे-रूम की उपाधि, ७. चीन देश के महाराजों की उपाधि, ८. क़ब्रें, ९. प्याला, सर की खोपड़ी; १०. युसुफ़ से स्पर्द्धा करने योग्य, ११. बदलनेवाला, १२. ईरान के बादशाह ख़ुसरो की स्त्री, जिस पर 'फ़रहाद' आसक्त था, १३. फ़रहाद की उपाधि; १४. राजा नल और रानी दमयन्ती, १५. गन्ध, १६. प्रेम, १७. लैली के प्रेमी मजनूं का नाम था, १८. पक्षी, १९. मीठे स्वरवाले, २०. उसकी सभी चीज़ें नश्वर हैं, २१. छुटकारा, मुक्ति; २२. अस्थायी, नश्वर, २३. ठीक, असल, परम; २४. माथा, ललाट; २५. मृत प्राणी की शान्ति के लिए प्रार्थना, २६. स्वेच्छाचारी, २७. कुचक्र, २८. वध किये गये, २९. हड्डी।

नहीं इन शेरों में वह अनोखापन नहीं, जो उदाहरण-स्वरूप 'डन' की उस कविता में है, जिसका शीर्षक है 'मृत्यु', जिसका ज़िक्र ऊपर हो चुका है।

बात यह है कि हँसना-रोना, घृणा या प्रेम करना, किसी बात पर क्रोधित होना या किसी चीज को घृणापूर्वक देखना इत्यादि सबके वश की बातें हैं। हमें कोई आघात पहुँचता है तो हम रो देते हैं, जैसे किसी सगे-सम्बन्धी की मृत्यु पर; कोई फिसलकर कीचड़ में गिर पड़ता है तो हम हँस देते हैं; किसी 'अप्सरा को लज्जित करनेवाली विधु-'वदनी' को देखते हैं तो उससे प्रेम करने लगते हैं और इसी तरह की होनेवाली घटनाएँ अपनी प्रकृति के विचार में हमारी ख़ास-ख़ास अनुभूतियों को उभारती हैं। इस प्रकार मानो किसी स्विच (switch)-विशेष को दबाने से एक विशिष्ट जानी हुई अनुभूति उभरती है। यदि कविता का आधार इस प्रकार की साधारण बनी-बनाई अनुभूतियों पर हो तो वह अच्छी कविता न होगी। कविता में अनुभूतियों का आकार-प्रकार कुछ विभिन्न होता है। वे सस्ते ढंग की नहीं होतीं, वे आसानी से उभरनेवाली नहीं होतीं, उनमें सतहीपन नहीं होता, और उनकी अभिव्यक्ति में भी सस्ते शब्द तथा रूपक नहीं होते, सस्ती लयदारी नहीं होती।

'शौक़' के शेरों में सोचने का ढंग सस्ता, अनुभूतियाँ सस्ती, शब्द तथा चित्र सस्ते और लयदारी भी सस्ती है। इस विचार से 'मोमिन' की निम्नलिखित काव्य-पंक्तियाँ अधिक अच्छी हैं :

यादे - ऐयामे[1] - इशरते[2] फ़ानी[3]
न वह हम हैं न वह तन[4] - आसानी
जाय वहशत[5] से सूए[6]-सेहरा[7] क्यों
कम नहीं अपने घर की वीरानी[8]
ख़ाक में रश्के[9] - आसमा से मिली
हाय कैसी बुलन्द - ऐवानी[10]
ऐसी वहशत[11] - सरा में आये कौन
बेदरी[12] कर रही है दर - बानी
क्या हुई वह बुलन्दिए - दीवार
क्या हुए वह ओमादे[13] तूलानी[14]
सक़्फ़[15] - रंगीं वो ज़र[16] - निगार कहाँ
जुज़[17] सिपह्[18] वो नुजूमे[19] - नूरानी[20]

१. दिन, समय; २. सुख-विलास, ३. नश्वर, ४. आराम, चैन; ५. विक्षिप्तता, ६. ओर; ७. जंगल, मरुस्थल; ८. निर्जनता; ९. जो ऊँचाई में आसमान से स्पर्द्धा करे; १०. महल; ऊँचाई; ११. घबराने की जगह, १२. बे-दरवाजे का होना, १३. खम्भे, १४. लम्बे-लम्बे, १५. छत, १६. स्वर्णजटित, १७. सिवा, १८. आसमान, १९. सितारे, २०. ज्योतिर्मय।

जाय[1]-गुल हैं चमन में रेज़ए[2] संग[3] + काह[4] करती है नाज़े[5]-रैहानी[6]
घट गए हैं ज़ बो नह्र, ग़ैर[7] अज़ चश्म + एक क़तरा कहीं नहीं पानी
न मिला कुछ निशाने - आबे-खां[8] + ख़ाक सारे जहान की छानी

अब रही 'वसीअत', तो उसमें मनोवैज्ञानिक बारीकी है, अनुभूतियों में उलझाव है, जो उर्दू-कविता के लिए नयी चीज़ है, परन्तु वर्णन-शैली सुन्दर नहीं है ; और 'शौक़' ने इस मौके से पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया है :

हम भी ग़र जान दे दें खाकर सम[9] + तुम न रोना हमारे सर की क़सम
दिल को हमजोलियों में बहलाना + या मेरी क़ब्र पर चले आना
जाके रहना न उस मकान से दूर + हम जो मर जायें तेरी जान से दूर
रूह भटकेगी गर न पाएगी + ढूंढ़ने किस तरफ को जाएगी
रोके रहना बहुत तबीअत को + याद रखना मेरी वसीअत[10] को
ज़ब्त[11] करना अगर मलाल[12] रहे + मेरी रुस्वाई[13] का खयाल रहे
ज़िक्र सुनकर मेरा न रो देना + मेरी इज़्ज़त न यों डुबो देना
रंजे - फ़ुर्क़त[14] मेरा उठा लेना + दिल किसी और से लगा लेना
होगा कुछ मेरी याद से न हुसूल[15] + दिल को कर लेना और से मशग़ूल[16]
रंज करना न मेरा मैं क़ुर्बान[17] + सुन लो गर अपनी जान है तो जहान
उम्र-भर कौन किसको रोता है + कौन, साहेब, किसी का होता है
कभी आ जाय गर हमारा ध्यान + जानना हम प हो गई क़ुर्बान
दिल में कुछ आने दीजियो न मलाल[18] + ख़्वाब देखा था कीजियो यः खयाल
फिर मुलाक़ात देखें हो कि न हो + आज दिल खोलकर गले मिल लो
हश्र[19] तक होगी फिर यः बात कहाँ + हम कहाँ, तुम कहाँ, यः रात कहाँ
कह लो सुन लो जो कुछ कि दिल में आए + फिर ख़ुदा जाने क्या नसीब दिखाए
देख लो आज हमको जी भरके + कोई आता नहीं है फिर मरके
ख़त्म होती है ज़िन्दगानी आज + ख़ाक में मिलती है जवानी आज
अब तुम इतनी दुआ करो मेरी जां + कल की मुश्किल ख़ुदा करे आसां
फल उठाया न ज़िन्दगानी का + न मिला कुछ मज़ा जवानी का
दिल में लेकर तुम्हारी याद चले + बाग़े आलम[20] से नामुराद[21] चले

मैंने कहा है कि इस प्रकार की मिसाल उर्दू-मसनवियों में नहीं मिलती। जान देना तो ख़ैर आसान है, लेकिन जान देने का उद्देश्य, फिर यह ख़याल कि प्रेमी

---

१. फूलों के बदले, २. कण, ३. पत्थर, ४. घास, ५. गौरव, ६. एक प्रकार की घास, ७. आँख के सिवाय, ८. बहता पानी, ९. ज़हर, विष ; १०. मरनेवाले का इच्छा प्रगट करना कि मेरे मरने पर ऐसा-ऐसा काम हो, ११. रोकना, हृदयावेशों को अधिकार में रखना; १२. दुःख, अन्तर्वेदना, १३. बदनामी, १४. विरह, १५. लाभ, उपलब्धि; १६. संलग्न, १७. निछावर, अर्पित; १८. दुख, अन्तर्वेदना; १९. प्रलयकाल के समय तक, २०. संसार, २१. जिसकी कामना पूर्ण न हुई हो।

के हृदय को आघात पहुँचेगा, तदुपरान्त अपने अपमान का ध्यान, यदि प्रेमी धैर्य धारण न कर सका और प्रेम की बात खुल गई; धैर्य-धारण का आदेश, फिर बलिदान की आखिरी मंजिल ; 'दिल किसी और से लगा लेना', साथ-ही-साथ यह अनुरोध : 'मेरे मरक़द प रोज़ आना तुम' और फिर अनुभूति : 'उम्र-भर कौन किसको रोता है।' यह सब तो कल की बातें हैं—'आज दिल खोलकर गले मिल लो', कारण कि 'कोई आता नहीं है फिर मरके' और फिर तरुणाई की मृत्यु पर अफ़सोस : 'ख़ाक में मिलती है जवानी आज,' और आशीर्वाद की प्रार्थना : 'कल की मुश्किल ख़ुदा करे आसान'—ये सारी बड़ी जटिल अनुभूतियाँ हैं, और इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक बारीकी तथा अनुभूतियों की जटिलता उर्दू में नहीं मिलती। किन्तु 'शौक़' का आर्ट इस बारीकी और जटिलता का भार वहन न कर सका। इसलिए सुन्दर वर्णन में भद्दे धब्बे पड़ गये हैं। जैसे यह कहने के बाद कि :

ज़ब्त[1] करना अगर मलाल[2] रहे + मेरी रुस्वाई[3] का खयाल रहे

इसी शेर पर सन्तोष नहीं किया जाता, बार-बार उसे दुहराया जाता है :

हो गए तुम अगरचे[4] सौदाई[5] + दूर पहुँचेगी इसकी रुस्वाई[6]
लाख तुम कुछ कहो न मानेंगे + लोग आशिक़ हमारा जानेंगे
× × ×
आप कांधा न दीजिएगा मुझे + सब में रुस्वा[7] न कीजिएगा मुझे
× × ×
साथ चलना न सर के बाल खुले + ता[8] किसी शख़्स पर न हाल खुले
× × ×
ज़िक्र सुनकर मेरा न रो देना + मेरी इज़्ज़त न यों डुबो देना

यहाँ पर एक मनोवैज्ञानिक बारीकी की गुंजाइश थी। वह यह कहती तो है कि मेरी बदनामी का खयाल रहे, किन्तु उसकी हार्दिक इच्छा यह है कि बदनामी दूर-दूर फैले। वह चाहती है कि ख़बर सुनते ही प्रेमी दौड़ा हुआ चला आये, उसकी अरथी के साथ रहे, उन्मादग्रस्त हो जाय, आँसू बहाये, कन्धा दे, नाला करे, साथ चले; उसका ज़िक्र सुनकर रो दे और उसकी मान-प्रतिष्ठा को डुबो दे, कारण कि उसकी हार्दिक इच्छा है :

जब तलक चर्खे - बे - मदार रहे + यह फ़साना भी यादगार रहे

यह चीज प्राप्त हो सकती थी किन्तु अनुचित पुनरावृत्ति ने उसका सौन्दर्य नष्ट कर दिया। इसी प्रकार वह कहती तो है कि 'दिल को हमजोलियों से बहलाना', 'जी किसी और से लगा लेना', 'रंज करना न मेरा मैं कुर्बान', 'दिल में कुढ़ना

१. कब्जा करना, २. दुःख, अन्तर्वेदना; ३. बदनामी, ४. यद्यपि, ५. पागल, ६. बदनामी, ७. बदनाम, ८. जिसमें कि।

न मुझसे छूट के तू'; किन्तु यह सब कहने की बातें हैं, वह ऐसा चाहती नहीं है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि उसका दिल न बहल, वह शोकाकुल रहे, वह किसी और से जी न लगाय, अन्यथा वह यह नहीं कहती :

जाके रहना न उस मकान से दूर + हम जो जायें तेरी जान स दूर
रूह भटकेगी गर न पाएगी + ढूंढ़ने किस तरफ़ को जायेगी
× × ×
गुंचए-दिल मेरा खिला जाना + फूल तुर्बत[1] प दो चढ़ा जाना
× × ×
मेरे मरक़द[2] प रोज आना तुम + फ़ातिहे[3] से न हाथ उठाना तुम

और यह ताना न देती :

उम्र भर कौन किसको रोता है + कौन साहेब किसीका होता है

इस प्रकार एक ओर तो आत्महत्या का संकल्प है और दूसरी ओर यह भावना भी है कि 'कोई आता नहीं है फिर मरके' और अपनी तरुणावस्था की मृत्यु और अपने विफल-मनोरथ रहने की तीव्र अनुभूति है :

ख़त्म होती है जिन्दगानी आज + ख़ाक में मिलती है जवानी आज
× × ×
फल उठाया न जिन्दगानी का + न मिला कुछ मज़ा जवानी का
दिल में लेकर तुम्हारी याद चले + बाग़े-आलम से नामुराद चले

सारांश यह कि बहुत-सी गुंजाइशें थीं। यदि कलात्मकता भी होती तो वास्तव में यह नई चीज़ होती। 'क्रिस्टिना रोस्टी' की एक कविता है :

"मुझे स्मरण करना जब मैं चली जाऊँ, इतने सुदूर सुनसान स्थान में चली जाऊँ कि तुम मेरे हाथ न थाम सको, और न मैं जाने के लिए मुड़ूँ और मुड़कर फिर ठहर जाऊँ। मुझे याद करना उस समय जब तुम नित्य-प्रति अपने आयोजनों का ज़िक्र मुझसे न कर सकोगे, वे मनसूबे जिन्हें तुम हमलोगों के भावी जीवन के लिए बनाया करते थे। अवश्य मुझे याद करना। तुम समझते हो कि उस समय परामर्श और प्रार्थनाओं का अवसर शेष न रह जायगा। हाँ, यदि तुम कुछ समय के लिए मुझे भूल जाओ और फिर मेरी याद आ जाय तो दुःखी न होना। यदि (कब्र की) सड़न-गलन उन विचारों का—जो कभी मेरे हृदय में थे—एक नन्हा-सा टुकड़ा भी रहने दे तो मैं यही चाहूँगी कि तुम मुस्कराओ और मुझे भूल जाओ, मुझे याद करके दुःखी न हो।"

इस कविता में गहरी मनोवैज्ञानिक बारीकी है। कहने को तो 'क्रिस्टिना रोस्टी' कहती है कि मैं यही चाहती हूँ कि तुम मुस्कराओ और मुझे भूल जाओ।

१-२. क़ब्र, ३. मृत प्राणी की आत्मा की शान्ति के लिए कुरान के प्रथम परिच्छेद का पाठ करना।

और मुझे याद करके उदास न हो', लेकिन ये कहने की बातें हैं। वह चाहती है कि उसका प्रेमी उसे याद रखे; नहीं तो वह बार-बार 'मुझे याद करना' न कहती। तदुपरान्त यह भी है कि बाह्य रूप से तो मृत्यु, आनेवाली मृत्यु और वियोग से वह संतुष्ट है, किन्तु वास्तव में वह नितान्त संतुष्ट नहीं, अन्यथा वह 'जब मैं मर जाऊँ' के बदले यह न कहती कि 'जब मैं चली जाऊँ—ऐसे सुदूर सुनसान स्थान पर चली जाऊँ'; और उन योजनाओं का भी ज़िक्र न करती, जो वे दोनों बनाया करते थे और वह यह याद भी न करती कि किस प्रकार जाने के लिए मुड़ा करती थी, और मुड़कर फिर ठहर जाया करती थी।

इस कविता में मनोवैज्ञानिक बारीकी और गहराई तथा जटिलता भी है; और कला-कौशल भी है। 'शौक़' को इस कला-कौशल पर अधिकार नहीं। 'क्रिस्टिना रोस्टी' की कविता यह है :

Remember me when I am gone away,
Gone far away into the silent land :
When you can no more hold me by the hand,
Nor I half turn to go, yet turning stay.
Remember me when no more day by day
You tell me of our future that you planned :
Only remember me; you understand
It will be late to counsel then or pray.
Yet if you should forget me for a while
And afterwards remember, do not grieve :
For if the darkness and corruption leave
A vestige of the thought that once I had.
Better by far you should forget and smile
Than that you should remember and be sad.

९

'मसनवी' की भाँति 'मर्सिया' का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है, और बहुत संकीर्ण भी है। 'मर्सिया' युद्ध-काव्य का विषय बन सकता था, और युद्ध-काव्य का विस्तार भलीभाँति विदित है। किन्तु यहाँ विशुद्ध युद्ध-काव्य हाथ नहीं लग सकता। कारण यह है कि 'मर्सिया' वास्तव में 'मर्सिया' है, अर्थात् रोना है, शोक-प्रदर्शन है, छाती पीटना, रोना-कलपना है। और, पहले इसी प्रकार के विषय 'मर्सिये' में होते थे। लेकिन धीरे-धीरे और विषय भी 'मर्सिये' में दाखिल हो गये और रुदन-विलाप की परिधि में युद्ध की कहानी लिखी गई। इसलिए 'मर्सिया' एक मिली-जुली-सी चीज होकर रह गई। पाश्चात्य कविता में एक काव्य-रूप है, जिसे 'एलिजी' कहते हैं। जिसमें किसी की मृत्यु पर आँसू बहाये जाते हैं; और एक दूसरा रूप है, जिसे 'एपिक' (महाकाव्य) कहते हैं, और जिसमें बड़ी शानदार वीर-गाथा होती है। यदि कोई कवि 'एलिजी' (शोक-गीत) लिखते-लिखते 'एपिक' लिखने लगे तो परिणाम स्पष्ट ही है। 'मर्सिये' में कुछ ऐसी ही बात हुई है।

मैंने कहा है कि 'मर्सिया' शोक-प्रदर्शन भी है और युद्ध-वर्णन भी; और फिर यह धर्म का विषय भी है। इसलिए कुछ और कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। विषय पर जोर धार्मिक आवेगों से सम्बन्ध रखता है। इसलिए उसके वर्णन में उस काव्योचित सौन्दर्य तथा वास्तविकता का होना कठिन है, जो 'रुस्तम' वो 'सोहराब' की खूनी दास्तान में है या जो 'ग्रीक्स' और 'ट्रॉजन्ज़' के महा-युद्ध की कहानी में है। बात यह है कि कवि और श्रोता इस प्रचण्ड धार्मिक आवेग से कुछ इतने प्रभावित होते हैं कि 'मर्सिया' कहनेवाला 'मर्सिया' को मात्र कविता नहीं समझता और सुनने-वाले भी उसे काव्य के प्रमापक से नहीं जाँचते। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि कोई धार्मिक विषय कविता का कोई उपजीव्य नहीं हो सकता : अवश्य हो सकता है और होता है। लेकिन शर्त्त यह है कि कवि अपने व्यक्तित्व को अलग-थलग रखे, उसपर दूर से आलोचनात्मक दृष्टि डाले और धार्मिक आवेगों को कवि-सुलभ कल्पना के ढाँचे में ढाले। ऐसी ही दशा में सफल काव्य सम्भव है, अन्यथा असम्भव।

'मर्सियों' में यह पृथक्ता, यह आलोचनात्मक दृष्टि, यह रासायनिक परिवर्त्तन मौजूद नहीं। कवि अपने व्यक्तिगत जज़्बात को नहीं भूलता, उन्हें अपने वश में नहीं करता, वह कवि-सुलभ कल्पना में अपनी हस्ती को विलीन नहीं कर देता। इसी वजह से 'मर्सियों' में नाना प्रकार की ख़ामियाँ पैदा हो जाती हैं। 'मर्सिया' कहनेवाला धार्मिक आवेश से कुछ ऐसा विवश और लाचार हो जाता है कि निष्पक्ष भाव से घटना-वर्णन करना उसके वश की बात नहीं होती; उसकी आँखें मात्र दर्शक की आँखें नहीं होतीं। वह जो कुछ देखता है उसे बिना घटाये-बढ़ाये निष्पक्ष भाव से बयान नहीं करता। उसकी हैसियत एक खुले पक्षपाती की है। वह एक दल-विशेष से संतृप्त होता है

और उसके साथ सहानुभूति रखता है, वह एक पक्ष का हमदर्द होता और उसीको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। इसलिए उसकी बातों में वह असर सम्भव नहीं, जो किसी निष्पक्ष व्यक्ति के बयान में होता है। घटनाएँ सही भी हों तो भी जहाँ कवि की सहानुभूति और पक्षपात प्रकट हो गया तो उसके बयान का महत्त्व घट जाता है। 'मर्सिया' कहनेवाला अपनी सहानुभूति प्रकट कर देता है और साथ-साथ वह एक दल-विशेष के आन्तरिक एवं बाह्य सद्गुणों, शूरता एवं उदारता, सहनशीलता एवं शील-संकोच, आपत्तियों एव कठिनाइयों को सहन करने की शक्ति का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करता है। पक्षपात और अत्युक्ति के कारण उसका आर्ट अपेक्षाकृत कम कीमत का हो जाता है। मैं यह नहीं कहता कि पक्षपात बुरी बात है। उसमें कोई दोष नहीं, यदि उसे काबू में रखा जाय। उसी तरह अत्युक्ति भी कोई बुरी चीज नहीं, अगर यह उचित सीमाओं के भीतर रहे। 'मर्सियों' में कवि पक्षपात से प्रायः विवश हो जाता है और अत्युक्ति हद से आगे बढ़ जाती है :

वाह रे! तालए[१]-बेदार[२] ज़हे[३] इज़्ज़त[४] वो जाह[५]
'हुर' प क्या फ़ज़्ले[६]-खुदा हो गया अल्लाह-अल्लाह
पेशवाई[७] को गये आप शहे - अर्श - पनाह[८]
ख़िज़्रे[९]-क़िसमत[१०] ने बता दी उसे फ़िरदौस[११] की राह
मुद्दतों दूर रहे जो वह क़रीब[१२] ऐसा हो
बख़्त[१३] ऐसे हों अगर हो तो नसीब ऐसा हो
नार[१४] से नूर[१५] की जानिब[१६] उसे लाई तक़दीर[१७]
अभी जर्रा[१८] था अभी हो गया ख़ुर्शीदे[१९]-मुनीर[२०]
शाफ़ए[२१]-हश्र ने ख़ुश होके बहल[२२] की तक़सीर[२३]
तकिअए-ज़ानुए[२४] 'शब्बीर' मिला वक़्ते-अख़ीर[२५]
औज[२६] वो एक़बाल[२७] वो हशम[२८] फ़ौजे[२९]-ख़ुदा में पाया
जब हुआ ख़ाक तो घर ख़ाके[३०]-शफ़ा में पाया

कवि की सहानुभूति स्पष्ट रूप से विदित है, और यह सहानुभूति इच्छापूर्वक प्रकट की गई है। किन्तु इस सहानुभूति को घोषित करने से कोई विशेष खराबी पैदा न होती यदि कल्पना के ऊपर सहानुभूति को अर्पित न कर दिया जाता।

---

१. भाग्य, २. जाग्रत्, ३. प्रशंसनीय, शाबाश; ४. सम्मान प्रतिष्ठा; ५. पद, प्रतिष्ठा, गौरव; ६. कृपा, ७. अगवानी, ८. वह बादशाह, जो अर्श (खुदा की कुर्सी) पर सुरक्षित रहते हों, ९. एक पैगम्बर, जो अमर हैं और अज्ञात रूप से सारे संसार में विचरते रहते हैं। इनकी विशेषता यह है कि ये हरा कपड़ा पहनते हैं और सबके पथ-प्रदर्शक हैं, १०. भाग्य, ११. स्वर्ग, १२. निकट, १३. भाग्य, १४. आग, १५. प्रकाश, ज्योति; १६. ओर, १७. भाग्य, १८. कण, १९. सूर्य, २०. प्रकाशमान, चमकता हुआ; २१. प्रलयकाल के समय, सिफारिश करनेवाला; २२. मुक्त किया, छोड़ दिया, माफ़ किया; २३. अपराध, कसूर; २४. घुटना, २५. अन्त समय, २६. उन्नति, २७. सौभाग्य, २८. परिवार, नौकर-चाकर; २९. ईश्वर की सेना, ३०. आरोग्यदा मिट्टी।

'आर्नल्ड' ने कहा है कि 'एपिक' के लिए एक उदात्त घटनाक्रम का होना आवश्यक है। इस काव्य-रूप में महान् और क्रमबद्ध घटनाओं की जटिल व्यवस्था होती है। दूसरे शब्दों में महत्ता और जटिलता दोनों चीजें आवश्यक हैं। 'आर्नल्ड' की कविता 'सोहराब ऐण्ड रुस्तम' 'ऐपिक' नहीं है। कारण कि इसमें शृंखलाबद्ध घटनाओं की जटिल व्यवस्था नहीं, महज़ एक महान् घटना है, 'सोहराब' वो 'रुस्तम' का युद्ध और कुछ नहीं। इस कविता का मूल्य-महत्त्व बहुत अधिक नहीं। लेकिन, इसमें जो कलात्मक पूर्णता है वह मर्सियों में नहीं मिलती। कर्बला की घटना को एक शृंखलाबद्ध काव्य-रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था, यह कोई कठिन बात न थी, किन्तु उर्दू के कवियों को इतना भी साहस तथा शक्ति न थी। प्रत्येक 'मर्सिया' सम्पूर्ण होता है, किन्तु उसकी पूर्णता दोष-युक्त होती है। इसमें पूरी घटना का विवरण नहीं होता, बल्कि किसी विशिष्ट आनुषंगिक घटना का ज़िक्र होता है—रुग्ण 'आबिद' की यातनाएँ, 'इमाम हुसेन' की शहादत, हजरते-अब्बास' की शहादत, 'हज़रत अली अकबर' की शहादत का अलग-अलग बयान मिलता है। यह सम्भव है कि भिन्न-भिन्न मर्सियों को क्रमानुसार एकत्र करके इस महान् युद्ध का अनुमान किया जा सके। लेकिन किसी 'मर्सिया' कहनेवाले ने इस विचार से अपने 'मर्सिये' नहीं लिखे। इससे पता चलता है कि उर्दू-कवियों में सर्जन-शक्ति थी ही नहीं। जिस प्रकार ग़ज़ल का एक शेर दूसरे शेर से विलग होता है, उसी तरह लिखने के समय एक 'मर्सिया' दूसरे 'मर्सिये' से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। यदि किसी मर्सिया कहनेवाले को यह खयाल होता और उसकी कल्पना में यह शक्ति होती कि वह समस्त युद्ध को एक सम्पूर्ण चित्र के रूप में अपने मानस-पटल पर अंकित कर सके और यदि उसमें यह सर्जना-शक्ति होती कि वह इस तसौवुर को काव्योचित सुन्दरता एवं वास्तविकता के साँचे में ढाल सके तो मर्सियों का मान युद्ध-काव्य की हैसियत से बहुत बढ़ जाता। किन्तु यह काम किसी ने न किया, बल्कि इस ओर किसी का ध्यान भी न गया। जिस प्रकार ग़ज़ल का प्रत्येक शेर कविता नहीं, कविता का अंश-मात्र होता है, उसी तरह 'मर्सियों' में युद्ध-काव्य के टुकड़े मिलते हैं। ये टुकड़े बताते हैं कि सम्पूर्ण रत्न बहुत मूल्यवान् होते हैं, किन्तु स्वयं अपने में वे टुकड़ों ही का महत्त्व रखते हैं।

'होमर' की 'इलियड' को सामने रखिए, और उस दसवर्षीय कलह की कल्पना कीजिए। तदुपरान्त किसी 'मर्सिये' को लीजिए। अन्तर स्पष्टतया विदित हो जायेगा। या 'इलियड' न सही, किसी पाश्चात्त्य 'एपिक' को ले लीजिए; अथवा 'फ़िरदौसी' के 'शाहनामा' को लीजिए। यदि 'करबला' की सम्पूर्ण घटना को क्रमबद्ध ढंग से बयान किया जाता तो भी 'मर्सिया' उच्चकोटि के युद्धकाव्य का नमूना न होता। युद्धकाव्य में कहानी पेचदार होती है। उसकी उत्पत्ति, प्रगति और चरमसीमा होती है; और इन हिस्सों में अनुपात व अनुरूपता आवश्यक है। एक कहानी कई कहानियों, गाथाओं और लड़ाइयों का योगफल होती है। 'करबला' की घटना किसी युद्धगीत की पराकाष्ठा हो सकती थी। लेकिन, इसमें इतनी गुंजाइश और प्रशस्तता नहीं कि वह सम्पूर्ण युद्धगीत का विषय-वस्तु बन सके। आवश्यकता इस बात की थी कि उसकी उत्पत्ति की खोज-ढूँढ़ की जाती, विभिन्न माध्यमिक जीनों (सीढ़ियों) का बयान किया जाता, जो इस लड़ाई के

कारण हुए। इस युद्ध का कारण बीती हुई घटनाओं में छिपा हुआ है; उसका आरम्भ अतीत के पर्दे में ढँका है। उन कारणों का विवरण, उनका विभिन्न रूपों में प्रगट होना, कुछ महत्त्व रखने-वाली घटनाओं का स्पष्टीकरण, जो अपनी न्यूनता के कारण ध्यान में नहीं लाई गईं; तत्पश्चात् उन कारणों का क्रमशः जोर पकड़ना और अन्ततः 'करबला' की लड़ाई के रूप में प्रगट होना—इन सब चीज़ों का बयान, उपयुक्त व मौजूँ बयान, अनिवार्य था। लेकिन इस ओर किसी ने ध्यान न दिया। और, इस अन्यमनस्कता का कारण यह है कि 'मर्सिया' कहनेवाले युद्धगीत का सही अर्थ न जानते थे और अपने धार्मिक आवेग से इतने अधिक प्रभावित थे कि इस घटना की शुद्ध काव्य की विषय-वस्तु की हैसियत से कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

युद्धकाव्य में लुत्फ़ उसी समय सम्भव है, जब दो बराबर की टक्कर के प्रतिद्वन्द्वी हों। यदि एक ओर 'एकिलिस' हो तो दूसरी ओर 'हेक्टर' हो। 'इब्लीस' की यह शक्ति है, उसकी सेना का यह पराक्रम है कि ख़ुदावाले हार जाते। मगर जब पराजय निकट होती है, जब मुक्ति का कोई उपाय नहीं रह जाता तो ख़ुदा अपने बेटे को मेघ-ज्योति और मेघडम्बर लेकर भेजता है। और इस एटम-बम के सामने 'इब्लीस' और उसके साथियों के पाँव उखड़ जाते हैं और उन्हें पराजय होती है। किन्तु 'इबलीस' और उसके साथियों की वीरता में कोई त्रुटि नहीं दीख पड़ती। हाँ, तो युद्धकाव्य में आनन्द उसी समय सम्भव है जब दोनों प्रतिद्वन्द्वी बराबर-बराबर के हों। यदि एक महान् योद्धा सम्पूर्ण योग्यताओं का भण्डार और दूसरा निःसाहस तथा नीच हो तो फिर झगड़े में कोई मजा नहीं रहता। यदि 'रुस्तम' एक मच्छड़ के विरुद्ध खड़ा हुआ भी तो क्या। और अगर वह असंख्य मच्छड़ों के कारण अन्ततः क्लान्त होकर अपनी जान दे दे तो इसकी मृत्यु पर अफ़सोस के सिवा और कोई जज़्बा दिल में नहीं उत्पन्न हो सकता। मर्सिया लिखने-वाले धार्मिक आवेश से मजबूर होकर इसी गलती में पड़ जाते हैं। शत्रु की सेना असंख्य है और यही उनकी विजय का कारण होता है :

हद[1] से फ़िज़ूँ[2] थी कसरते[3] फ़ौजे[4] सितम[5]-शआर
लिखी है रावियों[6] ने छह लाख और दस हज़ार
पैदल थे बेहिसाब तो थे ला-तअद[7] सवार
फ़ौजों का दस्ते[8]-चप[9] से भी मुम्किन न था शुमार[10]
पैके[11]-ख़याल जाके फिर आता था राह से
पिन्हां[12] थी करबला की ज़मीं सब निगाह से

इस छह लाख, दस हजारवाली सेना में एक भी योद्धा का पता नहीं। 'इमाम हुसेन' और उनके पक्षवालों में प्रत्येक व्यक्ति अनुपम वीर है। बच्चा-बच्चा ऐसा शूर-वीर है कि शत्रु के असंख्य सैनिकों को मौत के घाट उतार देता है।

---

१. सीमा, २ अधिक, ज्यादा; ३. अधिकता, बाहुल्य; ४. सेना, ५. क्रूर, अत्याचारी; ६. घटना-वर्णन करनेवालों, ७. असंख्य, ८. हाथ, ९. बायाँ, १०. गणना, ११. दूत; १२. निहित, गुप्त, छिपा हुआ।

अल्लाह का ग़ज़ब[1] उधर आया जिधर बढ़े
पहुँचा सरों प तेग़[2] का साया जिधर बढ़े
जल्वा[3] उरूसे[4]-फ़त्ह ने[5] पाया जिधर बढ़े
घूँघट सिपाहे[6] शाम ने खाया जिधर बढ़े
गिरती थी बर्क़[7] लश्करे[8]-इब्ने-ज़ेयाद पर
गोया चढ़े थे दो नए दुल्हा जेहाद[9] पर
कोई बचे न रूमी[10] वो राज़ी[11] जिधर फिरे
झुक झुक गईं सफ़े[12] वः निमाज़ी[13] जिधर फिरे
ग़ाज़ा[14] लगाया फ़त्ह ने ग़ाज़ी[15] जिधर फिरे
पस्पा[16] थे यक्का[17]-ताज़ वः ताज़ी[18] जिधर फिरे
घूमें बग़ा[19] की क़ाफ़[20] से ताक़ाफ़[21] हो गईं
अल्लाह रे मसाफ़[22] सफ़े[23] साफ़ हो गईं

यह युद्ध-वर्णन है सही, लेकिन युद्ध-काव्य में दिलचस्पी उसी समय सम्भव है जबकि प्रतिद्वन्द्वी भी शक्ति और बल, साहस और वीरता में उनका समकक्ष हो; नहीं तो उनकी वीरता का चित्र साफ़ नहीं उभरता और युद्ध तथा मुठभेड़ में काव्य-सुलभ आकर्षण सम्भव नहीं होता। यदि मर्सियों की तुलना 'मीर हमज़ा' की कहानी से की जाय तो यह तथ्य प्रकट हो जायगा। 'मीर हमज़ा' की कहानी मात्र गल्प-ही-गल्प है, लेकिन कहानीकार उस रहस्य से अवगत था, जिससे मर्सिया लिखनेवाले अपरिचित रहे हैं। 'मीर हमज़ा' के प्रतिद्वन्द्वी मच्छड़ों की तरह के नहीं। वे निःसाहस, निर्बल और नीच प्रकृति के नहीं। शक्ति और बल में वे 'मीर हमज़ा' के समकक्ष ही नहीं, बहुत बार वे उनसे बढ़कर भी होते हैं और ये (मीर हमज़ा) अपने कौशल, अपनी चालबाजी से उन्हें पराजित करते हैं। या 'फ़िरदौसी' कुश्ती लड़ने का सीन दिखलाते हुए कहता है :

हमीं ज़ोर कर्द ईं बर आं आं बर ईं
न जुंबीद यक मर्द बर पुश्ते ज़ीं

फिर यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि यदि युद्ध-काव्य में केवल सफ़ेद-स्याह का मुक़ाबिला हो और कोईबीच का रंग न हो तो उसकामूल्य-महत्त्व कम होजाता है। मनुष्य अच्छे-बुरे विभिन्न गुण-दोषों की राशि होता है। यदि किसी व्यक्ति में गुण-ही-गुण हों तो वह फ़रिश्ता हो सकता है, मनुष्य नहीं रह जाता। इसी प्रकार यदि कोई मूर्त्तिमान दुर्गुण है तो वह शैतान हो

---

१. कोप, २. कटार, ३. छवि, ४. दुलहिन, वधू; ५. विजय, ६. सेना, ७. बिजली, ८. 'इब्ने-ज़ेयाद' की सेना, ९. धर्मयुद्ध, १०-११. 'रूम' एवं 'राज़' के रहनेवाले, १२. सेना की पंक्तियाँ, १३. धार्मिक लोग, १४. उबटन, १५. धर्मयुद्ध, में विजयी, १६. पीछे हटे, १७. बहुत कुशलतापूर्वक सवारी करनेवाले, १८. अरब के लोग, १९. लड़ाई, २०. पहाड़, २१. पहाड़ तक, २२. सेना के खड़ा होने की जगह, युद्धस्थल, २३. सैन्य-पंक्तियाँ—यह उसपर और वह इसपर जोर करता जा रहा था; घोड़े की ज़ीन पर से एक भी टस-से-मस न होता था।

सकता है, लेकिन इन्सान नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसे दो विरोधियों में द्वन्द्व हो, यदि फरिश्तों और शैतानों में युद्ध हो तो सम्भव है कि अच्छा खासा तमाशा हो, लेकिन इसे देखकर मानवीय जज़्बात एवं भावनाएँ नहीं उभर सकतीं।

यह ज़िक्र[1] था कि नूरे[2] - ख़ुदा जल्वागर[3] हुआ
गोया[4] रसूले-पाक[5] का रन में गुज़र हुआ
चिल्लाए अह्ले[6] - शाम की ताले[7] क़मर[8] हुआ
हंगामे[9] ज़ोहर[10] था प गुमाने[11]-सेहर[12] हुआ
जल्वा दिखाया बर्क़[13] तजल्लिए[14]-तूर[15] ने
ख़ुर्शेद[16] को छिपा दिया चेहरे के नूर[17] ने
दिल पाक[18], रूह[19] पाक, नज़र पाक, जिस्म[20] पाक
तीनत[21] में आबे[22]-खुल्द था और कर्बला की ख़ाक[23]
ग़ुर्फ़ों[24] से जिसके हुस्न[25] की हूरों[26] की ताक-झाँक
युसुफ़[27] जो देख ले तो कहे 'रूहना[28] फ़िदाक'
नाम उसका लौह[29] पर जो क़लम ने रक़म[30] किया
सौ बार पढ़के सूरए[31] - नूर उस प दम[32] किया

ऐसे उज्ज्वल प्रकाश का प्रतिद्वन्द्वी है ऐसा अन्धकार, जिससे अमा-निशा भी घबरा जाय। 'शिमर' में पाशविकता, निर्लज्जता, कठोरता और नीचता के अतिरिक्त और क्या रखा है! उसमें एक भी उत्तम, प्रशंसनीय जज़्बा मौजूद नहीं। वह 'हुसैन' की हत्या करने के लिए उद्यत है तो केवल पुरस्कार के लालच से :

वह बोला तेरे क़त्ल[33] से हाथ आएगा ख़िलअत[34]
हाकिम मुझे देवेगा ज़र[35] वो माल निहायत[36]

विद्वेष का और कोई कारण नहीं। 'इमाम हुसैन' के दलवालों में किसी दोष का अनुभव होना सम्भव न सही, किन्तु यह तो सम्भव था कि विरोधी दलवालों में भी साहस तथा वीरता, सहानुभूति व उदारता के उदाहरण दीख पड़ते। केवल एक ऐसा उदाहरण है और वह है 'हुर' का चरित्र। किन्तु वे भी विरोधी दल से निकलकर 'इमाम हुसेन' के दल में सम्मिलित हो जाते हैं। उनका अन्धकार प्रकाश में परिणत हो जाता है। मर्सियों में केवल सफ़ेद-स्याह फ़रिश्तों

१. ज़िक्र; २. ज्योति, ३. प्रदर्शित, ४. मानो, ५. पवित्रात्मा, ६. शाम-निवासी, ७. उदय, ८. चन्द्रमा, ९ समय, १०. तीसरा पहर (दिन), ११. ख़याल, १२. प्रभात, १३. बिजली, १४. चमक, १५. एक पहाड़-विशेष, जिसपर 'हज़रत मूसा' को भगवान् की दिव्य ज्योति दिखाई पड़ी थी, १६. सूर्य, १७. ज्योति, प्रकाश; १८. पवित्र, १९. आत्मा, प्राण; २०. शरीर, २१. स्वभाव, प्रकृति; २२. स्वर्ग का पानी, २३. मिट्टी, २४. खिड़कियों, २५. सौन्दर्य, २६. स्वर्ग में रहनेवाली अप्सराएँ, २७. एक पैगम्बर, जो अतीव सुन्दर थे। ये मिस्र के राजा भी हुए। २८. मेरे प्राण तुमपर न्योछावर हैं, मैं तुमपर बलि जाऊँ; २९. तख्ती, ३०. लिखा, अंकित किया; ३१. कुरान का परिच्छेद, खण्ड; ३२. फूँका, ३३. हत्या, ३४. अपने-शरीर पर का वस्त्र उतारकर दूसरे को पहनाना, ३५. सोना, धन-दौलत, ३६. अत्यन्त, बहुत।

व शैतानों का युद्ध है। 'दर्शकत्व' कुछ अधिक है, किन्तु घटनाएँ असाधारण-सी सान पड़ती हैं। 'मीर हमज़ा' की कहानी में यह दोष नहीं। 'मीर हमज़ा' के विरोधी साहसी एवं बलवान् होने के साथ-साथ सहानुभूति, दया व उदारता जैसे सद्गुणों से भी सुशोभित हैं। स्पष्ट है कि कथाकार युद्ध-वर्णन के कतिपय सही सिद्धान्तों से अवगत है, जिनसे मर्सिया-लेखक अनभिज्ञ हैं।

मर्सिये का एक अंश 'बैन' (विलाप) है, जिसमें हीरो (नायक) के शहीद होने के बाद उसके प्रियजनों, विशेषतः स्त्रियों के रुदन करने का वर्णन किया जाता है। अपनी जगह पर और समुचित सीमाओं के भीतर बैन मुनासिब व मौज़ूँ हो सकता है। लेकिन मर्सियों में बैन का अंश बहुत होता है; और यह बैन (विलाप) मर्सिया कहनेवाले के मुँह से होता है। बैन ही असल मर्सिया है। मर्सिया लिखनेवाले का परमधर्म रोना-रुलाना समझा जाता है। इसलिए बैन प्रायः सभी जगह मिलता है। 'हज़रत अब्बास' के शहीद होने के बाद जो दशा हुई, उसका वर्णन 'दबीर' इस प्रकार करते हैं :

सिर पीटके सब बीबियों ने धूम मचाई + निकले शहे - दीं पीटते है-है मेरे भाई
सिर नंगे 'सकीना' भी यह कहकर निकल आई + मारा मेरे सक़्क़े को 'मोहम्मद, की दुहाई
है-है यः ज़याफ़त[1] है नई फ़ौज[2] 'उमर' की
फ़ाक़ा[3] तो न तोड़वाया कमर तोड़ी पेदर[4] की

है-है मेरे प्यासे प ज़रा रहम न आया + दरिया प लहू प्यासों के सक़्क़े का बहाया
हज़रत के अलमदार को चौरंग बनाया + मिट्टी में मुरक़्क़ा[5] सहे-मर्दां[6] का मिलाया
सक़्क़े[7] को न एक पानी का क़तरा[8] दिया है-है
ठंढा अलमे[9] शाहे[10]-शहीदां[11] किया है-है !

यदि केवल स्वजनों के बैन (विलाप) करने पर ही सन्तोष किया जाता और यह बैन उचित सीमाओं से आगे न बढ़ती तो इसकी वजह से कोई ख़ास ख़राबी न होती। किन्तु मर्सिया कहनेवाले इस विलाप में स्वयं भी भाग लेते हैं और श्रोताओं को इसके लिए प्रेरित करते हैं :

हाँ शाहे[12] दीं के ताज़ियादारों[13] बुका[14] करो
हाँ ऐ ख़ुदा के दोस्त के प्यारों, बुका करो
मातम[15] में हाथ सीने प मारो बुका करो
'अकबर' जहाँ से उठ गये यारो बुका करो
समझो शरीके[16] - बैन शहे[17] मशीर[18] क़ैन को
दे लो जवान बेटे का पुरसा 'हुसेन' को

---

१. भोज, दावत; २. सेना, ३. निराहार व्रत, ४. बाप, ५. गुदड़ी, ६. वीरों के राजा, ७. प्यासा, ८. बूँद, ९. झण्डा, दुःख, शोक; १०. बादशाह, राजा; ११. धर्मयुद्ध में प्राण देनेवाला, १२. धर्म के महाराज, १३. शोक मनानेवालों, १४. शोक मनाओ, आह भरो; १५. दुःख, शोक; १६. बैन में सम्मिलित, १७. राजा, १८. पूर्व-पश्चिम।

है-है ! 'हुसेन' आपका दिलवर[1] बिछड़ गया
फ़रियाद है शबीहे[2] पयम्बर बिछड़ गया
वा[3] हैफ़ ! वा[4] दरेग़ ! दिलावर[5] बिछड़ गया
दर्दा[6] व हसरता[7] 'अली अकबर' बिछड़ गया
मज़लूमियत[8] प तिश्ना[9]-देहानी प रोयेंगे
जब तक जियेंगे उसकी जवानी प रोयेंगे

और इस सिलसिले में वे अपनी कवि-सुलभ हस्ती को विस्मृत कर देते हैं।

मर्सिया लिखनेवाले केवल इतने पर ही सन्तोष नहीं करते। घटना यों ही बहुत पर्ण है; लेकिन वे इसकी शोक-सन्तप्तता को इतना बढ़ा देते हैं कि यह असह्य हो जाती है। घटना के प्रत्येक पहलू का अत्युक्ति एवं ओजपूर्ण ढंग से विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं, जिसके कारण हृदय में आर्द्रता उत्पन्न होती है और रुलाई में वृद्धि होती है। हजरत 'अली अकबर' के विदा होने के समय उनकी फूफी की व्यग्रता को देखा जाय :

या बे-हमारे चैन न आता था कोई[10] दम
मालिक अब और हो गये कोई हुए न हम
क्या दख़ल[11] था जो ड्योढ़ी से बाहर रखें कदम
है-है ! वः मेरा दर्द वो मुसीबत वः रंज वो ग़म
जागी हूँ मैं जो चौंक के रातों को रोए हैं
पूछो तो किसकी छाती प बचपन में सोये हैं
कंघी किसी के हाथ की भाती न थी कभी
बे मेरे लेटे नींद उन्हें आती न थी कभी
बे उनके माँ की कब प जाती न थी कभी
रोएँ पेसर[12] प उनको रुलाती न थी कभी
मेरे सिवा किसी को कभी जानते न थे
जो थी तो मैं थी माँ को तो पहचानते न थे

यह महज़ नमूना है। इस पीड़ाजनक मौके का विस्तृत वर्णन होता है। यदि मर्सिया कहनेवाले धार्मिक आवेश से अधीर न हो जाते, यदि इन पीड़ाजनक घटनाओं की कल्पना से विह्वल होकर बेअख्तियार न हो जाते तो वे अधिक सफल होते। स्वयं रोकर वे कवि के उच्च पद से नीचे गिर जाते हैं, और वीरों को रुलाकर उनकी प्रतिष्ठा में धब्बा लगाते हैं। संसार के शूर-वीर रोते नहीं। मुसीबतों के पहाड़ उनपर टूट पड़ें, उनकी आँखों के सामने उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय मित्रगण काल-कवलित हो जायँ, उनके दुःख बर्दाश्त की सीमा से भी आगे बढ़ जायँ, मगर वे

१. प्यारा, २. रूप-साम्य, चित्र; ३. शोक, ४. खेद-खेद; ५. शूर-वीर, साहसी; ६. पीड़ाओं की दुहाई ! ७. अतृप्त अभिलाषाओं की दुहाई, ८. पीड़ित होने पर, ९. प्यासे होने पर, १०. थोड़ी देर भी, ११. मज़ाल, अधिकार; १२. पुत्र, बेटा।

मुँह से उफ नहीं करते। मर्सिया में हज़रत 'इमाम हुसेन' हज़रत 'अब्बास' के शहीद होने पर इस प्रकार रोते हैं :

भाई कहा और भाई से लिपटे शहेवाला[1]
होंठों को मला होंठों से मुँह प्यार से चूमा
रो-रो के कहा आँख तो खोलो मेरे शैदा[2]
कुछ बातें करो हमसे कहो दिल की तमन्ना[3]
है-है! यः मेरे सामने क्या होता है भाई
तुम मरते हो 'शब्बीर' नहीं रोता है भाई
मुश्ताक़[4] हूँ आवाज़ का आवाज़ सुनाओ
किस जा हैं लगे ज़ख़्म मुझे आके दिखाओ
बेताब[5] हूँ सीने से ज़रा सीना मिलाओ
क्या कहके कलेजे को सम्हालूँ य(ह) बताओ
उन्तीस बरस तुम मेरी गोदी में पले हो
यां किसके सहारे प मुझे छोड़ चले हो

यह रुदन-क्रन्दन मर्सियों में आवश्यकता से अधिक है, बैन (विलाप) युद्ध-वर्णन की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसके कारण मर्सियों का पल्ला भारी नहीं, हल्का हो जाता है। संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो कष्ट भोगने में आनन्द महसूस करते हैं, जिन्हें शोकपूर्ण घटनाओं की कल्पना से एक विशेष प्रकार की रसानुभूति होती है। वे संकटों से प्रमुदित होते हैं। मर्सिया कहनेवालों का स्वभाव इसी प्रकार का होता है। मर्सिया यदि 'एलिजी' रहता तो कोई आपत्ति न होती, यद्यपि उस सूरत में भी रुदन-क्रन्दन की यह प्रचण्डता एवं आधिक्य एक बुरा धब्बा होता। यदि इसे युद्ध-काव्य बनाना था तो रुदन-क्रन्दन से इसके दामन को बचा लेना चाहिए था। लेकिन दोनों में कोई बात न हो सकी।

मैंने कहा है कि मर्सिये का क्षेत्र बहुत प्रशस्त है, लेकिन मर्सिया कहनेवाले इस प्रशस्तता से सही काम नहीं लेते हैं। पात्रों की संख्या उपयुक्त है, लेकिन किसी का भी व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ता। विरोधी दल में असंख्य लोग हैं, लेकिन दो ही तीन के नामों की गणना होती है : 'शिम्र', 'उमर', 'इब्नेज्याद'। साधारणतः इनकी कठोरता, निर्दयता और उनके अत्याचार का वर्णन होता है, किन्तु किसी का भी व्यक्तित्व साफ नहीं दीख पड़ता। 'इमाम-हुसैन' के दल के प्रत्येक व्यक्ति का ज़िक्र विस्तारपूर्वक है। सब अपने-अपने ढंग पर सम्पूर्ण हैं; 'औन' व 'मुहम्मद', 'हज़रते अब्बास', 'हज़रत अली अकबर', 'इमाम हुसैन'। योग्यता के प्रदर्शन में कुछ अन्तर अवश्य है, किन्तु इस भेद के कारण व्यक्तित्व का अलग-अलग सृजन नहीं होता। इसके अतिरिक्त ये व्यक्तित्व न तो विशुद्ध अरबी हैं और न हिन्दी। इनमें दो प्रकार के अंशों का

१. महाराज, २. आसक्त, प्रिय; ३. इच्छा, अभिलाषा; ४. इच्छुक, आतुर; ५. अधीर।

समावेश है और इसके कारण वर्णन में कुछ विच्छिन्नता-सी हो जाती है। भारतीय अंश प्रमुख है और यही भारतीय रंग ही ब्यवरों में भी पाया जाता है :

बैतुश्शरफ़[1] - ख़ास[2] से निकले शहे -[3] अबरार
रोते हुए ड्योढ़ी प गये इतरते[4] अतहार[5]
फर्राशों[6] को 'अब्बास' पुकारे यः बत्तकरार[7]
पर्दे की कनातों से ख़बरदार - ख़बरदार
बाहर हेरम[8] आते हैं रसूले दो - सराके[9]
शुक्का[10] कोई झुक जाय न झोंकों से हवा के
लड़का भी जो कोठे पर चढ़ा हो वह उतर जाय
आता हो उधर जो वह उसी जा[11] प ठहर जाय
नाक़ा[12] प भी कोई न बराबर से गुज़र[13] जाय
देते रहो आवाज़ जहाँ तक कि नजर जाय।
'मरियम' से सिवा हक़[14] ने शरफ़[15] इनको दिये हैं
अफ़लाक[16] प आँखों को मलक[17] बन्द किये हैं

इस प्रकार के उदाहरण बहुत मिलते हैं। 'अब्दुस-सलाम' साहब कहते हैं : "हमारे मर्सिया कहनेवालों ने मक्का-मदीने में रहनेवालियों की आदतों और रीति-रिवाज को भारतीय महिलाओं के अनुसार मान लिये हैं और शादी-विवाह तथा मृत्यु-श्राद्ध से सम्बन्धित जिस प्रकार के रीति-रिवाज यहाँ प्रचलित हैं, वही सभी मर्सियों में भी वर्णित हैं।" मर्सियों पर यह एक भद्दा धब्बा है।

जो कुछ भी हो, व्यक्तित्व का सृजन न सही, भावाभिव्यक्ति बड़े पैमाने पर है। नाना प्रकार के जज़्बात व भावों, विभिन्न अनुभूतियों तथा भाव-प्रवणता का चित्रण मिलता है। साहस, उदारता, दयालुता, सहानुभूति, सहनशीलता, कोप, गुस्सा, क्रोध, उग्रता, आशा-निराशा, लाज-हया, मान-मर्यादा, आन-गौरव एक ओर तो कायरता, निष्ठुरता, हिंसकता, ईर्ष्या, द्वेष, डाह, नीचता दूसरी ओर—ये सभी कुछ मिलते हैं। इसलिए अनुभूतियों का संसार प्रशस्त है, विशेषतः उर्दू-कविता के अन्य रूपों की तुलना में, जहाँ संकीर्णता के कारण मन घबराने लगता है। यह प्रशस्तता प्रशंसनीय है।

मर्सियों में संसार-निरीक्षण की विविधता के द्वारा रचना-सौन्दर्य की शोभा बढ़ सकती थी और इस प्रकार के कुछ वर्णन मिलते भी हैं; और उनमें से कुछ उच्च कोटि के भी हैं, किन्तु उनमें अधिक वैविध्य नहीं है :

---

१. ग्रह-विशेष का अपनी राशि में उच्चतम स्थान, २. स्वकीय, अपना; ३. पवित्रात्माओं के राजा, ४. वंशज, ५. पवित्र आत्माएँ, ६. बिछावन लगानेवाले नौकर-चाकर, ७. बार-बार, ८. अन्तःपुर की स्त्रियाँ, ९. दोनों जहान, १०. दरार, फाँक; टुकड़ा; ११. जगह, १२. ऊँटनी, १३. चला जाय, १४. भगवान्, ख़ुदा; १५. मान, प्रतिष्ठा; १६. आसमान, १७. फ़रिश्ते।

पैदा[1] शोआय[2]-मेह्र[3] की मिक़राज[4] जब हुई + पिन्हां[5] दराज़िए[6]-परे ताऊसे[7] - शब हुई
और क़ित[8] ज़ुल्फ़े-लैलिए[9]-जोहरा-लकब हुई + मजनूं-सिफ़त[10] रेदाय[11]-सेहर[12] चाक सब हुई
फ़िक्रे - रफ़ू थी चर्ख़[13] हुनरमन्द के लिए
दिन चार टुकड़े हो गया पैबन्द के लिए
ज़ुल्मत[14] जहाँ-जहाँ थी वहाँ नूर हो गया + फिर मुश्के-शब[15] जहान से काफ़ूर[16] हो गया
गोया[17] कि ज़ंग आईने से दूर हो गया + बातिल[18]-रिसाला अशहबे[19] देंजूर[20] हो गया
क्या पोख़्तः[21] रोशनाई[22] थी क़ुदरत[23] के जामे[24] में
मज़मून[25] आफ़ताब का ज़र्रों[26] के नामे[27] में

प्रायः प्रभात का ही वर्णन होता है, अथवा कभी-कभी गर्मी की प्रचण्डता का, लेकिन जैसाकि मैंने कहा है, इनमें कुछ अधिक विविधता नहीं है।

हाँ, घटना-वर्णन में काफी वैविध्य है; विशेषतः भिन्न-भिन्न लड़ाइयों का वर्णन दिलचस्प होता है। 'हुर' की वीरता, हज़रते 'अब्बास' का आश्चर्यजनक सैन्य-पंक्ति-भेदन, हज़रत-'अली अकबर' का घोर संग्राम—सबका वर्णन जोश-खरोश के साथ है; लेकिन ध्यानपूर्वक देखने से इन लड़ाइयों में सपाटपन दृष्टिगोचर होता है। यदि यही मर्सिया लिखनेवाले लम्बे युद्ध-काव्य लिखते तो उनमें बाहरी विविधता न रह जाती। विशेषकर इन घटनाओं के वर्णन में एक प्रकार की अत्युक्ति से काम लिया जाता है, जिससे भावुक हृदय को उनमें नीरसता जान पड़ती है :

किस शेर की आमद[28] है कि रन काँप रहा है
रन एक तरफ़ चर्ख़[29] - कोहन[30] काँप रहा है
रुस्तम का बदन ज़ेरे[31] - कफ़न[32] काँप रहा है
हर क़स्रे[33] - सलातीने[34] -ज़मन[35] काँप रहा है
शम्शेर[36] - ब[37] - कफ़[38] देखके हैदर[39] के पेसर[40] को
'जिबरील'[41] लरज़ते[42] हैं समेटे हुए पर को
तब्ल[43]-वो-दोहल[44]-वो-बूक[45] को सकता[46] हुआ डर से
एक बार उड़े ताजे[47] - हुमा[48] शाहों[49] के सिर से

---

१. प्रकट, २. किरण. ३. सूर्य, ४. कैंची, ५. गुप्त, छिपा हुआ; ६. लम्बाई, ७. मोर, ८. कटी-छँटी; ९. उज्ज्वल उपाधिवाली रात्रि; १०. समान, ११. चादर, १२. प्रभात, १३. आकाश, १४. अन्धकार, १५. रात्रि-रूपी कस्तूरी, १६. कपूर, उड़ गया; १७. मानो, १८. रिसाले से बहिष्कृत, १९. घोड़ा, २०. श्यामकर्ण, काला; २१. पक्की, २२. चमक, ज्योति; २३. ईश्वरीय शक्ति, २४. कपड़ा, पोशाक; २५. विषय, २६. बालुका-कण, २७. पत्र, २८. आगमन, २९. आसमान, ३०. पुरातन, ३१. नीचे, ३२. वह कपड़ा, जिसमें लपेटकर मुर्दे को जलाते या दफ़नाते हैं, ३३. महल, ३४. राजाओं, ३५. समय, युग; ३६. तलवार, ३७ में, ३८. हथेली, मुट्ठी; ३९ शेर, हज़रत अली की उपाधि; ४०. बेटा, ४१. एक देवदूत का नाम है, जो खुदा का संवाद मुहम्मद साहेब तक पहुँचाते थे, ४२. काँपते हैं, ४३. डंका, ४४. ढोल, ४५. तुरही, ४६. चुप लगाये हुई, ४७. मुकुट, ४८. एक मुबारक चिड़िया, जिसकी छाया पड़ने से मनुष्य राजा हो जाता है (ऐसा अन्धविश्वास है), ४९. महाराजों।

ख़ंजर[1] गिरे खुल-खुलके शुजाओं[2] की कमर से
तायब[3] हुए मिर्रीख़[4]-वो-ज़ोहल[5] फ़ित्ना[6] वो शर[7] से
ख़ुर्शेद[8]-वो-महे[9]-नौ ने कहा चर्ख़[10]-बरीं[11] पर
अब खोल के रख दो[12] सिपर-वो-तेग़ ज़मीं पर
हैबत[13] से हैं नुह[14]-क़ुल्लए-[15]-अफ़लाक[16] के दरबन्द[17]
जल्लादे[18] - फ़लक भी नज़र आता है नज़रबन्द[19]
वा[20] है कमरे - चर्ख़ से जौज़ा[21] का कमर-वन्द
सैयारे[22] हैं ग़ल्तां[23] सिफ़ते[24]-तायरे[25] - पर-बन्द
रंगत प ओतारिद के क़लम छूट पड़ा है
ख़ुर्शेद के पंजे से अगम छूट पड़ा है

'सौदा' मर्सिये के लिए मुख़म्मस[26], मुरब्बा,[27] मुसद्दस[28] का प्रयोग करते थे; 'अनीस' वो 'दबीर' केवल मुसद्दस से काम लेते हैं। इसमें काफी प्रशस्तता है, और इसमें शान वो शौकत, रोब-दाब, सौन्दर्य, वेदना व असर—सभी प्रकारके भावों का समावेश हो सकता है। घटना-वर्णन, भाव-चित्रण, विभिन्न कल्पनाओं और दृश्यों का सफल चित्रण सम्भव है। इस साँचे में संकीर्णता नहीं। इसमें बस एक दोष है; और वह है इसकी प्रशस्तता, जिसके कारण इसको भरना प्रायः कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता है। किन्तु साधारणतः कविगण अपनी कविता को इस दोष से मुक्त रखते हैं। हाँ, यदि इसे लम्बे क्रमबद्ध युद्धकाव्य के लिए व्यवहार में लाया जाता तो एक ख़राबी यह होती कि बन्दों में सादृश्य के कारण कविता की रसानुभूति में कमी हो जाती। किन्तु छोटे-छोटे मर्सियों में यह कमी है भी, तो प्रकट नहीं होती। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न मर्सियों में विभिन्न छन्दों का प्रयोग होता है। इसके कारण कविता-वैचित्र्य में वृद्धि होती है।

---

१. कटार, २. वीरों, ३. तौबा कर लिया, हाथ खींच लिया, बन्द कर दिया; ४. मंगल (ग्रह), ५. शनि ग्रह, ६. झगड़ा, ७. फ़साद, दुष्टता; ८. सूर्य, ९. द्वितीया का चांद, १०. आसमान, ११. ऊँचे, १२. ढाल, १३. डर, भय; १४. नौ, १५. चोटी, परत; १६. आसमानों, १७. द्वार, दरवाज़ा; १८. व्याधा, वधिक; १९. क़ैदी, आँखों से ओझल; २०. खुला हुआ, २१. मृगशिरा नक्षत्र, २२. ग्रह-नक्षत्र, २३. लुढ़कते हुए, २४. समान, २५. पंख बंधा हुआ पक्षी, २६. वह नज़्म जिसमें हर बन्द में पाँच-पाँच मिसरे हों, २७. वर्ग, चतुष्पदी बन्द का नज़्म, २८. वह नज़्म, जिसमें चार मिसरे एक क़ाफ़िये में और दो मिसरे अलग दूसरे क़ाफ़िये में होते हैं।

सन्दर्भ-संकेत

१. *Epic* : A poem in which actions or events in related sequence are presented by narration and description; especially, a poem celebrating in stately, formal verse the real or mythical achievements of great personages, heroes or demigods.

२. *Elegy* : A classical poem in elegaic verse; hence, a lyric poem lamenting the dead; a funeral song, as Shelley's *Adonais*.

A reflective and meditative poem with sorrowful theme; solemn or plaintive poetry; as, Gray's *Elegy in a Country Churchyard*.

३. ईलियड में 'ग्रीक्स' की ओर से 'ऐक्किलिस' (Achilles) और ट्रोजन्न की की ओर से 'हेक्टर' युद्ध करते हैं। दोनों ही वीर हैं। 'ऐक्किलिस' 'हेक्टर' का वध करता है; और फिर स्वयं मारा जाता है।

Full Soon

४. Among them he arrived, in his right hand
Grasping ten thousand thunders, which he sent
Before him, such as in their souls infixed
Plagues. They, astonished, all resistance lost,
All courage; down their idle weapons dropt;
O'er shields, and helons, and helmed heads he rode
Of thrones and mighty Seraphim prostrate,
That wished the mountains now might be again
Thrown on them, as a shelter from his ire.
No less on either side tempestuous fell
His arrows, from the fourfold-visaged four,
Distinct with eyes, and from the living wheels,
Distinct alike with multitude of eyes;
One spirit in them ruled, and every eye
Glared lightning, and shot forth pernicious fire
Among the accursed, that withered all their strength,
And of their wonted vigour left them drawned,
Exhausted, spiritless, afflicted, fallen.

[*Milton* : Paradise Lost : Book IV]

५. 'मीर हम्ज़ा' और उनके सरदार नेकी के पुतले और नेकी के समर्थक हैं। 'अफ़्रासियाब' और उनके सरदार व सहायक वास्तव में बदी की शक्तियाँ हैं। और नेकी-बदी की शक्तियों मे बहुत बड़ा संघर्ष होता है—ऐसा संघर्ष, जिसे सोचने ही से कल्पना थरथरा उठती है........यहाँ भी प्रकाश और अन्धकार, सफ़ेदी और सियाही के संघर्ष का चित्रण है—वही संघर्ष जो 'शेक्सपियर' के नाटकों और 'अनीस' एवं 'दबीर' के मर्सियों में भी मिलता है।

.......'तिलिस्मे-होशरूबा' में नेकी के समर्थक एक ओर युद्ध के लिए पंक्ति बाँधकर खड़े हैं और बदी के प्रतिनिधि दूसरी ओर। दोनों ओर की सेनाएँ आगे बढ़ती हैं और एक कड़ी मुठभेड़ होती है। 'मीर हम्ज़ा' और उनकी सेना एक ओर, 'लक़ा' और उसकी पल्टन दूसरी ओर; अर्थात् नेकी और बदी का संघर्ष है। यही संघर्ष मर्सियों में भी है। इमाम हुसेन, हज़रत अब्बास, हज़रत 'अली अकबर' नेकी के पुतले हैं; 'इब्ने-ज़ियाद', शिमर और उसके सिपाही बदी की मूर्त्तियाँ हैं—सफ़ेदी और सियाही का युद्ध है। 'शेक्सपियर' के नाटकों में नेकी के पुतले और बदी की मूर्त्तियाँ अलग-अलग नहीं, नेकी और बदी की शक्तियाँ एक व्यक्ति अर्थात् नायक के व्यक्तित्व में एकत्र हैं, और उसकी आत्मा, उसके हृदय, उसके मस्तिष्क में बल-परीक्षा करती हैं। यह आन्तरिक संघर्ष बाह्य संघर्ष को प्रतिबिम्बित करता है। यहाँ एक प्रकार का विशिष्ट, व्यक्तिगत, आध्यात्मिक तूफान है, जो ख़ास भी है और आम भी, व्यक्तिगत भी है और व्यापक भी, आध्यात्मिक भी है और भौतिक भी। असंख्य साहित्यिक खूबियों से दृष्टि हटा लेने पर भी यही तथ्य 'शेक्सपियर' के नाटकों को 'तिलिस्मे-होशरूबा' और मर्सियों से उत्तम एवं श्रेष्ठतर बनाता है। 'तिलिस्मे-होशरूबा' की दुनिया 'शेक्सपियर' के नाटकों की दुनिया से मूल्य-महत्त्व में बहुत घटकर है। दोनों में कोई अनुपात नहीं। लेकिन, जहाँ तक इस तत्त्व का सम्बन्ध है, 'तिलिस्मे-होशरूबा' का स्थान मर्सियों से उच्चतर है। मर्सिया कहनेवाले की हैसियत एक पक्षपाती की है, वह एक दल के सद्गुणों का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ाकर करता है। उस दल में किसी प्रकार के दोष का होना सम्भव नहीं। और, वह दूसरे दल को काल-निशा के अन्धकार या अलकतरा या नर्क से भी अधिक काला बताता है। 'तिलिस्म-होशरूबा' में भी पक्षपात है। यहाँ भी 'मीर हम्ज़ा' और उनके दलवालों के सद्गुणों को चमकाकर कहा जाता है और 'लक़ा' तथा 'अफ़्रासियाब' और उनके दलवालों को सियाह रंग में रँगा जाता है, लेकिन यह कालिमा उतनी गहरी नहीं। यहाँ दूसरे रंगों की भी झलक दीख पड़ती है। 'लक़ा' और उसकी बातों की टेक 'मन चे तकदीर करदम' पर हम हँसते हैं। लेकिन 'अफ़्रासियाब' की शान-शौकत, उसके सरदारों के साहस और बल को भी हम स्वीकार करते हैं। 'इमाम हुसैन' के विरोधियों में एक भी शूर-वीर नहीं, लेकिन 'अफ़्रासियाब'

स्वयं एक महाशक्तिशाली महाराज है और उसके सरदारों में प्रत्येक व्यक्ति आप ही अपना उदाहरण है। अर्थात् 'तिलिस्म-होशरूबा' में 'असद' के विरोधियों को उपेक्षित नहीं किया गया है। इससे संघर्ष में अधिक आनन्द और अधिक वास्तविकता है। 'अफ़्रासियाब' 'इमाम हुसेन' के विरोधियों की तरह डरपोक, नीच और निर्बल नहीं, वह एक संकेत-मात्र में दुनिया का तख्ता उलट सकता है। मर्सिया कहनेवाला मर्सिया के पात्रों को मानवीय सतह पर रखता तो है, पर इतनी अत्युक्ति से काम लेता है कि तस्वीर अविश्वसनीय हो जाती है। 'तिलिस्म-होशरूबा' में यह दोष भी मौजूद नहीं। यहाँ आरम्भ से ही एक ऊँचे, विस्तृत और प्रशस्त संसार की रचना की गई है, इसलिए जो प्राणी यहाँ साँस लेते हैं, जो घटनाएँ यहाँ घटित होती हैं, वे एक बहुत बड़े पैमाने पर हैं। यहाँ विश्वास और अविश्वास का प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

[उर्दू ज़बान और फ़नेदास्ताँगोई]

१०

'अनीस' एवं दबीर के मर्सियों में वे सारी ख़ामियाँ मौजूद हैं, जो साधारणतः मर्सियों में पाई जाती हैं। लेकिन 'अनीस' में कुछ ख़ूबियाँ भी हैं, जो उन्हें अन्य मर्सिया कहनेवाले कवियों से श्रेष्ठ बनाती हैं और जिनसे पता चलता है कि आम उर्दू-कवि की हैसियत से भी उनका स्थान काफ़ी ऊँचा है। 'अनीस' अपनी रचना के विषय में कहते हैं :

एक क़तरे को जो दूँ बुस्त[१] तो क़ुल्जुम[२] कर दूँ
बह्र[३] - मौवाज[४] फ़ेसाहत[५] का तलातुम[६] कर दूँ
माह[७] को मेह्र[८] करूँ ज़र्रों[९] को अन्जुम[१०] कर दूँ
गुंग को माहिरे[११] - अन्दाज़[१२]-तकल्लुम[१३] कर दूँ
दर्दे - सर होता है बेरंग न फ़रियाद[१४] करें
बुलबुलें मुझसे गुलिस्तां[१५] का सबक़[१६] याद करें
क़लमे[१७]-फ़िक्र से खींचूँ जो किसी बज़्म[१८] का रंग
शमए[१९] - तस्वीर पै गिरने लगें आ-आके पतंग
साफ़ हैरत[२०]-ज़दा 'मानी'[२१] हो तो 'बहज़ाद'[२२] हो दंग
ख़ूँ बरसता नज़र आये जो दिखाऊँ सफ़े[२३]-जंग[२४]
रज़्म[२५] ऐसी हो कि दिल सबके फड़क जायँ अभी
बिजलियाँ तेग़ों की आँखों में चमक जायँ अभी
रोज़मर्रा[२६] शोरफ़ा[२७] का हो सलासत[२८] हो वही
लब-वो - लेहजा वही सारा हो मतानत[२९] हो वही
सामेईं[३०] जल्द समझ लें जिसे सुनअत[३१] हो वही
यानी मौक़ा हो जहाँ जिसका इबारत[३२] हो वही
लफ़्ज़ भी चुस्त हो मज़्मून[३३] भी आली[३४] होवे
मर्सिया दर्द की बातों से न ख़ाली होवे
बज़्म का रंग जुदा रज़्म का मैदां है जुदा
यह चमन और है ज़ख़्मों का गुलिस्तां[३५] है जुदा

---

१. फैलाव, २.-३. समुद्र, ४. लहराता हुआ, ५. प्रांजल भाषा, ६. टकराना, भिड़ाना; ७. चन्द्रमा, ८. सूर्य, ९. बालुका-कण, १०. सितारा, ११. अध्यक्ष, १२. ढंग, १३. बोलचाल, १४. रोना, कलपना; १५. उद्यान, १६. पाठ, १७. कल्पना-रूपी लेखनी, १८. सभा, १९. चिराग़ का चित्र, २०. आश्चर्यचकित, २१.-२२. ईरान के नामी चित्रकार, २३. सेना की पंक्ति, २४. युद्ध, २५. युद्ध, २६. दिन-प्रतिदिन का बोलचाल, २७. भले आदमी, २८. सरल प्रांजल भाषा, २९ दृढ़ता, ३०. श्रोतागण, ३१. अलंकार, ३२. भाषा की शैली, ३३. विषय, ३४. ऊँचा, बड़ा; ३५. फुलवारी।

फ़ह्म[१] कामिल[२] हो तो हर नामे[३] का उनवाँ[४] है जुदा
मुख़्तसर[५] पढ़के रुला देने का सामां है जुदा
दब्दबा[६] भी हो मसायब[७] भी हों तौसीफ़[८] भी हो
दिल भी महज़ूज़[९] हो रिक्कत[१०] भी हो तारीफ़ भी हो

कवि-सुलभ वाग्विलास से ध्यान हटाकर देखा जाय तो 'अनीस' बात ठीक ही कहते हैं। वे जानते हैं कि 'हर सोख़न मौक़ा वो हर नुक्ता मुकामे दारद' (प्रत्येक बात का एक अवसर और हर विषय का एक स्थान होता है)। इस बात से अधिकांश उर्दू-कवि अनभिज्ञ रहे हैं। 'अनीस' जानते हैं कि मित्र-मण्डली का रंग अलग और युद्ध का क्षेत्र भिन्न है, और वे अपने मर्सियों में विविधता पैदा करने का प्रयास, सफल प्रयास, करते हैं। रोब-दाब, संकटमय परिस्थितियाँ, गुणगान—सभी चीज़ें मौजूद हैं। वे हँसाते भी हैं और रुलाते भी हैं। वे समस्त मानवीय भावों को उत्तेजित करने की क्षमता रखते हैं। क्रोध, घृणा, तुच्छता, शौर्यविश, उत्तेजना, तरुणाई, शील, संकोच, आन-अभिमान; सारांश यह कि सभी प्रकार के मनोभावों पर उनका अधिकार है। और इन सबका वर्णन वे मृदुता, दृढ़ता, गम्भीरता, चुस्त-बन्दिश, दर्द एवं असर, जोश, रंगीनी, चमक, प्रफुल्लता के साथ प्रवाहपूर्ण भाषा में कर सकते हैं।

शील-निरूपण तो ख़ैर 'अनीस' की मर्सियों में भी नहीं है। वे प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को अलग-अलग निखार नहीं सकते, सब-के-सब एक ही रंग में रँगे हुए हैं। हर पात्र में वही ख़ूबियाँ हैं, जो दूसरों में भी पाई जाती हैं। 'दबीर' के मर्सियों में भी शील-निरूपण नहीं। 'अनीस' एवं 'दबीर' 'इमाम हुसेन' के व्यक्तित्व का निर्माण करने में विशेष रूप से बड़ा परिश्रम करते हैं और इस विषय में 'अनीस' 'दबीर' से बहुत आगे निकल जाते हैं। 'अनीस' चाहते थे कि मानवता और देवत्व को इस तरह मिलायें कि एक महान् और उच्चकोटि का व्यक्तित्व बन सके। किन्तु, इस सम्मिश्रण में उन्हें पूरी सफलता न मिल सकी। मानवता स्पष्टतया देवत्व से बढ़ गई है। फिर एक बात यह भी है कि 'अनीस' कुछ मानवीय दुर्बलताओं, विशेषतः कष्ट-सहन पर विशेष जोर देते हैं:

शह[११] दौड़कर पुकारे कि आता हूँ भाई जान
घर लुट गया है ख़ाक उड़ाता हूँ भाई जान
ताक़त बदन में अब नहीं पाता हूँ भाई जान
एक-एक क़दम प ठोकरें खाता हूँ भाई जान
दस्ते[१२] - शिकस्तः[१३] बेटे की गर्दन में डाले हैं
भैया हमें तो अकबरे - महरू[१४] - सँभाले हैं

अस्तु, 'अनीस' यदि शील-निरूपण न कर सकते थे तो भी वे भाव-चित्रण बड़े ही सुन्दर और आकर्षक ढंग से करते हैं। इस दृष्टि से भी वे 'दबीर' से श्रेष्ठतर हैं। 'अनीस' दो या

१. बुद्धि, समझ; २. पूर्ण, उच्चकोटि की; ३. ख़त, पत्र; ४. शीर्षक, ५. सारांश, ६. ठाट-बाट, ७. दुःख, तकलीफ़; ८. गुणगान, ९. प्रसन्न, प्रफुल्लित; १०. आर्द्रता, ११. राजा, बादशाह; १२. हाथ, १३. टूटा हुआ, १४. चन्द्रमा के-से मुखमण्डलवाले।

अस्तु, 'अनीस' यदि शील-निरूपण न कर सकते थे तो भी वे भाव-चित्रण बड़े ही सुन्दर और आकर्षक ढंग से करते हैं। इस दृष्टि से भी वे 'दबीर' से श्रेष्ठतर हैं। 'अनीस' दो या अधिक जज़्बात को एक ही समय एकत्र करते हैं और उनकी उपस्थिति से जो संघर्ष उत्पन्न होता है, उसे बड़ी सुन्दरता एवं निपुणता के साथ वर्णन करते हैं। इन भावावेशों में प्रायः विरोधाभास होता है और वे मन को दो तरफ़ खींचते हैं। इस संघर्ष को 'अनीस' बड़े ही सूक्ष्म और सरल ढंग से बयान करते हैं। 'हज़रत अली अकबर' विदा होने के लिए अपनी माता के पास जाते हैं तो माँ के प्रेम का नक़्शा 'अनीस' इस प्रकार खींचते हैं :

माँ गिर्द फिरके बोली कि ऐ मेरे गुल[1]-ओज़ार + तुम सुब्ह से गये थे अब आए य(ह) माँ निसार[2]
दर[3] पर तड़प-तड़प के मैं जाती थी बार-बार + खोलो बस अब कमर को मेरा दिल है बेक़रार[4]

गर्मी यः और क़ुहत[5] कई दिन से आब[6] का
रुख[7] तम्तमा गया है मेरे आफ़ताब[8] का

फिर माँ को मालूम होता है कि विदा होने के लिए आये हैं। पुत्र की सुरक्षा का ख़याल एक ओर, उसकी निस्सहायता और अधीरता का ध्यान दूसरी ओर, विचित्र प्रभाव उत्पन्न करता है। अन्त में उन्हें जवाब मिलता है :

देखी गई नमां से यः बेताबिए[9]-पेसर[10]
वारिस[11] की बेकली[12] प लगा काँपने जिगर
हाथों से दिल को थामके बोली वः नौहागर[13]
दौलत[14] प 'फ़ातिमा'[15] के तसद्दुक़[16] तमाम घर
पहले न कुछ कहा था न अब रोकती हूँ मैं
रोते हो किसलिए तुम्हें कब रोकती हूँ मैं

अल्लाह ! कितनी वीरता, उदारता, मातृप्रेम, तमन्नाओं की वीरानी एवं बर्बादी प्रत्येक शब्द से टपकती है। 'दबीर' में यह सुकुमारता, सुन्दरता और बढ़ियापन नहीं मिलता। इनमें ऐसे अवसरों पर भद्दा और कुत्सित प्रभाव नज़र आता है। अस्तु, जो असर, जो खूबी इस बन्द में है वह पूरे बयान में नहीं। 'अनीस' और केवल 'अनीस' ही नहीं, सभी मर्सिया कहनेवाले आवश्यकता से अधिक विस्तार से काम लेते हैं और यह नहीं समझते कि इस विस्तार के कारण प्रभाव में वृद्धि नहीं, उसका ह्रास होता है। उनका उद्देश्य तो रोना-रुलाना है और इस उद्देश्य को प्राप्त करने में वे सफल-मनोरथ भी हुए हैं, किन्तु कवि-सुलभ सौन्दर्य और वास्तविकता में कमी हो जाती है।

---

१. फूल के-से कपोलवाले, २. निछावर, ३. द्वार, दरवाज़ा; ४. अधीर, ५. अभाव, ६. पानी, ७. चेहरा, ८. सूर्य, ९. बेचैनी, १०. पुत्र, ११. उत्तराधिकारी, १२. निस्सहायावस्था, १३. शोक मनानेवाली, १४. धन-सम्पत्ति, पुत्र; १५. मुहम्मद साहेब की बेटी, जो अली को ब्याही थी, १६. ख़ैरात, कुर्बान, निछावर।

एक 'अली अकबर' के ही शहीद होने को लीजिए। इस शोकपूर्ण घटना का वर्णन बार-बार होता है। दो बीबियाँ ख़ेमे से बाहर निकल आती हैं और इस प्रकार बयान करती हैं :

एक कहती थी सद्क़े[1] तेरे ऐ गेसुओंवाले[2] + एक कहती थी कुर्बान[3] मेरी गोद के पाले
जीने की जवानी में तुम्हें पड़ गए लाले + ठहरो कि यः माँ छाती से बर्छी को निकाले

है ! है !! यः क़िबा[4] ख़ून में सब भर गई, बेटा
तुम ज़ख़्मी[5] हुए क्या कि फूफी मर गई, बेटा

था तेरी दुल्हन लाने का 'अकबर' मुझे अरमाँ[6] + तक़दीर ने बे-आस किया मुझको मेरी जाँ
वारी तेरी इस चाँद-सी छाती के मैं कुर्बां + सेहरा[7] भी न बाँधा कि हुए ख़ून में गल्ताँ[8]

लाशे प तेरे अश्कों[9] से मुँह धोने को आई
तुम मुझको न रोए मैं तुम्हें रोने को आई

तुम मर गए मैं मर न गई साथ तुम्हारे + है है मेरे दिलवर[10], मेरे जानी, मेरे प्यारे
तुम भी न रहे 'औन' वो 'मुहम्मद' भी सिधारे + अब कौन उठाएगा जनाज़े[11] को हमारे

आराम बहुत कम मेरी क़िसमत में लिखा है
पीरी[12] में यः मातम[13] मेरी क़िसमत में लिखा है

एक दूसरे मर्सिये में इस अवसर पर कहते हैं :

ख़ातूने[14] क़यामत[15] की सदा[16] इतने में आई + है ! है !! मेरे पोते ने सेनां[17] सीने पँ खाई
अट्ठारह बरसवाले ने जान अपनी गँवाई + अब लाश पँ नर्ग़ा[18] है मुहम्मद की दुहाई

फल तेगों[19] के बिजली की तरह कौंद[20] रहे हैं
रहवारों[21] से लाशे को उदू[22] रौंद रहे हैं

लाशे प चले ख़ाक[23]-ब-सर सैयदे[24]-आलम + 'अकबर' की जुदाई का पड़ा ख़ीमे में मातम
'फ़रियाद[25] मुहम्मद की ?' सदा[26] आती थी हरदम + जुबां[27] थी ज़मीं काँपता था अर्श[28]
मुअज्ज़म[29]

संदानियों में होता था जब शोर बुका[30] का
हिलता था कलस ख़ीमए[31]-शाहे-शोहदा का

एक और मर्सिये में हज़रत 'इमाम हुसेन' इस प्रकार बैन करते हैं :

१. वारी जाऊँ, २. लम्बी अलकोंवाले, ३. निछावर, ४. अँगरखा, ५. घायल, ६. अभिलाषा, ७. मौर, जो फूलों का बना होता है, ८. डूबा हुआ, लथपथ; ९. आँसुओं, १०. माशूक, प्रेमी; ११. अर्थी, १२. वृद्धावस्था, १३. दुख, शोक; १४. महिला, १५. प्रलयकाल, १६. आवाज़, १७. भाला, १८. घमासान युद्ध, १९. कटारों, २०. चमक-दमक; २१. घोड़ों, २२. शत्रु, २३. सिर पर धूल छिड़कते हुए, २४. दुनिया के सरदार, २५. दुहाई, २६. आवाज, २७. प्रकम्पि, २८. खुदा की कुर्सी, २९. महान्, ३०. रो-रोकर शोक मनाना, ३१. शहीदों के राजा का ख़ीमा।

है है मेरे शफ़ीक़[1] पेसर,[2] मेहरवां[3] पेसर + ख़ुशरू[4] पेसर, सईद[5] पेसर, क़द्रदां[6] पेसर
मादर[7] का चैन बाप का आरामे - जा पेसर + कमगो[8] पेसर, शहीद[9] पेसर, नौजवां पेसर

मक़तल[10] किधर है कोई बताता नहीं मुझे
ऐ नूरे[11]-ऐन[12] कुछ नज़र आता नहीं मुझे

मुझको ग़रीबे[13]-दश्ते-बला कहके फिर पुकार + एक बार या शहे दोसरा[14] कहके फिर पुकार
ऐ शेर सैयदुश्शोहदा[15] कहके फिर पुकार + सदक़े[16] हो बाप 'या अवता'[17] कहके फिर पुकार

मेरी भी जान तन से तेरे साथ जायगी
मर जाऊँगा यहीं जो न आवाज़ आएगी

कुछ होश दस्त[18] वो पा[19] का नहीं बेहवास हूँ + ज़ख़्मी[20] है क़ल्ब[21] कुश्तए[22]-अन्दोह[23] वो[24] यास हो
ग़मगीं[25] हूँ मुर्दादिल हूँ हज़ीं[26] हूँ उदास हूँ + दमतोड़ो तुम तो है ग़ज़ब और मैं न पास हूँ

क्योंकर क़रार[27] आए दिले-ना-सबूर[28] को
लाऊँ कहाँ से ढूँढ़के आँखों के नूर को

ये थोड़े-से उदाहरण विना किसी विशेषता के प्रस्तुत किये गये हैं। चाहिए तो यह था कि शोक-सन्ताप के अवसरों का वर्णन बहुत विस्तार के साथ न किया जाय। मर्सिया कहनेवाले पाश्चात्य कवियों से न सही, 'फ़िरदौसी' से भी लाभान्वित होते तो शायद अधिक सफलता प्राप्त करते। 'फ़िरदौसी' ने भी एक अवसर पर विस्तार से काम लिया। सुहराव की मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी माता की जो दशा हुई, उसको इस तरह व्यक्त करता है:

ख़रोशीद वो जोशीद वो जामा दरीद + ब-ज़ारी बरां कोदके ना रसीद
बर आवर्द बांग वो ग़रेव वो ख़रोश + ज़मां ता ज़मां ज़ू हमी रफ़्त होश
फ़रो बुर्द नाख़ून दो दीदा बिकन्द + बर आवर्द वो बाला बर आतिश फ़ेगन्द
मर आं ज़ुल्फ़े-चूं-ताब दाद: कमन्द + ब-अंगुश्त पेचीद वो अज़ बुन बे कन्द
बसर बर फ़ेगन्द आतिश वो बर फ़रोख़्त + हम: मूए -मुश्कीं ब आतिश बुसोख़्त
हमी गुफ़्त कं जाने-मादर कनूं + कुजाई सरिश्ता ब ख़ाक वो ब ख़ूं
दो चश्मम ब रह बूद गुफ़्तम मगर + ज़े सुहराब वो रुस्तम ब याबम ख़बर
चे दानिस्तम ऐ पूर कायद ख़बर + कि रुस्तम ब ख़ंजर दरीदत जिगर
दरेग़श न आमद अज़ां रूए-तू + अज़ां बुर्ज़ वो बाला वो बाज़ूए-तू
बपरवर्दा बूदम तनश रा ब नाज़ + ब रख़्शन्दा रोज़ वो शबाने दराज़

---

१. प्रिय, २. पुत्र, ३. कृपालु, ४.सुन्दर, ५. भाग्यवान्, ६. मान-प्रतिष्ठा का हाल जाननेवाला, ७. माता, माँ; ८. मितभाषी, ९. अच्छे काम के लिए जान देनेवाला, १० वध-स्थल, ११. ज्योति, प्रकाश; १२. आँख, १३. आपदग्रस्त मरुस्थल के यात्री, १४. दोनों दुनिया, १५. शहीदों के नायक, १६. निछावर हो, १७. (बच्चे की तुतली बोली) ऐ पिता, १८. हाथ, १९. पैर, २०. घायल, २१. हृदय, २२. मारा हुआ, २३. शोक, २४, निराशा, २५. दुःखी, शोकपूर्ण; २६. दुःखी, २७. ठहराव, धैर्य; २८. अधीर।

कनूं आं ब ख़ूं अन्दरूं ग़र्क़ा गश्त + कफ़न बर तने-पाके-ऊ ख़िर्क़ा गश्त
कनूं मन केरा गीरम अन्दर किनार + के ख़्वाहद बुदन मर मरा ग़मगुसार
पेदर जुस्ती ऐ गुर्दे-लश्कर-पनाह + ब जाए-पेदर गोरत आमद ब राह
हमी गुफ़्त वो मी ख़स्त वो मीकन्द मूय + हमी ज़द कफ़े-दस्त बर ख़ून रूय*

जाननेवाले जानते हैं कि जो काव्योचित सौन्दर्य 'फ़िरदौसी' के वर्णन में है वह 'अनीस' के बयान में नहीं। यहाँ न 'ख़ातूने-क़यामत' की आवाज़ आती है और न कोई कहता है : "मक़तल किधर है कोई बताता नहीं मुझे" या "सदक़े हो बाप 'या अबता' कहके फिर पुकार"। और 'फ़िरदौसी' के इस शेर में जो असर है :

हमी गुफ़्त के जाने मादर कनूं + कुजाई सरिश्ता ब ख़ाक वो ब ख़ूं

वह 'अनीस' के पूरे बन्द में नहीं, जिसका पहला मिसरा है : 'है है मेरे शफ़ीक़ पेसर मेहरबां पेसर"

---

* पृष्ठ २५९-२६० पर लिखित 'फ़िरदौसी' की फारसी पंक्तियों का अनुवाद :

१. उस कच्ची उम्रवाले बालक (की मृत्यु) पर वह रोती-कलपती चिल्लाई, बिफरी और कपड़े फाड़ डाले।

२. वह बहुत रोई, चिल्लाई और चीख़-पुकार की; क्षण-क्षण पर बेहोश हो जाया करती थी।

३. अपने नखों से दोनों आँखों को नोंचती और उठ-उठकर आग में कूद-कूद पड़ती थी।

४. अपनी अलकों को, जो गुँथकर कमन्द की तरह बनी हुई थीं, अपनी उँगलियों में लपेट कर जड़ से उखाड़ देती।

५. अपने सिर पर आग डालकर भस्म कर लिया; अपने सारे कस्तूरी-जैसे बालों को आग से जला दिया।

६. यही कहा करती कि ऐ माता के प्राणधन, तुम इस समय मिट्टी, ख़ून में लिपटे हुए कहाँ हो ?

७. मेरी दोनों आँखें तुम्हारे रास्ते पर लगी रहीं; यही कहा करती कि शायद रुस्तम एवं सोहराब की ख़बर मिले।

८. हे पुत्र, मैं क्या जानती थी कि यह ख़बर मिलेगी कि रुस्तम ने कटार से तेरा कलेजा फाड़ दिया।

९. उसे तेरे चेहरे, तेरे वक्षःस्थल, तेरी विशाल भुजाओं तथा तेरे डील-डौल को देखकर अफ़सोस न हुआ ?

१०. प्रकाशमान दिनों तथा लम्बी रातों को मैंने तेरे शरीर को बड़े प्यार से पाला था।

मैंने कहा है कि मर्सिये में रुदन-क्रन्दन भी है और युद्ध-वर्णन भी। 'अनीस' वो 'दबीर' युद्ध-वर्णन का बडा प्रवन्ध करते हैं और अपनी सारी सृजन-शक्ति इसमें लगा देते हैं। जैसे, 'अनीस' युद्ध की हलचल का चित्र इस प्रकार खींचते हैं :

नक्कारए[1]-वग़ा[2] प लगी चोब[3] यकबयक + उट्ठा गरेबे[4]-कोस[5] कि हिलने लगा फ़लक[6]
शहपूर[7] की सदा[8] से हिरासाँ[9] हुए मलक[10] + क़िरना[11] फूँकी कि गूँज उठा दश्त[12] दूर तक
शोरे दोहल[13] से हश्र[14] था अफ़लाक[15] के तले
मुर्दे भी डरके चौंक पड़े ख़ाक के तले
घोड़ों से गूँजता था वः सब वादिए[16] नबर्द[17] + गर्दूं[18] में मिस्ले[19] शीशए-साअत[20] भरी थी गर्द
था चर्ख़े[21] चारमीं[22] प रुख़े[23] आफ़ताब[24] ज़र्द[25] + डर था गिरे ज़मीं प न मीनाए[26]-लाजवर्द[27]
गर्मी हुजूमे[28]-फ़ौज से दह-चन्द[29] हो गई
ख़ाक इस क़दर उड़ी कि हवा बन्द हो गई
काँपे तबक़[30] ज़मीं के हिला चर्ख़े-लाजवर्द + मानिन्दे-कहरुबा[31] हुआ मिट्टी का रंग ज़र्द
उठकर ज़मीं से बैठ गई ज़ल्ज़ला[32] में गर्द + तेग़ों की आँच देखके भागी हवाए-सर्द
गर्मी से रन के होश उड़े वहूश[33] वो तैर[34] के
शेर उस तरफ़ उतर गए दरिया को पैर के
अल्लाह रे ज़ल्ज़ला कि लरज़ते थे[35] दश्त[36] वो दर + जंगल में छिपते फिरते थे डर-डर के जानवर
जिन्नात[37] काँप-काँप के कहते थे अल्हज़र[38] + दुनिया में ख़ाक उड़ती है अब जायें हम किधर
अन्धेर है उठी बरकत[39] अब जहान से
लो मिल गया ज़मीं का तबक़ आसमान से

---

११. इस समय वह (शरीर) खून से शराबोर हो गया है; कफ़न तेरे शरीर पर गुदड़ी बन गया है।

१२. अब मैं किसको गोद में बिठाऊँ; मेरे दुःख में कौन सहानुभूति दिखावेगा ?

१३. ऐ (एक पूरी) सेना की रक्षा करनेवाले पहलवान, पिता के स्थान पर क़ब्र तेरे सामने आ गई।

१४. यही कह-कहकर वह विक्षिप्त हो जाया करती, (सिर के) बाल नोंचती, और अपने हाथों से अपने मुँह को पीटती थी।

१. नगाड़ा, २. लड़ाई, युद्ध, कोलाहल; ३. लकड़ी, ४. गड़गड़ाहट, गर्जन; ५. घण्टा, ६. आसमान, ७. सिंघा, तुरही; ८. आवाज, ९. भयभीत, १०. फ़रिश्ते, ११. तुरही, १२. मरुस्थल (युद्धक्षेत्र), १३. ढोल, १४. प्रलयकाल, १५. आसमानों, १६. घाटी, १७. युद्ध, लड़ाई; १८. आसमान, १९. समान, २०. घड़ी का शीशा, २१. आसमान, २२. चौथे, २३. मुँह, चेहरा; २४. सूर्य, २५. पीला, २६. शीशा, २७. नीले रंग का एक पत्थर, जिसमें सुनहरी बिन्दियाँ होती हैं (२६ एवं २७. आसमान); २८. भीड़-भाड़, २९. दसगुना, ३०. परत, तह; ३१. एक पत्थर, जो घास को आकर्षित करता है, ३२. भूकम्प, ३३. पशु, ३४. पक्षी, ३५. काँपते थे, ३६. मरुस्थल, ३७. भूत-प्रेत, ३८. सावधान, ३९. बढ़ती, वृद्धि, सौभाग्य;

थर्रा रहा था ख़ौफ़ से मीनाए-लाजवर्द + हिलते थे कोह[1] कांपता था बादिए-नवर्द
था दिन भी ज़र्द, धूप भी ज़र्द और जमीं भी ज़र्द + ख़ुर्शेद[2] छिप गया थः उठी कर्बला की गर्द
एक तीरगी[3] गुबार की थी चश्मे मेह्र में
टापू पड़ हुए थे मुहीते[4] सिपह्र[5] में

यहाँ प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि 'फ़िरदौसी' से लाभ उठाया गया है। 'फ़िरदौसी' ने भी युद्ध की हलचल का चित्र खींचा है :

ज़े लश्कर बरामद सरासर ख़रोश + ज़मीं पुरख़रोश वो हवा पुरख़रोश
जहाँ लर्ज़ां-लर्ज़ां शुद वो दश्त वो कोह + जमीं शुद ज़े नाले सुतरां सितोह
दरफ़्श अज़ दरफ़्श वो गरोह अज़ गरोह + गुसस्ता न शुद शब बरामद ज़े कोह
दरख़शीद ने तेगहाए-बनफ़्श + अज़ा सायए काबियानी दरफ़्श
तुगफ़्ती कि अम्बर शबे तीर-चेह्र + सितारा हमीं बरफ़िशानद सिपह्र
ज़मीं गश्त जुंबा चु अब्र सियाह + तु गुफ़्ती हमीं बर न तावद सिपाह
बिले-कोह गुफ़्ती बिबरंद हमी + ज़मी बा सवारां बिपरंद हमी
चुनां तीरा शुद रुए गेती ज़े गर्द + तु गुफ़्ती कि ख़ुर्शेद शुद लाजवर्द
ज़े जोशे सवारां व आवाज़े कूस + हवा फ़ीरगूं शुद ज़मी आबनूस
तु गुफ़्ती ज़मीं मौज़ ख़्वाहद ज़दन + व ज़ां मौजवर मौज ख़्वाहद ज़दन
ज़े बस गर्द मैदां कि बर शुद व दश्त + ज़मीं शश शुद वो आसमां गश्त हश्त
बो जोशीद दश्त वोबि तोफ़ाद कोह + ज़े जोशे सवाराने हर दो गरोह
तु गुफ़्ती कि रुए - ज़मीं आहनस्त + ज़े नेज़ा हवा नीज़ दर जौशन अस्त*

सादृश्य प्रकट है। 'अनीस' ने 'फ़िरदौसी' का अनुकरण किया है और यह भी स्पष्ट है कि 'फ़िरदौसी' का वर्णन अधिक अच्छा है। उसमें असर भी अधिक है। और, फ़रिश्ते भयभीत नहीं हो जाते और भूत-बैताल कांप-कांप नहीं उठते।

अस्तु, 'अनीस' रण-संग्राम का वर्णन बड़े जोश और सफ़ाई से करते हैं। कहीं कोई चीज़ गोल-मटोल तथा धुंधली नहीं रह जाती। सभी ब्यवरे स्पष्ट होते हैं। हाँ, वे घटना का यथातथ्य निरूपण नहीं करते, बल्कि उसमें अपनी कल्पना द्वारा रंग भरते हैं। उनका यह दावा अनुचित नहीं कि उनकी चित्रकारी से 'मानी' वो 'बहज़ाद' दंग हैं। यह केवल कवि-सुलभ वाग्विलास नहीं कि "खूं बरसता नज़र आए जो दिखाऊँ सफ़े जंग" अथवा "बिजलियाँ तेग़ों की आँखों में चमक जायें अभी।" हज़रत 'अली अकबर' के तलवार मारने का तमाशा 'अनीस' यों दिखाते हैं :

बढ़कर किसी ने वार जो रोका सिपर[6] कटी + चार आईना[7] कटी, ज़िरहे[8]-ख़ीर:[9] सर कटी
नेज़े[10] की हर गिरह सिफ़ते[11] नेशकर[12] कटी + सीना कटा, जिगर हुआ ज़ख़मी कमर कटी

---

१. पहाड़, २. सूर्य, ३. अन्धकार, ४. समुद्र, घेरा; ५. आसमान, ६. ढाल, ७. एक प्रकार का कवच, जिसमें छाती, पीठ और दोनों भुजाओं पर बाँधने के लिए लोहे की पटरियाँ होती हैं; ८. कवच, ९. अहमक़, मूर्ख; १०. भाला, ११. समान गुण के अनुसार, १२. इख, गन्ना।

*इन पंक्तियों का हिन्दी अनुवाद अगले पृष्ठ पर देखें।

रहवार[1] भी दो नीम[2] मियाने[3] मसाफ़[4] था
इन सबके बाद मुँह को जो देखा तो साफ़ था

चमकी गिरी उठी इधर आई उधर गई + ख़ाली किए[5] परे तो सफ़ें[6] ख़ूँ में भर गई
काटे कभी क़दम[7] कभी बालाए[8] सर गई + नद्दी ग़ज़ब[9] की थी कि चढ़ी और उतर गई

एक शोर था य: क्या है जो कह्‌रे[10] समद[11] नहीं
ऐसा तोरोदे[12]-नील में भी जज़्र[13] वोमद[14] नहीं

पृष्ठ ३६२ पर उद्धृत फ़िरदौसी की फ़ारसी पंक्तियों का हिन्दी-अनुवाद :

१. सेना में बहुत शोर मचा; धरती शोर-गुल से भर उठी और वायुमण्डल भी।
२. सारा संसार और संसार के जंगल - पहाड़ काँपने लगे; घोड़ों की टाप से धरती क्लान्त हो उठी।
३. झण्डे से झण्डा और एक दल से दूसरा दल अलग न हुआ था कि पहाड़ की ओर से रात्रि का प्रादुर्भाव हुआ।
४. उस काबा-निर्मित झण्डे की छाया के नीचे बनफ़शई रंग की तलवारों का चमकना;
५. ऐसा जान पड़ता था मानो अँधेरी रात में आसमान से तारे झड़ रहे हैं।
६. धरती काले बादलों की तरह दोलायमान थी; सेना पीछे की ओर नहीं हट रही थी।
७ ऐसा जान पड़ता था कि पहाड़ों का हृदय फटा जा रहा था; धरती सवारों को लेकर उड़ी जा रही थी।
८. अत्यधिक गर्द उड़ने के कारण पृथ्वी का मुखमण्डल काला हो गया था; मानो सूर्य आसमानी (लाजवर्दी) रंग का हो गया है।
९. घुड़सवारों का घमासान और घण्टों के घन-गर्जन के कारण हवा अलकतरे के रंग की और पृथ्वी आबनूस बन गई।
१०. ऐसा जान पड़ता था कि धरती लहर मारेगी; और उस लहर के बल ऊपर उठ जायेगी।
११. युद्धक्षेत्र के अत्यधिक गर्द उड़ने के कारण, ज़मीन छः और आसमान आठ (टुकड़े) हो गया।
१२. दोनों दलों के सवारों के कोलाहल के मारे, धरती उबल रही थी और पहाड़ त्राहि-त्राहि कर रहे थे।
१३. ऐसा जान पड़ता था कि सारा धरातल लौहमय हो गया है; भालों (की अधिकता) की वजह से वायुमण्डल भी कवचधारी बन गया है।

---

१. घोड़ा, २. आधा, ३. बीच, ४. युद्ध, ५. उस ओर, आगे; ६. सिपाहियों की पंक्तियाँ, ७. पैर, ८. ऊपर, ९. विचित्र, १०. प्रकोप, ११. मालिक, भगवान्; १२. नदी, दरिया; १३ एवं १४. ज्वार-भाटा।

सिर ख़ुदसरों[1] के चम्बरे[2]-गर्दूं[3] से उड़ गए + हाथ आस्तीं[4] से उड़ गए सिर तन से उड़ गए
डर-डर के सब परिन्द[5] न शेमन[6] से उड़ गए + पाई जो राह तायरे[7] - जां सन से उड़ गए

थे क़त्लेआम[8] पर 'अली अकबर' तुले हुए
रस्ते थे बन्द ज़ख़्मों के कूचे[9] खुले हुए

'दबीर' भी इस प्रकार के संग्रामों का वर्णन बड़े जोर-शोर, प्रबन्ध वो बनावट से करते हैं। वे 'हजरत अब्बास' के तलवार चलाने का चित्र इस तरह खींचते हैं :

हर बार नई चाल, नया तौर, नया ढंग + असवारों को पैदल किया पैदल किये चौरंग
गह[10]जीं[11]प, गहे बाग़ व और गहब[12] सरे तग + गह तंग लिया गाह लईनों[13] का दिले तंग[14]

बल खाती थी गह अजदरे[15] ख़ूंख़्वार के मानिन्द
आऽदा[16] के गले में थी कभी हार के मानिन्द

गह रास्त[17], गहे चप[18] थी, गहे तेहत[19], गहे फ़ौक़[20] +आऽदा के गले में कभी हैकल[21] थी, कभी तौक़[22]
गह मुर्दों प; गह जिन्दों प जाती थी ब सब शौक़[23] + बिजली की तरह कौंदने का रौंदने का शौक़

दरिया में कभी गाह बियाबान[24] में चमकी
जाकर कभी नेज़ों[25] के नयस्तान[26] में चमकी

मग़फ़र[27] से अगर छू गई गर्दन में दर[28] आई + गर्दन से बढ़ी सीनए-दुश्मन में दर आई
सीने को किया चाक[29] तो जौशन[30] में दर आई + जौशन से जो निकली तो वः तौसन[31] में दर आई

तौसन से जो उतरी तो न फिर रन में कहीं थी
वां थी न जहां गावे[32]-ज़मीं थी न ज़मीं थी

प्रबन्ध एवं बनावट तो 'दबीर' बहुत करते हैं, किन्तु 'अनीस' की अपेक्षा उनमें कृत्रिमता अधिक है। शाब्दिक श्लेष और अर्थालंकार का व्यवहार वे अधिक करते हैं और ये शाब्दिक श्लेष, ये अलंकार स्वयं अपना ही महत्त्व धारण कर लेते हैं। यह बात नहीं है कि 'अनीस' शाब्दिक श्लेषों का प्रयोग नहीं करते ; करते अवश्य हैं, लेकिन मौका देखकर, उपयोगिता का ध्यान रखते हुए करते हैं। यही बात 'दबीर' भूल जाते हैं।

अस्तु, 'अनीस' वो 'दबीर' घटना-वर्णन के साथ-साथ प्राकृतिक दृश्यों का भी चित्रण करते हैं। किन्तु किसी दृश्य का चित्र हूबहू नहीं उतारते, बल्कि उसमें उलट-फेर करके उसकी नई व्यवस्था

१. स्वेच्छाचारी, २ एवं ३. आसमान की परिधि, ४. बाहीं, ५. चिड़िया, ६. घोंसला, ७. प्राण-पखेरू, ८. अन्धाधुन्ध वध, ९. गली, रास्ता; १०. कभी, ११. ज़ीन, १२. सिर पर, ऊपर; १३, घृणित, १४. पापिष्ठों, १५. संकीर्ण हृदय, १६. शत्रु : ७. दाहिना, १८. बायाँ, १९. नीचे, २०. फ़ौक़, २१. हुमेल, २२. गर्दन में पड़ी हुई पट्टी, २ . बहुत लालायित होकर, २४. मरुस्थल, जहाँ पानी न मिले; २५. भालों, २६. बँसवाड़ी, २७. लड़ाई के समय सिर की रक्षा के लिए लोहे का टोप, २८. घुस गई, भीतर चली आई; २९. फाड़ा, ३०. कवच, ३१. घोड़ा, ३२. वह गाय, जिसके सींग पर पृथ्वी टिकी हुई है।

करते हैं। तदुपरान्त कल्पना की रंगीनी की सहायता से उसमें नये-नये रंग भरते हैं। जिन दृश्यों के चित्र मिलते हैं वे संख्या में कम और सीमित ढंग के हैं। यह दोष घटनास्थल का अनिवार्य परिणाम था। विषयवस्तु के चुनाव ने बाध्य किया, वैविध्य की गुंजाइश ही न छोड़ी। लेकिन जिन दृश्यों के चित्र खींचे हैं वे बड़े ही सुन्दर हैं। इस चीज़ में भी 'अनीस' 'दबीर' से बढ़कर हैं। दोनों ही सुखद प्रभाव का चित्र खींचते हैं :

जब सरनिगूं[१] हुआ अलमे[२] - कहकशाने[३] - शब[४]
ख़ुर्शीद[५] के निशाने[६] मिटाया निशाने[७] - शब
तीरे शहाब[८] से हुई ख़ाली कमाने[९] - शब
तानी न फिर शोआय[१०]-क़मर[११] ने सेनाने[१२] - शब
आई जो सुब्ह ज़ेवरे[१३] - ज़ंगी सँवारके
शब ने सिपर[१४] सितारों की रख दी उतारके
शम्शीरे[१५]-मशरक़ी[१६] जो चढ़ी चर्ख़[१७] पर शिताब[१८]
फिर तेग़े[१९] - मग़रबी[२०] ने दिखाई न आब[२१]-ताब
था बस्कि[२२] गर्म ख़ंजरे - बेंज़ाए[२३] - आफ़ताब[२४]
बाक़ी रहा न चश्मए - नीलोफ़री[२५] में आब[२६]
मुहताज माहताब[२७] हुआ आब - वो - ताब का
बाग़े - जहाँ में फूल खिला आफ़ताब का

इन पंक्तियों में शब्दों की शानदारी और रूपकों का गौरव तो है, किन्तु सुब्ह का समां साफ़ दिखाई नहीं देता। कान अवश्य प्रभावित होते हैं, लेकिन आँखें प्रमुदित नहीं होतीं। अलम, निशान, तीर, कमान, सेनान, ज़ेवरे जंगी, सिपर, शमशेर, तेग़, ख़ंजर, आब—प्रत्येक शब्द खोज-ढूँढ़ करके अपनी-अपनी जगह पर बिठाया गया है। शाब्दिक श्लेष प्रत्येक मिसरे में मौजूद है। फिर भी असर नहीं। बात यह है कि 'दबीर' शब्दों और चित्रों की खोज में असल उद्देश्य को भूल जाते हैं। 'अनीस' भी परिश्रम करने में किसी तरह पीछे नहीं रहते हैं, किन्तु वे शब्दों और चित्रों को असल उद्देश्य नहीं बनाते हैं। इसलिए शाब्दिक सौष्ठव के साथ-साथ अर्थ-लालित्य भी उत्पन्न करते हैं।

वह सुब्ह और वः छाँव सितारों की और वः नूर
देखे तो ग़श[२८] करे अरनी[२९]-गोया औज़े[३०]-तूर[३१]

---

१. सर झुकाया, २. झण्डा, ३. छायापथ, ४. रात, ५. सूर्य, ६. झण्डा, ७. चिह्न, ८. उल्का, ९. धनुष, १०. किरण, ११. चाँद, १२. भाला, १३. मटमैला आभूषण, १४. ढाल, १५. तलवार, १६. पूर्व दिशा की, १७. आकाश, १८. जल्दी से, १९. कटार, २०. पश्चिम दिशा की, २१. चमक-दमक, २२. चूँकि, २३. सफ़ेद रंग का, २४. सूर्य, २५. कमलवाले, २६. पानी, चमक; २७. चन्द्रमा, २८. मन के खिलाफ कहना, २९. अपनी छवि दिखला दे मुझे (यह हज़रत मूसा खुदा से कहते थे तो उत्तर मिलता था कि तुम नहीं देख सकते), ३०. ऊँचाई, ३१. एक पहाड़, जिस पर हज़रत मूसा को भगवज्ज्योति का दर्शन हुआ था।

पैदा[1] गुलों से कुद्रते[2] - अल्लाह का ज़हूर[3]
वह जाबजा[4] दरख़्तों प तस्बीह[5] - ख़्वां तयूर[6]
गुल्शन[7] ख़जिल[8] थे वादिए[9] मीनू[10] - असास[11] से
जंगल था सब भरा हुआ फूलूं की बास से
ठंढी हवा में सब्जए[12] - सेहरा[13] की वह लहक
शर्माए जिससे अतलसे[14] - ज़ंगारिए[15] -फ़लक[16]
वह झूमना दरख़्तों का फूलों की वह महक
हर बर्गे - गुल प क़तरए[17] शबनम की वह झलक
हीरे ख़जिल थे गौहरे[18] - यकता[19] निसार[20] थे
पत्ते भी हर शजर[21] के जवाहिर[22] - निगार थे
वह नूर और वः दश्त[23] सुहाना - सा, वह फ़िज़ा[24]
दुर्राज[25] वो कब्क[26] वो तेह्[27] वो ताऊस[28] की सदा[29]
वह जोशे - गुल वः नालए[30] - मुर्गाने - ख़ुशनवा[31]
सर्दी जिगर को बख़्शती[32] थी सुब्ह की हवा
फूलों से सब्ज़ - सब्ज़ शजर सुर्ख़ - पोश[33] थे
थाले भी नख़्ल[34] के सबदे[35] - गुल्फ़रोश[36] थे

'अनीस' व 'दबीर' की शैली में भी स्पष्ट अन्तर है। 'दबीर' की भाषा में ठाटबाट अधिक है। वह शब्दों और रूपकों की खोज में तल्लीन हो जाते हैं। शब्द-संगठन और रचना में अपनी आविष्कारिक शक्ति से काम लिया करते हैं, लेकिन अधिकतर यह होता है कि शान-शौकत के पीछे वह असर और स्वाभाविक वर्णन-शैली से हाथ खींच लेते हैं। उनकी भाषा में विविधता भी नहीं। सभी स्थानों पर बस एक ही रंग है। अवसर बदलते रहते हैं, लेकिन अवसरों के परिवर्तन के साथ भाषा नहीं बदलती और कभी वह जान-बूझकर बदलना चाहते हैं तो उसमें सफल नहीं होते, विशेषतः उस समय जबकि वे कोमल, नर्म ध्वनि ग्रहण करते हैं तो स्वर भद्दा और अप्रिय हो जाता है। प्रौढ़ता और ओज, विशेषतः ओज, प्रचुर मात्रा में है, किन्तु कुछ अस्वाभाविक ढंग का। रोजमर्रे का व्यवहार भी कम है। वह कहीं पर यह नहीं करते कि

१. फूलों, २. शक्ति, ३. प्रदर्शन, ४ जगह-जगह पर, ५. माला फेरते भगवन्नाम का उच्चारण करते हुए, ६. पक्षी, ७. उद्यान, ८. लज्जित, ९. घाटी, १० एवं ११. स्वर्ग के ऐसा, १२. हरा-भरा मैदान, १३. जंगल, १४. रेशमी कपड़ा, १५. जंग के रंग का, १६. आसमान, १७. ओस - कण, १८. मोती, १९. अद्वितीय, २०. निछावर, २१. वृक्ष, २२. मणि-मुक्ता - जटित; २३. मरुस्थल, २४. वातावरण, २५, २६, २७, २८ पक्षी-विशेष, २९. आवाज, ३०. चिड़ियों का चीत्कार, ३१. सुरीले, ३२. प्रदान करती, ३३. लाल कपड़ा पहने, ३४. पेड़, वृक्ष; ३५. डाली, ३६. माली।

वार्त्तालाप की सही नकल उतार दें। उनके प्रतिकूल 'अनीस' रोजमर्रे का प्रयोग बड़ी सुन्दरता से करते हैं। शब्द और शब्द-योजना भी प्रायः वही होती है, जो साधारण बोलचाल में होती है। 'अनीस' की भाषा परिष्कृत और हृदयग्राही है। इसका प्रवाह, इसकी सरलता और अर्थगर्भता दिन के प्रकाश के समान प्रत्यक्ष है। भाषा में प्रवाह, चमक और काट तलवार की-सी है। असर में तीर एवं नश्तर से कम नहीं। उसमें विविधता भी बहुत है। कभी कठिन-कठोर हो जाती है तो कहीं पर नर्म सुकोमल। कभी रुदन-क्रन्दन है तो कभी जोश से भरा हुआ हुंकार। उच्चारण और स्वराघात की विशेषता, आवाज का चढ़ाव-उतार, समुद्र का-सा ज्वार और शान्ति—सभी कुछ मौजूद है। इसमें माधुर्य भी है और संगीत भी। और फिर प्रफुल्लता तथा सुसिक्तता भी।

सन्दर्भ-संकेत

१. और यह हज़रत 'इमाम हुसेन' के शहीद होने का बयान है :

चलते थे चार सिम्त[१] से भाले 'हुसेन' पर
टूटे हुए थे बर्छियोंवाले 'हुसेन', पर
यह दुख नबी की गोद के पाले 'हुसेन' पर
क़ातिल[२] थे ख़ंजरों को निकाले 'हुसेन' पर
तीरे - सितम[३] निकालनेवाला कोई न था
गिरते थे और सँभालनेवाला कोई न था
लाखों में एक बेकस[४] वो दिल्गीर[५] हाय-हाय
फ़रज़न्दे[६] फ़ात्मा की यः तौक़ीर[७] हाय - हाय
भाले वः और पहलुए - 'शब्बीर'[८] हाय - हाय
वह ज़हर में बुझाए हुए तीर हाय - हाय
गुस्से में थे जो फ़ौज के सरकश[९] भरे हुए
खाली किये 'हुसेन' प तरकश भरे हुए
वह गिर्द थे जो भागते फिरते थे वक़्ते - जंग[१०]
एक संग[११] दिल ने पास से मारा जबीं[१२] प संग[१३]
सदमे से ज़र्द हो गया सब्ते[१४] - नबी का रंग
माथे प हाथ था कि गले पर लगा ख़दंग[१५]
थामा गला जनाब ने माथे को छोड़के
निकला वह तीर हल्क़े - मुबारक को तोड़ के
गिरते हैं अब 'हुसेन' फ़रस[१७] पर से है ग़ज़ब
निकली रिकाब पाये - मुतह्हर[१८] से है ग़ज़ब
पहलू शिगाफ़्ता[१९] हुआ ख़ंजर से है ग़ज़ब
ग़श[२०] में झुके इमामः[२१] गिरा सिर से है ग़ज़ब
कुरआन रेह्ले-ज़ीं[२२] से सरे[२३]-फ़र्श गिर पड़ा
दीवारे - काबा बैठ गई अर्श[२४] गिर पड़ा

---

१. अत्याचार, २. वधिक, ३. ज़ालिम का तीर, ४. निस्सहाय, ५. दुखी, ६. पुत्र, ७. मान, प्रतिष्ठा; ८. हुसेन, ९. धृष्ट, उद्दण्ड; १०. लड़ाई के समय, ११. पाषाण-हृदय, १२. माथा; १३. पत्थर, १४. नाती, पोता; १५. तीर, १६. गला, १७. घोड़ा, १८. पवित्र, १९. फटा हुआ, २०. बेहोशी, २१. पगड़ी, २२. किताब रखकर पढ़ने के लिए बनी हुई लकड़ी, २३. ज़मीन पर, २४. ख़ुदा की कुर्सी ।

जंगल से आई 'फ़ातमा ज़हरा' को यह सदा[1]
उम्मत[2] ने मुझको लूट लिया वा मुहम्मदा
इस वक्त कौन हक़्के[3] - मुहब्बत करे अदा
है - है यह जुल्म और दो आलम[4] का मुक़्तदा[5]
उन्नीस सौ हैं ज़ख़्म तने[6] चाक[7] चाक पर
ज़ैनब निकल 'हुसेन' तड़पता है ख़ाक पर
पर्दा उलट के बिन्ते[8] 'अली' निकली नगेसर
लर्ज़ां[9] क़दम, ख़मीदः[10] कमर, ग़र्क़े[11]-ख़ूँ जिगर
चारों तरफ़ पुकारती थी सर को पीटकर
ऐ कर्बला बता तेरा मेहमान है किधर
अम्माँ क़दम अब उठते नहीं तिश्ना[12]-काम के
पहुँचा दो लाश पर मेरे बाज़ू को थाम के
बिन्ते-अली तो पीटती फिरती थी नंगे सर
कटता था नूर चश्मे[13] अली का गला उधर
'ज़ैनब' को मना करते थे हरचन्द[14] अह्ले[15]-शर
लेकिन वह दौड़ी जाती थी भाई की लाश पर
पहुँची जो क़त्ल[16] - गाह में इस रोक - टोक पर
देखा सरे - हुसेन को नेज़े[17] की नोक पर
नेज़े[18] के नीचे जाके पुकारी वः सोगवार
सैयद, तेरी लहू भरी सूरत के मैं निसार[19]
है-है गले प चल गयी भैया छुरी की धार
भूले बहन को ऐ असदे[20] - हक़ के यादगार[21]
सदक़े[22] गई लुटा गये घर वादा[23] - गाह में
जुम्बिश[24] लबों को है अभी ज़िक्रे एलाह में
भैया सलाम करती है ख़्वाहर[25] जवाब दो
चिल्ला रही है दुख़्तरे[26] हैदर - जवाब दो
सूखी ज़बां से बहरे[27] पयम्बर जवाब दो
क्योंकर जियेगी ज़ैनबे - मुज़्तर[28] जवाब दो

---

१. आवाज, २. किसी पैगम्बर के अनुयायी, सम्प्रदाय; ३. प्रेम का धर्म, ४. संसार, ५. सरदार, ६. शरीर, ७. फटा - फटा हुआ, विदीर्ण; ८. बेटी, ९. काँपती हुई, १०. झुकी कमर, ११. ख़ून में डूबा हुआ, १२. प्यासा मुँह, १३. नयन - ज्योति, पुत्र; १४. यद्यपि, १५. दुष्टता करनेवाले, १६. वधस्थल, १७. नेज़ा, १८. भाला, १९. निछावर हुआ, २०. खुदा का शेर, अली की उपाधि; २१. स्मृति, स्मारक; २२. मैं वारी, २३. नियुक्त स्थान, २४. हिलना, २५. बहन, २६. बेटी, २७. वास्ते, २८. अधीर।

जुज़[१]-मर्ग दर्दे-हिज्र[२] का चारा नहीं कोई
मेरा तो अब जहाँ में सहारा नहीं कोई
भैया मैं अब कहाँ से तुम्हें लाऊँ क्या करूँ
क्या कहके अपने दिल को मैं समझाऊँ क्या करूँ
किसकी दुहाई दूँ किसे चिल्लाऊँ क्या करूँ
बस्ती पराई है मैं किधर जाऊँ क्या करूँ
दुनिया तमाम उजड़ गई वीरानः[३] हो गया
बैठूँ कहाँ कि घर तो एज़ा[४]-ख़ाना हो गया
है-है तुम्हारे आगे न ख़्वाहर गुजर[५] गई
भैया बताओ क्या तहे[६] ख़ंजर गुज़र[७] गई
आई सदा[८] न पूछो जो हम पर गुज़र गई
सद[९]-शुक्र जो गुज़र गई बेहतर गुज़र गई
सर कट गया हमें तो अलम[१०] से फ़राग़[११] है
गर है तो बस तुम्हारी जुदाई का दाग़[१२] है
घर लूटने को आयगी अब फ़ौजे नाबकार[१३]
कहियो न कुछ ज़बाँ से बजुज़[१४] शुक्रे किर्दगार[१५]
ख़ीमे में जबकि आग लगावें सितम[१६]-शआर
रहियो मेरी यतीम[१७] 'सकीना' से होशियार
बेज़ार[१८] है वः ख़स्तः[१९] जिगर अपनी जान से
बाँधे न कोई उसका गला रेसमान से

[अनीस]

यह दबीर हैं :

गिरते ही ख़ाक पर शहे[२०]-दीं को ग़श आ गया
फिर भी न कोई प्यासे को पानी पिला गया
ख़ंजर लगा गया कोई नेज़ा लगा गया
खोली जो आँख शह ने जिगर थरथरा गया
सर काटने को पाँव किसी का न बढ़ सका
जुज़ रंगे-ज़र्द और कोई मुँह न चढ़ सका

१. मृत्यु के सिवा, २. विरह-वेदना, ३. निर्जन स्थान, ४. शोकागार, ५. चली गईं; ६. नीचे, ७. घटित हुई, ८. आवाज, ९. बहुत-बहुत धन्यवाद, १०. दुःख, शोक; ११. छुटकारा, १२. धब्बा, दुःख; १३. दुष्ट, पाजी; १४. सिवा, १५. स्रष्टा, १६. जालिम; १७. टुअर, वह बच्चा जिसके बाप-माँ मर गये हों, १८. दुःखी, ऊबा हुआ. १९. जिसका कलेजा फट गया हो, २०. धर्म के बादशाह।

पर आह - आह 'शिम्र' ने बढ़कर गज़ब किया
सीने प मोज़ा हल्क़ प ख़ंजर को रख दिया
चिल्लाते आए क़ब्र से महबूबे[1] - किब्रिया
बाँहें गले में डाल दीं ख़ंजर पकड़ लिया
'ज़ोहरः' पुकारी यह दिले - हैदर का चैन है
मेरा हुसेन है, अरे, मेरा हुसेन है
ऐ 'शिम्र' ! 'मुस्तफ़ा'[2] की रिसालत[3] का वास्ता[4]
ऐ शिम्र[5] ! मुर्तज़ा[6] की इमामत[7] का वास्ता
ऐ 'शिम्र ! अह्ले[8] - बैत की हुर्मत[9] का वास्ता
ऐ शिम्र ! किब्रिया[10] की अदालत[11] का वास्ता
सद्का[12] नबी की रूह[13] का हैदर[14] की गोर[15] का
तू गुल न कर चिराग़ पयम्बर की गोर का
रौशन इसी नवासे[16] से नाना का नाम है
यह सरपरस्ते[17] - इज़्ज़ते खैरुलए[18] नाम है
ख़ंजर न फेर प्यास से यह ख़ुद तमाम है
आख़िर ख़ुदा है हश्र[19] है और इन्तकाम[20] है
लिल्लाह[21] ख़ानदां को न मेरे तबाह कर
तू इसके नन्हें बच्चों के ऊपर निगाह कर

और यह 'जोश' हैं :

तड़पे जो कई बार ज़मीं पर शहे[22] वाला
समझे यः मलायक[23] कि क़यामत[24] हुई बरपा[25]
ख़ेमे जो बड़ी यास[26] से मासूम[27] ने देखा
इतने में किसी सिम्त[28] से एक तीर वह आया
पामाले[29] - सफ़े[30] लश्करे-ग़म हो गये मौला[31]
दिल में वह उठा दर्द कि ख़म[32] हो गए मौला
रुक-रुक के जो तलवार चली ख़ुश्क गले पर
'ज़हरा'[33] की सदा[34] आई कि अहिस्तः सितम कर
'हैदर'[35] ने बड़े प्यार से ज़ानू[37] प लिया सर
गर्दू[38] की तरफ़ देखके बोले यह पयम्बर

---

१. भगवान् के मित्र, २. इस्लाम धर्म के प्रवर्त्तक का नाम, ३. पैग़म्बरी, ४. दुहाई, ५. हुसेन के शत्रु की सेना का एक सरदार, जिसने उन्हें मारा; ६. अली की उपाधि, ७. सरदारी, ८. हुसेन का परिवार, ९. इज़्ज़त, १०. ईश्वर, ११. न्याय, १२. ख़ैरात, प्रसाद; १३. आत्मा, १४. शेर अली की उपाधि, १५. क़ब्र, १६. नाती, १७. सहायक, संरक्षक; १८. सर्वोत्तम मानव, १९ अन्त, प्रलय, कयामत; २० बदला, २१. ख़ुदा के वास्ते, २२. बड़े बादशाह, २३. फ़रिश्ते, २४. प्रलय, २५. खड़ी, २६. निराशा; २७. निर्दोष, २८. ओर, २९. पददलित, ३० पंक्ति, ३१. मालिक, ३२. टेढ़ा, ३३, मुहम्मद साहब की बेटी फ़तिमा की उपाधि, ३४. आवाज़, ३५. ज़ुल्म, अत्याचार; ३६. अली की उपाधि, ३७. घुटना, ३८. आसमान ।

शिकवा नहीं निकला मेरे प्यासे के लबों[1] से
निकला है मेरी रूह नवासे के लबों से
नाशाद[2] ! तेरी बेकसी[3] वो यास के कुर्बां
नाज़ुक यः तेरा जिस्म यः तपता हुआ मैदां
टुकड़े यः बदन के यः रदा[4] ख़ून से ग़ल्तां[5]
ज़र्रों[6] प हैं कुरआन के औराक़[7] परीशां[8]
बेकस ! तेरे 'अकबर' की जवानी के तसद्दुक़[9]
मज़लूम ! तेरी तिश्ना-देहानी[10] के तसद्दुक़
तू, और सरे-ख़ाक, मेरे गेसुओंवाले[11]
यः दिल, यः बलाएँ, यह ज़बां और यह छाले
इस प्यास में गर्दन प छुरी जिस्म प भाले
अफ़सोस है ऐ 'फ़ातिमा' के नाज़[12] के पाले
इबरत[13] का वः मन्ज़र[14] है कि खुद जुल्म ख़िजिल[15] है
यह लाश नहीं ख़ाक प इस्लाम का दिल है

कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

२. और यह 'तेग़ज़नी' भी मर्सिया का एक अंग बन गई। तीन उदाहरणों पर ध्यान दिया जाय। इनमें से कोई भी 'अनीस' की शाब्दिक 'तेग़ज़नी' की बराबरी नहीं करता।

खा जाती थी फ़ौलाद[16] को वह तेग़-बला नोश[17]
रूपोश[18] हुए जाते थे डर-डर के ज़िरह-पोश[19]
सर-तेज़[20] वो शरर[21]-रेज़ वो गिरां[22]-क़द्र वो सुबकदोश[23]
चलती थी ज़बां जंग में यों देखो तो खामोश[24]
अन्दाज़[25] नया रंग नया, घात नया था
जो वार था आऽदा[26] के लिए बर्क़[27] क़ज़ा[28] था
एक वार में हाथ उड़ गए जिसकी सिपर[29] उठी
फल बीच से दो था कोई तलवार गर उठी
मुँह खोले हुए आती थी फिर ख़ूँ में तर उठी
किस क़ह्र[30] की बिजली थी गिरी यां उधर उठी

१. ओठों, २. दुःखी, ३. निस्सहायावस्था, ४. चादर, ५. लथपथ, ६. बालू के कण, ७. वरक, पन्ने; ८. बिखरे हुए, ९. दान, भक्ति, कुर्बानी; १०. प्यासा होना, ११. अलकोंवाले, १२. प्यार, दुलार; १३. शिक्षा, १४. दृश्य, १५. लज्जित, १६. इस्पात, लोहा; १७. बहुत खानेवाला, १८. मुँह छिपाये, १९. कवचधारी, २०. तेज़, पैनी; २१. चिनगारी बरसानेवाला, २२. भारी मूल्यवाला, सम्मानित; २३. हल्का, फुर्तीला; २४. चुप, २५. ढंग, २६. शत्रु, २७. बिजली, २८. मृत्यु, २९. सिपर, ३०. कोप।

जल-जल के सफ़[1] - फ़ौज सरकती नज़र आई
बन फुँकने लगा आग भड़कती नज़र आई

[नफ़ीस]

(ii) इस कर्र-वो[2]-फ़र से फ़ौज प तेग़े-जरी[3] चली
हर सर प खेलती हुई गोया परी चली
ख़ुश्की प गह[4] चली गहे सूए[5] तरी चली
खाली किया सफ़ों को लहू में भरी चली

ज़ाहिर थी बाँकपन से कभी रंग लाल था
तलवार थी कि ख़ूने-शिफ़क़[6] में हलाल[7] था

ज़ेरे - सिपर उड़ाके कलाई निकल गई
धार - आइने[8] में बर्क़-सी आई निकल गई
फ़ौलाद को दिखाके सफ़ाई निकल गई
दिल में लगी जिगर में समाई निकल गई

जोशन[9] में भी थमा न गया उस हिसाम[10] से
यों निकली जैसे माहिए[11]-बे-आब[12] दाम[13] से

[मूनिस]

(iii) गह सद्र[14] प गह शानों प गह फ़र्क़[15] लईं[16] पर
गह रुख़ प गहे कोह प और गाह ज़मीं पर
असवार प थी गाह गहे घोड़े की ज़ीं[17] पर
थमती थी किसी जा प न रुकती थी कहीं पर

गह बर्क़ थी गह शोलः[18] थी और गाह हवा थी
बन्द आँख हुई जाती थी हर बार क़ज़ा थी

थर्रा रही थी बर्क़ चमक देखके उसकी
और काँपता था शोलः[19] चमक देखके उसकी
आईना था हैरान फ़लक[20] देखके उसकी
शर्माती थी हर शाख़[21] लचक देखके उसकी

---

१. धारी, पंक्ति; २. ठाट-बाट, ३. वीर, साहसी; ४. कभी, ५. ओर, ६. उषा, ऊषा; ७. द्वितीया का चाँद, ८. एक प्रकार का कवच, ९. कवच, १०. तलवार, ११. मछली, १२. पानी से वंचित, १३. जाल, १४. सीना, १५. कन्धा, १६. ललाट, १७. ज़ीन, १८. आग, १९. आग की लौ, २०. आसमान, २१. डाली, टहनी।

मारा न उसे शिर्क[१] में आलूदा[२] न जो था
वो ख़ालिके[३] अकबर[४] को जो समझा वही दो था।

[दिलगीर]

(३) यह सुबह का समां था और फिर यह दशा होती है :

वह लू वः आफ़ताब की हिद्दत[५] वः ताब[६] वो तब
काला था रंग धूप से दिन का मिसाले[७]-शब
ख़ुद नहरे 'अल्केमा' के भी सूखे हुए थे लब
ख़ीमे जो थे होबाबों[८] के तपते थे सब के सब
उड़ती थी खाक ख़ुश्क का चश्मा[९] हयात[१०] का
खौला हुआ था धूप से पानी 'फ़रात' का
कोसों किसी शजर[११] में न गुल[१२] थे न बर्ग[१३] वो बार[१४]
एक-एक नख़्ल[१५] जल रहा था सूरते[१६]-चनार[१७]
हँसता था कोई गुल न लहकता था सब्ज़ा[१८] ज़ार
काँटा हुई थी सूखके हर शाखे[१९] बार[२०] दार
गर्मी यः थी कि ज़ीस्त[२१] से दिल सबके सर्द थे
पत्ते भी मिस्ले[२२] - चेहरए - मदक़ूक़[२३] ज़र्द थे
आबे[२४] - रवाँ से मुँह न उठाते थे जानवर
जंगल में छिपते फिरते थे तायर[२५] इधर - उधर
मर्दुम[२६] थे सात पर्दों के अन्दर अरक़[२७] से तर
ख़स[२८] - ख़ानए-मिज़ा[२९] से निकलती न थी नज़र
गर चश्म[३०] से निकलके ठहर जाय राह में
पड़ जायें लाख आबले[३१] पाए[३२] - निगाह में

जरा इन मिसरों पर ध्यान दीजिए—'काला था रंग धूप से दिन का मिसाले-शब', 'गर्मी यः थी कि ज़ीस्त से दिल सबके सर्द थे', 'पड़ जायें लाख आबले पाए-निगाह में'। यदि आप इन मिसरों पर ध्यान दें तो आपको 'अनीस' की कविता से असन्तोष-सा महसूस होगा। धूप से दिन का रंग काला नहीं होता, 'गर्मी' और 'सर्दी' में शाब्दिक श्लेष के सिवा और कुछ

---

१. नास्तिकता; २. लिप्त, ३. सृजनहार, ४. महान्, ५. गर्मी, .. ताब, गर्मी; ७. रात के समान; ८. बलबुले, ९. झरना, १०. जीवन, ११. वृक्ष, १२ फल, १३. पत्ता, १४. फल, १५. फलदार वृक्ष, खजूर का पेड़, १६. की तरह, समान; १७. एक वृक्ष-विशेष, जिसके फूल लाल-लाल होते हैं, १८. घास से हरे-भरे मैदान, १९. डाली, टहनी; २०. फलों से लदी हुई, २१. जिन्दगी, २२ समान, २३. यक्ष्माग्रस्त रोगी, २४. बहता पानी, २५. पक्षी, २६. मनुष्य, २७ पसीना, २८. ख़स की टट्टियाँ लगा हुआ कमरा, २९. बरौनी, ३०. आँख, ३१. छाले, ३२ पैर।

नहीं। और 'पाए-निगाह' (दृष्टि के पाँव) में छाले नहीं पड़ सकते। बात यह है कि इन मिसरों में प्रवाह इतना अधिक है कि हम ठहर नहीं पाते, इनपर मनन नहीं कर सकते, इन्हें आलोचना के निशाने पर नहीं लाते। यदि हम इन मिसरों पर ठहरें, यह सोचें कि क्या कहा जा रहा है, और जो बात कही जा रही है उसमें कितना तथ्य है, तो जैसा मैंने कहा है, हमें कुछ बेइत्मिनानी-सी महसूस होगी और हम देखेंगे कि यहाँ खाली-खूली- सी बातें हैं, वास्तविकता से दूर, निरी अत्युक्ति, जिसमें कलाकारी नहीं; 'तेज़' वो रवाँ, चुस्त-ज़ोरदार मिसरे अवश्य हैं,जिन पर कवि-गोष्ठी की बैठकों में 'सुभान-अल्लाह' होगी; लेकिन वे आलोचना की रोशनी में खोखले मालूम होंगे। अत्युक्ति की आखिर कुछ हद होती है—'मुँह से निकल पड़ी थी हर एक मौज की ज़बाँ', 'माही हो सीखे मौज तक आई कबाब थी'। इस अत्युक्ति के कारण अच्छी बात भी भद्दी हो जाती है। उदाहरणस्वरूप यह मिसरा कलात्मकता का नमूना है : 'खस-खानए-मिज़ाँ से निकलती न थी नज़र'। लेकिन 'अनीस' रुकते थे, अपने मनोवेग को काबू में नहीं लाते। फिर बन्द को भी पूरा करना है। इसलिए बात आगे बढ़ जाती है :

गर चश्म से निकल के ठहर जाय राह में, पड़ जायें लाखआबले पाए निगाह में।

और कलाकारी वाग्विलास में परिणत हो जाती है और ध्यानपूर्वक देखिए तो इस प्रकार की कमी हर एक स्थान पर दिखाई देगी। "देखे तो गश करे 'अरनी-गोए-औजे-तूर'; पाई जो राह तायरे जां सन से उड़ गए", "स्ते थे बन्द जख़्मों के कूचेखुले हुए", मुर्दे भी डर के चौंक पड़े ख़ाक के तले" इत्यादि, इत्यादि।

ग़ज़ल, क़सीदा, मर्सिया, मसनवी के अतिरिक्त उर्दू में अन्य काव्य-रूप भी हैं; जैसे मुमद्दस, मुख़म्मस, मुरब्बा, मुसल्लस, तरकीब-बन्द, तर्जीअ - बन्द । लेकिन इन रूपों को उर्दू के कवियों ने अधिक महत्त्व नहीं दिया। यों कहने को तो बहुत से दीवानों में ये चीजें भी मिलती हैं, किन्तु साधारणतः इन कविताओं का महत्त्व एक प्रकार के कवि-सुलभ अभ्यास से अधिक नहीं। इनमें से कुछ काव्य-रूपों में वही त्रुटियाँ हैं, जिनका वर्णन ग़ज़ल के प्रसंग में हो चुका है। किसी ग़ज़ल के हर शेर पर एक मिसरा बढ़ाने से मुसल्लस या तीन मिसरे बढ़ाने से मुख़म्मस का रूप बन जाता है। किन्तु, भिन्न-भिन्न बन्दों में किसी प्रकार की शृंखला तथा क्रम नहीं होता। कभी-कभी ये मिसरे किसी फ़ारसी-गज़ल के शेरों पर बढ़ा दिये जाते हैं :

जाए दुनिया से यः दिल और गिरफ़्तारिए[1] -दिल
एक दिल होवे तो हो सकतो है ग़मख़्वारिए[2] - दिल
ग़म्ज़ए[3] - चश्म[4] हो या बाइसे[5] -बीमारिए - दिल
ख़मे - ज़ुल्फ़ेस्त दिगर दामे - गिरफ़्तारिए दिल

अलकों का उलझना कुछ और चीज़ है और दिल का फँसना कुछ और वस्तु है, क्योंकि हृदयावेशों के कारण उसमें एक बाल भी नहीं समा सकता—अर्थात् उसमें किसी दूसरे के लिए स्थान नहीं है।

कि दरू मूये न गुंजीद ज़े बिसियारिए-दिल
वाह वा ! ऐसी हो होती है बफादारिए[6] - दोस्त ?
जौरे-दुश्मन है यः मुझपर यः मददगारिए[8] दोस्त
क्या करूँ कह तू जो हो यों रविशे[9]-यारिए[10] दोस्त

मैं अपने भाग्य पर हसूँ या मित्रों के अत्याचार पर; मैं अपने ऊपर रोऊँ या अपने मित्र के बन्दी होने पर—

ख़न्दा बर बख़्त ज़नम या ब जफ़ाकारिए-दोस्त
गिरिया बर ख़्वेश कुनम या ब गिरफ़्तारिए - दोस्त

यहाँ कोई लगाव नहीं। लेकिन कभी-कभी इन बन्दों में शृंखला तथा क्रम होता है; और एक विषय-विशेष का पूरा-पूरा वर्णन होता है। इस प्रकार के मुख़म्मस या मुसल्लस में तज़मीन नहीं होती, बल्कि किसी खास जज़्बा या दृश्य का चित्र प्रस्तुत किया जाता है :

---

१. दिल का फँसना, २. सहानुभूति, ३. कटाक्ष, ४. आँख, ५. कारण, ६. प्रीति-निर्वाह, ७. अत्याचार, ८. सहायता देना, ९. चाल-ढाल, १०. मित्रता।

साक़ी[1] पहुँच कि वक़्त तग़ाफ़ुल[2] रहा नहीं + उमड़े है यह बहार जिसे इन्तहा[3] नहीं
एक क़तरा अब्रे तर[4] से ज़मीं पर गिरा नहीं + कैफ़ीअते[5] हवासे कि वह मैं[6] हुआ नहीं
गोया[7] चमन में जुज़[8] दमे ईसा[9] हवा नहीं

कहता है नेक[10] वो बद[11] से बसद[12] शोर यों सहाब + आसी[13] है वह कि अब न पिये जो कोई शराब
इस वक़्त में कहाँ है तू ऐ ख़ानमां[14]-ख़राब + टुक मुँद गई है चश्मे[15]-फ़लक हो के नाम[16]-ख़्वाब
क्या जानिए कि पल में यः मौसिम[17] है या नहीं

फ़ुर्सत को दम[18] फ़ौवूज़ ग़नीमत ऐ बेख़बर + क्या जानिये कि फ़स्ल[19] कहाँ और हम किधर
साक़ी[20] शिताब[21]-आतिशे[22]-तर लेके जाम[23] भर + टुक देख है चमन की हवा सर्द इस क़दर[24]
पोशाक[25] बूए-गुल[26] की कम अज़[27] सद फ़े बा[28] नहीं

स्पष्टतया विदित है कि यहाँ विशृंखलता और असंपृक्तता नहीं। ओजपूर्ण वर्णन है, जोश-ख़रोश है, वासन्ती सुषमा का निरीक्षण है। 'मीर' ने भी मुख़म्मस लिखे हैं, लेकिन वह अधिकांश धार्मिक विश्वासों की अभिव्यक्ति करते हैं और उनमें प्रायः धार्मिकता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। इसलिए वे काव्य-जगत् में कोई ऊँचा स्थान नहीं रखते। हाँ, कुछ मुख़म्मस ऐसे भी हैं, जिनमें उन्होंने निजी वारदात अथवा व्यक्तिगत जज़्बात वो मनोभावों की अभिव्यक्ति की है। उनमें उसी प्रकार का आनन्द आता है, जो उनकी ग़ज़लों की विशेषता है; लेकिन उनमें 'मीर के हृदय का रंग बहुत अधिक नहीं चमकता; जैसे—

हाजत[29] मेरी रवा[30] दिले-पुरदर्द[31] ने न की + तासीर अश्के[32]-सुर्ख़ वो रुख़े-ज़र्द[33] ने न की
तदबीर एक दम भी दमे-सर्द ने न की + दिल-जोई मेरी हैफ़[34] किसी फ़र्द[35] ने न की
ताक़त रही न दिल में गया जान से क़रार[36]

दिल सर-ब[37]-सर ख़राब है तामीर[38] क्या करूँ + आशुफ़्तगीए[39]-हाल की तश्हीर[40] क्या करूँ
ख़ूंनाबा[41]-हाए-चश्म की तक़रीर[42] क्या करूँ + ज़र्दीए-रंग चेहरे की तहरीर[43] क्या करूँ
आया जो मैं चमन में ख़िज़ाँ[44] हो गई बहार[45]

---

१. मधुबाला, २. लापरवाही, ३. सीमा, अन्त; ४. बदली, ५. मादकता, ६. शराब, ७. मानो, ८. सिवाय, ९. साँस, १०. अच्छा, ११. बुरा, १२. बहुत अधिक, १३. पापी, १४. वह व्यक्ति, जिसका घर-द्वार नष्ट हो गया हो, १५. आसमान की आँख, १६. कच्ची नींद, १७. ऋतु, १८. क्षण-भर, १९. बिलगाव, २०. मधुबाला, २१. जल्दी, २२. शराब, २३. प्याला, २४. इतनी मात्रा में, २५. कपड़ा, परिधान; २६. फूल की गमक, २७. सौ से, २८. परिधान, वस्त्र; २९. आवश्यकता, ३०. पूरी, ३१. दुःखित हृदय, ३२. आँसू, ३३. पीला चेहरा, ३४. अफ़सोस, ३५. व्यक्ति, ३६. धैर्य, ३७. पूर्ण रूप से, ३८ सृजन, ३९. परीशानी, ४०. विज्ञापन; ४१. आँखों से निकला हुआ स्वच्छ रक्त, ४२ वर्णन, ४३. लिखना, ४४. पतझड़, ४५. वसन्त-ऋतु।

हालत तो यह कि मुझको ग़मों से नहीं फिराग़[1] + दिल सोज़िशे[2] दरूनी[3] से जलता है जो चिराग़
सीना तमाम चाक है सारा जिगर है दाग़ + है नाम मज्लिसों में मेरा 'मीरे' बे-दिमाग
अज़[4] बस्कि बे-दिमाग़ी[5] ने पाया है इश्तहार[6]

'मीर' का रंग स्पष्ट है और वह शोक-सन्ताप वो निराशा भी जो 'मीर' की विशेषता है। लेकिन 'मीर' अपने जज़्बात को विषय-विशेष पर केन्द्रीभूत नहीं करते। यही कारण है कि ये जज़्बात किसी केन्द्र-विशेष के आसपास चक्कर खाने के बदले नितान्त बिखरे हुए वो विक्षिप्त दीख पड़ते हैं। उर्दू की कविताओं में कोई खास गुरुत्व-केन्द्र नहीं होता। इसी कारणवश उनमें तासीर कम होती है।

मुखम्मस की तरह मुसद्दस का प्रयोग भी विभिन्न रूपों में हुआ है। इसमें क़सीदे, मर्सिए, वासोख़्त लिखे गये हैं। 'मीर' ने कई वासोख़्त लिखे हैं। एक वासोख़्त के दो बन्दों पर ध्यान दिया जाय :

याद -ऐयाम[7] कि ख़ूबी[8] से ख़बर तुझको न थी
सुर्मा वो आईने की और ख़बर तुझको न थी
फ़िक्रे आरास्तगीए[9]-शाम-वो-सेहर[10] तुझको न थी
ज़ुल्फ़[11] आशुफ़्ता[12] की सुध दो-दो पहर तुझको न थी

शाना[13] था नाबलदे[14] - कूचए[15] - गेसू[16] तेरा
आईना काहे को था हैरतीए[17] - रू[18] तेरा

आगही[19] हुस्न[20] से अपने तुझे जिन्हार[21] न थी
अपनी मस्ती से तेरी आंख खबरदार[22] न थी
पांव बेडोल न पड़ता था य: रफ़्तार[23] न थी
हरदम इस तौर कमर में तेरे तलवार न थी

ख़ून यों काहे को कूचे में तेरे होते थे
दिल[24]-ज़दे कब तेरी दीवार-तले रोते थे

विषय कृत्रिम हैं। किसी घटना-विशेष से सम्बन्ध नहीं रखते। कभी-कभी वास्तविकता की थोड़ी-सी झलक दिखाई देती है। लेकिन अधिकांश विचारों में इतनी बनावट होती है कि तासीर का होना सम्भव नहीं। विषय भी सीमित हैं। किसी काल्पनिक प्रेयसी की निष्ठुरता की शिकायत है। उसकी अगली मुहब्बत और प्रेम तथा उसकी निष्कलुषता का वर्णन और वर्तमान

---

१. अवकाश २. गांठ-सांठ ३. अन्तर्गत, भीतरी; ४ चूंकि, ५ उन्माद, उज्जड्डपन; ६. विज्ञप्ति, ७. उस समय का स्मरण. ८. सुन्दरता, ९. बनाव शृंगार, सजावट; १०. प्रभात, ११. अलकें. १२ उलझी हुई, १३. कंघी, १४. अपरिचित, १५. गली, १६. अलकें, १७. आश्चर्यचकित, १८. मुखमण्डल, १९. ज्ञान, २०. सौन्दर्य, २१. कदापि, २२. अवगत, २३. चाल, २४. विदग्ध हृदयवाले।

क्रूरता और उसके बनाव-शृंगार की शिकायत है, अपनी दुरवस्था एवं दुर्दशा का रोना — बस, यही थोड़ी-सी बातें हर जगह मिलती हैं.... ... ।

मुखम्मस और मुसद्दस का रूप तो प्रायः दिखाई पड़ जाता है, लेकिन तरकीब बन्द और तरजीऽ बन्द अपने विस्तार और कठिनाई के कारण अधिक मान्य न हो सके। हाँ, कभी-कभी अपनी शक्ल दिखा जाते हैं। किन्तु साधारणतः कविगण उनसे परहेज करते हैं; और यदि कभी किसी कवि ने बहुत साहस करके इसकी ओर ध्यान दिया भी तो कोई विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी। अलग-अलग बन्द प्रायः सफल होते हैं, किन्तु सम्पूर्ण कविता असफल ही रहती है :

शाहंशहे[1] - मुल्के - कुफ़्र[2] वो दीं[3] तू + है तख़्त - नशीने[4] दिलनशी[5] तू
हूँ लफ़्ज़[6] - बमानी[7] - आश्ना[8] मैं + है मानिए - लफ़्ज़[9] - आफ़्रीं तू
ऐ ज़ेवरे[10] - दस्ते[11] - ग़ैब[12] हर जा[13] + अंगुश्त[14] - नुमा है जो नगीं[15] तू
काफ़िर हूँ, जो हूँ न काफ़िरे - इश्क़ + है नाज़े[16] बुताने[17] - नाज़नीं[18] तू
दुश्मन है कहाँ किधर को है दोस्त + है गर्मीए[19] बज़्मे मेह्र[20] वो कीं[21] तू
वीरानीए[22] - वादिए[23] - गुमां[24] तू + आबादिए - ख़ानए[25] - यक़ीं[26] तू
हैहात[27] जहाँ यः कोर[28] - चश्मां + ढूँढ़े हैं तझे तो है वहीं तू
करता है यः कौन दीदः[29] बाज़ी + गर रौशनिए[30] - नज़र नहीं तू
तूही तो है दिल की बेहेजाबी[31] + है पर्दए - चश्मे - सुर्मगीं[32] तू

माशूक़ है तू ही, तू ही आशिक़
'अज़्रा'[33] है कहाँ किधर को 'वामिक़'[34]

'दर्द' अपने विशिष्ट रंग में ख़ूब कहते हैं। उनकी सरलता, प्रांजलता, संगीतमयता और प्रभाववर्द्धकता, स्पष्टतया विदित हैं। किन्तु पूरे तरकीब-बन्द में वह सौन्दर्य नहीं, जो एक बन्द में है। 'दर्द' में सर्जना-शक्ति न थी; इसलिए नई कविता में यह कमी एक बहुत बड़ा अभाव बन जाती है।

इन काव्य-रूपों में यदा-कदा ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जिनमें स्वगत घटनाएँ व अनुभव हैं। और कुछ उदाहरण प्रभावशाली भी हैं। लेकिन साधारणतः वे एक अभ्यास-कार्य से अधिक महत्त्व नहीं रखते। ये कविताएँ सफल हों अथवा असफल, महज़ हाशिए की रचनाएँ हैं, और उर्दू के कवि उनकी ओर पूरा ध्यान नहीं देते। यह तो स्पष्ट रूप से विदित है कि इन

---

१. महाराज, २. नास्तिकता, ३. धार्मिकता, ४. सिंहासनारूढ़, ५. सुखद, मनमोहक; ६. शब्द ७. अर्थ, ८. परिचित, ९. अर्थोत्पादक शब्द, १०. शोभा, अलंकार; ११. हाथ, १२. परोक्ष, १३. स्थान, जगह; १४. प्रमुख, स्पष्ट; १५. नग, १६. हाव भाव, १७. सुन्दरियाँ, १८. कोमलांगी, १९. सभा की शोभा, २०. प्रेम, २१. द्वेष, शत्रुता; २२. निर्जन स्थान, २३. घाटी, २४. सन्देह, अविश्वास; २५. घर, निवासस्थान; २६. विश्वास, २७. आह, शोक, अफसोस; २८. अन्धी आँखवाले, २९. आँख-मिचौनी, नज़रबाज़ी; ३०. ज्योति, ३१. बेपर्दा होना, ३२. सुर्मा लगी हुई आँख, ३३. अरब देश की एक विख्यात माशूक़ा थी, ३४. यह 'अज़्रा' का आशिक़ था।

काव्य-रूपों में से हर एक रूप के एक-एक बन्द में अकेले शेर की अपेक्षा अधिक विस्तार की गुंजाइश है; और यदि विभिन्न बन्दों में सम्बन्ध और विचार - प्रगति हो तो इन रूपों में सफल कविताएँ लिखी जा सकती हैं। मुसद्दस को छोड़कर अन्य रूपों के विभिन्न बन्दों में कोई खास लगाव नहीं होता ; और यदि होता भी है तो पूर्ण सम्बन्ध नहीं होता। मुसद्दस में निस्सन्देह भिन्न-भिन्न बन्द शृंखलाबद्ध होते हैं; विचारों, अनुभूतियों का आरम्भ, प्रगति और उपसंहार होता है। इसके अतिरिक्त मुसद्दस में मुसल्लस, मुरब्बा, मुख़म्मस की अपेक्षा अधिक गुंजाइश होती है, और तरकीब-बन्द की भाँति यह विस्तार कठिनाई पैदा नहीं करता। लेकिन यह रूप भी ग़ज़ल-कहने वाले कवियों में स्वीकृत न हो सका।

इस सरसरी आलोचना से उर्दू-कविता की निस्सारता विदित हो गई। यह बात नहीं कि उर्दू के कवियों में कवित्व की क्षमता न थी। वे संवेदन-शक्ति रखते थे, बड़ी ही तीव्र संवेदन-शक्ति! प्रकृति ने उन्हें कल्पना-शक्ति भी प्रदान की थी—ऐसी कल्पना, जिसकी उड़ान ऊँची, मननशील और व्यापक थी। गहरी एवं कीमती सूझ-बूझ की भी उनमें कमी नहीं। हाँ, यदि कुछ कमी है भी तो संसार-निरीक्षण की। उनकी आँखें दिल की ओर देखती हैं, वे सदा दिली जज़्बात वो भावों की सैर करने में निमग्न रहती हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वे संसार की बहुरंगी से नितान्त अनभिज्ञ हैं; किन्तु इतनी बात अवश्य है कि इस बहुरंगी की ओर उनका ध्यान नहीं। आँखें देखती सब कुछ हैं, लेकिन ध्यानपूर्वक नहीं, और ब्यवरों से उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं। इस प्रकार की उपेक्षा मानवीय कृत्यों और घटनाओं की ओर से भी है। इसीलिए उनकी रचनाओं में शील-निरूपण का पता नहीं।

फिर भी यह अभाव उर्दू-कविता की निस्सारता का कारण नहीं। इस कमी की वजह से उसकी दुनिया कुछ सीमित हो जाती, किन्तु ऐसी नष्ट-भ्रष्ट न होती। मूल कारण फ़ारसी-कविता का प्रभाव है। यह प्रभाव राजनीतिक तथा देशीय कारणों से और सुदृढ़ हो गया। इसी प्रभाव का एक रूप ग़ज़ल है। अपनी सरलता के कारण ग़ज़ल सर्वप्रिय हो गई, कुछ ऐसी पसन्द हुई, इसने कुछ ऐसा मन्त्र फूँका कि कवियों का ध्यान फिर कुछ दूसरी ओर न जा सका और किसी अन्य काव्य-रूप की आवश्यकता उन्हें महसूस न हुई।

इस सम्बन्ध में यह कह सकते हैं कि इस निस्सारता का एक कारण पाश्चात्त्य साहित्य से अनभिज्ञता भी है। उर्दू के कविगण कविता के सही अर्थ का ज्ञान प्राप्त न कर सके। इसलिए वे कुछ मजबूर भी थे। जो कमाल उन्होंने ग़ज़ल-जैसे दोषयुक्त काव्य-रूप में प्रदर्शित किया है, उसे देखकर दुःख-सा होता है कि कैसे-कैसे और मूल्यवान् सद्गुण नष्ट हो गये।

वर्त्तमान अवस्था यह है कि उर्दू-कविता में महज़ धज्जियाँ और पुर्जे हैं। ग़ज़लें और काव्य-पंक्तियाँ असंख्य हैं; किन्तु ग़ज़ल के रूप में, उसकी त्रुटियों के कारण, उच्च कोटि की कविता सम्भव ही न थी। अकेला शेर भी अपनी अल्प भाव-सम्पत्ति के कारण कविता का भारी बोझ वहन करने योग्य न हो सका। सुन्दर और चमकदार शेर मिलते हैं, जो आकर्षक भी हैं और प्रभाववर्द्धक भी। अक्सर ये जज़्बात को भड़काते हैं और कल्पना में हलचल भी पैदा करते हैं:

कहा मैंने गुल[1] का है कितना सबात[2]
कली ने यः सुनकर तबस्सुम[3] किया

अथवा

---

१. फूल, गुलाब का फूल; २. ठहराव, अस्तित्व, आयु; ३. मुस्क़ान।

मौत का एक दिन मुऐअन[1] है
नींद क्यों रात-भर नहीं आती

लेकिन इन टुकड़ों से पूर्ण तुष्टि और शान्ति प्राप्त होना सम्भव नहीं। दिल व दिमाग प्रसन्न होते हैं, किन्तु इस आनन्द में नीरसता भी निहित है।

ग़ज़ल की विशृंखलता, अकेले शेर की नीरस मादकता क़िते में नहीं। इस काव्य-रूप में ऊँचे पैमाने की कविता सम्भव है। कुछ क़िते ऐसे हैं, जिनका स्थान काव्य-जगत् में ऊँचा है, किन्तु इनकी संख्या कम है। उर्दू के कवि इस ओर प्रायः रस्मी ढंग से ध्यान देते हैं और बहुत ख़ास-ख़ास तथा सीमित विषय इसमें दाख़िल करते हैं। इस प्रकार यह अवसर भी हाथ से निकल जाता है और खेद-पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आता।

क़सीदे की भी वही दशा है। प्रस्तावना में वही गुंजाइश है, जो क़िते में दीख पड़ती है। आवेगों का कोलाहल, कल्पना का ओज, सर्वग्राही विचार, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य—हर चीज का चित्रण सम्भव था; किन्तु उर्दू के कवि शब्द-सौष्ठव की खोज में वास्तविकता और असलियत को लुप्त कर देते हैं। बाहरी ठाट-बाट हर जगह है, लेकिन भीतर शून्य-ही-शून्य दिखाई पड़ता है। दूसरा दोष यह भी है कि संक्षेपण के बदले हर जगह विस्तार से काम लिया जाता है। इसलिए चित्र साफ़ नहीं; धुँधला उतरता है। जहाँ पर क़िते प्रायः संक्षिप्त होते हैं, वहाँ भूमिकाएँ आवश्यकता से अधिक लम्बी हैं। यदि क़ितों के संक्षिप्त होने से मन को तुष्टि नहीं प्राप्त होती तो कसीदों की भूमिकाओं का अनुचित विस्तार सही साहित्यिक सुरुचि को कुण्ठित करता है, भारी जान पड़ता है। यदि कुछ क़िते काव्य-जगत् में ऊँचा स्थान रखते हैं तो कतिपय भूमिकाएँ काफ़ी उच्चकोटि की हैं, लेकिन इनकी संख्या भी कम है। तीसरा भारी दोष कृत्रिमता है। साधारणतः यह क़ितों में फीकापन नहीं पैदा करता, किन्तु क़सीदों में यह दोष आम है—कहना चाहिए कि क़सीदों का आधार ही कृत्रिमता पर है। कभी यह कृत्रिमता स्वाभाविक भाव का रूप धारण कर लेती है, किन्तु ऐसा यदा-कदा ही होता है।

यदि क़सीदे की त्रुटियों के बाद मसनवी व मर्सिये की ओर ध्यान दिया जाय, तो भी इसी तरह का परिणाम निकलता है। मसनवी में शील-निरूपण बिल्कुल है ही नहीं। घटना-वर्णन का कहीं पता नहीं; जज़्बात की दुनिया ग़ज़ल के संसार से भी अपेक्षाकृत अधिक है। ऊँचे दार्शनिक विचार कहाँ, साधारण नैतिक विचारों का भी कहीं पता नहीं। प्राकृतिक चित्रों का चित्रण सम्भव था, किन्तु यह भी लुप्तप्राय है; यदि कहीं है तो महज़ बनावटी उद्यान हैं, जो दिल व दिमाग़ को एक क्षणिक मादकता प्रदान करता है। मसनवी में यदि कोई वस्तु है, तो वह भाषा है। यह प्रायः आनन्दित-प्रमुदित करती है, लेकिन इसमें भी बहुधा आवश्यकता से अधिक बनावट होती है।

मसनवी की तरह मर्सिये में भी शील-निरूपण का अस्तित्व नहीं, किन्तु घटना-वर्णन की कमी नहीं; और घटना-वर्णन भी है तो काव्यत्वपूर्ण। जहाँ अत्युक्ति को अधिकार में रखा जाता

---

१. निश्चित, निर्दिष्ट।

है, वहाँ यह बहुत सफल होता है। इसमें यदि कोई ख़ामी है, तो वह है इसका सपाटपन। इसमें प्राकृतिक दृश्य भी हैं, यद्यपि वे कुछ सीमित ढंग के हैं, परन्तु ये मसनवी के कृत्रिम उद्यान की अपेक्षा अधिक आनन्द दे जाते हैं, लेकिन मूल वस्तु आवेगों की अभिव्यंजना है। जहाँ जज़्बात विविध प्रकार के हैं, वहाँ उनका वर्णन भी रंगीन आवरणों में है।

अन्य काव्य-रूप इस योग्य नहीं कि उनका ज़िक्र भी किया जाय। अब यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उर्दू-कविता की पूँजी केवल इतनी ही दीख पड़ेगी—कुछ क़िते, कुछ भूमिकाएँ, कुछ हजो, कुछ टुकड़े मसनवी और मर्सिये के—शेष कुछ भी नहीं। तो फिर यह कहना ग़लत नहीं कि उर्दू-कविता में केवल कुछ धज्जियाँ और पुर्ज़े हैं। कोई समझदार आदमी इस दशा को देखकर प्रसन्न वो सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

फ़ारसी-कविता अपना प्रभाव समाप्त कर चुकी, और यह प्रभाव हानिकारक भी प्रमाणित हुआ। अब उस ओर से किसी प्रकार की आशा रखना अनुचित बात है। यदि उन्नति करने की इच्छा है तो अब किसी पाश्चात्य साहित्य की ओर झुकने की आवश्यकता है। परन्तु पाश्चात्य साहित्य से भी कोई लाभदायक वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती, यदि उर्दू के कवि इसका भी उसी प्रकार अन्धानुकरण करेंगे, जैसा अनुकरण उन्होंने फ़ारसी का किया था। इसका प्रभाव अत्यन्त हानिकारक साबित हो सकता है। यदि कोई लाभ हासिल हो सकता है तो इस प्रकार कि उर्दू के कवि किसी पाश्चात्य साहित्य से परिचय प्राप्त करें, काव्य तथा कविता का सही मतलब समझें, कवि के लिए जो गुण आवश्यक हैं, उनका संग्रह करें—अर्थात् संवेदन-शक्ति, कल्पना, बौद्धिकता, अन्तर-बाह्य जगत् का निरीक्षण। तदुपरान्त अपने माहौल, अपनी अभिरुचि पर ध्यान रखते हुए व्यक्तिगत अनुभूतियों व भावनाओं की अभिव्यंजना करें, छन्दों-मात्राओं को पसन्द करने में लकीर के फ़कीर न बनें, बल्कि इस विषय में अपनी आविष्कारक शक्ति से काम लें, नये-नये बन्द निकालें या किसी पाश्चात्य साहित्य से ग्रहण करें। वर्त्तमान युग में क़वियों को उर्दू की अल्प भाव-सम्पत्ति का एहसास हुआ, उन्नति के लिए भिन्न-भिन्न रास्ते निकाले गये, लेकिन कहीं भी स्पष्ट सफलता दीख नहीं पड़ती। कविता की आत्मा अभी तक भी पलायमान है।

परिशिष्ट

उर्दू-कविता के आकाश पर 'नज़ीर' अकबराबादी का व्यक्तित्व अकेले सितारे की तरह प्रकाशमान है !

'नज़ीर' का अस्तित्व ही उर्दू-कविता की अपूर्व आलोचना है। जिस समय ग़ज़ल सर्व-व्यापी थी, जब ग़ज़लगोई और शायरी पर्यायवाची शब्द समझे जाते थे, ऐसे समय में 'नज़ीर' ने पृथक्ता ग्रहण की और विचार-स्वातन्त्र्य का मूल्यवान् नमूना प्रस्तुत किया। यह तो नहीं कह सकते कि 'नज़ीर' ने ग़ज़लें नहीं लिखीं, लेकिन उन्होंने ग़ज़ल को काव्य की उपलब्धि नहीं समझा। 'मीर', 'सौदा' और 'ग़ालिब' की तरह 'नज़ीर' ने भी अचेतन रूप से ग़ज़ल और अकेले शेर की संकीर्णता को महसूस किया; लेकिन उन्होंने कुछ क़िते-मात्र लिखकर ही अपनी तुष्टि न कर ली और अपनी कविता का अधिकांश ग़ज़ल को ही नहीं समर्पित करते रहे; बल्कि ग़ज़ल के साथ-साथ मुसल्लस, मुख़म्मस और विशेषतः मुसद्दस से भी काम लिया और इन काव्य-रूपों में अपने विचार तथा व्यक्तिगत अनुभवों का श्रृंखलायुक्त व क्रमबद्ध वर्णन किया।

मैंने कहा है कि 'नज़ीर' ने ग़ज़लें भी लिखीं और उनमें भी उन्होंने नई राहें निकालीं। ग़ज़ल की विशेषता यह समझी जाती है कि उसमें हर शेर एक-दूसरे से असंपृक्त होता है। 'नज़ीर' ने बहुत-सी श्रृंखलाबद्ध ग़ज़लें लिखीं। ऐसा जान पड़ता है कि 'नज़ीर' उखड़ी-उखड़ी बातें करने से घबराते हैं; उन्हें श्रृंखला एवं क्रमबद्ध रचना में विशेष आनन्द मिलता है। यदि अन्य कवियों को भी यह बात महसूस होती और वे 'नज़ीर' की निकाली हुई डगर पर चलते' तो आज ग़ज़ल की दुनिया ही दूसरी दिखाई पड़ती। यों कहने को तो अन्य कवियों ने भी क्रमबद्ध ग़ज़लें और क़िते लिखे हैं, लेकिन अधिकांश कविगण क्रमबद्ध ग़ज़लें या क़िते लिखते हैं तो इच्छा-पूर्वक लिखते हैं। 'नज़ीर' की मनोवृत्ति स्वाभाविक रूप से क्रमबद्ध रचना की ओर आकृष्ट होती है। शायद यही कारण है कि उनकी ग़ज़लों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है।

हाँ, तो 'नज़ीर' ने ग़ज़ल में नई राहें निकालीं और नवीन रूप से इसे प्रशस्त किया। इसमें नज़्म (प्रबन्ध-काव्य) की खूबियाँ दाख़िल कीं। उनकी एक मशहूर ग़ज़ल है, जिसका मतला* यह है।

यह जवाहिर ख़ानए[1]-दुनिया जो है बा आब[2] वो ताब
अह्ले[3]-सूरत का है दरिया अह्ले[4]-मानी का सुराब[5]

इस ग़ज़ल को साधारण ग़ज़लों से कोई लगाव नहीं। इस संसार की निस्सारता पर 'नज़ीर' ने कई ग़ज़लें लिखी हैं। हर ग़ज़ल में एक नया रंग है और विचारों के श्रृंखलाबद्ध होने के विचार से प्रत्येक ग़ज़ल नज़्म की खूबियाँ रखती है। उनकी एक ग़ज़ल है;

---

*ग़ज़ल और क़सीदे की प्रथम पंक्ति

१. रत्नागार, २. चमक-दमक, ३. बाह्य रूप देखनेवाले, ४. तत्त्व जाननेवाले ५. मृगतृष्णा।

क्या दिल लगावें मेहरवां हम हुस्ने[१] - सूरत से कहीं
ने वां सवात[२] इससे बहम[३] ने यां कयाम[४] अपने तईं
था एक मकाने - दिलकुशा[५] रश्के[६] - चमन जिसकी फ़िज़ा[७]
थी उस जगह रौनक़[८]-फ़िज़ा रक्क़ासा[९] शोख़[१०] एक नाज़नी[११]
क़द[१२] हसरते[१३] - सर्वे-चमन लब[१४] ग़ैरते-लाले[१५]-यमन
जाऽदे[१६] मुअम्बर[१७] पुर-शिकन[१८]-नोके मिज़ा[१९] नश्तर[२०]-करीं
देख उसके रक़्सों[२१] की अदा[२२] दिल रक़्स में थे जावजा[२३]
नग़मात[२४] यक्सर[२५] सेहरज़ां[२६], अन्दाज़[२७] कुल जादू-गज़ीं[२८]
नाज़ वो अदा की गर्मियां ग़ारत[२९] - गरे सब्र वो तवां[३०]
तौरे तकल्लुम[३१] दुर-फ़िशां[३२] तर्ज़[३३] तबस्सुम[३४] शक्करीं[३५]
क्या-क्या लगावट बेबदल[३६] क्या - क्या रखावट बर-महल[३७]
क्या-क्या बनावट पल-ब-पल करती थी वह ज़ोहरा[३८] जबीं[३९]
गरदूं[४०] ने एक गर्दिश[४१] जो की ज़ार[४२] वो उजूज़ा[४३] हो गई
वह नौजवानी ताज़गी[४४] देखी तो कोसों तक नहीं
वह गुल - सा मुखड़ा ज़र्द[४५] है गर्मी का आलम[४६] सर्द है
जां रंज से पुरदर्द[४७] है आज़ुर्दा[४८] दिल अन्दोहगीं[४९]
जों बेद[५०] लर्ज़ां[५१] दस्त-वो-पा[५२] है जाय[५३]-चोबे-गुल[५४] असा[५५]
हर मू[५६] जो संबुल[५७] - रश्क था यकसर है बर्ग[५८] यासमीं[५९]
ने चश्म[६०] में मस्ती रही ने ख़ू[६१] में वह तुन्दी[६२] रही
ने लब में वह सुर्ख़ी रही ने मुंह में वह दुर्रे[६३] सुमीं[६४]

---

१. रूप-छवि; २. ठहराव, स्थिरता; ३. प्राप्त, ४. टिकान, ५. मन प्रसन्न करनेवाला, ६. उद्यान की स्पर्द्धा करने योग्य, ७. वातावरण, ८. छविवर्द्धक, ९. नर्तकी, १०. धृष्ट, ११. सुकुमार, १२. डील-डौल, १३. बाग़ के सरों को ललचानेवाला, १४. ओठ, १५. यमन के माणिक को लज्जित करनेवाला, १६. केश, १७. इत्र में बसा हुआ, १८. पेचदार, १९. बरौनी, २०. नश्तर का निकटवर्त्ती, २१. नाच, २२. भाव, २३. जगह-जगह पर, २४. राग, गीत; २५. पूर्णतया, २६. जादू का असर पैदा करनेवाला, २७. भाव, २८. जादू डालनेवाला, २९. विनाशक, ३०. ताकत, ३१. बोलचाल, ३२. मोती झाड़नेवाला, ३३. ढंग, ३४. मुस्कान, ३५. श्रीखण्ड-मिश्रित, ३६. अद्वितीय, ३७. ठीक मौके पर, ३८. शुक्रग्रह, ३९. ललाट, ४०. आकाश, ४१. चक्कर, ४२. क्षीण, ४३. वृद्धा, ४४. प्रफुल्लता, ४५. पीला, ४६. दशा, ४७. पीड़ित, ४८. दुःखित, ४९. शोकपूर्ण, ५०. बेत, ५१. कंपायमान, ५२. हाथ-पैर, ५३. स्थान पर, बदले में, ५४. फूल की छड़ी, ५५. डण्डा, सोंटा; ५६. बाल, ५७. सुंबुल के हृदय में स्पर्द्धा उत्पन्न करनेवाली, ५८. पत्ता, ५९. चमेली, ६०. आंख, ६१. आदत, स्वभाव, ६२. तेज़ी, ६३. मोती, ६४. कीमती।

देख उसको मैंने नागहां[1] पूछा कुछ अपना कर बयां
थी कल तू रश्के-गुलसितां[2] है आज ख़ारे[3] -सहमगीं[4]
बोली 'नज़ीर' इबरत[5] में रह क्या पूछने की है जगह
यां की यही है रस्म वो-रह गाहे चुनां गाहे चुनीं।

देखा, इस घिसे-पिटे पददलित विषय में मौलिकता पैदा की है। इसमें वास्तविकता है, एक ड्रामाई शान है। किन्तु असली बात देखनी यह है कि यह ग़ज़ल ग़ज़ल नहीं रह गई है। इसमें ग़ज़ल की विश्रृंखलता नहीं; हर शेर एक-दूसरे से विलग नहीं, प्रत्येक विषय एक-दूसरे से असंपृक्त नहीं। एक विषय दूसरे से मिला हुआ है। विचारों का एक ढांचा है और सब शेर मिल-जुलकर यह ढाँचा तैयार करते हैं। विचार-प्रगति में किसी प्रकार की रुकावट नहीं, कोई कठिनाई नहीं, असमानता नहीं। इस ग़ज़ल और इस प्रकार की ग़ज़लों के पढ़ने से जो मानसिक तुष्टि प्राप्त होती है, वह आम ग़ज़लों से नहीं मिलती। सम्भव है कि किसी ग़ज़ल में कोई खास शेर प्रभाववर्द्धक हो, अधिक तेज़ी और गहराई रखता हो, किन्तु फिर भी वह एक टूटा हुआ मोती है।

इस विषय पर 'नज़ीर' ने बहुत-सी ग़ज़लें लिखी हैं और कि़ते भी, किन्तु वह केवल इसी एक विषय पर सन्तोष नहीं कर लेते। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में नख-शिख-वर्णन भी किया है, और हर बार नये ढंग की मौलिकता पैदा करने की कोशिश की है। 'नज़ीर' की एक मशहूर ग़ज़ल है, जिसमें उन्होंने उर्दू के साथ-साथ अरबी, फ़ारसी और अन्य भाषाओं में भी शेर लिखे हैं। उस गज़ल का मतला (प्रथम पंक्ति) यह है :

सेहर[6] जो निकला मैं अपने घर से तो देखा एक शोख़[7] हुस्न[8] वाला
झलक वह मुखड़े में उस सनम[9] के कि जैसे सूरज में हो उजाला

इसी तरह एक दूसरी ग़ज़ल में भी नख-शिख-वर्णन है, जिसका मतला प्रथम पंक्ति में है :

कल नज़र आया चमन में एक अजब रश्के चमन
गुल रुख[10] वो गुलगूं-क़िबा[11] वो गुल ओज़ार[12] वो गुल्बदन।

लेकिन शायद इस रंग की ग़ज़लों में सबसे अधिक मशहूर वह ग़ज़ल है, जिसके विषय में कहा जाता है कि उसे 'नज़ीर' ने 'मीर' के सामने पढ़ा था :

नज़र पड़ा एक बुते[13] .परीवश[14] निराली सज-धज नई अदा का
जो उम्र देखो तो दस बरस की पक़ह्[15] वा आफ़त ग़ज़ब[16] ख़ुदा का
जो शक्ल देखो तो भोली-भाली जो बातें सुनिए तो मीठी-मीठी
प दिल वः पत्थर कि सर उड़ा दे जो नाम लीजे कभी वफ़ा[17] का

---

१. अचानक, २. पुष्पोद्यान के हृदय में स्पर्द्धा उत्पन्न करनेवाली, ३. काँटा, ४. भीरु, भयभीत; ५. चेतावनी, शिक्षा; ६. प्रातःकाल, ७. धृष्ट, ८. सौन्दर्य, ९. माशूक, १०. गुलाब के फूल जसा चेहरा, ११. गुलाब के फूल के रंग का कपड़ा या पोशाक, १२. गुलाब के फूल जैसा कपोल, १३. माशूक, १४. परी के ऐसा, १५. बला, आफ़त, जुल्म, भीषण; १६. प्रकोप; १७. वचन का पालन, प्रीति-निर्वाह, मुरौवत।

जो घर से निकले तो वह क़यामत[1] कि चलते-चलते क़दम-क़दम पर
किसी को ठोकर, किसी को छक्कड़, किसी को गाली निपट लड़ाका
यः राह चलने में चुलबुलाहट कि दिल कहीं है नज़र कहीं है
कहाँ का ऊँचा, कहाँ का नीचा, ख़याल किसको क़दम की जा[2] का
लड़ावे आँखें वः बेहेजाबी कि फिर पलक से पलक न मारे
नज़र जो नीची करे तो गोया[3] खुला सरापा[4] चमन हया[5] का
यः चंचलाहट यः चुलबुलाहट ख़बर न सर की न तन की सुध-बुध
जो चीरा[6] बिखरा बला से बिखरा न बन्द बाँधा क़ब्रा क़िबा[7] का
गले लिपटने में यों शिताबी[8] कि मिस्ल बिजली के इज़्तराबी[9]
कहीं जो चमका चमक-चमककर कहीं जो लपका तो फिर झपाका
न वह सँभाले किसी के सँभले न वह मनाये मने किसी के
जो क़त्ले[10]-आशिक प आके मचले तो ग़ैर का फिर न आशना[11] का
यः रम[12] यः नफ़रत[13] यः दूर खींचना यः नंग[14] आशिक के देखने से
जो पत्ता खटके हवा से लगकर तो समझे खटका निगह के पा[15] का
जतावे उल्फ़त[16] चढ़ावे अब्रू[17] उधर लगावट इधर तग़ाफ़ुल[18]
करे तबस्सुम[19] झड़प दे हरदम रविश[20] हठीली चलन दग़ा[21] का
'नज़ीर' हट जा, परे सरक जा, बदल के सूरत छिपा ले मुँह को
जो देख लेवेगा वह सितमगर[22] तो यार होगा अभी झड़ाका

यह नख-शिख रस्मी ढंग का नहीं, जिसमें माँग और चोटी से लेकर पाँव और पाँव की महावर तक हरएक अंग की रस्मी प्रशंसा की जाती है। इसमें वास्तविकता है, निराली सज-धज है और परी-जैसी प्रेयसी का चित्र खींचा गया है।

अपनी ग़ज़लों में 'नज़ीर' अपनी काल्पनिक तथा व्यक्तिगत अनुभवों का वर्णन करते हैं। एक ग़ज़ल में ओजपूर्ण कल्पना की सहायता से अपनी उन्मादग्रस्त अवस्था का चित्र खींचते हैं। उस ग़ज़ल की प्रथम पंक्ति यह है :

सेहर आया जोंहीं मैं कुल्बए एहज़ां में बेचारा
वहीं एकबारगी जोशे-जनूं ने दिल को ललकारा

फिर काफ़ी प्रबन्ध वो बनाव-शृंगार के साथ इस ललकार का जो परिणाम हुआ, उसका वर्णन करते हैं। मन्दिर में पहुँचते हैं और बुतों की पोटली बाँधकर भागते हैं; मूर्त्ति बनानेवाले

१. प्रलयकाल, २. स्थान, ३. मानो, ४. नख-शिख, ५. लज्जा, ६. पगड़ी का कपड़ा, ७. अँगरखा; ८. जल्दी, ९. बेचैनी, १०. प्रेमी का वध, ११. मित्र, १२. भागना, १३. घृणा; १४. बेइज्जती, १५. पैर, पांव; १६. प्रेम, १७. भौं, १८. बेपरवाही, १९. मुस्कान, २०. चाल-ढाल; २१. धोखेबाजी, २२. ज़ालिम, अत्याचारी।

हाँ-हाँ कहते रह जाते हैं। मस्जिद में जाकर मुसल्ला फाड़ते हैं और शजरे तोड़-फोड़ करते हैं। मधुशाला में घड़े-मटके, सुराही और प्याले इत्यादि को तोड़कर मधुशाला की मिट्टी को मदिरा से सींचते हैं। तदुपरान्त जंगल में जा निकलते हैं। वहाँ पर कभी 'फरहाद' को घेरते हैं और कभी 'मजनूँ' को जा मारते हैं। लड़के उनपर पत्थरों की वर्षा करते हैं, आसमान को चक्कर आता है और हूरें तमाशा देखती हैं। एक ओर यदि यह काल्पनिक चित्र है तो दूसरी ओर इस प्रकार की घटना का वर्णन है:

बगूले[1] उठ चले थे और न थी कुछ देर आंधी में
कि हम से यार से आ हो गई मुठभेड़ आँधी में
जताकर ख़ाक[2] का उड़ना दिखाकर गर्द का चक्कर
वहीं हम ले चलें उस गुलबदन[3] को घेर आँधी में
रक़ीबों[4] ने जो देखा यह उड़ाकर ले चला उसको
पुकारे: "हाय! यह कैसा हुआ अन्धेर आँधी में"
व: दौड़े तो बहुत लेकिन उन्हें आँधी में क्या सूझे
ज़[5] बस हम उस परी को लाये घर में घेर आँधी में
चढ़ा कोठे प दरवाजे को मूँद और खोलकर पर्दे
लगा छाती, लिये बोसे, किया हथफेर आँधी में
उठाकर ताक से शीशा लगा छाती से दिलवर[6] को
नशों में ऐश के क्या-क्या किया दिल सेर[7] आँधी में
कभी बोसा[8], कभी अँगिया प हाथ और गाह सीने[9] पर
लगे लुटने मज़े के संगतरे और बेर आँधी में
मज़े, ऐश वो तरब[10], लज़्ज़त, लगे यों टूटकर गिरने
कि जैसे टूटकर मेवों के होवें ढेर आँधी में
रक़ीबों की मैं अब ख़्वारी[11] ख़राबी क्या लिखूँ बारे
भरी नथनों में उनके ख़ाक दस-दस सेर आँधी में
किसी की उड़ गई पगड़ी किसी का फट गया दामन
गई ढाल और किसी की गिर पड़ी शमशेर[12] आँधी में
'नज़ीर', आँधी में कहते हैं कि अक्सर देव[13] होते हैं
मियाँ, हमको तो ले जाती हैं परियाँ घेर आँधी में

विषयवस्तु से बहस नहीं, कहना केवल यह है कि ग़ज़ल में भी एक श्रृंखलाबद्ध अनुभव का वर्णन सम्भव है। और 'नज़ीर' ने बार-बार श्रृंखलाबद्ध अनुभवों का वर्णन अपनी गजलों में

१. बवंडर, भँवर की तरह घूमती हुई हवा या आँधी; २. मिट्टी, ३. गुलाब के फूल की-सी कान्तिवाला, ४. प्रतिस्पर्द्धी, ५. चूँक, ६. मनमोहन; माशूक; ७. तृप्त, ८. चुम्बन, ९. कभी, १०. भोग-विलास, आमोद-प्रमोद; ११. दुर्गति, बेइज़्ज़ती; १२. तलवार, १३. राक्षस, भूत।

किया है। यह बात नहीं है कि किसी एक ख़याल से प्रभावित होकर या किसी ख़ास दृष्टिकोण के कारणवश ग़ज़ल में विचारों की शृंखला दिखाई पड़ जाती हो अथवा विषयों में एक प्रकार का लगाव एवं अनुरूपता पैदा हो जाती हो, जैसे 'ग़ालिब' की उस मशहूर ग़ज़ल में, जिसकी प्रथम पंक्ति है :

मुद्दत हुई है यार को मेहमां किये हुए + जोशे - क़दह से बज़्मे चिरागां किये हुए

या कभी-कभी 'दर्द' की ग़ज़लों में। 'नज़ीर' अक्सर किसी घटना-विशेष को अपनी ग़ज़ल का केन्द्र बनाते हैं। सारे शेर उसी एक केन्द्र के आस पास चक्कर खाते हैं और आपस में मिल-जुलकर एक शृंखलाबद्ध अनुभव का नक्शा तैयार करते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ये ग़ज़लें कामासक्त यौवन के स्मारक हैं और अतीत की घटनाओं के प्रतिबिम्ब। 'आँधी में' या 'इजारबन्द' वाली ग़ज़ल में इसी प्रकार की घटनाएँ हैं। घटनाएँ असली हों या काल्पनिक, वे कामासक्त यौवन के स्मारक हों अथवा कल्पना-जगत् के निवासी हों, 'नज़ीर' उन्हें ग़ज़ल की आम डगर से अलग होकर बयान करते हैं। कभी वह दूत के द्वारा पत्र भेजते हैं तो जब पत्र-वाहक सही-सलामत लौट आता है तो उससे पूछते हैं :

क़ासिद[1] सनम[2] ने ख़त को मेरे देख क्या कहा ?
हर्फ़े[3] - एताब[4] या सोख़ने[5] - दिलकुशा[6] कहा ?
तुझको क़सम है कि जो न पोशीदा[7] मुझसे तू
कहियो वही जो उसने मुझे बरमला[8] कहा

तदुपरान्त पत्र वाहक का उत्तर बयान करते हैं :

क़ासिद ने जब तो सुनके कहा "क्या कहूँ मैं यार"
पहले मुझी को उसने बहुत नासज़ा[9] कहा
फिर तुझको सौ एताब से झुंझलाके दम-ब-दम[10]
क्या-क्या कहूँ मैं तुझसे कि क्या-क्या बुरा कहा ?
'इसका मज़ा चखाऊँगा जाकर उसे शिताब'[11]
रह-रह इसी सोख़न[12] के तईं[13] बारहा[14] कहा
मेरी तो कुछ ख़ता[15] नहीं तूहीं समझ इसे
बेजा[16] कहा यह उसने मुझे या बजा[17] कहा
कहता था मैं तुझे कि न भेज उसको ख़त मियाँ
लेकिन 'नज़ीर' तूने न माना मेरा कहा'

---

१. पत्र-वाहक, २. माशूक़, ३. शब्द, ४. क्रोध, कोप; ५. बात, ६. हृदय को प्रफुल्लित करनेवाला, ७. गुप्त, ८. खुल्लम-खुल्ला, ९. अनुचित बात, १०. क्षण-प्रतिक्षण, ११. जल्द, शीघ्र; १२. बात, १३. को, १४. कई बार, १५. दोष, १६. अनुचित, १७. उचित।

कभी पत्र-वाहक के साथ इस प्रकार का व्यवहार होता है तो कभी माशूक़ 'नज़ीर' के पत्र पर आक्षेपों की बौछार करता है :

कल उसके चेहरे को हमने जो आफ़ताब लिखा
　　तो उसने पढ़के व: नामा[1] बहुत एताब[2] लिखा
जबीं को मह जो लिखा तो कहा हो चीं[3] बजबीं
　　यह कैसी इसको समझ थी जो माहताब[4] लिखा
चमकते दाँतों को गौहर[5] लिखा तो हँसके कहा
　　सितारे उड़ गये थे जो दुरे[6] ख़ुशाब[7] लिखा
लिखा जो मुश्के[8]-ख़ता[9] ज़ुल्फ़ को तो बल खाकर
　　कहा ख़ता की जो यह हर्फ़[10] नासवाब[11] लिखा
गुलाब अर्क़[12] को लिक्खा तो बोला नाक चढ़ा
　　इसे न इत्र मुयस्सर था[13] जो गुलाब लिखा
जिगर कबाब लिखा अपना तो कहा जलकर
　　भला जी ! क्या मैं शराबी था जो कबाब लिखा
हिसाबे-शौक़[14] का दफ़्तर[15] लिखा तो झुँझलाकर
　　कहा मैं क्या मुतसद्दी[17] था जो हिसाब लिखा
जो बे-हिसाब[18] लिखा इश्तियाके[19]-दिल तो कहा
　　व: किस हिसाब में है यह भी बेहिसाब लिखा
हुई जो रद्द[20]-वो-बदल ऐसी कितनी बार 'नज़ीर
　　तो उसने ख़त का हमारे न फिर जवाब लिखा

अब ऐसे माशूक़ को क्या कहिए कि जिसे कोई बात नहीं भाती। उसे सूर्य कहिए तो क्रोधान्वित होता है और उसके माथे की चन्द्रमा से उपमा दीजिए तो त्यौरी चढ़ाता है; चमकते दाँतों को मुक्ता कहिए तो हँसकर अप्रसन्नता प्रकट करता है और अलकों को चीनी-कस्तूरी कहिए तो बलखाने लगता है, पसीने को गुलाब कहिए तो नाक-भौं चढ़ाता है। और, यदि अपना वृत्तान्त कहिए तो वह भी सुना नहीं जाता। यदि अपने जिगर को कबाब लिखिए तो जलकर कहता है : "भला जी क्या मैं शराबी था जो कबाब लिखा", और लालसाओं का विवरण देखकर झुँझलाने लगता है। सारांश यह कि कुछ भी लिखिए, अपने प्रेम की कहानी या उसके सौन्दर्य की प्रशंसा, कुछ भी उसको भाता नहीं; और अन्त में परिणाम यह होता है कि वह पत्रों का उत्तर ही देना बन्द कर देता है

१. पत्र, २. क्रोध, अत्याचार; ३. ललाट, ४. माथे पर की सिकुड़न, त्यौरी; ५. चन्द्रमा, ६-७. मोती, ८. अच्छे पानीवाला, खूब चमकनेवाला; ९. कस्तूरी, १०. चीन देश (जहाँ की कस्तूरी मशहूर है); ११. बात, १२. अनुचित, १३. पसीना, १४. प्राप्त, लभ्य; १५. लालसा का अनुमान, १६. बही, रजिस्टर; १७. बही-खाता लिखनेवाला किरानी, १८. अगणित, १९. लालसा, २०. उलटा-पलटी।

यह तो पत्र-व्यवहार का हाल था। कभी भाग्य सहायता करता है तो आमने-सामने वार्त्तालाप होता है :

एक दिन उस मेह्र[1]-ख़ूबी के हुज़ूर[2] + बैठकर मैंने कहा ऐ रश्के[3]-हूर
हम करें इज़्ज़[4] वो नेयाज़[5] वो इन्किसार[6] + तुम करो जौर[7] वो जफ़ा[8] नाज़ वो गुरूर
कुछ सबब इसका बता जो इस घड़ी + यह तअज्जुब हो हमारे दिल से दूर
सुनके फ़र्माया[9] कि गुल ने बाग में + कब लिया बुलबुल के दिल को करके ज़ोर
शम्मा ने भी कब कहा परवाने[10] को + यह कि तू जल मुझ प होकर ना-सबूर[11]
बुलबुल वो परवाना जब आप ही गिरें + इसमें गुल और शम्मा का फिर क्या कसूर
इश्क़ में बूढ़े हुए तुम भी 'नज़ीर' + अब तलक तुममें न आया कुछ सऊर[12]

अत्याचार, परपीड़न, हाव-भाव तथा गर्व-घमण्ड तो माशूकों का धन्धा है; किन्तु 'नज़ीर' उसके दिल में घर करते हैं और इस बात की उन्हें ख़बर भी हो जाती है :

कल सुना हमने यः कहता था वह एक हमराज़[13] से
देखता था मुझको आज एक शख़्स[14] अजब अन्दाज़[15] से
वह नियाज़ वो इज्ज़ था उसकी निगह से आशकार[16]
जिस तरह तायर[17] किसी जा[18] थक रहे परवाज़[19] से
तू जो वाक़िफ़[20] हो तो जा[21] उसको बुला ला जल्द यां
मैं तसल्ली[22] दूं उसे कुछ शर्म से कुछ नाज़ से
है मेरा दिल उससे मिलने को निहायत[23] बेक़रार[24]
सुनके वह हमराज़ बोला उस बुते तन्नाज़[25] से
मैं तो उसको जानता हूँ नाम उसका है 'नज़ीर'
और ख़बर है मुझको उसकी चाह के आग़ाज़[26] से
तुम हो सादे[27] मेहरबाँ[28], उसको बखेड़े याद हैं
और सिवा इसके मेरा डरता है जी ग़म्माज़[29] से
सुनके यह हमराज़[30] से उसने कहा हँसकर, मियाँ,
कुछ भी हो हम तो मिलेंगे उस बखेड़े-बाज़ से

सारांश यह कि सभी जगह इसी सौन्दर्य और प्रेम की कहानी है; और ख़ाली-ख़ुली कहानी नहीं, ऐसी घटना है, जिसमें असलियत है और इसीलिए उसके वर्णन में असर भी है।

---

१. सुन्दरता का सूर्य, २. सामने, ३. जिससे हूर स्पर्द्धा करे, ४,५,६. विनम्रता, ७, ८. अत्याचार, ९. आदेश दिया, १०. चिराग़, ११. पतंग, १२. अधीर, १३. ढंग, ज्ञान; १४. भेद जाननेवाला मित्र, १५. व्यक्ति, १६. ढंग, १७. प्रकट, १८. पक्षी, १९. स्थान, जगह; २०. उड़ना, २१. अवगत, २२. सान्त्वना, २३. अत्यन्त, २४. अधीर, २५. चोंचलेबाज़, २६. प्रारम्भ, शुरू; २७. सीधे, निश्छल, २८. कृपालु, २९. चुगलख़ोर, ३०. मित्र।

यह तो जानी हुई बात है कि माशूक़ आशिक़ का दिल छीन लेते हैं। वे पर्दा-नशीन हों या बे-परदा सबका यही धन्धा है। और आशिक़ यदि दिल खो न बैठे तो फिर आशिक़ कहलाये कैसे ? किन्तु दिल के जाने की जैसी जीती-जागती तसवीर 'नज़ीर' ने खींची है वैसी शायद ही किसी अन्य कवि ने खींची हो :

लगाया दाम[1] ज़ुल्फों[2] की शिकन[3] ने पेच ने बल ने
बनाया पान ने रंग और सँभाला सेंहर[4] काजल ने
मेरा दिल, देखते ही उस सनम[5] को, हो गया शादां[6]
निगाहें दम-ब-दम[7] सौ ऐश-वो-इशरत[8] से लगीं चलने
कभी ख़ुश होके हू-हू की कभी बोला अहाहाहा ?
अजब लूटे मज़े उस वक्त नज़ारों[9] की अटकन ने
न बोला मुँह से हरगिज़[10] देखकर वह ख़ुश-दिल[11] मेरी
मगर कुछ कुछ तबस्सुम[12] की शकर[13] लब[14] से लगा मलने
मुझे कर ज़ुल से गाफ़िल[15] भोली सूरत का बना नक्शा
किया एक बार मुँह ग़ुस्से में सुर्ख़ ऐयारे-अचपल ने
अब उस ज़ालिम[16] के हाथों से बचाऊँ क्योंकर अपना जी
उठाकर झट क़दम वां से लगा घर की तरफ़ चलने
चला डरता जो आगे को तो फिर वह हँसके यों बोला
उड़ाकर मुफ़्त[17] नज़ारे[18] वृथा अब तुम लगे टलने
अदब[19] से यों कहा अब तो हुई तक़सीर[20] यह मुझसे
लगे क़तरे पसीने के मेरे मुँह से वहीं ढलने
लगे ग़म्ज़े[21] लपाने तीर उधर दिखलाके सौ फुर्ती
इधर से तेग़ अब्रू[22] की भी फिर क्या-क्या लगी चलने
उधर आँखों के जादू ने बनाया बावला क्या-क्या
इधर कीं फुर्तियाँ क्या-क्या निगाहों की भी छल बल ने
दिखाकर मुझको अपनी वां ज़बरदस्ती के यह नक़्शे
वहीं दिल ले लिया झटपट 'नज़ीर' उस शोख़ चंचल ने

देखा आपने ! 'नज़ीर' ने कैसे जीवन्त चित्र खींचे हैं। 'नज़ीर' का उस सनम को देखते ही आह्लादित होना और नज़ारों के मजे लूटना, उस सनम का इसकी प्रसन्नता को देखना, किन्तु बाह्य रूप से कोई 'नोटिस' न लेना, फिर एकाएक क्रोध से मुँह लाल कर लेना, 'नज़ीर'

१. फन्दा, २. अलकों, ३. सिकुड़न, ४. जादू, ५. माशूक, ६. मग्न, ख़ुश; ७. क्षण-प्रतिक्षण, ८. भोग-विलास, ९. नज़रबाजी, दृश्य-दर्शन; १०. कदापि, ११. सहृदयता, १२. मुस्कान, १३. चीनी, मिठास; १४. ओठ, १५. बेपरवाह, १६. अत्याचारी, १७. निःशुल्क, १८. दर्शन, १९. शिष्टता, २०. अपराध, कसूर, २१. कटाक्ष, २२. भौं।

का घर की ओर चलना और उस सनम का हँसकर कहना : "उड़ाकर मुफ्त नज़ारे बचा अब तुम लगे टलने', 'नज़ीर' का माफी माँगना और पसीने-पसीने होना, फिर तिरछी नज़रों, भ्रू-भंगियों तथा आँखों के जादू का आक्रमण, और उस शोख़ चंचल का झट-पट 'नज़ीर' का दिल ले लेना इत्यादि सारे ब्योरे नजर के सामने घूमने लगते हैं। कहीं पर बलात्कार के चित्र हैं तो कहीं 'नज़ीर' दिल की जुदाई पर आँसू बहाते हैं :

नज़ीर, आह ! दिल की जुदाई बुरी है + बहें क्यों न आँखों से आँसू के नाले
अगर दस्तरस[1] हो तो कीजे मुनादी[2] + कि फिर कोई सीने में दिल को न पाले

लेकिन 'नज़ीर' जानते हैं कि सीने में दिल का होना अनिवार्य है और फिर दिल की जुदाई भी आवश्यक है। वह जानते हैं कि हुस्नवाले दिल ले जायेंगे। इसीलिए वह दिल को ख़ुदा के हवाले करते हैं, उससे गले मिलकर रोते हैं, उसको समझाते-बुझाते हैं और फिर सुन्दरियों से उसके विषय में सिफ़ारिश करते हैं। ये सारी बातें किस ख़ूबी से इस ग़ज़ल में कही गई हैं :

मियाँ दिल ! तुझे ले चले हुस्नवाले[3] + कहूँ और क्या, जा ख़ुदा के हवाले
इधर आ ज़रा तुझसे मिलकर मैं रो लूँ + तू मुझसे ज़रा मिलके आँसू बहा ले
चला अब तो साथ उनके तू बेबसी[4] से + लगा मेरे पहलू में फ़ुर्क़त[5] के भाले
ख़बरदार उनके सिवा ज़ुल्फ़[6] वो रुख़[7] के + कहीं मत निकलना अँधेरे-उजाले
तेरे और भी हैं तलबगार[8] कितने + मुबादा[9] कोई तुझको वां से उड़ा ले
कहीं क़हर[10] ऐसा न कीजो कि मुझको + बुलाने पड़ें फ़ाल[11] ताबीज़[12] वाले
किसी का तो कुछ भी न जावेगा लेकिन + पड़ेंगे मुझे अपने जीने के लाले
तेरी कुछ सिफ़ारिश भी मैं उनसे कर दूँ + करेगा तू क्या याद मुझको भला, ले
सुनो दिलबरो[13]? गुलरुख़ो[14]! महजबीनो[15] + मैं तुम पास आया हूँ एक इल्तजा[16] ले
ख़ुदा की रज़ा[17] या मुहब्बत से अपनी + पड़ा अब तो आकर तुम्हारे य(ह) पाले
तुम अपने ही क़दमों तले इसको रखिये + तसल्ली दिलासे में हरदम सँभालें
कभी इसको तकलीफ़ ऐसी न दीज्यो + कि ग़म में यह रहकर करे आह वो नाले
तुम्हारे यः सब नाज़ उठावेगा लेकिन + वही बोझ रखियो जिसे यह उठा ले

अधिक कहने की न आवश्यकता है न गुंजाइश। स्पष्टतया विदित है कि 'नज़ीर' ने ग़ज़ल में बहुत-से प्रयोग किये और बहुत सफल। बस, एक और उदाहरण पर ध्यान दिया जाय :

कहा जो हमने "हमें दर[18] से क्यों उठाते हो ?"
कहा कि "इसलिए तुम यां जो ग़ुल मचाते हो"

---

१. पहुँच, अख़्तियार; २. घोषणा, ३. सुन्दर लोग, ४. विवशता के साथ, ५. विरह, ६. अलकें, ७. मुँह, चेहरा; ८. ग्राहक, चाहनेवाला; ९. ऐसा न हो कि, १०. कोप, अत्याचार; ११. शकुन, १२. यन्त्र, १३ माशूको, १४. गुलाब के फूल के-से चेहरेवालो, १५. चाँद-जैसे ललाटवालो, १६. प्रार्थना, १७. रज़ामन्दी, इच्छा, अनुमति; १८. द्वार, दरवाजा।

कहा "लड़ाते हो क्यों हमसे गै़र[1] को हरदम ?"
कहा कि "तुम भी तो हमसे निगह लड़ाते हो"
कहा जो हाले दिल अपना तो उसने हँस-हँसकर
कहा "ग़लत है यः बातें जो तुम बताते हो"
कहा जताते हो क्यों हमसे रोज़ नाज़[2] वो अदा[3] ?
कहा कि "तुम भी जो चाहत[4] हमें जताते हो"
कहा कि "अर्ज़[5] करें हम प जो गुज़रता है ?"
कहा "ख़बर[6] है हमें क्यों ज़बाँ प लाते हो"
कहा कि "रूठे हो क्यों हमसे क्या सबब[7] इसका ?"
कहा "सबब है यही तुम जो दिल छिपाते हो"
कहा कि "हम नहीं आने के यां" तो उसने 'नज़ीर'
कहा कि "सोचो तो क्या आपसे तुम आते हो ?"

पूरी ग़ज़ल कथोपकथन है। ग़ज़ल यदि माशूक से बातें करने को कहते हैं तो 'नज़ीर' में इस प्रकार के उदाहरण बहुत मिलेंगे।

जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि 'नज़ीर' ग़ज़ल में लकीर के फ़क़ीर न बने और बँधे-टँके विषयों का प्रचलित ढंग से अनुकरण न किया। ग़ज़ल के क्षेत्र में भी 'नज़ीर' की हैसियत एक प्रवर्तक की है। उन्होंने ग़ज़ल में नये-नये प्रयोग किये, उसकी सम्भावनाओं का मूल्यांकन किया, विषय तथा रूप दोनों में स्वतन्त्रता और मौलिकता से काम लिया, ग़ज़ल की विशृंखलता और बिखराव को दूर करने के लिए कई ढंग निकाले और यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दी कि ग़ज़ल का आकार स्थिर रखते हुए भी उसमें नज़्म लिखी जा सकती है। यह 'नज़ीर' की विशिष्ट कीर्त्ति है। यदि 'नज़ीर' नज़्में न भी लिखते तो भी उनकी ये 'नज़्मी ग़ज़लें' उनके युग-प्रवर्त्तन और काव्यगत महत्ता के जीवन्त स्मारक होतीं। आश्चर्य है कि ऐसे समय में जब बने-बनाये रास्ते पर चलना ही साधारण काम था, जब नई राह निकालने का ध्यान भी किसी को न था, जब ग़ज़ल के घिसे-पिटे सिद्धान्त प्रकृति के नियमों की तरह अटल समझे जाते थे, ऐसे समय में और ऐसे वातावरण में 'नज़ीर' ने विचार-स्वातन्त्र्य का अप्रतिम प्रमाण उपस्थित किया। उन्होंने नये-नये प्रयोग किये, नये-नये साँचे बनाये और ग़ज़ल की टेकनीक को बिल्कुल बदल दिया। अफ़सोस है तो इस बात का कि किसी ने 'नज़ीर' के महत्त्व को न समझा और उनके बनाये हुए रास्ते पर चलने का ख़याल भी न किया। यदि ग़ज़ल कहनेवाले कवि 'नज़ीर' के प्रयोगों का मूल्य-महत्त्व समझते और 'नज़ीर' को अपना पथ-प्रदर्शक बनाते, तो आज उर्दू-शायरी और उर्दू-ग़ज़ल अपनी इस पतितावस्था से उठकर बहुत उच्च स्थान पर होती। लोग भाषा और ग़ज़ल के मानकों एवं स्तर की भूल-भुलैयों में इस प्रकार विलीन हुए कि उन्हें कोई मुक्ति-मार्ग न मिल सका। मैं यह नहीं कहता कि जो उदाहरण मैंने प्रस्तुत किये हैं, वे सब-के-सब सफल हैं और

१. बेगाना आदमी, शत्रु; २-३. हाव-भाव, ४. प्रेम, चाह; ५. निवेदन, ६. कारण।

उनमें कोई खामी और झोल नहीं है। लेकिन मेरा कहना यह है कि नज़ीर ने जो प्रयोग किये, वे विचारणीय हैं और जहाँ पर इस प्रकार के अनुभवों की कमी है, वहाँ पर 'नज़ीर' के प्रयासों के मूल्य-महत्त्व का अनुमान करना सम्भव नहीं।

प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि 'नज़ीर' ग़ज़लों में भी अपने विचारों और व्यक्तिगत अनुभवों का शृंखलाबद्ध एवं क्रमबद्ध वर्णन करते हैं। उनकी नज़्मों में भी अनिवार्य रूप से शृंखला तथा क्रमबद्धता की कारीगरी है। वह किसी अनुभव के टुकड़े प्रस्तुत नहीं करते। उनकी प्रत्येक नज़्म विविध भावों तथा आवेगों का गुलदस्ता है। वह सामूहिकता के बदले विस्तार से काम लेते हैं। ब्यवरों पर ध्यान रखते, बल्कि ब्यवरों का चित्र खींचने में एक विशेष प्रकार के आनन्द का अनुभव करते हैं और इस काम की उनमें अच्छी क्षमता है। लेकिन कभी-कभी वह ब्योरों में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि सम्पूर्ण कविता के सौन्दर्य को भूल जाते हैं। जो कुछ भी हो, 'नज़ीर' ने ग़ज़ल को काव्य-कला की उपलब्धि न समझा और अपनी कविता का अधिक-से-अधिक भाग ग़ज़ल को ही न अर्पित करते रहे। ग़ज़ल की अपेक्षा नज़्म ने उनका आह्वान अधिक किया और वे स्वागत की मुद्रा में उसकी ओर बढ़े। अन्य कवियों ने यह पुकार न सुनी; और यदि सुनी भी तो उसकी ओर ध्यान न दिया। यदि 'नजीर' काव्य की चिरस्मरणीय कृतियाँ न भी छोड़ जाते तो भी उनका व्यक्तित्व भविष्य के लिए पथ-प्रदर्शक होता, जो भावी कवियों का पथ-प्रदर्शन अच्छे और स्वास्थ्यवर्द्धक दिशा की ओर करता। यदि दुःख है तो इस बात का कि 'नज़ीर' की नज़र बुलन्द न थी और वह पाश्चात्त्य साहित्य से अवगत न हो सके। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि इसमें 'नज़ीर' का दोष ही क्या था; कसूर है तो उस समाज और माहौल का, जिसमें वे पले और परवान चढ़े। यदि पाश्चात्त्य साहित्य के उदाहरण 'नज़ीर' के सामने होते तो वे उर्दू-कविता के लिए अधिक-से-अधिक मूल्यवान् कृतियाँ छोड़ जाते। अस्तु, यही बहुत है कि उन्होंने ऐसे काव्य-रूपों को चुना, जिनमें शृंखलाबद्ध अनुभवों एवं रूपकों की अभिव्यक्ति संभव थी।

उर्दू-कविता के कुछ प्रचलित विषय 'नज़ीर' की कृतियों में भी पाये जाते हैं। सूफ़ी मत के प्रभाव से अनेक में एक का सौन्दर्य-दर्शन आम विषय हो गया था। इस प्रकार के उदाहरण 'नज़ीर' की कविता में भी मिलते हैं :

तनहा[१] न उसे अपने दिले[२]-तंग में पहचान
हर बाग़ में हर दश्त[३] में हर संग[४] में पहचान
मंज़िल[५] में मुक़ामात[६] में फ़रसंग[७] में पहचान
बेरंग[८] में बारंग[९] में नैरंग[१०] में पहचान
नित 'रूम' में और 'हिन्द' में और 'ज़ंग'[११] में पहचान
हर राह में हर साथ में हर संग में पहचान

---

१. अकेला, २. संकीर्ण-हृदय; ३. मरुस्थल, ४. पत्थर, ५. ठहरने की जगह, ६. स्थान, ७. कोस, तीन मील की दूरी; ८. बिना रंगवाला, ९. रंगवाला, १०. विचित्रता, ११. अबिसीनिया, हबश-देश।

हर अज़्म[1] इरादे में हर आहग[2] में पहचान
हर धूम में हर सुलह में हर जंग में पहचान
हर आन में हर बात में हर ढंग में पहचान
आशिक़[3] है तो दिलबर[4] को हर एक रंग में पहचान

विषय घिसापिटा है, लेकिन उसका वर्णन 'नज़ीर' अपने विशिष्ट रंग में करते हैं। वे जगत् के दर्शक थे और अपनी जानकारी का प्रमाण इस नज़्म में प्रस्तुत करते हैं। 'नज़ीर' 'दर्द' की तरह आध्यात्मिक रहस्यों से अवगत न थे, लेकिन वे कवि थे और अनुभव-जगत् पर उनका अधिकार था। इसलिए वे सभी प्रकार के अनुभवों को छन्दोबद्ध करते हैं। उनकी कविताओं में कामुकता भी है और अध्यात्म-प्रेम की उच्च तथा सूक्ष्म अनुभूतियाँ भी। हाँ, तो 'नज़ीर' अध्यात्म-प्रेम के रहस्यों से अवगत न थे, लेकिन वे प्रेम के ऊँचे तथा मोहक स्थलों को जानते थे :

है चाह फ़क़त[1] एक दिलबर[2] की फिर और किसी की चाह नहीं
एक राह उसी से रखते हैं फिर और किसी से राह नहीं
यां जितना रंज वो तरद्दुद है हम एक से भी आगाह[6] नहीं
कुछ मरने का सन्देह नहीं कुछ जीने की परवाह नहीं
हर आन[8] हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त अमीरी है बाबा
जब आशिक मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी[9] है बाबा
जिस सिम्त[10] नज़र-भर देखे हैं उस दिलबर की फुलवारी है
कहीं सब्ज़ी की हरियाली है कहीं फूलों की गुलकारी[11] है
दिन-रात मगन ख़ुश बैठे हैं और आस उसी की भारी है
बस आप ही वह दातारी है और आप ही वह भंडारी है
हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त अमीरी है बाबा
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा
हम चाकर जिसके हुस्न के हैं वह दिलबर सबसे आला[12] है
उसने ही हमको जो बख़्शा[13] उसने ही हमको पाला है
दिल अपना भोला-भाला है और इश्क़[14] बड़ा मतवाला है
क्या कहिए और 'नज़ीर' आगे अब कौन समझनेवाला है
हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त अमीरी है बाबा
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा

---

१. निश्चय, संकल्प; २. स्वर, राग; ३. प्रेमी, ४. मन को चुरानेवाला, माशूक; ५. केवल, मात्र; . मनमोहन, माशूक; ७. अवगत ८ क्षण, समय; ९. उदासीनता, १०. ओर, ११. नक्क़ाशी, १२. बड़ा, ऊँचा, अच्छा, शिष्ट; १३. प्रदान किया, १४. प्रेम।

'नज़ीर' की एक कविता है, जिसका शीर्षक है 'योगी का सच्चा रूप'। उनके हृदय में अकस्मात् यह आकांक्षा होती है कि जिसका प्रत्येक स्थान पर गुणगान हो रहा है, उसे किसी प्रकार से देखा जाय। वह योगी का रूप धारण करके घर-घर, दुकान, बाजार और गली-कूचों में उसे ढूँढ़ते हैं। जो सामने आता है, उससे पूछने लगते हैं : "कहो प्यारे, हमारे यार को तुमने कहीं देखा?" लेकिन सफलता कहाँ?—आश्चर्य-रूपी समुद्र में ज्वार उठता है; मस्जिद, मंदिर, पाठशालाओं और तीर्थ-स्थानों में भ्रमण किया, लेकिन कुछ पता न चला। अन्त में जंगल की राह ली। वहाँ परेशानी के अतिरिक्त कुछ हाथ न लगा। परिणाम यह हुआ कि—

पड़ा था रेत में और धूप में सूरज से जलता था
लगी थीं दिल की आँखें यार से और जी निकलता था

इसी दशा में उनकी कठिनाई दूर होती है और दिल की तमन्ना पूरी होती है :

जब इस अहवाल[1] को पहुँचा तो वह महबूबे[2] बे-परवा[3]
वहीं सौ बेक़रारी[4] से मेरी बालीं[5] प आ पहुँचा
उठाकर सर मेरा ज़ानू[6] प अपने रखके फ़रमाया[7]
कहा ले देख ले जो देखना है अब मुझे इस जा[8]
अयां[9] है इस घड़ी करने तेरे पर भेद पिनहानी[10]
यह सुन परख पहले हम आशिक़[11] को अपने आज़माते[12] हैं
जलाते हैं रुलाते हैं सताते हैं बुलाते हैं
हर एक अहवाल में जब ख़ूब साबित[13] उसको पाते हैं
उसी से आके मिलते हैं उसी को मुँह दिखाते हैं
उसे पूरा समझते हैं हम अपने ध्यान का ध्यानी
सदा[14] महबूब की आई जोहीं कानों में वां मेरे
बदन में आ गया जी और वहीं दुख दर्द सब भूले
फिर आँखें खोलकर दिलवर[15] के मुँह पर टुक नजर करके
ज़मीन वो आसमां चौदह तबक़[16] के खुल गये पर्दे
मिटी एक आन[17] में सब कुछ ख़राबी वो परीशानी
हुई जब आके यकताई[18] दूई[19] का उठ गया पर्दा
जो कुछ वह्म[20] वो वग़ा[21] थे उड़ गए एक दम में हो पारा
'नज़ीर'! उस दिन से हमने फिर जो देखा ख़्वाब हर एक जा
वही देखा वही समझा वही जाना वही पाया
बराबर हो गये हिन्दू मुसलमां गिब्र[22] वो नसरानी[23]

---

१. दशा, २. माशूक़, ३. ध्यान नहीं देनेवाला, ४. अधीरता, ५. सिरहाने, ६. घुटना, ७. आदेश दिया, ८. जगह पर, ९. प्रकट, १०. छिपा हुआ, ११. प्रेमी, १२. जाँचते-तौलते हैं, १३. दृढ़, स्थिर; १४. आवाज़, १५. माशूक़, दिल ले जानेवाला, १६. परत, तह, १७. क्षण, १८. अद्वितीयता, विलक्षणता; १९. द्वैत भाव, २०. भ्रान्ति, २१. लड़ाई, झगड़ा, झंझट; २२. अग्नि-पूजक, २३. ईसाई।

देखा ? 'नज़ीर' कैसे ऊँचे स्थान पर पहुँचते हैं। उनका यह कहना कि "जमीन वो आसमां चौदह तबक़ के खुल गए पर्दे"। उनकी नज़रों से दुई का पर्दा उठ गया; दृष्टि में संकीर्णता का कहीं चिह्न-मात्र भी दिखाई नहीं पड़ता। उनके लिए "हिन्दू-मुसलमान, गिब्र वो नसरानी" सब बराबर थे। यही वजह है कि वह एक ओर 'सलीमचिश्ती' के स्तवन में संलग्न होते हैं तो दूसरी ओर, 'गुरु नानक' की महिमा स्वीकार करते हैं :

हैं कहते 'नानकशाह' जिन्हें वह पूरे हैं आगाह[१] गुरु
वह कामिल[२] रहबर[३] जग में हैं यों रौशन[४]-जैसे माह गुरु[५]
मक़सूद[६], मुराद[७], उम्मीद, सभी बर[८] लाते हैं दिलख़्वाह[९] गुरु
नित लुत्फ़[१०] वो करम[११] से करते हैं हमलोगों का निर्वाह गुरु
इस बख्शिश[१२] के इस अज़्मत[१३] के हैं बाबा नानकशाह गुरु
सब सीस नवा अर्दास करो और हरदम बोलो 'वाह गुरु'

इसी तरह कभी वह 'हज़रत अली' के चमत्कारों का वर्णन करते हैं और कभी 'किशुन कन्हैया की बाँसुरी' सुनकर 'जय-जय हरि-हरि' कह उठते हैं। और, जहाँ ईद वो शबे-बरात पर कविताएँ लिखते हैं वहाँ होली, दिवाली, वसंत का रंगीन वो चमत्कारपूर्ण वर्णन करते हैं। बात यह है कि 'नज़ीर' संकुचित हृदय और संकीर्ण दृष्टिवाले व्यक्ति न थे; उनके हृदय में इतनी गुंजाइश थी कि सारी मानवता उसमें समा सकती थी।

मैंने कहा है कि 'नज़ीर' की कविताओं में उच्चकोटि का आनन्ददायक प्रेम भी है और कामुकता भी। उनकी अधिकांश कविताएँ कामासक्त यौवन के स्मारक हैं, और जो विषय इन कविताओं के प्राण हैं वे रस्मी ढंग के नहीं; उनका आधार वास्तविकता पर है, उनसे वास्तविकता की गन्ध आती है। सौन्दर्य एवं प्रेम से 'नज़ीर' अवगत थे। इस प्रकार की कविताओं में कामुकता का प्राधान्य है। उनमें कल्पना का जोश कम है और पवित्रता भी नहीं। उनमें वह ओज, वह भाव नहीं, जिसे सही अर्थ में प्रेम कहते हैं। हाँ, इश्कबाजी अवश्य है। 'नज़ीर' का माशूक़ पर्दानशीन नहीं, बाज़ारू है। उन्हें 'दीदाबाज़ी' का चस्का है; वह सौ 'मक्र वो फ़न' से, सौ रंग वो रूप भरकर 'ख़ूबां की दीद' करते हैं, इसी आशिक़ी का दम भरते हैं, इसी आशिक़ी को जीवन की उपलब्धि समझते हैं, इसी आशिक़ी के आकर्षण में संसार की निस्सारता तथा जीवन की अल्प अवधि जैसी बातों को भूल जाते हैं।

'नज़ीर' का महत्त्व इस बात में है कि वे प्रेम-सम्बन्धी प्रचलति विषयों का वर्णन प्रचलित ढंग से नहीं करते हैं। उनकी विशेषता यह है कि वे अपनी निजी घटनाओं और स्वयं देखी हुई बातों

---

१. अवगत, २. पूर्ण, पारंगत; ३. पथ-प्रदर्शक, ४. प्रकट, प्रत्यक्ष; ५. चन्द्रमा, ६. अभीष्ट, ७. इच्छा, ८. पूरी करते हैं, ९. इच्छानुकूल, १०. कृपा, ११. उदारता, १२. देन, १३. बड़ाई।

को अपने विशिष्ट रंग में प्रतिबिम्बित करते हैं। जिस जीवन-पद्धति से वे परिचित थे, जिसके वे अभ्यस्त थे, उसी का सुन्दर चित्रण करते हैं। आम उर्दू-कवियों की तरह उनकी कविता माहौल से अलग होकर शून्य में साँस नहीं लेती। वे अपनी कविताओं में अपने माहौल के रूप-रंग का चित्रण करते हैं। इसीलिए 'नज़ीर' में कोई वस्तु भी कृत्रिम, काल्पनिक, तथ्य एवं वास्तविकता से दूर नहीं है। प्रत्येक व्यवरा वास्तविकता में डूबा हुआ होता है।

सुषुप्तावस्था में भी 'नज़ीर' की कामुकता नहीं जाती। रात्रि के समय वे अचेत सो रहे थे कि अचानक स्वप्न में एक इमारत नज़र आई। द्वार खुला पाकर वे भीतर जा पहुँचते हैं और वहाँ पर एक विधु-वदनी माशूक़ा दीख पड़ी :

सूरत वः क़ह्र[1] चाँद - सा मुखड़ा वः बे - बहा[2]
और हुस्न[3] का बयान[4] तो होता नहीं ज़रा[5]
नक़्शा वः जिसके पाँव पलोटे परी पड़ी

उसके सौन्दर्य का विवरण इस प्रकार करते हैं :

ख़ूँरेज़[6] अब्रू[7] जान की क़ातिल[8] हर एक निगाह
मिज़गां[9] वः बर्छियों को लिये तुल रही सिपाह[10]
मेंहदी से उँगलियों ने किये ख़ूने-बेगुनाह[11]
आँखों में खिंच रहा था वः काजल ग़ज़ब सियाह
पड़ जाए जिससे दिल में फ़रिश्तों के हड़बड़ी
ज़ुल्फ़ें[13] वः मुश्के[14]-नाब - सी चेहरा वह चाँद - सा
जुगनू रहा गले में सितारा - सा जगमगा
गहने का वस्फ़[15] या कि बदन की कहूँ सफ़ा[16]
जाता था सुर्ख़ जोड़े में तन यों झमक दिखा
गोया[17] शफ़क़[18] में आन के बिजली चमक पड़ी

यह निष्ठुर विधु-वदनी भी एक बाज़ारू माशूक़ा है :

चाहत[19] में अपनी डूबा हुआ देखा जों मुझे
हँसकर लिपट गले से लगी कहने यों मुझे
आ, इस महल में चलके करें ऐश[20] दो घड़ी

'नज़ीर' की तो यही आन्तरिक अभिलाषा थी; फिर क्या था, उनकी बन आई :

लेकर बग़ल में उसको लगाया जों ही गले
सौ इशरतों[21] के दिल प मेरे खुल गये दरे[22]

---

१. बला, आफ़त, कोप; २. अमूल्य, ३. सौन्दर्य, ४. वर्णन, ५. थोड़ा, तनिक; ६. रक्तपात करनेवाला, ७. भौं, भृकुटी; ८ घातक, वध करनेवाला; ९. बरौनी, १०. पल्टन, ११. निर्दोष, १२. देवदूत, १३. अलकें, १४. स्वच्छ कस्तूरी, १५. गुण १६. निर्मलता, १७. मानो, १८. उषा की लालिमा, १९. प्रेम, चाह; २०. भोग-विलास, २१. सुख, आनन्द, २२. द्वार, दरवाजे।

हाज़िर हुए जब आन के सब ऐश और मज़े
सीने से सीना मिल गया औ' लब[1] से लब मिले
लुटने लगी बहार मज़ों की घड़ी - घड़ी

इस प्रकार के स्वप्न 'नज़ीर' अक्सर देखते हैं :

कल देखा ख़्वाब[2] अजब हमने एक चंचल शोख़ परी झट से
एक बार गले से आ लिपटी और लेट पलंग पर झट - पट से
सीने से सीना लगते ही दिल जोश में आया झट - पट से
कुछ और इरादा[3] था दिल में कमबख़्त[4] किसी की आहट से
जब ऐन[5] ख़ुशी का वक़्त हुआ तब खुल गई आँख मेरी पट से
उस शोख़[6] परी के जोबन का एक बाग़ खुला था क्या कहिए
और सुर्ख़ बदन में जोड़ा था और इत्र लगा था क्या कहिए
देख उसका सीना हुस्न भरा क्या जोश उठा था क्या कहिए
सब दिल की दिल के बीच रही क्या ऐश मज़ा था क्या कहिए
जब ऐन मज़े का वक़्त हुआ तब खुल गई आँख मेरी पट से

सुषुप्तावस्था हो या जाग्रत् 'नज़ीर' हमेशा इसी तरह की बहार लूटते हैं। सभी जगह पर उनका स्तर यही है कि किसी चीज़ से इश्क़बाजी में सहायता मिलती है या वह इसमें बाधक होती है। वे उसी चीज़ की प्रशंसा करते हैं, जो उनके प्रेम-सम्बन्धी अनुभवों को और भी रसमय बनाते हैं। 'अँधेरी रात' की वह प्रशंसा करते हैं तो इसलिए कि वह प्रेमी के बहुत काम आती है :

बोसा[7] लिया मुँह मोड़ अलग हो रहे चुपके
छाती से लगा छोड़ अलग हो रहे चुपके
सीने का वह फल तोड़ अलग हो रहे चुपके
अग़ियार का सर फोड़ अलग हो रहे चुपके
इस ढब की तो रखती है अजब घात अँधेरी
काम आती है आशिक़[8] के बहुत रात अँधेरी

वह आँधी की बड़ाई भी करते हैं तो इसीलिए कि 'हमसे यार से आ हो गई मुठभेड़ आँधी में'। इस कविता से स्पष्टतया विदित होता है कि यह किसी सच्ची घटना का वर्णन है। यही वास्तविकता 'नज़ीर' की कविताओं को प्रभावशाली बनाती है। 'चाँदनी' इसी प्रकार की प्रभावशाली नज़्म है :

---

१. ओठ, २. स्वप्न, ३. इच्छा, निश्चय ; ४. अभागा, ५. ठीक, ६. धृष्ट, ७. चुम्बन, ८. प्रेमी।

सेह्न[1]-चमन में वाहवा ज़ोर[2] खिली थी चाँदनी
चाँद हिलोरें लेता था और खिली थी चाँदनी
आया था यार-गुलबदन पहनके बादला ज़री[4]
चमके थी तार-तार में मह[5] की झलक ज़री[6]-ज़री
बोस-वो-किनार[7] वो जाम - वो - मै[8] ऐश[9] वो तरब[10] हँसी-खुशी
इसमें कहीं से यक-ब-यक मुर्ग़ - सेहर[11] ने बाँग दी
सुबह हुई गजर बजा फूल खिले हवा चली
यार बग़ल से उठ गया जी ही की जी में रह गई
शब[13] को दिलों में वाहवा ज़ोर[14] मजों के तार थे
हमसे दो-चार[15] यार था यार से हम दो-चार थे
दोनों दिलों में प्यार था दोनों गलों में हार थे
वस्ल[16] से बेक़रार[17] थे ऐश के कार-वो-बार थे
सीने में आसमान के तीर हसद[18] से पार थे
एक पलक में नागहां[19] सब वः मजे शरार[20] थे
सुबह हुई गजर बजा फूल खिले हवा चली
यार बग़ल से उठ गया जी ही की जी में रह गई

हर बन्द में अन्तिम शेर की पुनरावृत्ति एक विचित्र प्रभाव पैदा करती है। लयदारी में स्पष्ट रूप से वृद्धि होती है और साथ ही दिल पर चोट-सी लगती है और आशिक़ के दुर्भाग्यपूर्ण जीवन का चित्र हृदयंगम हो जाता है। केवल यही नहीं, चाँदनी रात का चित्ताकर्षक दृश्य भी सामने घूमने लगता है।

'नज़ीर' 'दर्द' की भाँति अध्यात्म - प्रेम के रहस्यों से अवगत हों, या न हों लेकिन वे सांसारिक प्रेम और विलासिता की सभी परिस्थितियों की जानकारी रखते थे। बात यह है कि उनकी आँखें हर रंग में खुली हुई थीं। वे संसार की बहुरंगी को देखते थे और ये आश्चर्यजनक दृश्य उन्हें लिखने के लिए उत्प्रेरित करते थे। वे चिन्तन-मनन भी करते थे, और जिन चीज़ों को वे देखते थे, उनकी तह तक पहुँचना चाहते थे, किन्तु सफलता कहाँ ? 'नज़ीर' क्या, कोई भी व्यक्ति इस रहस्य को न जान सका :

जहाँ[21] में क्या-क्या ख़िरद[22] के अपनी हरएक बजाता है शादियाने[23]
कोई हकीम[24] और कोई मोहन्दिस[25] कोई हो पंडित कथा बखाने

---

१. प्रांगण, २. ख़ूब, अधिक; ३. गुलाब के फूल-जैसे शरीरवाला, ४. सुनहले तारों का काम किया हुआ, ५. चन्द्रमा, ६. थोड़ी-थोड़ी, ७. चुम्बन-आलिंगन, ८. प्याला और सुरा, ९. भोग-विलास, १०. हँसी-खुशी, ११. मुर्ग़ा, चिड़िया; १२. प्रात:काल, १३. रात, १४. अधिक, १५. आमने-सामने, १६. मिलन, १७. अधीर, १८. ईर्ष्या, डाह; १९ अचानक, २०. चिनगारी की तरह लुप्त, २१. संसार, दुनिया; २२. बुद्धिमानी, बुद्धि; २३. खुशी के बाजे, २४. बुद्धिमान, दार्शनिक; २५. गणितज्ञ।

कोई है आक़िल[१] कोई है फ़ाज़िल[२] कोई नजूमी[3] लगा कहाने
जो चाहो कोई यः भेद खोले यः सब हैं हीले यः सब बहाने
पड़े भटकते हैं लाखों दाना[४] करोड़ों पंडित हज़ारों स्याने
जो ख़ूब देखा तो यार आख़िर ख़ुदा की बातें ख़ुदा ही जाने ।।

वह आकाश की ओर देखते हैं, फिर धरती पर दृष्टिपात करते हैं और जो कुछ उनकी आँखें देखती हैं, उसका वे अपनी कल्पना की सहायता से वर्णन करते हैं। वे आसमान की ओर देखते हैं :

हवा के ऊपर यः आसमां का बे-चोबः ख़ेमः जो तन रहा है
न इसकी मेख़ें[५] न हैं तनावें[६] न इसकी चोबें[७] इधर खड़ा है
इधर है चांद और उधर है सूरज इधर सितारा उधर हवा है
किसी को मुतलक़[८] ख़बर नहीं है कि कब बना और रुका है काहे

फिर धरती की ओर ध्यान देते हैं :

फ़लक[९] तो कहने को दूर हैगा ज़मीं का अब जो य(ह) बिस्तरा है
खड़े हैं लाखों पहाड़ जिस पर फ़लक से सिर जिसका जा लगा है
हज़ारों हिकमत का एक बिछौना यह पानी ऊपर जो बिछ रहा है
बहुत हकीमों ने ख़ाक छानी कोई न समझा यः भेद क्या है

और, ज़मीन से लेकर आसमान तक जो लाखों तरह की सृष्टि भरी है : हाथी, चींटी, राई, पर्वत—सभी को देखते हैं; हँसना-रोना, ख़ुशी-ग़मी, उन्नति-अवनति, विश्वास-सन्देह, अमीरी, वज़ीरी, फ़क़ीरी, पशु-पक्षी इत्यादि कोई भी वस्तु उनकी दृष्टि की परिधि से बाहर नहीं रहने पाती। वे देखते सब कुछ हैं, लेकिन किसी की असलियत समझ में नहीं आती। हाँ, यदि वे किसी रहस्य को जानते हैं तो वह है संसार की निस्सारता। इस दुनिया की अनित्यता भी उर्दू-कवियों का साधारण विषय है, किन्तु 'नज़ीर' ने इस विषय को अपनाया है। वे इस तथ्य को भलीभाँति जानते थे कि 'सब हैं फ़ानी देह्र में'; और इस तथ्य से वे प्रभावित हुए थे। वे जानते थे कि सभी धनवान्-दरिद्र, खास-व-आम एक दिन काल-कवलित हो जायँगे; आकाश, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य-चन्द्रमा किसी को अमरत्व नहीं :

आग़ाज़[१०] किसी शै[११] का न अंजाम[१२] रहैगा
आख़िर वही अल्लाह का एक नाम रहैगा

---

१. बुद्धिमान, २. विद्वान्, ३. ज्योतिषी, ४. बुद्धिमान, ५. खूँटा, ६. रस्सियाँ, ७. लकड़ियाँ, ख़ीमा खडा करने के बाँस, ८. रंच - मात्र, ९. आकाश, १०. आरम्भ, ११. वस्तु. १२. अन्त, परिणाम।

इसलिए दुनिया से दिल लगाना मूर्खता है; यह धोखे की टट्टी है :

यह पैंठ अजब है दुनिया की और क्या-क्या जिन्स[१] इकट्ठी है
यां माल किसी का मीठा है और चीज़ किसी की खट्टी है
कुछ पकता है कुछ भुनता है पकवान मिठाई पट्टी है
जब देखा ख़ूब तो आख़िर को न चूल्हा भाड़ न भट्टी है
ग़ुल-शोर बबूला आग हुआ और कीचड़ पानी मिट्टी है
हम देख चुके इस दुनिया को यह धोखे की-सी टट्टी है

जब दुनिया धोखे की टट्टी ठहरी तो फिर इसकी किसी चीज़ पर भी भरोसा नहीं हो सकता। वह धन-सम्पत्ति हो :

दौलत जो तेरे घर में यः अब फूली है जों फूल
मर्दूद[२] भी करती है यः और करती है मक़बूल[३]
जो चाहे तेरे साथ चले यां से यः मजहूल[४]
ज़िन्हार[५] ख़बरदार हो इस बात प मत भूल
यह ख़न्दी[६] तेरे साथ नहीं जायगी बाबा

अथवा संसार के पद-सम्मान, मान-मर्यादा हों :

गर शाह[७] सर प रखकर अफ़सर[८] हुआ तो फिर क्या
और बह्रे[९] सल्तनत[१०] का गौहर[११] हुआ तो फिर क्या
माही[१२], अलम[१३], मरातिब[१४], पुरज़र[१५] हुआ तो फिर क्या
नौबत[१६], निशां[१७], नक़ारा[१८] दर पर हुआ तो फिर क्या
सब मुल्क[१९] सब जहां का सरवर[२०] हुआ तो फिर क्या

परिणाम विदित है :

था एक दिन वह धूम का निकले था जब असवार हो
हर दम पुकारे था नकीब[२१] आगे बढ़ो पीछे रहो
या एक दिन देखा उसे तन्हा[२२] पड़ा फिरता है वह
बस क्या ख़ुशी क्या नाख़ुशी यकसां[२३] है सारी दोस्तो
गर यों हुआ तो क्या हुआ और ओवों[२४] हुआ तो क्या हुआ

---

१. सामग्री, २. घृणित, निकृष्ट; ३. स्वीकृत, आदरणीय; ४ ढीला, सुस्त; ५. कदापि नहीं, ६. हँसी-ख़ुशी, ७. राजा, ८ ताज, मुकुट; ९. समुद्र, १०. राज्य, बादशाहत; ११. मोती, १२. मछली, १३. झंडा, १४. दर्जे, १५. सोने-चाँदी से भरपूर, १६. डंका, १७. झण्डा, १८. नगाड़ा, १९. देश, २०. सरदार, २१ बन्दी, चारण; २२. अकेला, २३. समान, २४. उस प्रकार।

इस संसार की धन-सम्पत्ति तथा पद-सम्मान को तो सभी जानते हैं कि ये तुच्छ हैं, ज्ञान-विज्ञान की भी यही दशा है :

पढ़ इल्म[१] कई इस दुनिया में गर कामिल[२] जी-इदराक[३] हुए
और लाद किताबें ऊँटों पर हर मानी[४] के दर्राक[५] हुए
माक़ूल[६] पढ़ी मनक़ूल[७] पढ़ी हर मन्तिक़[८] में चालाक हुए
यां जितने इल्म के दरिया हैं उन दरिया के पैराक हुए
सब जीते-जी के झगड़े हैं सच पूछो तो क्या ख़ाक हुए
जब मौत से आकर काम पड़ा सब क़िस्से क़ज़िए[९] पाक[१०] हुए

इसलिए 'नज़ीर' असावधान लोगों को चेतावनी देते हैं कि वह परिणाम को न भूलें। संसार की आकर्षक वस्तुएँ मन को अपनी ओर भले ही खींचें, सुख-विलास की मदिरा सब कुछ भूल जाने के लिए भले ही कहे, विद्याएँ व कलाएँ अपनी ओर क्यों न खींचें, प्रेम व सौन्दर्य के रहस्य एवं विनम्र भावनाएँ अपने ही में लीन क्यों न रखें, लेकिन मनुष्य के लिए किसी भी दशा में असावधानी उचित नहीं :

जहाँ हैं जब तलक यां सैकड़ों शादी[११] वो ग़म[१२] होंगे
हज़ारों आशिक़े-जां-बाज़[१३] और लाखों सनम[१४] होंगे
किनार[१५]-वो-बोस और ऐश[१६]-वो-तरब भी दम-ब-दम[१७] होंगे
मगर जितने यः अपनी सफ़[१८] के हैं यह सब अदम[१९] होंगे
न यह चुहलें न यह धूमें न यह चर्चे ब-हम[२०] होंगे
मियाँ एक दिन वह आएगा न तुम होगे न हम होंगे

'नज़ीर' संसार की अनित्यता को देखकर इतना अधिक प्रभावित हुए हैं कि वह बार-बार लोगों को चेतावनी देते हैं, और हर बार नये रंग से। इसलिए पुनरावृत्ति के कारण उनकी रचना में फीकापन नहीं पैदा होता। इस विषय पर कुछ कविताएं अत्यन्त भावपूर्ण हैं; और उर्दू-कविता में उनकी मिसाल नहीं। 'बंजारनामा' इसी प्रकार की एक अप्रतिम तथा भावपूर्ण कविता है :

टुक[२१] हिर्स[२२] व हवा[२३] को छोड़ मियाँ मत देस बिदेस फिरे मारा
क़ज़्ज़ाक़[२४] अजल का लूटे है दिन-रात बजाकर नक्क़ारा[२५]
क्या बधिया भैंसा बैल शुतुर[२६] क्या गोई पल्ला सिर भारा
क्या गेहूँ चावल मूंठ मटर क्या आग धुआँ क्या अंगारा
सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा

---

१. विद्या, २. सम्पूर्ण, ३. समझ-बूझवाला, ४. अर्थ, तत्त्व; ५. ज्ञाता, ६. बुद्धिग्राह्य, तर्क, दर्शन-शास्त्र; ७. अध्यात्मविद्या, ८. तर्कशास्त्र, ९. झगडे, १०. तय हुए, निवृत्त हुए; ११. ख़ुशी, १२. दुःख, शोक; १३. जान की बाज़ी लगानेवाला, १४. माशूक़, १५. आलिंगन-चुम्बन, १६. भोग-विलास और आनन्द, १७. क्षण-प्रति क्षण, १८. पंक्ति, मेल; १९. नष्ट, अनुपस्थित; २०. एक साथ, सम्मिलित; २१. तनिक, थोड़ा; २२. लालच, २३. इच्छा, लालसा; २४. डाकू, २५. नगाड़ा, २६. ऊँट।

प्रत्येक वंद में पाँचवें मिसरे[1] की पुनरावृत्ति का हृदय पर एक विचित्र प्रभाव पड़ता है। इसको बार-बार दुहराने से विनाश का रूप हृदयंगम हो जाता है। यही मंत्र-मुग्धकारी प्रभाव, इस कविता में भी सन्निहित है :

बट-मार अजल[2] का आ पहुँचा टुक इसको देख डरो बाबा
अब अश्क[3] बहाओ आँखों से और आहें सर्द भरो बाबा
दिल हाथ उठा इस जीने से ले पस[4] मन मार मरो बाबा
जब बाप की ख़ातिर रोते थे अब अपनी ख़ातिर रो बाबा
तन सूखा कुबड़ी पीठ हुई घोड़े पर ज़ीन धरो बाबा
अब मौत नक़ारा बाजि चुका चलने की फ़िक्र करो बाबा

यह विषय बहु-प्रयुक्त होने पर भी 'नज़ीर' इसपर रस्मी ढंग से नहीं लिखते। इस विचार ने उनके जज़्बात को भड़काया है और कल्पना में तूफ़ान खड़ा किया है। इसीलिए प्रत्येक शेर, बल्कि हर एक शब्द, असर में डूबा हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक शब्द एक चित्रकार की हैसियत रखता है, एक रूप खड़ा कर देता है। ये कविताएँ रूपकों से भरी-पड़ी हैं, ऐसे चित्र, जिन्हें उनकी सूक्ष्मदर्शी आँखों ने देखा था। प्रत्येक चित्र असलियत तथा वास्तविकता से परिप्लावित है :

सर काँपा चाँदी बाल हुए मुँह फैला पलकें आन झुकीं
क़द टेढ़ा कान हुए बहरे और आँखें भी चुँधियाइ गईं
सुख नींद गई और भूख घटी दिल सुस्त हुआ आवाज़ मिहीं[5]
जो होनी थी सो हो गुज़री[6] अब चलने में कुछ देर नहीं
तन सूखा कुबड़ी पीठ हुई घोड़े पर ज़ीन धरो बाबा
अब मौत नक़ारा[7] बाजि चुका चलने की फ़िक्र करो बाबा

यह 'नज़ीर' की मौलिकता है कि एक घिसे-पिटे विषय को अपने विशिष्ट रंग में अत्यन्त सुन्दरता के साथ बयान करते हैं। संसार की अनित्यता का वर्णन 'मीर' ने भी अपने विशिष्ट रंग में बड़े भावपूर्ण ढंग से किया है, किन्तु 'नज़ीर' एक अलग रास्ता पकड़ते हैं। संसार की क्षण-भंगुरता की कल्पना उनके मस्तिष्क में दो तरह की लहरें पैदा करती है। एक ओर तो वह इस कमीनी दुनिया को निंदा करते हैं। सभी दशाओं में संतोष की शिक्षा देते हैं और सत्कर्म करने के लिए आमंत्रित करते हैं। दूसरी लहर यह उठती है कि जीवन-अवधि अल्पमात्र है, सुन्दर एवं आकर्षक वस्तुएँ टिकाऊ नहीं, इसलिए "देख ले दुनिया को ग़ाफ़िल यह तमाशे फिर कहाँ"।

दुनिया धोखे की टट्टी है; यहाँ संतोष आवश्यक है :

जो फ़क़्र[8] में पूरे हैं वः हर हाल में ख़ुश हैं
हर काम में हर दाम[9] में हर हाल में खुश हैं

---

१. उर्दू-फारसी शेर की आधी पंक्ति, २. मौत, मृत्यु; ३. आँसू, ४. तो, अतः; ५. मद्धिम, पतली, अच्छी तरह न सुनाई देनेवाली; ६. चुकी, ७. नगाड़ा, डंका; ८. फ़क़ीरी, अपरिग्रह; ९. क़ीमत, फंदा।

गर माल दिया यार ने तो माल में खुश हैं
बे-ज़र[1] जो किया तो इसी अहवाल[2] में खुश हैं
अफ़लास[3] में अदबार[4] में इक़बाल[5] में ख़ुश हैं
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में ख़ुश हैं
चेहरे प मलामत न जिगर में असरे-ग़म[6]
माथे प कहीं चीन[7] न अब्रू[8] में कहीं ख़म[9]
शिकवा[10] न ज़बां पर न कभी चश्म[11] हुई नम[12]
ग़म में भी वही ऐश[13] अलम[14] में भी वही दम[15]
हरबात हर औक़ात[16] हर अहवाल में ख़ुश हैं

इसके अतिरिक्त यह संसार वैसा स्थल है, जहाँ किये का फल मिलता है। 'नज़ीर' को विश्वास है कि "गन्दुम अज़ गन्दुम बुरोयद जौ जे जौ"*। इसलिए वह लिखते हैं :

है दुनिया जिसका नांवं मियाँ यह ज़ोर[17] तरह की बस्ती है
जो महँगों को तो महँगी है और सस्तों को यह सस्ती है
यां हरदम झगड़े उठते हैं हर आन अदालत बसती है
गर मस्त करे तो मस्ती है और पस्त[18] करे तो पस्ती है
कुछ देर नहीं अँधेर नहीं इन्साफ[19] और अद्ल[20]-परस्ती है
इस हाथ करो उस हाथ मिले यां सौदा दस्त-ब-दस्तो[21] है

इस तथ्य से इनकार करने की मजाल नहीं कि "यां जैसी-जैसी करनी है फिर वैसी-वैसी भरनी है" :

जो और का ऊँचा बोल[22] करे तो उसका बोल भी बाला[23] है
और दे पटके तो उसको भी कोई और पटकने वाला है
बे-ज़ुल्म[24]-वो-ख़ता[25] जिस ज़ालिम ने मज़लूम[26] जिब्ह[27] कर डाला है
उस ज़ालिम के भी लोहू का फिर बहता नद्दी नाला है

एक दूसरी कविता में कहते हैं :

दुनिया अजब बाज़ार है कुछ जिस यां की सात[28] ले
नेकी का बदला नेक है बद से बदी की बात ले
मेवा खिला मेवा मिले फल-फूल दे फल-पात ले
आराम दे आराम ले दुख-दर्द दे आफ़ात[29] ले

---

१. निर्धन, २. दशा, ३. दरिद्रता, ४. दुःख, मुसीबत; ५. सौभाग्य, ६. दुख का प्रभाव, ७. शिकन, सिकुड़ान; ८. भौं, ९. टेढ़ापन, १०. शिकायत, ११. आँख, १२. भींगी हुई, १३. भोग-विलास, १४. शोक, दुःख; १५. साहस, जोर, ताकत; १६. समय; १७. विचित्र, १८. नीचा, ढीला; १९. न्याय, २०. न्याय-पालन, २१. हाथों-हाथ, २२. वचन, मान, प्रतिष्ठा; २३. ऊँचा, २४. अत्याचार, २५. अपराध, २६. पीड़ित व्यक्ति, २७. वध, २८. साथ, २९. आपत्तियाँ, दुःख, मुसीबत।

* गेहूँ से गेहूँ और जौ से जौ उपजता है।

कलयुग नहीं करयुग है यह यां दिन को दे और रात ले
क्या ख़ूब सौदा नक़द है इस हाथ दे उस हात[1] ले

कर चुक जो कुछ करना हो अब यह दम तो कोई आन है
नुक़सान में नुक़सान है एहसान में एहसान है
तोहमत[2] में यां तोहमत लगे तूफ़ान में तूफ़ान है
रहमान[3] को रहमान है शैतान को शैतान है
कलयुग नहीं करयुग है यह यां दिन को दे और रात ले
क्या ख़ूब सौदा नक़द है इस हाथ दे उस हात ले

विचारों की एक धारा है; और दूसरी लहर यह उठती है : संसार-कौमुदी में पतझर आनेवाला है, इसलिए इस पुष्पोद्यान को आँख-भर देख लें; और यदि पतझर न भी आये तो यह जीवन फिर कहाँ मिलनेवाला है :

देख टुक ग़ाफ़िल[4] चमन में गुल-फ़िशानी[5] फिर कहाँ
यह बहारे[6]-ऐश यह शोरे[7]-जवानी फिर कहाँ
साक़ी[8] वो मुतरिब[9] शराबे अरग़वानी[10] फिर कहाँ
ऐश कर ख़ूबां[11] में ऐ दिल शादमानी[12] फिर कहाँ
शादमानी गर हुई तो ज़िन्दगानी फिर कहाँ
अब जो आग़ाज़े[13]-जवानी की बहारें हैं मियां
ऐश-वो-इशरत[14] में उड़ा ले ज़िन्दगी की ख़ूबियां
नश्शा पीकर कोई दम कर ले तू सैरे-बूस्तां[15]
वायज़[16]-वो-नासिह[17] कहें तो इनके कहने को नमां[18]
दम ग़नीमत[19] है मियां यह नौजवानी फिर कहाँ

संसार में सौन्दर्य-सरिता प्रवाहित है। कवि की सौन्दर्योपासक निगाहें फिर क्यों न इस दृश्य से आनन्द-प्रमोद प्राप्त करें ? 'नज़ीर' इसी सुन्दर दृश्य को देखने में व्यस्त हैं और दूसरों को भी इसके लिए आमन्त्रित करते हैं। उन्हें यह भी महसूस होता है कि इस निर्झरणी का प्रवाह रुकता नहीं, इसकी धारा सदा प्रवाहित रहती है, कभी भी बिलकुल रुक नहीं जाती। इसी वजह से वह क्षण-क्षण इसकी सैर में डूबे रहते हैं और इन गुज़र जानेवाली सुन्दर चीजों पर अन्तिम दृष्टि डालते हैं। इसी अनुभूति के कारण इनकी

---

१. हाथ, २. आक्षेप, लांछन; ३. कृपालु, भगवान्; ४. लापरवाह, ५. फूल छिड़कना, ६. भोग-विलास का आनन्द, ७. मस्ती, उफान; ८. मधुबाला, शराब पिलानेवाला; ९. गवैया, १०. लाल रंग की, ११. सुन्दरियाँ, १२. ख़ुशी, आह्लाद; १३. आरम्भ, शुरू; १४. भोग-विलास, सुख-चैन; १५. बगीचा, फुलवारी; १६. उपदेशक, १७. शिक्षा देनेवाला, १८. न मान, १९. बड़ी बात, संतोष करने योग्य बात।

कविताओं में एक विशेप प्रकार का हसरतनुमा सरूर मिलता है। सौन्दर्य का चित्ताकर्षण और उसकी अनित्यता दोनों की अनुभूति उन्हें एक साथ होती है। वह अपने माशूक़ का ध्यान आकृष्ट करके कहते हैं :

आज तुझको हक़[1] ने दी है हुस्न वो ख़ूबी की बहार
चाहनेवालों से कर ले कुछ सलूक[2]-वो-मेह्र[3] वो प्यार
कौंदना बिजली का और योबन का मत गिन एतबार[4]
काठ की हाँडी नहीं चढ़ती है प्यारे बार-बार
मान ले कहना मेरा ऐ जान हँस ले बोल ले
हुस्न यह दो दिन का है मेहमान हँस ले, बोल ले
अब तो मुँह गुल है पियारे फिर धतूरा राख है
आज यह गुलशन खिला है कल को सूखा साख है
जो उठा शोला[5] भभूका आख़िरश[6] को राख है
चार दिन की चाँदनी है फिर अँधेरा पाख है
मान ले कहना मेरा ऐ जान हँस ले बोल ले
हुस्न यह दो दिन का है मेहमान हँस ले बोल ले

इस मन्त्रणा पर 'नज़ीर' अपने-आप भी अमल करते हैं। सन्तोष उनका धर्म है। पद-पदवी की उन्हें चाह नहीं। सांसारिक धन-वैभव की उन्हें इच्छा नहीं। वह इन सब चीज़ों से पृथक्ता ग्रहण करते हैं; और जिस संतोष की वे शिक्षा देते हैं, उसी को अपना धर्म बना लेते हैं। किन्तु साथ-ही-साथ वे इस संसार से अपना नाता नहीं तोड़ते। दुनिया की सुन्दरता से वे प्रभावित होते हैं और उसकी अनित्यता तथा अपनी मरणशीलता का खयाल करके वे अपने जीवनावकाश को प्रेम-सौन्दर्य का आनन्द लूटने में व्यतीत करते हैं।

पूर्वगामी पृष्ठों में मैंने इस बात की कोशिश की है कि 'नज़ीर' के कुछ महत्त्वपूर्ण विचार उजागर हो जायें, लेकिन 'नज़ीर' के विचारों और अनुभवों का संसार इतना प्रशस्त है कि वह छोटे-से पैमाने में नहीं समा सकता। और, फिर ऊपर से देखने में ऐसा जान पड़ता है कि इन विचारों में कुछ विरोधाभास है। एक ओर तो वे ऐसे प्रेम का ज़िक्र करते हैं, जो बहुत ऊँचा और महान् है, दूसरी ओर, वे कामुकता को अपना पेशा बना लेते हैं। कभी-कभी तो उनका दिलबर बहुत महान् है, कभी वह बाजारू माशूक़ है। कभी वे उच्चकोटि का नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं तो कभी गुंडों की सी बातें करते हैं। कभी वे अपरिग्रह एवं सन्तोष और संसार से विरक्ति की शिक्षा देते हैं तो कभी प्रेम-सौन्दर्य की बहार लूटने में तल्लीन दिखाई पड़ते हैं और 'एपिक्युरस' के दर्शन को अपनाते हैं। यह सब-कुछ सही, किन्तु 'नज़ीर' के विचारों में कोई विरोधाभास नहीं।

---

१. भगवान्, सत्य; २. व्यवहार, वर्ताव; ३. कृपा, मेहरबानी; ४. विश्वास, ५. ज्वाला, आग की लपट; ६. अन्ततोगत्वा।

विचारों तथा अनुभवों की दुनिया पर उनका पूर्ण अधिकार है। 'इलियट' ने कहा है कि कवि समस्त मानवीय जज़्बात से काम लेता है, और ये जज़्बात कच्ची सामग्री का काम देते हैं, जिन्हें वह कलात्मक कृति का रूप प्रदान करता है। 'नज़ीर' भी सभी प्रकार के विचारों व अनुभवों को अपनी कच्ची सामग्री समझते हैं और उन्हें कलात्मक कृतियों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसलिए इन कविताओं में वैविध्य है। उदाहरणस्वरूप एक कविता है : 'आदमी की फ़िलासफ़ी', जिसका पहला बन्द है :

दुनिया में बादशह है सो है वह भी आदमी
और मुफ़लिस[1] वो गदा[2] है सो है वह भी आदमी
ज़रदार[3] बेनवा[4] है सो है वह भी आदमी
नेडमत जो खा रहा है सो है वह भी आदमी
टुकड़े जो माँगता है सो है वह भी आदमी

इस कविता में एक बन्द और है :

यां आदमी प जान को वारे है आदमी
और आदमी ही तेग़ से मारे है आदमी
पगड़ी भी आदमी की उतारे है आदमी
चिल्लाके आदमी को पुकारे है आदमी
और सुनके दौड़ता है सो है वह भी आदमी

ऐसा जान पड़ता है कि इनमें पाश्चात्य विचारों की कुछ झलक है, ऐसे विचार, जो फ्रांस की क्रान्ति के कारण सिद्ध हुए; और जिनको उस क्रान्ति ने प्रचालित किया। इन शेरों से कुछ 'बर्न्स' और कुछ 'वर्ड्ज़्वर्थ' की कविताओं की स्मृति पुनर्जाग्रत् हो जाती है। इसी तरह की एक कविता है : 'रोटी की फ़िलासफ़ी', जिसका एक बन्द है :

रोटी न पेट में हो तो फिर कुछ जतन न हो
मेले की सैर ख़्वाहिशे बाग़ वो चमन न हो
भूखे ग़रीब दिल की ख़ुदा से लगन न हो
सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न हो
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ

और एक दूसरी कविता में कहते हैं :

जब मिली रोटी हमें सब नूरे-हक़[5] रोशन[6] हुए
रात-दिन शम्स[7]-वो-क़मर[8] शाम-वो-शफ़क़[9] रोशन हुए

---

१. दरिद्र, भिखारी; २. भीख माँगनेवाला, ३. धनवान्, ४. दरिद्र, ५. भगवान् की ज्योति, ६. प्रकाशमान, प्रकट; ७. सूर्य, ८. चन्द्रमा, ९. उषा की लालिमा।

जि़न्दगी के साथ थे जो कुछ नज़्म[1] वो नसक़[2] रोशन हुए
अपने बेगानों के लाजिम[3] थे जो हक़[4] रोशन हुए

वो चपाती के बरक़[5] में सब बरक रोशन हुए
एक रिकाबी में हमें चौदह तबक़[6] रोशन हुए

सम्भव है, लोग यह कहें कि 'नज़ीर' साम्यवादी विचारों से अवगत थे कि मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता रोटी है और यही वह मूलगत तत्त्व है, जो सारे मूल्यों की आधार-शिला है। यदि रोटी न हो तो फिर नीति, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान एवं कलाएँ, धर्म कुछ भी न हों। जि़न्दगी की सारी व्यवस्थाएँ इसी से सम्बन्धित हैं। लेकिन 'नज़ीर' न तो साम्यवादी थे और न फ्रांस की क्रान्ति के प्रेरक थे। वे तो सभी प्रकार के विचारों को, जो उनके समय के वातावरण में बिखरे हुए थे, अपनी कविताओं में जगह देते हैं। उनके विचारों का फंदा बहुत बड़ा था; इसलिए सभी प्रकार की चीज़ें उसमें खिंच आती हैं।

'नज़ीर' का विषय है मानव और मानव-जगत् के विभिन्न दृश्य। यह तो नहीं कह सकते कि प्रकृति के सौन्दर्य से वे अवगत न थे; लेकिन वे कभी मात्र प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण नहीं करते। उनकी कविताओं में प्रकृति का महत्त्व महज़ पृष्ठभूमि का-सा है। यदि वे चाँदनी रात का वर्णन करते हैं : "चाँद हिलोरें लेता था ज़ोर खिली थी चाँदनी" तो इसलिए कि वे इस चित्ताकर्षक पृष्ठभूमि के सामने अपने 'आनन्द-विहार के व्यापार' का दिलचस्प चित्र प्रस्तुत कर सकें। यदि वे वसंत-ऋतु द्वारा पुष्पोद्यान की क्यारियाँ सजाई जाने का चमत्कारपूर्ण वर्णन करते हैं तो इसलिए कि वासंती सुषमा से उनके आमोद-प्रमोद की मजलिस की शोभा हो :

शब[7] को चमन[8] में वाह वा क्या हो बहार थी मची
फूल खिले थे फूल-फूल ग़ुंचे[9] खिले कली-कली

बेला चंबेली राय-बेल मोतिया जूही सेवती
बादे[10]-सबा भी चलती थी इत्र-वो-गुलाब में बसी

हौज़ पड़े झलकते थे नहर हिलोरें लेती थी
शोख़[11] बग़ल में ग़ुंचा[12]-लब मै के नशों की ताज़गी[13]

ऐश-वो-तरब[14] की लहर में रात जब आधी ढल गई
इसमें कहीं से है ग़ज़ब निकली जो मकर चाँदनी

सुब्ह के डर से हड़बड़ा यार ने घर की राह ली
हम भी दग़ा[15] में आ गये मुफ़्त बहार लुट गई

---

१. प्रबन्ध, २. व्यवस्था, ३. आवश्यक, ४. अधिकार, ५. प्रतियाँ, ६. तल, तह, परत; ७. रात, ८. बग़ीचा, फुलवारी; ९. कली, १०. समीर, ११. धृष्ट, १२. कली के ऐसा ओठ, सम्पुटित ओष्ठ; १३. नयापन, कुम्हलाहट का अभाव; १४. भोग-विलास, हँसी-ख़ुशी, १५. धोखा।

अगर वे बहार की झड़ी, बदली-बयार के धूमधाम का समाँ दिखाते हैं तो इसीलिए कि वे अपनी विहार-रात्रि को उजागर कर सकें :

चार तरफ़ से अब्र[1] की वाह उठी थी क्या घटा
बिजली की जगमगाहटें, राद्द[2] रहा था गड़-गड़ा
बरसे था मेंह भी झूम-झूम छाजों उमड़-उमड़ पड़ा
झोंके हवा के चल रहे यार बग़ल में लोटता
हम भी हवा की लहर में पीते थे मै बढ़ा-बढ़ा
देख हमें इस ऐश में सीना फ़लक[3] का फट गया
अब्र खुला, हवा घटी, बूँदें थमीं, सेहर[4] हुई
पहलू से यार उठ गया सब वः बहार बह गई

स्पष्ट है कि यहाँ दिलचस्पी का केन्द्र आमोद-प्रमोद का व्यपार है, प्राकृतिक दृश्य नहीं। 'नज़ीर' जीवन के विभिन्न पहलुओं का भिन्न-भिन्न रंग से वर्णन करते हैं। कभी वे बाल्यकाल के भोलेपन के ऊपर से पर्दा उठाते हैं तो कभी यौवनावस्था के आनन्द का चमत्कारपूर्ण वर्णन करते हैं :

हँस-हँस के कोई हुस्न[5] की छल-बल है दिखाती
मिस्सी कोई, सुरमा कोई, काजल है दिखाती
चितवन की लगावट कोई चंचल है दिखाती
कुर्ती कोई, अँगिया कोई आँचल है दिखाती
कहती है कोई रात मेरे पास न आए
कहती है कोई हमको भी ख़ातिर[6] में न लाए
कहती है कोई किसने तुम्हें पान खिलाए
कहती है कोई घर को जो जाए हमें खाए;

और फिर वृद्धावस्था में जो कायापलट हो जाता है, उसका चित्र खींचते हैं, "आशिक को तो अल्लाह न दिखलाए बुढ़ापा"। बूढ़े हुए तो भी सुन्दरियों को देखते रहने का चस्का नहीं जाता। फिर परिणाम स्पष्ट है :

ख़ूबां[7] में अगर जायँ तो होती है यः फकड़ी
खींचे है कोई हाथ कोई पकड़े है लकड़ी
मूँछें कहीं बत्ती के लिए जाती हैं पकड़ी
दाढ़ी को पकड़ खींच कोई झाड़े है मकड़ी

---

१. बदली, २. मेघ-गर्जन, ३. आकाश, ४. प्रभात, ५. सौन्दर्य, ६. मन, ध्यान; ७. अच्छे लोग, सुन्दरियाँ।

कहता है कोई छीन लो इस बूढ़े की लाठी
कहता है कोई शोख़[1] कि हाँ खींच लो दाढ़ी
इतनी किसी काफ़िर[2] को समझ अब नहीं आती
क्या बूढ़े जो होते हैं तो क्या उनके नहीं जी

गर जायें तवायफ़[3] में तो लगती है सुनाने
क्या आए हो हज़रत[4] हमें क़ुरआन[5] पढ़ाने
हँस-हँस कोई पूछे है निमाज़ों[6] के दो[7]-गाने
टट्ठे से कोई फेंके है तसबीह[8] के दाने।

सारांश यह कि चारों ओर फ़ज़ीहत-ही-फ़ज़ीहत है। और क्यों न हो; "जब बूढ़े हुए हुस्न की चाहत नहीं छुटती"।

मैंने कहा है कि 'नज़ीर का विषय था मानव और मानव-जगत् के विभिन्न दृश्य। लेकिन वह प्रकृति के नाना प्रकार के दृश्यों की भी जानकारी रखते थे और उनका सुन्दर, साफ़ और प्रभाव-युक्त चित्रण भी कर सकते थे। चांदनी रात की रजत-छटा, वसंत का पुष्प-वर्णन, विशेषतः बरसात की बहारें, बड़े सूक्ष्म तथा आनन्दायक ढंग से वर्णित की गई हैं :

बादल हवा के ऊपर हो मस्त छा रहे हैं
झड़ियों की मस्तियों से धूमें मचा रहे हैं
पड़ते हैं पानी हर जा[9] जल-थल बना रहे हैं
गुलज़ार[10] भींगते हैं सब्ज़े[11] नहा रहे हैं
क्या-क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें
जंगल सब अपने तन पर हरियाली सज रहे हैं
गुल फूल झाड़ बूटे कर अपनी धज रहे हैं
बिजली चमक रही है बादल गरज रहे हैं
अल्लाह के नक़ारे[12] नौबत[13] के बज रहे हैं
क्या-क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें

ऐसी ही सफलता के साथ वह 'ऊनस' का भी वर्णन करते हैं और शीतकाल की रूप-रेखा खींचते हैं :

जब माह[14] अगहन का ढलता हो तब देख बहारें जाड़े की
और हँस-हँस पूस सँभलता हो तब देख बहारें जाड़े की

१. धृष्ट, २. नास्तिक, दुष्ट, उत्पाती, प्यारा, माशूक़; ३. नर्त्तकियाँ, ४. महाशय, ५. इस्लाम का धर्म-ग्रन्थ, ६. प्रार्थना, मुसलमानों की उपासना-पद्धति, ७. निमाज़, घुटने मोड़ना-उठाना; ८. माला, सुमिरनी; ९. जगह, स्थल; १०. बगीचे, उद्यान; ११. खुले स्थान में उगी हुई घास के तख़्ते, १२. नगाड़ा, १३. बारी-बारी से समय पर बाजा बजना, १४. महीना।

जब पाला बर्फ़ पिघलता हो तब देख बहारें जाड़े की
दिन जल्दी-जल्दी चलता हो तब देख बहारें जाड़े की
चिल्ला[1] ख़म[2]-ठोंक उछलता हो तब देख बहारें जाड़े की

इन कविताओं का भी वही महत्त्व है कि इनमें देखी हुई चीजों का चित्रण है। यहाँ इच्छापूर्वक गढ़े हुए प्राकृतिक दृश्यों के काल्पनिक तथा सजे-सजाये हुए चित्र नहीं। हाँ, जिन दृश्यों को 'नज़ीर' जानते थे, प्रकृति की जिन तस्वीरों ने उनकी कल्पना को भड़काया था, बस उन्हीं का साफ़, सुन्दर तथा चित्ताकर्षक वर्णन है। ब्यवरों पर ध्यान है और साधारण चीज़ों की भी उपेक्षा नहीं की गई है। और, जैसाकि मैंने कहा है, वे इन दृश्यों से पृष्ठभूमि का काम लेते हैं। उदाहरण-स्वरूप वे जाड़े की बहारें दिखलाते हैं तो इसलिए कि आँखों के सामने वे यह सीन दिखला सकें :

हो फ़र्श बिछा ग़ालीचों[3] का और पर्दे छूटे हों आकर
एक गर्म अँगेठी जलती हो और शम्मा[4] हो रोशन तिस पर
वह दिल्बर[5] शोख़[6] परी चंचल है धूम मची जिसकी घर-घर
रेशम की नर्म निहाली[7] पर सो नाज़[8] वो अदा से हँस-हँसकर
पहलू के बीच मचलता हो तब देख बहारें जाड़े की
तरकीब[9] बनी हो मजलिस[10] की और काफ़िर[11] नाचनेवाले हों
मुँह उनके चाँद के टुकड़े हों तन उनके रूई के गाले हों
पोशाकें नाज़ुक रंगों की और ओढ़े शाल-दोशाले हों
कुछ नाच वो रंग की धूमें हों कुछ ऐश[12] में हम मतवाले हों
प्याले पर प्याला चलता हो तब देख बहारें जाड़े की

इसी प्रकार 'बरसात की बहारें' भी विविध रंग के सफल चित्रों से भरी-पड़ी हैं। कविता क्या है, तस्वीरों का अल्बम है। कहीं पर पानी का यह ज़ोर कि—

कोई पुकारता है लो यह मकान टपका
गिरती है छत की मिट्टी और सायबान टपका
छलनी हुई अटारी कोठा निदान टपका
बाक़ी था एक ओसारा सो वह भी आन[13] टपका

तो कहीं कीचड़ की यह दशा है :

गिरकर किसी के कपड़े दल-दल में हैं मुअत्तर[14]
फिसला कोई किसी का कीचड़ से मुँह गया भर

---

१. कड़ी सर्दी, पूस के १५ और माघ के २५ दिनों का जाड़ा; २. ताल ठोंककर, ३. क़ालीनों, ४. चिराग़, शीशे के गिलास में जलती हुई बत्ती; ५. प्रेयसी, ६. धृष्ट, ७. तोशक, गद्दा, रज़ाई; ८. भावभंगी, ९. बनावट, १०. बैठक, सभा; ११. दुष्ट, प्यारे; १२. भोग-विलास, १३. आकर, १४. भीगा हुआ, इत्र में बसा हुआ।

एक-दो नहीं फिसलते कुछ इसमें आन अकसर[१]
होते हैं सैंकड़ों के सर नीचे पाँव ऊपर

क़िसी स्थान पर भोग-विलास के सामान हैं :

कितने शराब पीकर हो मस्त झुक रहे हैं
मै[२] की गुलाबी[३] आगे प्याले छलक रहे हैं
होता है नाच घर-घर घुँघरू झनक रहे हैं
पड़ता है मेंह झड़-झड़ तबले खड़क रहे हैं

तो कहीं पर 'बिरहिनों' की यह दशा है :

जब कोयल उनको अपनी आवाज़ है सुनाती
सुनते ही ग़म के मारे छाती है उमड़ी आती
पी-पी की धुन को सुनकर बेकल हैं कहती जाती
मत बोल ऐ पपीहे फटती है मेरी छाती

सारांश यह कि भिन्न-भिन्न प्रकार की तस्वीरें हैं और कैसी सफल ! हर तस्वीर में वास्तविकता की झलक है। इनमें से कोई फ़र्ज़ी तथा काल्पनिक नहीं है। 'नज़ीर' यथार्थवादी कवि हैं। जिन चीजों को वे अपने आसपास देखते हैं, उनकी जीती-जागती तस्वीरें उतारते हैं; और ये सारी चीज़ें विशुद्ध भारतीय वातावरण में साँस लेती हैं। इनमें तनिक भी परदेसीपन की गंध नहीं। इस प्रकार की कविताएँ उर्दू में अलभ्य हैं। यही यथार्थवाद उन कविताओं में भी मिलता है, जिनमें ईद, शबे-बरात, दिवाली, होली की रूप-रेखाएँ अंकित हैं। होली के रँगीलेपन से 'नज़ीर' विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं। इसलिए होली को कविता का विषय बनाकर बार-बार क़लम उठाते हैं :

हर जगह थाल गुलालों से ख़ुश[४] रंगत की गुलकारी[५] है
और ढेर अबीरों के लागे सो इशरत[६] को तैयारी है
हैं राग बहारें दिखलाते और रंग भरी पिचकारी है
मुँह सुर्ख़ी से गुलनार[७] हुए तन केसर की-सी क्यारी है
यह रूप झमकता दिखलाया यह रंग दिखाया होली ने
हर आन[८] ख़ुशी में आपस में सब हँस-हँस रंग छिड़कते हैं
रुख़सार[९] गुलालों से गुलगूं[१०] कपड़ों से रंग टपकते हैं
कुछ राग व रंग झमकते हैं कुछ मै[११] के जाम[१२] छलकते हैं
कुछ कूदे हैं कुछ उछले हैं कुछ हँसते हैं कुछ बकते हैं
यह तौर यः नक़्शा इशरत का हर आन बनाया होली ने

---

१. बहुधा, २. शराब, मदिरा; ३. शराब पीने की प्याली, शराब की छोटी सुराही, ४. अच्छा, सुन्दर; ५. बेल-बूटे का काम, ६. हास-विलास, ७. अनार का फूल, अनार के फूल-जैसा गहरा लाल रंग; ८. क्षण, समय; ९. गाल, कपोल, १०. गुलाब के फूल के रंग का, ११. मदिरा, शराब; १२. प्याला।

एक दूसरी कविता में कहते हैं :

हो नाच रंगीली परियों का बैठे हों गुलरू[1] रंग भरे
कुछ भीगी तानें होली की कुछ नाज़[2] वो अदा के रंग भरे
दिल भूले देख बहारों को और कानों में आहंग[3] भरे
कुछ तबले खड़कें रंग भरे कुछ ऐश के दम मुंह चंग भरे
कुछ घुंघरू ताल छनकते हों तब देख बहारें होली की

मैंने 'नज़ीर' की कविता के कुछ विशिष्ट पहलुओं का ज़िक्र किया है, जिनसे 'नज़ीर' के महत्त्व का अन्दाज़ा करना सम्भव है। आश्चर्य है कि 'नज़ीर' की कविता की ओर प्रायः उपेक्षा ही की गई है और बहुत कम लोगों ने उनकी कविता के सद्गुणों को समझा और उन्हें स्वीकार किया। बात यह है कि उर्दू में भाषा को कविता के ऊपर हमेशा श्रेष्ठता दी गई है और कहा जाता है कि 'नज़ीर' के शेर भाषा के मापदण्ड पर पूरे नहीं उतरते। भाषा का संरक्षण, उसकी प्राञ्जलता का ध्यान, परिमार्जन का प्रबन्ध—यह सब चीजें बुरी नहीं, किन्तु उर्दू-कविगण भाषा को बुत[4] बनाकर उसकी पूजा करते रहे हैं। इसी विचारधारा के कारण उर्दू-काव्य में बहुत-सी ख़ामियाँ पैदा हो गई हैं।

बात यह है कि उर्दू-भाषा कोई अछूती रूपवती देवी नहीं, जिसकी पूजा की जाय। यह तो केवल एक यन्त्र, एक साधन-मात्र है, जिसके द्वारा आवेगों तथा विचारों की अभिव्यंजना सम्भव होती है। आवेगों और विचारों से विलग होकर इसका कोई मान-महत्त्व नहीं है। उर्दू के कवि शब्दों के उलट-फेर को कविता समझते रहे हैं। 'नज़ीर' का दृष्टिकोण भिन्न है। वे चाहते हैं कि अपने अनुभवों को सम्पूर्ण, उपयुक्त, प्रवाहित और प्रभावपूर्ण ढंग से पढ़नेवाले तक पहुँचा सकें। उनके हाथ में भाषा एक लचीली-सी चीज़ है, जिसको वे अपने अनुभवों के उपयुक्त संतुलित साँचे में ढालते हैं, जिससे वे नई-नई शक्लें बनाते हैं। वे कभी यह भूल नहीं करते कि भाषा के परिमार्जन और प्राञ्जलता की कल्पित छवि पर अपने अनुभवों के लालित्य को निछावर कर दें। यही कारण है कि उनकी भाषा अपरिष्कृत समझी जाती है। जिन शब्दों का प्रयोग 'नज़ीर' अपने बोलचाल में करते थे और जो उनके आसपास व्यवहृत होते रहते थे, उन्हीं शब्दों से वे अपनी कविताओं में काम लेते हैं; और वे हिन्दी के शब्दों का भी अधिकतर तथा स्वाभाविक रूप से व्यवहार करते हैं। इस बात को भाषा की प्राञ्जलता के पृष्ठपोषक उचित नहीं समझते। लेकिन सच्ची बात यही है कि जिन अनुभवों और घटनाओं तथा जिस जीवन-पद्धति का 'नज़ीर' वर्णन करते हैं उनको किसी दूसरे रंग में सफलतापूर्वक बयान करना सम्भव न था।

शब्दों और अनुभवों में जो अनिवार्य सम्बन्ध है, इसकी जानकारी प्रायः लोगों को नहीं होती। हमारे जो अनुभव होते रहते हैं, जिन विचारों की लहरियाँ हमारे मस्तिष्क में उठती रहती हैं, जो प्रभाव हमारी अनुभूति-शक्ति ग्रहण करती रहती है, उन सबको हम अपनी स्मृति में

१. गुलाब के फूल-जैसे चेहरेवाला, २. हाव-भाव, ३. स्वर, राग; ४. मूर्त्ति।

शब्दों की सहायता से सुरक्षित रखते हैं, और स्वाभाविक रूप में हम उन्हीं शब्दों का अचेतन रूप से प्रयोग करते हैं, जिन्हें हम अपने बोलचाल में काम में लाते हैं। जब हम किसी ख़ास जज़्बे से विवश होकर अपने अनुभवों को शेर के साँचे में ढालने लगते हैं तो हमारे अनुभव; हमारे विचार, हमारी अनुभूतियाँ उन्हीं शब्दों का परिधान ग्रहण करके हमारे सामने आती हैं। यदि हम परिमार्जन, या भाषा की प्राञ्जलता का विचार करके उन शब्दों को, जो हमारे अवचेतन से उभरते हैं, प्राञ्जल-परिष्कृत शब्दों से बदल दें तो शायद परिमार्जित भाषा तो हाथ आ जाय, लेकिन कविता का प्रभाव नष्ट हो जायगा। 'नज़ीर' इस प्रकार की गलती नहीं करते। यही कारण है कि उनके शेर इतने प्रभावपूर्ण हैं।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि यदि कवि में मौलिकता है, यदि उसका विशिष्ट व्यक्तित्व है, यदि उसके अनुभव किसी विशेष रंग में रँगे हुए हैं, तो वह अपनी भाषा आप बना सकता है। कवि भाषा का दास नहीं, भाषा उसकी अनुचरी है। यदि उसमें आविष्कार की क्षमता है तो वह अपने दुर्लभ अनुभवों के लिए भाषा के नये-नये साँचे बना सकता है; और ये साँचे परिमार्जित भाषा के साधारण नियमों व प्रमापकों से नहीं, वरन् स्वनिर्मित प्राञ्जल भाषा के नियमों से नियन्त्रित हो सकते हैं। 'नज़ीर' इसी प्रकार के युग-प्रवर्त्तक कवि हैं। उन्होंने अपनी अलग भाषा निकाली। ऐसे युग-प्रवर्त्तक कवि को केवल एक बात का ध्यान रखना चाहिए—वह यह कि जो भाषा उसने बनाई हो, उसका आधार उसके रोज़मर्रा पर हो। ऐसा न हो कि वह खोज-खोजकर ऐसे असाधारण, कठिन, क्लिष्ट, अपरिचित शब्दों को इकट्ठा करे, जो साधारण बोलचाल में कभी प्रयुक्त न होते हों और जिनसे वह अपने चिन्तन एवं कल्पना में सहायता न लेता हो। यदि ऐसा हुआ तो उसकी कविता अपने समय की एक अनोखी-सी वस्तु होने के अतिरिक्त कोई और मूल्य-महत्त्व न रखेगी। 'नज़ीर' कभी ऐसा नहीं करते।

'नज़ीर' ने जितने शब्दों का व्यवहार किया है, उतने उर्दू के किसी अन्य कवि ने नहीं किये। यह बात भी 'नज़ीर' की कवि-सुलभ महानता का प्रमाण है। शब्द कहीं शून्य में साँस नहीं लेते; प्रत्येक शब्द अनुभूतियों एव विचारों का एक संसार होता है, और अच्छा कवि शब्द की गुंजाइशों से काम लेता है। इन शब्दों के कारण 'नज़ीर' की कविताओं की अनुभूतियों एवं कल्पनाओं की दुनिया प्रशस्त, रंगीन, स्वर्णिम तथा जटिल हो जाती है। और, ये शब्द जो प्रयुक्त हुए हैं, सभी प्रकार के हैं। वे अरबी, फ़ारसी, संस्कृत से लिये गये हैं और आपस में घुल-मिल गये हैं। आवश्यकता इस बात की है कि 'नज़ीर' के शब्दों पर शोध किया जाय और यह शोध-कार्य केवल शब्दों ही तक सीमित न रहे, बल्कि जिन रूपकों, उपमाओं तथा चित्रों को 'नज़ीर' व्यवहार में लाये हैं, उनका भी मूल्यांकन किया जाय। यहाँ भी वही प्रशस्तता, वही रंगीनी-व-स्वर्णिमता, वही मौलिकता तथा जटिलता मिलेगी और 'नज़ीर' की महानता का सिक्का और जम जायगा।

'नज़ीर' में कुछ ख़ामियाँ भी हैं, जिनके कारण उनकी कविता का महत्त्व घट जाता है। उनका व्यक्तित्व साधारण था और उनकी धारणा-शक्ति उच्चकोटि की न थी। वह अपने माहौल से प्रभावित हुए, लेकिन इनपर आलोचनात्मक दृष्टि न डाली। यदि वे अपने माहौल की

अर्थात् उस जीवन-पद्धति की, जिससे वे परिचित थे, अलग-थलग रहकर तस्वीर खींचते तो सर्वोत्तम यथार्थवादी कवि होते। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि 'नजीर' अपने माहौल में विलीन हो जाते थे और अपने आगे-पीछे की जिन्दगी में कोई खामी न पाते। उस ज़िन्दगी का चरम-लक्ष्य साधारणत्व का पहलू लिये हुए है। इस वजह से उनकी कविताओं से पूर्ण शान्ति नहीं मिलती।

फिर एक त्रुटि और भी है, जो उनकी कल्पना-शक्ति से सम्बद्ध है। वे सूक्ष्म दृष्टि तो रखते हैं, विशेषतः आसपास की चीज़ों का वर्णन बड़ी सफाई और सफलता के साथ करते हैं, लेकिन उनकी कल्पना को अधिक ऊपर उड़ने की शक्ति नहीं और उनमें यह क्षमता भी नहीं कि वे भावों तथा विचारों की गंदगियों को दूर कर सकें और उन्हें खामियों और त्रुटियों से मुक्त कर डालें। यही कारण है कि कभी-कभी उनकी कविताओं में मात्र विचार एवं मात्र भाव मिलते हैं, जो कल्पनात्मक अनुभव के रूप में परिणत नहीं हो सके हैं।

उनकी टेकनीक में भी बहुत-कुछ कमी और झोल है। उनकी कविताएँ लम्बी होती हैं और अन्य कवियों की भाँति वे भी प्रायः एक बन्द के बाद दूसरा बन्द लिखते चले जाते हैं और सन्तुलन का ध्यान नहीं रखते। उनकी बहुत-सी कविताओं से यदि कई बन्द निकाल दिये जायँ तो उनके मूल्य-महत्त्व में स्पष्ट रूप से वृद्धि हो जायगी और कविता की विषयवस्तु में कोई दोष उपस्थित न होगा। इसके अतिरिक्त एक और खराबी यह है कि उनकी कविताएँ बहुधा वही असर पैदा करती हैं, जो किसी शृंखलाबद्ध ग़ज़ल में होता है। कहने का तात्पर्य यह कि विभिन्न बन्दों में सम्बन्ध भी होता है, किन्तु विचारों व भावों के उत्थान का पता नहीं होता और एक बात यह भी है कि 'नज़ीर' प्रायः अपने भावों एवं कल्पनाओं को व्यक्त करने में परिश्रम से काम नहीं लेते। वे सर्वोत्तम शब्द या चित्र का चुनाव नहीं करते और कभी-कभी अनावश्यक शब्दों तथा चित्रों की भरमार कर देते हैं, जिससे कविता की सुन्दरता में कमी हो जाती है।

सन्दर्भ-संकेत

१. देखिए 'अमली तन्क़ीद', प्रथम खण्ड का प्रथम भाग, पृष्ठ १७९ से १८३ तक।

२. शायद कुछ बातें इस ग़ज़ल के 'फ़ॉर्म' के विषय में कही जायें तो अनुचित न होगा। मैंने कहा है कि 'नज़ीर' ने गजल के 'फ़ॉर्म' (रूप) के सम्बन्ध में बहुत-से नये प्रयोग किये हैं। इसमें भी बिल्कुल नया और अनोखा प्रयोग है। बाह्य रूप तो वही है, जो ग़ज़लों का होता है; किन्तु इसमें जैसी स्वतन्त्रता दिखलाई गई है, जिस तरह इसमें तोड़-मरोड़ किया गया है, उसका उदाहरण कहीं नहीं मिलता। ग़ज़ल नज़्म बन गई है :

कल सुना हमने यः कहता था वः एक हमराज[१] से :
"देखता था मुझको आज एक शख़्स[२] अजब अन्दाज़[३] से
वह नियाज़[४]-वो-इज्ज़ था उसकी निगह से आश्कार[५]
जिस तरह तायर[६] किसी जा थक रहे परवाज़[७] से
तू जो वाक़िफ़[८] हो तो जा उसको बुला ला जल्द यां
मैं तसल्ली[९] दूं उसे कुछ शर्म से कुछ नाज़[१०] से
है मेरा दिल उस से मिलने को निहायत बेक़रार[११]"

सुनके वह हमराज़ बोला उस बुते[१२]-तन्नाज़ से :
"मैं तो उसको जानता हूं नाम है उसका 'नज़ीर'
और खबर है मुझको उसकी चाह के आग़ाज़ से
तुम हो[१५] सादे, मेहरबां[१६], उसको बखेड़े याद हैं
और सिवा इससे मेरा डरता है जी गम्माज से।"

सुनके यह हमराज से उसने कहा हंसकर : "मियां,
कुछ भी हो हम तो मिलेंगे उस बखेड़े-बाज से"

देखा ! ग़ज़ल नज़्म बन गई है, लेकिन ग़ज़ल का फ़ॉर्म अपनी जगह पर है। ग़ज़ल में गुंजाइश थी कि नज़्म बन सके, और 'नज़ीर' ने एक नहीं बहुत-से प्रयोग किये। आज आज़ाद नज़्म लिखी जाती है और बुरी तरह लिखी जाती है; और लोग समझते हैं कि यह बहुत बड़ी कृति है। किन्तु ग़ज़ल में यह क्षमता थी कि नज़्म बन सके। और यदि उर्दू के कवियों को इस बात का ज्ञान होता

---

१. विश्वासपात्र, अपने रहस्यों को जाननेवाला; २. व्यक्ति, ३. ढंग, ४. नम्रता एवं दीनता, ५. प्रकट, ६. पक्षी, ७. उड़ना, उड़ान; ८. अवगत, ९. सान्त्वना, १०. हाव-भाव, ११. अधीर, १२. माशूक़, १३. चोंचलेबाज़, १४. आरम्भ, शुरू; १५. सीधे, १६. कृपालु, १७. चुग़लखोर।

और वे इसकी योग्यताओं से सही ढंग पर काम लेते तो बहुत कुछ कर सकते थे। और, शायद फिर आज़ाद नज़्म की आवश्यकता महसूस न होती; और बेढंगी तथा दुराकृति नज़्मों का डंका न बजता"।

[अमली तनकीद, खण्ड १, भाग १, पृष्ठ १८७—९१]

२. इन ग़ज़लों के अतिरिक्त भी 'नज़ीर' ने बहुत-सी ग़ज़लें लिखी हैं, जो क्रमबद्ध हैं, क़िताबन्द हैं या जिनमें लम्बे क़िते हैं। कुछ ग़ज़लें अच्छी हैं, कुछ बुरी हैं और कुछ यों ही सी हैं। कलात्मक दृष्टि से कुछ सफल हैं तो कुछ असफल। ऐसी कुछ ग़ज़लों के मतले (प्रथम पंक्तियाँ) नीचे लिखी जाती हैं :

(१) जब हमनशीं[१] हमारा भी अह्दे[२] शबाब[३] था
क्या क्या निशात[४]-वो-ऐश[५] से दिल कामयाब[६] था

(२) छोटा बड़ा न कम न मंझोला इजारबन्द[७]
है उसी परी का सबसे अमोला इजारबन्द

(३) दुनिया है एक निगारे[८]-फ़रे बिन्दा[९] जल्वःगर[१०]
उल्फ़त[११] में उसकी कुछ नहीं जुज़[१२] कुल्फ़त[१३] वो ज़रर[१४]

(४) दिखाकर एक नज़र दिल को निहायत[१५] कर गया बेकल
परीरू[१६] तुंदख़ू[१७] सरकस[१८] हठीला चुलबुला चंचल

(५) सफ़ाई उसकी चमकती है गोरे सीने में
चमक कहाँ है यः अल्मास[१९] के नगीने में

(६) ऐश कर ख़ूबाँ[२०] में ऐ दिल शादमानी[२१] फिर कहाँ
शादमानी गर हुई तो जिन्दगानी फिर कहाँ

(७) कहते हैं जिसको 'नज़ीर' सुनिए टुक उसका बयाँ
था वः मुअल्लिम[२२] ग़रीब बुज़दिल[२३] वो तर्रसिन्दा[२४] जाँ

(८) जो तू कहता है ऐ ग़ाफ़िल[२५] "यः तेरा है यः मेरा है"
यह जिसका है उसी का है न तेरा है न मेरा है

(९) रुख़[२६] परी, चश्म[२७] परी, ज़ुल्फ़[२८] परी आन[२९] परी
क्यों न अब नामे-ख़ुदा[३०] हो तेरे क़ुर्बानी[३१] परी

---

१. साथी, २. समय, ३. जवानी, ४. आनन्द, खुशी; ५ भोग-विलास, ६. सफल-मनोरथ, ७. पाजामा बाँधने का फ़ीता, ८. माशूक़, ९. धोखेबाज़, १०. विराजमान, ११. प्रेम, १२. सिवा, १३. दुःख, १४. हानि, १५. अत्यन्त, १६. परी के ऐसा चेहरावाला, १७. चिड़चिड़ा, १८. उद्दण्ड, १९. हीरा, २०. सुन्दरियाँ, २१ ख़ुशी, आनन्द; २२. शिक्षक, २३. डरपोक, २४, आतंकित, २५. लापरवाह, २६. मुँह, चेहरा; २७. आँख, २८. अलकें, २९. गर्व, ठसका; ३०. ईश्वर का नाम, किसी के सम्मान के लिए कहा जाता है; ३१. निछावर, ।

(१०) क्या कहें दुनिया में हम इन्सान या हैवान[१] थे
खा़क थे क्या थे ग़रज़[२] एक आन[३] के मेहमान थे

(११) गुल्बाज़ी[४]-इशरत कीजिए क्या गुलरुख़ो[५] से दो घड़ी
करता है गुलबाज़ी को यां एक दम में गर्द[६] गुलछड़ी

(१२) अदा[७] वो नाज़ में कुछ-कुछ जो होश उसने संभाला है
तो अपने हुस्न[८] का क्या-क्या दिलों में शोर[९] डाला है

(१३) भरे हैं उस परी में अब तो यारो सर-ब[१०]-सर मोती
गले में, कान में, मुँह में, जिधर देखो उधर मोती

(१४) गये हम जो उल्फ़त[११] की वां राह करने
इरादे से चाहत[१२] के आगाह[१३] करने

(१५) न टोको दोस्तो उसकी बहार नामे-ख़ुदा[१४]
यही अब एक है यां गुलओज़ार[१५] नामे ख़ुदा

(१६) न पहने क्योंकि वः फूलों के हार नामे ख़ुदा

(१७) वह रश्के[१६]-ख़ुर जो वक़्ते सेहर[१७] बेनक़ाब[१८] था
देख उसके रुख़[१९] को रू-ब-ज़मीं[२०] आफ़ताब[२१] था

(१८) साक़ी[२२] बहार आई और जोश है गुलों का
ला जाम[२३] भरके सुन लें टुक शोर बलबुलों का

(१९) लिपट-लिपट के मैं उस गुल के साथ सोता था
रक़ीब[२४] सुब्ह को मुँह आँसुओं से धोता था

(२०) कहा यः आज हमें फ़ह्म[२५] ने सुनो साहब
यः बाग़े देह्र[२६] ग़नीमत है देख लो साहब

(२१) सेहर[२७] हमने चमन अन्दर अजब देखा कल एक दिल्बर[२८]
सही[२९] क़ामत[३०] परी पैकर[३१] मुक़त्ता[३२] वज़ऽ[३३] ख़ुश-मंजर[३४]

---

१. पशु, २. सारांश यह कि, ३. क्षण, ४. भोग-विलास में फूलों से खेलना, ५. गुलाब के फूल जैसे चेहरेवाला, ६. आसमान, ७. भाव-भंगी, ८. सौन्दर्य, ९. हलचल, १०. पूर्णतया, ११. प्रेम, १२. चाह, प्रेम; १३. अवगत, १४. ईश्वर का नाम (सम्मान के लिए), १५. गुलाब के फूल जैसे कपोल, १६. सूर्य जिससे स्पर्द्धा करे, १७. प्रभात, १८. पर्दा, १९. मुँह, २०. ज़मीन पर मुँह के बल झुका हुआ. २१. सूर्य, २२. मधुबाला, २३. प्याला, २४. प्रतिस्पर्द्धा, २५. बुद्धि, २६. संसार, २७. प्रभात, २८. चित्ताकर्षक, माशूक़; २९. सीधा, ३०. क़द, शरीर की ऊँचाई, लम्बाई; ३१. आकार, स्वरूप, ३२. सिजिल, सुडौल; ३३. रीति-भद्रता, ३४. सुशोभन ।

(२२) न मैं दिल को अब हर मकां बेचता हूँ
कोई ख़ूबरू[१] ले तो हाँ बेचता हूँ

(२३) सब ठाट यः एक बूँद से क़ुदरत[२] की बना है
यां और किसी को न मनी[३] है न मना[४] है

(२४) परीज़ादों[५] में है नामे-ख़ुदा जिस शान पर मोती
कोई ऐसा नहीं मोती मगर मोती मगर मोती

इन ग़ज़लों में इश्कबाजी है, कामुकता है, और फिर इनमें नैतिकता भी है और सूफ़ीमत के सिद्धान्त भी। एक ओर छिछोरापन है, तो दूसरी ओर गम्भीर विचार। अर्थात् जिस प्रकार 'नज़ीर' फ़ौर्म के विचार से ग़ज़ल में नये-नये 'पैटर्न' बनाते हैं, उसी तरह उनकी कविताओं की विषयवस्तु में भी विविधता है। अपना चित्र वह इन शब्दों में खींचते हैं :

कहते हैं जिसको 'नज़ीर' सुनिए टुक[६] उसका बयां[७]
था व. मुअल्लिम[८] ग़रीब बुज़्दिल[९] बो तर्सिन्दा[१०] जां
कोई किताब उसके तईं साफ़ न थी दर्स[११] की
आए तो मानी कहे वर्ना पढ़ाई रवां[१२]
फ़ह्म[१३] न था इल्म से कुछ अरबी के उसे
फ़ारसी में हाँ मगर समझे था कुछ ईं[१४] व आं[१५]
लिखने की यः तर्ज़[१६] थी कुछ जो लिखे था कभी
पुख़्तगी[१७] और ख़ामी[१८] के उसका था ख़त[१९] दरमियाँ[२०]
शेर-वो ग़ज़ल के सिवा शौक़ न था कुछ उसे
अपने इसी शग़्ल[२१] में रहता था ख़ुश हर ज़मां[२२]
सुस्त रविश[२३] पस्तक़द[२४] साँवला हिन्दी नज़ाद[२५]
तन भी कुछ ऐसा ही था क़द के मोआफ़िक़[२६] अयां[२७]
माथे प एक ख़ाल[२८] था छोटा - सा मस्से के तौर[२९]
था वः पड़ा आन कर अब्रुओं के दरमियाँ
वज़्अ[३०] सुबुक[३१] उसकी थी तिस प न रखता था रीश[३२]
मूँछें थीं और कानों पर पट्टे भी थे पुंबा[३३] सां[३४]

---

१. सुन्दर मुँहवाला, २. प्रकृति, ईश्वरीय शक्ति; ३. गर्व, अभिमान; ४. मान-मर्यादा, ५. परी का बच्चा, ख़ूबसूरत; ६. ज़रा, थोड़ा; ७. वर्णन, ८. शिक्षक, ९. डरपोक, १०. भीरु, ११. पाठ, १२. जारी, प्रवाहित; १३. बुद्धि, १४-१५. यह-वह, १६. ढंग, १७. पक्कापन, १८. कच्चाई, १९. अक्षर, लिपि; २०. बीच में, २१. कार्य-व्यस्तता, काम-धन्धा; २२. समय, २३. चाल, २४. छोटा, नाटा; २५. वंश, ख़ानदान; २६. अनुसार, २७. प्रकट, खुला; २८. तिल, २९. ऐसा, ढंग का; ३०. रीति-भद्रता, ३१. हल्का, ३२. दाढ़ी, ३३. रूई, ३४. ऐसा, समान।

पीरी[1] में जैसी कि थी उसको दिल-अफ़[2] सुर्दगी
वैसी ही थी उन दिनों जिन दिनों में था जवां
जितने ग़रज़ काम हैं और पढ़ाने सिवा
चाहिए कुछ उस से हों इतनी लियाक़त कहाँ
फ़ज़्ल[3] ने अल्लाह के उसको दिया उम्र भर
इज़्ज़त - वो - हुर्मत के साथ पारच:[4] वो आब[5] वो ना[6]

(4) Epicurus : A Greek philosopher (341—270 B C.), founder of the school called, after him the Epicurean—his doctrine : pleasure is the chief good.

(५) 'बर्न्स' की एक कविता है :

FOR A' THAT AND A' THAT

Is there, for honest poverty,
That hangs his head, and a' that ?
The coward-slave we pass him by,
We dare be poor for a' that !
For a' that, and a' that,
Our toils abscure, and a' that;
The rank is but the guinea stamp;
The man's the gowd for a' that.

What tho' on hamely fare we dine,
Wear hodden-gray, and a' that;
Gie fools their silks, and knaves their wine,
A man's a man for a' that.
For a' that, and a' that,
Their tinsel show, and a' that;
The honest man, tho' e'er sae poor,
Is King o' men for a' that;

१. बुढ़ापा, २. उदासीनता, ३. कृपा, ४. रोटी का टुकड़ा, कपड़ा; ५. पानी, ६. रोटी ।

Ye see you birkie, ca'd a lord,
Wha struts, and stares, and a' that;
Tho' hundreds worship at his word
He's but a coof for a' that :
For a' that, and a' that,
His riband, star, and a' that,
The man of independent mind,
He looks and laughs and a' that.

A prince can mak a belted knight
A marquis, duke, and a' that;
But an honest man's aboon his might,
Guid faith the mauna fa' that !
For a' that, and a' that,
Their dignities, and a' that,
The pith o' sense and the pride o' worth,
Are higher rank than a' that.

Then let us pray that come it may.
As come it will for a' that;
That sense and worth, o' er a' the earth,
May bear the gree, and a' that.
For a' that and a' that,
It's coming yet, for a' that,
That man to man the world o'er
Shall brothers be for a' that.

[*Robert Burns*]

वर्ड्सवर्थ की एक कविता है :

THE SWISS PEASANT

Once man atirely free, alone and wild
Was bless'd as tree—for he was Nature's child
He, all superior but his god disdained,
Walk'd none restraining, and by none restrain'd.

Confess'd no law but what his reason taught,
Did all he wish'd, and wish'd but what he ought.
As Man in his primaeval dower array'd;
The image of his glorious sire display'd,
Ev'n so, by vestal Nature guarded, here
The traces of primaeval Man appear.
The native dignity no forms debase,
The eye sublime, and surly lion-grace.
The slave of none, of beasts alone the lord,
He marches with his flute, his book and sword,
Well taught by that to feel his rights, prepar'd
With this 'the blessings he enjoys to guard'.

[*William Wordsworth*]

६. "हम समझते हैं कि वे मूल्य आधारभूत एवं महत्त्वपूर्ण हैं, जिनकी उपलब्धि पर अन्य बहुत-से मूल्यों का प्राप्त होना निर्भर है। उदाहरण-स्वरूप हम पेट भरने को एक विशेष ढग का कोट पहनने से अधिक (आवश्यक) समझते हैं; इसलिए कि यदि पेट में रोटी न हो तो हम बढ़िया-से-बढ़िया कोट पहनकर भी जीवन का आनन्द नहीं ले सकेंगे''.....आधारभूत तथा महत्त्वपूर्ण मूल्य वे दृष्किोण हैं, जो सैद्धान्तिक एवं महत्त्वपूर्ण इच्छाओं को परितुष्ट करते हैं और आधारभूत तथा महत्त्वपूर्ण इच्छाएँ वे हैं, जिनकी पूर्त्ति से अन्य इच्छाओं की शान्ति सम्बद्ध है।

नामानुक्रमणिका

अ

'अकबर' : ५९, १३१
अज़्मतुल्लाह खाँ : २२
'अत्तार' : ५१
'अनवरी' : १५१, १५२, १६०
'अनीस' : १३ (प्राक्कथन , ५९, १३२, २५१, २५३, २५५, २५६, २५७, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २७०, २७४
'अमानत' : ६ (प्राक्कथन)
'अफ़रासियाव' : २५३, २५४
'अवुलकलाम आजाद' : १३७
'अवुल हसन' : १२८
'अव्दुस्सलाम' : १८, १९, १४९
'अव्दुर्रहमान विजनौरी (डॉ०) : १३६, १३७
अरस्तू : ६ (प्राक्कथन)
अर्जुन : १४ (प्राक्कथन)
अलबन्द : १८
अलीमुल्लाह : ८९
अल्फ्रेड : १३९
'असद' : २५४
असफ़न्देयार/अस्फन्दयार : १८; १९
'असर' लखनवी : २५, १९७; २०१, २१५; २१८
असलूब अहमद अनसारी : १२८

आ

आग़ा-कल्लब-हुसेन-खाँ : १२
'आजाद' : १९, ६२, १५६
'आज़ुर्दा' : ४६, ४८, ४९
'आतिश' : ४९
'आदम' : १३५
'आफ़ताब अहमद' : १२९
'आवे-हयात' : १२
'आरज़ू' : ९०, ९१
'आर्नल्ड' : १(अ मुख) २ (सन्दर्भ-संकेत), २, २४२
'आलमे-ख़ेयाल' : ५
आले अहमद 'सरूर' : १३२
'आबिद' : २४२
आसफ़ुद्दौला : २०१, २०९

इ

'इक़बाल' : ४, ५२; ५९, १२८, १३०, १३१
'इन्द्र-सभा' : ६ (प्राक्कथन)
'इन्शा' : १६६
'इवादत' बरेलिब : १२९
'इब्ने-रशद' : १३७
'इब्नेज्याद' : २४८; २५३
'इब्लीस' : २४३
'इमाम हुसेन' : २४२; २४३; २४५, २४८, २५३; २५४; २५६, २५७; २५८; २६८
'इलियट' : ८ (प्राक्कथन), २, ६; १२७; ३०९
'इलियड' : २४२, २५२

उ

'उमर खैयाम' : १२७; १३७, २४८
'उर्फ़ी' : १३२; १५१, १५२

ए

'एकिल्लिस' : २४३; २५२
'एडलर' : २०७
'एमिली ब्रोन्ती' : ९८
'एरिक लिंकलिटर' : २
'एलिजाबेथ' : १७, २९

औ

'औन' : २४८

क

'कलीम' : ८ (प्राक्कथन), ११, १५
'कश्मीर' : १३२
'क्लारा' : २२०
क़ाज़ी अब्दुल वदूद : ९०
किशुन-कन्हैया : २९८
'कीट्स' : १३२
कुमारी : १८
'कैकाऊस' : ३९
कोहे (अलवन्द) : १८
'कोहे बेसतून' : १८
'क्राइसिस अनहिज्न' : २
क्रिस्टिना रोस्टी : २३९
'क्रिस्टोफर कॉडवेल' : २३९

ख

खलीलुर्रहमान अज़मी : १३७
'ख्वाजा हाफ़िज़' : ५१, ५२
'ख़ाक़ानी' : १५१, १५२
'ख़ान आरज़ू' : ८७, ८८, ८९, ९०
'खुला' : १४१

ग

'गालिब : ८ (प्राक्कथन), १९, २१, ३०, ३१, ३५, ३६, ३७, ४२, ४६, ४८, ५९, ६२, १००, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२१, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १४६, १४७, १८३, १८४, २८९
'गुरु नानक' : २९८
'ग़ज़ाली' : १३४
गेटे (जर्मन कवि) : ८ (प्राक्कथन), ५१, ५२, १३७
'गोयटे' : २३
'गोर्की' : ८ (प्राक्कथन)

च

चिरकीं : ५
'चेख़व' : ८ (प्राक्कथन)

ज

'जहूरी' : १३२
जलालुद्दीन अहमद : २३३
'जार्ज सेण्टियाना' : २८
जूएशीर : १८
जैहून : १८
'ज़ौक़' : ९, ४३, ४४, ४५, ६२, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, ११२, ११३, १२६, १३२, १३९, १५१, १७६, १७७, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३
'ज्वायस' : ८ (प्राक्कथन)

ट

'टरहर्न' : ९२
'टाल्स्टाय' : ८ (प्राक्कथन)
'ट्रॉजन्ज़' : २४०, २५२
'टैगोर' : ५९

ड

'डन' : ३९, ४१, १२६, १२७, २३५
'डारविन' : १२७, १३७
'डी० एच० लॉरेन्स' : २२०
'डुमर' : ५२

त

'ताजुल-मुलूक' : १९६
'तूसी' : १३४
तूर पहाड़ : ६ (प्राक्कथन)
'तेग़ज़नी' : २७२

द

'दबीर' : १३ (प्राक्कथन), २४६, २५१, २५३, २५५, २५६, २५७, २६१, २६४, २६५
'दर्द' : ६२, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ८३, ८६, १०५, १०७, १२१, १८९, २९६ ३०१
'दाग' : २१८, २२६, २२७, २३०, २३१
'दान्ते' : ३, ७५, ९५
दारा : ३९
'दिलगीर' : २७४
'दुर्रानी' : ९१

न

'नजीर' अकबराबादी : ३८, ३९, ४०, ४९, १३२, १८१, २८६, २८७, २८८, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२१
नज्म—७, ८
'नज़मन्निसा' : २०८
'नवाब मिर्जा' : २१६
नरगिस : १८
नसीम : १७५, १९८, १९९, २००, २०९, २१२, २१३, २१४, २३१
'नादिर' : १२
'नासिख' : १२
'निकोल्सन' : २४, १६४
नीत्से : ८ (प्राक्कथन)
'नूरा' : ५
'नेपोलियन' : ५२

प

'परसराम' : १९६, २२७
'पालवरलिन' : १३७
'प्लाटन' : ५१
'प्लेकर' : २३
'पोल' : २२०

फ

'फ़खरुद्दीन खाँ' : ८८, ८९
'फ़रहाद' : १७, १८, ६४, २८८
'फ़ानशाक' : ५२
फ़ानहेमर : ५१
'फ़ारावी' ; १२८
फारुकी : ८७
'फिदवी' : १५६
'फिरदौसी' : ५१, २४४, २५९, २६०, २६२
फिराक : २८, २९, ३२, ३३, ३४
'फिरोज़शाह' : २०८
'फिश्ते' : १३७
फ्रायड : ३०, २०६, २०७
'फ़्लाबेयर' : ८ (प्राक्कथन)

ब

'बकावली' : १९९, २००
'बद्रे मुनीर' : २०८, २१०, २१२, २१४, २२७
'बनफ़शा' : १८
'बर्कले' : १३७
'बर्गसां' : १२८, १३७
'बहज़ाद' : १८
'बहज़ाद'-बोमानी : ५ (प्राक्कथन)
'बहादुरशाह' : १३४, १४२
'बर्न्स' : ३०९, ३२२
'बाजिदअली शाह' : २०४
बिथोवेन : ८ (प्राक्कथन)

'बीट होफेन' : ४
'बुअली-सीना' : १२८, १३४
'बेदिल' : १३२
बेनज़ीर : १९३, १९६, २०८, २११; २२७
'बोडेन-स्टाट' : ५१, ५२
'बोदलियर' : १३७
'ब्राउनिंग' : ८ (प्राक्कथन), २८
'ब्लेक' : ७५, ९४

म

मंसूर : २०
मजनू : १८, ८२, २८८
'मजिस्ती' : १३७
'मलारमे' : १३७
मसऊद हसन रिज़्वी : १३
मसऊदी : १३७
माइकेल ऐन्जेलो : ८ (प्राक्कथन)
मानी : १८
'माम्बर्ट' : ११०
'मारकये-चकबस्त वो शरर' : १० (प्राक्कथन)
'माह-रूख' : २०८
मिंग-युग : ५ (प्राक्कथन)
'मिडिल्टन मरी' : २
'मियाँ फौकी' : १५६
'मिरजा फैज' : १५६
'मिर्जा अफ़ीज' : ५२
'मिल्टन' : ८ (प्राक्कथन), १२७, १३२
'मीर' (हसन) : ५, ७, ८, १०, ३७, ४०, ४१; ४४, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७४, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९२, १००, १०५; १०७, ११०, ११४, ११५, १२५, १२६, १३१, १३२, १४५, १४८, १९६, २००, २०१, २०३; २०५, २०७; २०८, २०९, २१०; २११, २१२, २१३, २१४, २१७, २१८, २२२, २३४, २७८, २८४, २८६, ३०५
'मीर ज़ाहिक' : १५६, १५७, १६९
'मीर तकी' : १५६
'मीर हमजा' : २४४, २४६, २५३
'मुबारक अजीमाबादी' : १६
मुहम्मद हसन : ८७, ६१, २४८
मूनस्टार्ट : ८ (प्राक्कथन)
'मूनालीजा' : ४
मूनिस : २७३
'मूसा' : ६ (प्राक्कथन)
'मोपासाँ' : ८ (प्राक्कथन)
'मोमिन' : ५, ६२, १००, ११८, ११९, १२०, १२१, १२३, १२५, १२६, १४८, २२४, २२५, २२६, २२७, २३५
'मोहसिन काकोरवी' : १६७
'मौलवी नुदरत' : १५६
'मौलवी साजिद' : १५६
'मौलाना रूम' : १२८

य

यास्मन : २३
'युंग' : २०७
'युलिसिस' : ८ (प्राक्कथन)

र

'रसीद अहमद' : ५८, १३१
'राशिख' : १९४, १९९
रासिख अजीमाबादी : १५ (सन्दर्भ-ग्रन्थ)
'रिचार्डज़' : २
रिन्दी : १८
रुस्तम : १८, १९, २४३, २५९

'रूकर्ट' : ५१, ५२

ल

'लका' : २५३
'लान्सलॉट' : २२७
'लिण्टहोल्ड' : ५२
'लूश्के' : ५२
'लेविस' : २
ल्यूनार्द-द-विन्सी : ८ (प्राक्कथन)

व

वकाल-लल हातिमी : ५५
वहशी : २४
वर्ड्ज़्वर्थ : ५, ६, ९, ६९, ३०९, ३२३; ३२४
'विक्टोरिया' : २९
'वेनिस डि मेलो' : ४
'वोल-ओरलियन' : ४८
'वोवेन' : ९२

श

शमशाद : १८
'शाह कुदरततुल्लाह 'कुदरत' : ३७; ३९, ४०
'शिब्ली' : ९०
'शिमर' : २४५; २४८
'शेक्सपियर' : ८ (प्राक्कथन), ९, १७, २८; १३२, १३७, २५३
'शेख सादी' : ५१
'शेली' : ६
'शैफ़ता साहेब' : २२४
'शोक' (कड़ुवाई) : १९७, २०५, २१४; २१६; २१८, २१९; २२०; २२१, २२२, २ १, २३३, २३४, २३५, २३७, २३९

स

'सज्जाद हुसेन' : १० (प्राक्कथन)
सरो : १८
'सरोश' : ३०
'सरूर' : ३४, ३५, ५६
'सलीम चिश्ती' : १६८
साम : १८
'सिकन्दर' : ३९; ४१
'सिली प्रोदूम' : ७; २०
'सी० डी० लेविस' : १३२
सुंबुल : १८
'सुकरात' : १३७
सुंग-युंग : ५ (प्राक्कथन)
सूफी : १३४
सैयद एहतेशाम हुसेन : १३६
सैयद नसीर हैदर : १३
सैंहून : १८, १९
'सौदा' (मिर्जा) : ६२; ७२, ७७; ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६; ८७, ८९; १००; १०१, १०२, १०५, १०८, ११३, १२१; १२५, १३२, १३९, १५१; १५२; १५३, १५५, १५६; १५७; १५८, १६०, १६३, १६९, १७४, १८८; २०२; २५१; २८४
'सोफ़ोक्लीज' : ६ (प्राक्कथन)
'स्टाबर्गलिट्ज़' : ५२
'स्पिनोजा' : ६; १२७, १३७
'स्विन्बर्न' : २१३

ह

'हकीम गौस' : १५६
'हजरत अली' : २९८
'हजरत अली अकबर' : २४२, २४८, २५०, २५३, २५७, २५८
'हजरते-अब्बास' : २४२, २४६, २४८, २५०-२५३, २६४
'हरबर्ट' : ९२

'हज्वे फिदवी' : १५७

'हम्बर्ट उल्फ' : १७०

'हर्मन स्टाल' : ५२

'हाकू' : १२ (प्राक्कथन)

'हातिमी' : २९

'हू.न-युग' : ५ (प्राक्कथन)

'हाफिज़' : २३

'हाली' : २१, ५९; १३१, १५०, २०८, २०६, २१४, २१९, २२०

'हीगेल' : १३७

'हुर' : २४५, २५०

'हेक्टर' : २४३, २५२

'होमर' : २४२

'होरेस' : १३७

पुस्तकों एवं कविताओं की नामावली

अ

'अमली तन्कीद' : ३१८, ३१९
'अन्दाजे-नज़र' : १ (आमुख)
'आख़री वसीअत' : २३३, २३६
'आदमी की फिलासफी' : ३०९
'आनन्द-विहार के व्यापार' : ३१०

इ

'इएण्ड' : १९२
'इश्कनामा' : ५१, १९२

ई

'ईलियड' : १९२

उ

उर्दू ज़बान और फनेदास्तांगोई : २५४
'उर्दू-तन्कीद पर एक नजर' : १२६
'उर्दू-शायरी पर एक नज़र' : ११ (प्राक्कथन), १५

औ

'औरलैण्डो फ़्यूरिओजी' : १९२

क

'कसीदा-दर-हज़्वे-अस्प अलमुसम्मा व तजहीके रोज़गार' : १६०
'कसीदा शहर आशोब' : १५९, १६१
'किताबुल अम्दा' : ५६
'किस्सा मेरा भी सानेहा है अजीब' : २२२
कोकशास्त्र : २२०
'कौले-गर्मी' : २२४
'क्राइसिस अनहिउन' : २

ग

'गुलज़ार नसीम' : २१३

ज

'जमाने से जुदा' : १ (आमुख)
'ज़ल्वे-इश्क' : २३१
'जिक्रे-मीर' : ८८, ८९, ९१

ड

'डिवाइन कॉमेडी' : १९२

त

तज़्किरा : ९०
'तरानए-शौक' : २०५
'तारीख मसनवियाते-उर्दू' : २३३
'ताज़्किरए बहारे बेखज़ां' : ८७, ८९
'ताजुलमुलक और बकावली' : २२७
'तिलिस्मे-होशरुबा' : २५३, २५४
'तैमूरनामा' : ५१

न

'नवादिर-उल-कोमला' : ९०
'निगार' : २५
नुक़्दे ग़ालिब : १२६

प

'पयामे-मशरिक' : ५२
'पैराडाइज़ लॉस्ट' : १९२
'प्रायोगिक आलोचना' : १६, ९२, ९९

फ

'फरियादे दाग़' : २२६
'फ़रेबे इश्क' : २१५
'फ़ित्न कद' : २३१
'फ़ित्न-खेराम' : २३०, २३१
'फ़ित्न-चंगेज' : २३१
फ़ित्न-चश्म : २३१

'फितनए-रोजगार' : ८६
'फिरदौसी का शाहनामा' : २४२
'फिरदौसे-गोश' : ३६
'फेयरी क्वीन' : १९२

ब

'वंजारनामा' : ३०४
'बते-शराब' : १०४
'बरसात की बहारें' : ३१३
'बहार' : ९०, ९१
'बहारे-इश्क' : २१५, २१८, २२०
'बहारे-बे खेजाँ : ८९, २०५
'बाइरेन' : १९२
'बिजनौरी' : १२६
'बज्मेनिगार' : २४

म

'मआसीर' : १३ (सन्दर्भ-संकेत), ५५, ५६, ९०
'मआमिलाते इश्क' : २२२
'मतला' : १८६, १८९
'मशरिक' की भूमिका : ५२
'मसनवी-ए-सेहारुल बयान' : २०२
'मसनवी गंजीनए हुस्न' : १९४
'मसनवी ख्वाब वो खयाल' : २०१, २०२, २०५
'मसनवी शोलए-इश्क' : १९१
मसनवी दर-हज्वे अमीर दौलतमन्द वकील : १५८
'मसनवी दर-हज्वे-मीर जाहिक' : १५६
'मसनवी दर हज्वे शीदी फौलाद खाँ कोतवाल' : १५९
मारकये-चकबस्त वो शरर : १० (प्राक्कथन)
'मीर तकी मीर' : ८७
'मुआमलात इश्क' : ५१, ९१, २२२
मुगन्नीनामा : ५१
'मुखम्मसे-शहर-आशोब' : १५९, १६१, १६२
'मूनालीजा' : ४ (सन्दर्भ-संकेत)
'मृत्यु' (कविता) : ६९

र

रामचन्द्रजी : १४ (प्राक्कथन)
रासिख अजीमाबादी : १५
'रुस्तम' वो 'सोहराब' : २४०, २४२
'रोटी की फिलासफी' : ३०९

ल

'लेडी ऑफ़ शैलाट' : २२७

व

'वेनिस डिमेलो' : ४ (सन्दर्भ-संकेत)

स

'सन्ज़ ऐण्ड लवर्ज़' : २२०
साकीनामा : ५१
सिम्फ़ोनी : ४
सुखन-हाय गुफ़्तनी : १६९
'स्कौट' : १९२

ह

हमारी शायरी : १३ (सन्दर्भ संकेत)
हिकमतनामा : ५१

स्थानों की नामावली

अकबराबाद : ८७, ८९, ९०
अरब : २८
ईरान : १८, १३१, १६०
जहानाबाद : १६३
दिल्ली : ९०, ९१, ९२
बोखारा : १३१
मक्का-मदीना : २४६
लखनऊ : १३ (प्राक्कथन), २२४
समरकन्द : १३१
हिन्दुस्तान : ५, १३ (प्राक्कथन), १, १८, २८; १३१, १३४
'हौज-काजी' : ८९

English Writers and Poets

Apollo Belwedere : 14 (सन्दर्भ-संकेत)
Edmund Spencer : 50
Emily Bronte : 99
Epicurus : 322
Eric Linklater : 14 (सन्दर्भ-संकेत)
F. R. Leavis : 12
Francesco del Giocondo : 14 (सन्दर्भ-संकेत)
George Santana : 55
Henry Vaughan : 94
Humbert Wolfe : 17.
James Elory Flecker : 52
John Lyly : 0
Leonardo da Vinci : 14 (सन्दर्भ-संकेत)
Ludwig Van Beethoven : 14 (सन्दर्भ-संकेत)
Matthew Arnold : 213 (सन्दर्भ-संकेत)
Milton : 252
Napoleon : 2 (सन्दर्भ-संकेत)
Nasib : 165
Paul Verlaine : 61
Peacock : 13 (सन्दर्भ-संकेत)
Robert Burns : 323
Saint-Beuve : 23 (सन्दर्भ-संकेत)
Samuel Daniel : 50
Shakespeare : 51
Shelley : 15
Sir William Orpen : 14
Sully Prudhomme : 16
Theophile Gautier : 56
T. S. Eliot : 15, 222
The Venus of Melos : 14
Wordsworth : 2 (सन्दर्भ-संकेत)

Names of English Books and Poems

A Defence of Poetry : 15
A Midsummer Night's Dream : 15
Crisis in Heaven : 14 (सन्दर्भ-संकेत)
For A 'That And A' That : 322
Interpretation of Poetry and Religion : 55
Mona Lisa : 14
New Bearing in English Poetry : 12
Notes on English Verse Satire : 173
Paradise Lost : 252
Pardiso : 98
The Four Ages of Poetry : 13 (सन्दर्भ-संकेत)
The Metaphysical Poets : 15
The Outline of Art : 14
The Study of Poetry : 4,13 (सन्दर्भ-संकेत)
The Swiss Peasant : 323